शास्त्र के मूल सिद्धान्त



श्रीनारायण अग्रवाल, एम० ए०


महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान केन्द्र
तिथी..............
पु०सं०...1260
पुस्तकालय



अर्थशास्त्र के मूल सिद्धान्त

[उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, दिल्ली, राजस्थान तथा अजमेर और सागर बोर्डों द्वारा प्रस्तावित पाठ्यक्रम के अनुसार]



लेखक

श्रीनारायण अग्रवाल, एम० ए०,

अध्यापक, प्रयाग विश्वविद्यालय,

प्रयाग



प्रकाशक

रामनारायण लाल

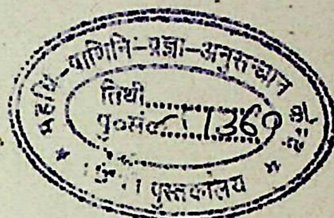
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

इलाहाबाद

प्रथम संस्करण] ; १९५४ [मूल्य ७)

प्रकाशक
रामनारायण लाल
प्रयाग

मुद्रक
प्रकाश प्रिंटिंग वर्क्स
३, क्लाइव रोड,
प्रयाग



भूमिका

अर्थशास्त्र पढ़ाने का मुझे कई वर्षों का अनुभव है। मुझे यह बात हमेशा से खटकती रही है कि इंटरमीडियेट कक्षा के लिये लिखी गई अभी तक जितनी भी पुस्तकें हैं उनमें से अधिकांश में आचार्य मार्शल के बाद के अर्थशास्त्रियों के विचारों का उचित रूप से समावेश नहीं किया गया है। इसके कारण विद्यार्थियों का ज्ञान अपूर्ण रह जाता है और वह आधुनिक विचारों को नहीं जान पाते। यही नहीं, अर्थशास्त्र के विषय को वैज्ञानिक ढंग से समझने के स्थान पर वह विषय को रट कर याद करने के आदी हो जाते हैं। अन्य विद्वानों की पुस्तकें पढ़ने की जिज्ञासा उनमें नहीं रहती और यह प्रवृत्ति आगे चल कर बड़ी हानिकारक सिद्ध होती है।

प्रस्तुत पुस्तक में मैंने इन कमियों को दूर करने का प्रयास किया है। आचार्य मार्शल के विचारों के साथ-साथ मैंने कैनन, विकसैल, रोबिन्स, पूगी, श्रीमती जान राबिन्सन, फिशर, केन्स, डाल्टन, मेहता, चैपमैन, कार्वर आदि विद्वानों के भी विचार दिये हैं जिससे विद्यार्थी आधुनिक अर्थशास्त्रियों के विचारों से भी अवगत हो जायँ। इसके साथ ही मैंने इस बात का भी प्रयास किया है कि विद्यार्थियों में आलोचनात्मक अध्ययन की तथा तर्क करने की शक्ति बढ़े। विभिन्न अर्थशास्त्रियों के विचारों का अध्ययन करते समय वह यह समझ जायँ कि कौन सा विचार अधिक मान्य है और क्यों। इसी कारण मैंने विभिन्न विद्वानों के मत देने के पश्चात् उनकी आलोचना भी की है और तार्किक दृष्टि से यह देखा है कि कौन सा मत अधिक-मान्य है और क्यों। इससे विद्यार्थियों में अन्य विद्वानों की पुस्तकें पढ़ने की भी जिज्ञासा बढ़ेगी। इस रूचि को उचित प्रोत्साहन देने के लिये मैंने पुस्तक में पद-चिन्हों (Foot-Notes) का विशेष रूप से प्रयोग किया है जिससे विद्यार्थियों को उक्त विषय संबंधी विभिन्न विचारों का पता चल जाय।

पुस्तक में रेखाचित्र, मानचित्र तथा साधारण चित्रों का पर्याप्त मात्रा में प्रयोग किया गया है। मेरा विचार है कि जिस बात को समझाने में कई पृष्ठ लिखने पड़ते हैं उसे एक छोटे-से रेखाचित्र द्वारा सुगमता से समझाया जा सकता है। साथ ही विषय को याद रखने में भी इससे बड़ी सहायता मिलती है।

इतना सब करते हुये भी मैंने इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखा है कि जिस कक्षा के विद्यार्थियों के लिये यह पुस्तक लिखी गई है उनके स्तर से यह ऊँची न हो

जाय। इस कारण पुस्तक की भाषा बड़ी सरल रखी गई है और कठिन तथा उलझी हुई समस्याओं को बड़े रुचिकर तथा सरल ढङ्ग से समझाया गया है। जहाँ भी विवाद-ग्रस्त स्थल आये हैं वहाँ विवाद के पचड़े में न पड़कर अधिक मान्य मत को ही अच्छी तरह समझाने का विशेष प्रयास किया गया है।

पुस्तक लिखते समय पाश्चात्य विद्वानों की लिखी अनेक पुस्तकों से मैंने सहायता ली है। उनमें से कुछ के नाम पद-चिन्हों में दे दिये गये हैं, परन्तु स्थानाभाव के कारण बहुतों के नाम नहीं दिये जा सके हैं। पुस्तक लिखते समय इंटरमीजियेट कक्षा के कई अध्यापकों से भी मुझे बड़ी सहायता मिली है। उन सब का मैं बड़ा आभारी हूँ।

मुझे पूर्ण आशा है कि जिस अभाव को दूर करने के लिये यह पुस्तक लिखी गई है उस उद्देश्य में यह अवश्य सफल होगी।

प्रयाग विश्वविद्यालय
६-७-१९५४

श्रीनारायण अग्रवाल



विषय-सूची

१. प्रारंभिक

अध्याय		पृष्ठ-संख्या
१—अर्थशास्त्र की परिभाषा	...	१-१६
२—अर्थशास्त्र विज्ञान है या कला	...	१७-२२
३—अर्थशास्त्र का क्षेत्र	...	२३-२६
४—अर्थशास्त्र का आदर्श	...	२७-२६
५—अर्थशास्त्र के नियम	...	३०-३६
६—अर्थशास्त्र के अध्ययन की रीति	...	३७ ४०
७—अर्थशास्त्र के अध्ययन से लाभ	...	४१-४८
८—अर्थशास्त्र के विभाग और उनका पारस्परिक सम्बन्ध		४९-६०
९—अर्थशास्त्र का अन्य शास्त्रों से सम्बन्ध	...	६१-७०
१०—आर्थिक जीवन का विकास	...	७१-८०
११—अर्थशास्त्र के कुछ महत्वपूर्ण शब्द	...	८१-९५

२. उपभोग

१२—उपभोग	...	९७-१०५
१३—आवश्यकताएँ	...	१०६-११४
१४—आवश्यकताओं के लक्षण	...	११५-१२४
१५—आवश्यकताओं का वर्गीकरण	...	१२५-१३९
१६—उपयोगिता	...	१४०-१५३
१७—सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम	...	१५४-१६८
१८ सम-सीमान्त उपयोगिता नियम	...	१६९-१७८
१९—उपभोक्ता का अतिरेक	...	१७९-१९१
२०—रहन-सहन का स्तर	...	१९२-२०३
२१—पारिवारिक बजट	...	२०४-२१४
२२—पारिवारिक बजटों का संकलन	...	२१५-२३३
२३—आय और व्यय	...	२३४-२४४
२४—बचत	...	२४५-२५०
२५—विलासिताएँ तथा अपव्यय	...	२५१-२५६

३. उत्पादन

अध्याय		पृष्ठ-संख्या
२६—उत्पादन	...	२५७-२६५
२७—उत्पादन के साधन	...	२६६-२७२
२८—उत्पादन की कार्यक्षमता	...	२७३-२७४
२९—भूमि	...	२७५-२८२
३०—भारत की प्राकृतिक दशा	...	२८३-२९४
३१—भारत के बन	...	२९५-३०२
३२—भारत में सिंचाई के साधन	..	३०३-३१४
३३—भारत के कृषि-साधन	...	३१५-३२३
३४—भारत की पशु-सम्पत्ति	...	३२४-३२५
३५—भारत की मछलियाँ	...	३२६-३२८
३६—भारत के खनिज पदार्थ	...	३२९-३३५
३७—भारत में शक्ति के स्रोत	...	३३६-३४३
३८—श्रम	...	३४४-३५१
३९—जनसंख्या के सिद्धान्त	...	३५२-३५८
४०—जनसंख्या का आकार	. .	३५९-३६२
४१—भारत की जनसंख्या	...	३६३-३७७
४२—श्रम की कार्यक्षमता	...	३७८-३९१
४३—श्रम-विभाजन	...	३९२-४०७
४४—पूँजी	...	४०८-४१८
४५—पूँजी का संचय	...	४१९-४२६
४६—मशीनों से हानि तथा लाभ	...	४२७-४३५
४७—संगठन या व्यवस्था	...	४३६-४४५
४८—उद्योगों का स्थानीयकरण	...	४४६-४५६
४९—उत्पादन की मात्रा	...	४५७-४७१
५०—साहस	...	४७२-४७४
५१—औद्योगिक संगठन	...	४७५-४८३
५२—उत्पत्ति के नियम	...	४८४-५०१
५३—भारतीय कृषि की दशा	...	५०२-५०६
५४—भारत के उद्योग-धन्धे	...	५०७-५२०

४. विनिमय

अध्याय		पृष्ठ-संख्या
५५ विनिमय	...	१-१३
५६—बाजार	...	१४-२८
५७—माँग तथा पूर्ति	...	२६-५०
५८—अर्घ-सिद्धान्त या मूल्य-निर्धारण	...	५१-५६
५६—पूर्ण-स्पर्धा और एकाधिकार में मूल्य-निर्धारण	...	६०-७८
६०—द्रव्य	...	७६-६१
६१—धात्विक तथा पत्र-द्रव्य	...	६२-१०१
६२—द्राव्यिक मान	...	१०२-१०८
६३—द्रव्य का अर्घ	...	१०६-११६
६४—ग्रेशम का नियम	...	११७-१२०
६५—भारतीय मुद्रा तथा चलन-प्रणाली	...	१२१-१३१
६६—साख	...	१३२-१३८
६७—साख-पत्र	...	१३६-१५०
६८—बैंक तथा बैंकिंग	...	१५१-१५६
६६—भारतीय बैंक व्यवस्था	...	१६०-१७७
७०—ग्रामीण ऋण की समस्या	...	१७८-१८२

५. वितरण

७१—वितरण की समस्या	...	१-१२
७२—उत्पादन के साधनों की गतिशीलता	...	१३-२७
७३—लगान	...	२८-५३
७४—भारत में मालगुजारी प्रथा	...	५४-६२
७५—मजदूरी	...	६३-६०
७६—सूद या ब्याज	...	६१-१०६
७७—लाभ	...	११०-१२५

६. सार्वजनिक राजस्व के सिद्धान्त

७८—राजस्व के सिद्धान्त	...	१२६-१३६
७६—केन्द्रीय राजस्व	...	१४०-१५०

अध्याय		पृष्ठ-संख्या
८०—राज्य की सरकारों का राजस्व	...	१५१-१५६
८१—स्थानीय राजस्व	...	१६०-१६३

७. सहकारिता तथा व्यापार

८२—भारत में सहकारिता आन्दोलन	...	१६४-१७१
८३—भारतीय सहकारी समितियाँ	...	१७२-१८२
८४—भारत के यातायात के साधन	...	१८३-१९४
८५—भारत का व्यापार	...	१९५-२११

प्रारंभिक
INTRODUCTORY

सभी सामाजिक संगठनों में आर्थिक दृष्टिकोण सबसे
आधारभूत है। क्योंकि जब तक मनुष्य को
जीवित रहने के लिये पर्याप्त साधन प्राप्त
नहीं होते, सभ्यता के विकास की
और उन्नति की बात सोचना
ही व्यर्थ है।

—मेयो स्मिथ

विषय-सूची

अध्याय		पृष्ठ संख्या
१—अर्थशास्त्र की परिभाषा	... ...	१—१६
२—अर्थशास्त्र विज्ञान है या कला	... ...	१७—२२
३—अर्थशास्त्र का क्षेत्र	... ...	२३—२६
४—अर्थशास्त्र का आदर्श	... ...	२७—२६
५—अर्थशास्त्र के नियम	... ...	३०—३६
६—अर्थशास्त्र के अध्ययन की रीति	... ...	३७—४०
७—अर्थशास्त्र के अध्ययन से लाभ	... ...	४१—४८
८—अर्थशास्त्र के विभाग और उनका पारस्परिक संबन्ध	...	४६—६०
९—अर्थशास्त्र का अन्य शास्त्रों से संबन्ध	... ...	६१—७०
१०—आर्थिक जीवन का विकास	... ...	७१—८०
११—अर्थशास्त्र के कुछ महत्वपूर्ण शब्द	... ...	८१—६५

अर्थशास्त्र के मूल सिद्धान्त

पहला अध्याय

अर्थशास्त्र की परिभाषा

(Definition of Economics)

१. प्रारम्भिक

(Introductory)

संसार में रहने वाला ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं है जिसे कोई न कोई आवश्यकता प्रतीत न होती हो। चाहे आप पहाड़ों की कंदराओं में रहने वाले जितेन्द्रिय साधू-सन्यासियों को ले लीजिये और चाहे आप मोटरों पर चढ़ने वाले और बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं में रहने वाले भोगी मनुष्यों को। सभी को कुछ न कुछ आवश्यकताएँ होती अवश्य हैं। भेद केवल इतना है कि साधुओं की आवश्यकताएँ मात्रा में बहुत कम होती हैं और संसारी मनुष्यों की बहुत अधिक।*

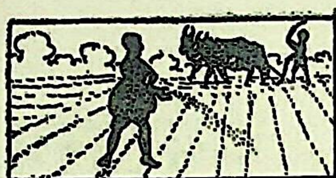
इन आवश्यकताओं के कारण मनुष्य को बड़ा क्लेश या दुःख होता है। जब तक आवश्यकताएँ मनुष्य के अचेतन मन (Unconscious mind) में रहती हैं, तब तक उसे आवश्यकताएँ प्रतीत नहीं होतीं और उसे क्लेश भी नहीं होता। परन्तु चेतन मन (Conscious mind) में आते ही मनुष्य को आवश्यकताओं का बोध होने लगता है और साथ ही साथ क्लेश या पीड़ा भी मालूम पड़ने लगती है।

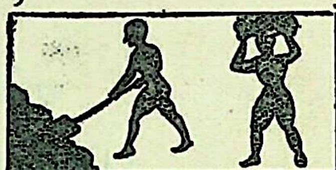
इस पीड़ा को दूर करने के लिये यह आवश्यक होता है कि मनुष्य धन कमाये। इसका कारण यह है कि धन के बिना मनुष्य आवश्यक वस्तुओं का उपभोग नहीं कर सकता। आजकल सभी लेन-देन धन के द्वारा होते हैं। यदि आप कोई वस्तु पाना चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि उस वस्तु की कीमत के बराबर धन आप अवश्य दें। तभी आप उस वस्तु को पा सकते हैं। इसी कारण मनुष्य धन कमाने में लगे रहते हैं।

---

* जब मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर ब्रह्म में लीन हो जाता है तभी उसकी आवश्यकताओं का अन्त होता है। परन्तु जब तक वह संसार में रहता है उसको एक न एक आवश्यकता बनी अवश्य रहती है। अतः, यह निसंदेह कहा जा सकता है कि सभी संसारी मनुष्यों को कुछ न कुछ आवश्यकताएँ होती हैं।

धन कमाने के लिये मनुष्य को मेहनत करनी पड़ती है। मेहनत किसी भी ढंग या रूप से की जा सकती है। एक किसान का जेठ-बैसाख की चिलचिलाती धूप में, पसीने से लथपथ हो काम करना मेहनत का एक रूप है। एक श्रमिक का मशीनों की खड़-खड़ाहट के बीच खड़े होकर काम करना भी एक प्रकार की मेहनत है। एक दुकानदार का सुबह से शाम तक दूकान पर बैठ कर अपना सामान बेचना भी एक प्रकार की मेहनत है। इसी प्रकार अभिनेताओं का नाचना-गाना, वकीलों का अदालत में बहस करना, अध्यापकों का कक्षा में पढ़ाना, पंडितों का कथा कहना, क्लर्कों का दफ्तरों में काम करना आदि धन कमाने के विभिन्न ढंग हैं।





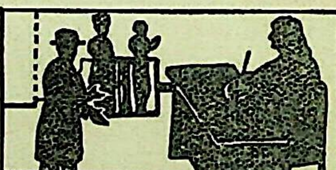


अतः, यह कहा जा सकता है कि इस संसार के सभी मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की तृप्ति के लिये मेहनत कर धन कमाते हैं और फिर उस धन द्वारा आवश्यक वस्तुओं को क्रय कर और उनका उपभोग कर अपनी आवश्यकताओं को संतुष्ट करते हैं। मनुष्य किस प्रकार से धन कमाते हैं और किस प्रकार से उसे व्यय करते हैं, इसका अध्ययन जिस शास्त्र में किया जाता है उसे अर्थशास्त्र कहते हैं।





ऊपर के कथन से आपको इसका कुछ-कुछ ज्ञान हो गया होगा कि अर्थशास्त्र में किस प्रकार की क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। परन्तु अर्थशास्त्र की परिभाषा के विस्तृत ज्ञान के लिये यह उचित है कि हम (१) प्रो० मार्शल और (२) प्रो० रोबिन्स द्वारा दी गई परिभाषाओं को विस्तार से समझ लें। वैसे तो अनेक विद्वानों ने अर्थशास्त्र की भिन्न-भिन्न परिभाषायें दी हैं, परन्तु इन दो विद्वानों





चित्र १—धन कमाने के विभिन्न ढंग

की परिभाषाओं का विशेष महत्त्व है। प्रो० मार्शल के पहले जितने अर्थशास्त्री हुये उन्होंने अर्थशास्त्र की बड़ी गलत परिभाषा दी थी जिसके कारण इस शास्त्र की सभी लोग बड़े कड़े शब्दों में निन्दा करने लगे थे। मार्शल को यह श्रेय प्राप्त है कि उन्होंने अर्थशास्त्र के विषय को उचित मार्ग पर लाकर खड़ा कर दिया और इसको एक संबद्ध शास्त्र का रूप दिया। इसी कारण प्रोफेसर मार्शल द्वारा दी गई अर्थशास्त्र की परिभाषा का बड़ा महत्त्व है। प्रोफेसर मार्शल की परिभाषा सन् १९३२ तक बहुत प्रचलित थी और सभी विद्वान् उसे ठीक मानते थे। परन्तु उसी वर्ष प्रोफेसर रोबिन्स ने आचार्य मार्शल की परिभाषा में कई दोष दिखलाये और अर्थशास्त्र की एक नई परिभाषा संसार के सामने रखी। प्रोफेसर रोबिन्स की परिभाषा कुछ ऐसे अकाट्य तर्कों पर अधारित है कि आजकल लगभग सभी विद्वान् उसे अधिक उचित मानने लगे हैं। अतएव प्रोफेसर मार्शल तथा रोबिन्स की परिभाषाओं को जानना अत्यन्त आवश्यक है।

२. प्रो० मार्शल की परिभाषा

(Prof. Marshall's Definition of Economics)

मनुष्य की क्रियायें दो प्रकार की हैं—आर्थिक तथा अनार्थिक—प्रोफेसर मार्शल का कहना है कि मनुष्य की क्रियाओं को मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है—(१) आर्थिक तथा (२) अनार्थिक क्रियाएँ। आर्थिक क्रियाएँ (Economic activities) वह क्रियाएँ हैं जो धन के उपभोग, उत्पादन, विनिमय तथा वितरण से सीधा (Direct) सम्बन्ध रखती हैं। बाकी की जितनी भी क्रियाएँ हैं अर्थात् जो धन के उपभोग, उत्पादन, विनिमय तथा वितरण से सम्बन्ध नहीं रखतीं उन्हें अनार्थिक क्रियाएँ (Uneconomic activities) कहा जाता है। उदाहरण के लिये एक माता अपने बच्चे के लालन-पालन में बहुत-सा समय लगाती है और बड़ी मेहनत करती है। परन्तु क्योंकि वह यह सब काम धन कमाने के लिये नहीं करती इस कारण उसकी क्रिया को अनार्थिक क्रिया कहा जायगा। परन्तु बच्चे खिलाने के लिये जो दाई या आया नौकर रखी जाती है उसकी क्रिया को आर्थिक क्रिया कहा जायगा क्योंकि वह धन कमाने के लिये बच्चे को खिलाती है। इसी प्रकार का आप एक दूसरा उदाहरण लीजिये। नेता तथा सुधारक स्थान-स्थान पर जाकर भाषण देते हैं। भाषण देने में उन्हें जो मेहनत होती है उसका उद्देश्य धन कमाना नहीं होता। इस कारण उनकी क्रिया को अनार्थिक क्रिया कहा जायगा। परन्तु एक अध्यापक कक्षा में जो भाषण देता है उसका उद्देश्य धन कमाना होता है। इस कारण अध्यापक द्वारा भाषण देने की क्रिया आर्थिक क्रिया कहलावेगी।

ऊपर आर्थिक तथा अनार्थिक क्रियाओं की जो परिभाषा दी गई है उसमें "धन से सीधा सम्बन्ध" वाक्यांश बड़े महत्त्व का है। वैसे तो ऐसी कोई भी क्रिया नहीं है जिसका धन से परोक्ष (Indirect) सम्बन्ध न हो। उदाहरण के लिये आप साधू का राम राम जपना या भजन करना ले लीजिये। इस क्रिया का धन से कोई प्रत्यक्ष (Direct) सम्बन्ध नहीं है क्योंकि साधू जी भजन करके न तो धन का उत्पादन कर रहे हैं और न धन का उपभोग, विनिमय तथा वितरण ही। परन्तु इस क्रिया का धन से परोक्ष (Indirect) सम्बन्ध अवश्य है। क्योंकि साधू जी राम-राम जपने तथा भजन करने में अपना समय लगा रहे हैं इस कारण वह कहीं दूसरी जगह काम कर धन नहीं कमा सकते और अपना तथा अपने परिवार का रहन-सहन का स्तर ऊँचा नहीं कर सकते। इस प्रकार उनकी राम-राम जपने की क्रिया का परिणाम यह हुआ है कि उनके तथा उनके परिवार के पास धन की कमी है और देश में उत्पादन नहीं बढ़ने पाया है। यदि वह मेहनत करते तो देश में कुछ न कुछ उत्पादन अवश्य बढ़ता और उनके घरवालों की आर्थिक स्थिति अच्छी हो जाती। इस प्रकार का आप अन्य कोई भी उदाहरण ले लें। आप देखेंगे कि प्रत्येक क्रिया का धन से परोक्ष रूप से सम्बन्ध अवश्य होता है। परन्तु उनमें से केवल थोड़ी-सी क्रियाएँ ही प्रत्यक्ष रूप से धन से सम्बन्धित होती हैं।

अर्थशास्त्र में आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है—प्रोफेसर मार्शल का कहना था कि अर्थशास्त्र में केवल आर्थिक क्रियाओं का ही अध्ययन किया जाता है। जो क्रियायें धन से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्ध नहीं रखतीं, वह अर्थशास्त्र के क्षेत्र में नहीं आतीं। उदाहरण के लिये बच्चे के लालन-पालन के लिये माता की मेहनत, साधू-सन्यासियों का राम-राम जपना तथा भजन करना, नेताओं तथा समाज-सुधारकों का देश के लिये कष्ट सहना, अपना स्वास्थ्य अच्छा करने के लिये बच्चों का कसरत करना आदि ऐसी क्रियाएँ हैं जो अर्थशास्त्र के क्षेत्र में नहीं आतीं और अर्थशास्त्र का उनसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

परन्तु आर्थिक क्रियायें मनुष्य की होनी चाहिये अन्य किसी जीवधारी की नहीं—अर्थशास्त्र में आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन तो किया जाता है, परन्तु केवल मनुष्य की ही आर्थिक क्रिया का, अन्य किसी जीवधारी की क्रिया का नहीं। आपने घोड़ों को इक्के में जुते हुये देखा होगा, गदहों को बोझ ढोते हुये देखा होगा, बैलों को गाड़ी खींचते या हल चलाते देखा होगा। ये सब जानवर मेहनत कर धन कमाते हैं। धन भले ही इनके मालिक को मिले, परन्तु धन मिलने का कारण इन जानवरों द्वारा की गई मेहनत है। अतः, इन जानवरों की ये क्रियाएँ भी आर्थिक क्रियाओं की श्रेणी में आ जाती हैं। परन्तु प्रो० मार्शल के अनुसार अर्थशास्त्र में

मनुष्य को छोड़ अन्य किसी भी जीवधारी की आर्थिक क्रिया का अध्ययन नहीं किया जाता।

मनुष्य भी ऐसा हो जो समाज में रहता हो—अर्थशास्त्र में मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन तो किया जाता है, परन्तु सभी मनुष्यों की आर्थिक क्रियाओं का नहीं। केवल वह मनुष्य जो समाज में दूसरे व्यक्तियों के साथ हिल-मिल कर रहते हैं उनकी आर्थिक क्रियाओं का ही अध्ययन अर्थशास्त्र में किया जाता है। ऐसे मनुष्य जो समाज छोड़कर जंगलों में चले जाते हैं, जैसे साधू या सन्यासी या जो समाज से दूर एक अकेले टापू पर रहते हैं जैसे राबिन्सन क्रूसो (Robinson Crusoe) आदि, उनकी क्रियाओं का (भले ही वह आर्थिक क्रियाएँ क्यों न हों) अर्थशास्त्र में अध्ययन नहीं किया जाता।

यहाँ 'समाज' शब्द का अर्थ समझना अत्यन्त आवश्यक है। राजनीति शास्त्र (Politics) तथा नागरिक शास्त्र (Civics) हमें यह बताते हैं कि प्रत्येक मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में वह पैदा हुआ है और समाज में वह रहता है। समाज के बाहर होते ही वह जीवित नहीं रह सकता। अतएव इन शास्त्रों के अनुसार प्रत्येक मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज में रहता है। पहाड़ों की कन्दराओं में और मनुष्य से दूर रहने वाले साधू और संन्यासी भी इतने ही सामाजिक हैं जितने बड़े-बड़े शहरों में रहने वाले व्यक्ति। जब बात ऐसी है तो यह कहना कहाँ तक उचित है कि साधू तथा संन्यासी सामाजिक मनुष्य नहीं है और इस कारण उनकी क्रियाओं का अध्ययन अर्थशास्त्र में नहीं किया जाता?

वास्तव में बात यह है कि अर्थशास्त्र में 'समाज' शब्द का जिस अर्थ में प्रयोग किया गया है, राजनीति शास्त्र में उसका प्रयोग एक भिन्न अर्थ में होता है। अर्थ-शास्त्र में 'समाज' शब्द का प्रयोग साथ-साथ मिलकर रहने के अर्थ में किया गया है। इस संसार में अधिकांश व्यक्ति एक दूसरे के साथ हिल-मिलकर रहते हैं। परन्तु कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो अन्य मनुष्यों से दूर रह कर अकेला जीवन बिताते हैं। अर्थशास्त्र में पहले प्रकार के मनुष्यों को सामाजिक मनुष्य कहा जाता है। अर्थात् अर्थशास्त्र में ऐसे मनुष्यों की आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है जो एक-दूसरे के साथ हिल-मिलकर रहते हैं। जो मनुष्य अकेले रहते हैं उनकी क्रियाओं का अध्ययन इस शास्त्र में नहीं किया जाता।

मनुष्य सामाजिक होने के साथ-साथ सामान्य होना चाहिये—इतना ही पर्याप्त नहीं है कि मनुष्य सामाजिक हो। आवश्यकता इस बात की भी है कि वह सामान्य (Normal) व्यक्ति हो। सामान्य व्यक्ति से तात्पर्य यह है कि उसका दिमाग ठीक हो अर्थात् वह पागल न हो। जो मनुष्य पागल होते हैं

उनका आचरण ठीक नहीं होता। पता नहीं किस स्थिति में वह क्या कर बैठें। इस प्रकार के मनुष्यों की क्रियाओं का अध्ययन अर्थशास्त्र में नहीं किया जाता।

मनुष्य सामान्य तथा सामाजिक होने के साथ ही वास्तविक होना चाहिये—मनुष्य के केवल सामाजिक तथा सामान्य होने से ही काम नहीं चल जाता। आवश्यकता इस बात की भी है कि वह वास्तविक (Real) भी हो। अर्थात् जिस प्रकार के मनुष्य हम साधारणतया देखते हैं केवल उनकी आर्थिक क्रियाओं का ही अध्ययन हमें अर्थशास्त्र में करना चाहिये। यह नहीं कि हम काल्पनिक (Imaginary) मनुष्यों की क्रियाओं का अध्ययन अर्थशास्त्र में कर बैठें। ऐसा करने से हम जिन परिणामों पर पहुँचेंगे वह अवश्य ही गलत होंगे।

आप संभव है यह कहें कि जब हमें मनुष्यों की क्रियाओं का अध्ययन करना है तो हम साधारण तथा वास्तविक मनुष्यों की क्रियाओं का ही अध्ययन करेंगे। काल्पनिक मनुष्यों की क्रियाओं का अध्ययन करने का प्रश्न ही नहीं उठता। परन्तु यह बात स्पष्ट कर देनी इसलिये आवश्यक है कि मार्शल के पहले जो अर्थशास्त्री हुए और जिनमें आदम स्मिथ (Adam Smith), जे० बी० से (J. B. Say) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं उन्होंने वास्तविक मनुष्य का अध्ययन न कर 'आर्थिक मनुष्य'* (Economic Man) नामक एक काल्पनिक मनुष्य का अध्ययन करना आरंभ किया। इसीलिये मार्शल को अपनी परिभाषा में यह स्पष्ट करना पड़ा कि इस शास्त्र में वास्तविक मनुष्यों की क्रियाओं का अध्ययन होता है। प्रो० मार्शल ने स्वयं कहा है कि इस शास्त्र में हम "मनुष्य जैसा है उसका विवेचन करते हैं, काल्पनिक या आर्थिक मनुष्य का नहीं लेकिन रक्त और मांस के बने हुए मनुष्य का।"†

---

*आदम स्मिथ तथा उसके अनुयायी अर्थशास्त्रियों का, जिन्हें प्रारंभ के क्लासिकल अर्थशास्त्री (Early Classical Economists) कहा जाता है, मत था कि प्रत्येक मनुष्य एक 'आर्थिक मनुष्य' है। 'आर्थिक मनुष्य' वह मनुष्य है जो धन कमाने की भावना से प्रेरित होकर सभी कार्य करता है। दया, प्रेम, भाई-चारा, धर्म आदि कोई भी भावना उसे नहीं छूती। यदि उसे किसी काम के लिये कोई प्रेरित कर सकता है तो वह है धन कमाने की भावना। उसका भाई चाहे तड़पते हुए दम तोड़ दे परन्तु वह छदाम भी व्यय नहीं करेगा क्योंकि उसे आशा नहीं है कि भाई से उसे कुछ धन मिल जायगा।

लिखने की आवश्यकता नहीं कि 'आर्थिक मनुष्य' एक कोरी कल्पना है। कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं होता कि उसके मन में थोड़ी-सी भी दया या प्रेम न हो। लोग हजारों-लाखों रुपया अस्पताल खुलवाने, स्कूल बनवाने, धर्मशाला खोलने तथा मंदिर बनवाने में व्यय कर देते हैं। आखिर क्यों? यदि सभी मनुष्य 'आर्थिक मनुष्य' हों तो ऐसा कोई भी न करेगा। इससे पता चलता है कि वास्तविक मनुष्य 'आर्थिक मनुष्य' नहीं है।

†देखिये Dr. Alfred Marshall की पुस्तक *Principles of Economics*, पृष्ठ २७

ऊपर जो कुछ कहा जा चुका है उससे निम्न बातें स्पष्ट हो जाती हैं :—

१—अर्थशास्त्र में आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।

२—अर्थशास्त्र में केवल मनुष्यों की आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।

३—परन्तु मनुष्य ऐसा होना चाहिये जो समाज में रहता हो।

४—सामाजिक होने के साथ ही मनुष्य सामान्य भी होना चाहिये, अर्थात् वह पागल न हो।

५—सामाजिक तथा सामान्य होने के साथ ही यह भी आवश्यक है कि मनुष्य वास्तविक हो, अर्थात् वह काल्पनिक न हो।

सूक्ष्म में यह कहा जा सकता है कि अर्थशास्त्र में सामाजिक, सामान्य तथा वास्तविक मनुष्यों की आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।

अर्थशास्त्र की परिभाषा

किसी भी शास्त्र की परिभाषा देते समय हमें दो बातें बतलानी होती हैं :—(१) शास्त्र में क्या क्या अध्ययन किया जाता है, और (२) यह शास्त्र विज्ञान (Science) है या कला (Arts) या दोनों। अर्थशास्त्र की परिभाषा देते समय भी हमें इन्हीं दोनों बातों का उत्तर देना होगा। अर्थशास्त्र में क्या-क्या अध्ययन किया जाता है इसके बारे में ऊपर बताया जा चुका है। रहा दूसरे प्रश्न का उत्तर सो यह कहा जा सकता है कि अर्थशास्त्र विज्ञान भी है तथा कला भी।* यह शास्त्र कारण (Cause) तथा परिणामों (Effects) में संबंध बताने के साथ-साथ यह भी बताता है कि देश तथा व्यक्तियों की आर्थिक उन्नति के लिये क्या करना चाहिये।

इतना सब कुछ जान लेने के पश्चात् अर्थशास्त्र की परिभाषा देना बड़ा सरल हो जाता है। यह कहा जा सकता है कि अर्थशास्त्र एक ऐसा विज्ञान तथा कला है जिसमें समाज में रहने वाले वास्तविक तथा सामान्य मनुष्यों की उन क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है जिनका धन से सीधा संबंध है।

प्रो० मार्शल की परिभाषा—प्रो० मार्शल ने अर्थशास्त्र की परिभाषा निम्न शब्दों में दी है : "अर्थशास्त्र मनुष्य के जीवन की साधारण व्यापार संबंधी क्रियाओं का अध्ययन है। यह पता लगाता है कि मनुष्य किस प्रकार धन कमाता है और किस प्रकार उसे व्यय करता है।......इस प्रकार एक ओर यह धन का अध्ययन है और दूसरी ओर, जो अधिक महत्वपूर्ण है, यह

*इसके बारे में विस्तार से अगले अध्याय में बताया गया है।

मनुष्य के अध्ययन का एक भाग है।"* अपनी दूसरी पुस्तक में आचार्य मार्शल ने अर्थशास्त्र की परिभाषा इन शब्दों में दी है : "अर्थशास्त्र में मनुष्य-जीवन की साधारण व्यापार संबंधी क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। यह उन व्यक्तिगत और सामाजिक आचरणों का अध्ययन करता है जो भौतिक सुख के लिये आवश्यक साधनों की प्राप्ति तथा उनके प्रयोग से घनिष्ट संबंधित हैं।"†

मार्शल की ये दोनों परिभाषायें एक सी हैं। दोनों में ही यह कहा गया है कि इस शास्त्र में 'मनुष्य-जीवन की साधारण व्यापार-संबंधी क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है'। मनुष्य जीवन की साधारण क्रियाओं से आशय यही है कि वह क्रियाएँ सामान्य, वास्तविक तथा सामाजिक मनुष्यों द्वारा की गई हों। अर्थात् जो क्रियायें साधारणतः मनुष्य प्रायः करते हों। और व्यापार-संबंधी क्रियाओं से तात्पर्य यह है कि क्रियाएँ धन के लेन-देन या उत्पादन, विनिमय, उपभोग तथा वितरण से संबंधित हों।‡

* "Political Economy or Economics is the study of man's actions in the ordinary business of life; it enquires how he gets his income and how he uses it······Thus it is on one side a study of wealth and on the other and more important side, a part of the study of man."—Alfred Marshall, *Economics af Industry*, p. 1

† "Economics is a study of mankind in the ordinary business of life; it examines that part of individual and social action which is most clearly connected with the attainment and with the use of material requisites of wellbeing"—Marshall, *Principls of Economics* p. 1

‡ प्रोफेसर मार्शल के विचार से सहमत और उन्हीं की तरह परिभाषा देने वाले कुछ अर्थ-शास्त्रियों की परिभाषायें नीचे दी गई हैं।

सीजर

इनका कहना है कि "अर्थशास्त्र वह सामाजिक विज्ञान है जो जीविका उपार्जन से संबंधित मानवीय क्रियाओं का अध्ययन करता है।" ["Economics is the social science which treats of that portion of human activity which is concerned with making a living." Seager—*Principles of Economics*, p. 1]

पेन्सन

आपका कहना है कि "अर्थशास्त्र भौतिक सुख का विज्ञान है।" ["Economics is the science of material welfare."—Pension, *Economics of Everyday Life*, Vol I, p. 3]

चैपमैन

इनका कहना है कि "अर्थशास्त्र एक विज्ञान है जो मनुष्यों की धन के उपार्जन तथा धन के व्यय करने की क्रियाओं का अध्ययन करता है।" ["Economics is the science which

मार्शल की परिभाषा के दोष ×

जैसा आपको उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट हो गया होगा, आचार्य मार्शल ने अर्थशास्त्र के क्षेत्र में साधारण मनुष्यों की सामान्य आर्थिक क्रियाओं का ही समावेश किया। असाधारण मनुष्य (जैसे पागल या साधू-सन्यासियों) की अनार्थिक क्रियाओं को उन्होंने अर्थशास्त्र के क्षेत्र से बाहर ही रखा। इसका कारण यह था कि मार्शल चाहते थे कि अर्थशास्त्र एक सही (exact) विज्ञान बन जाय। परन्तु यही उनकी परिभाषा की कमजोरी का मुख्य कारण बन गया और आजकल उनकी परिभाषा की इसी कारण आलोचना की जाती है। उनकी परिभाषा के निम्न तीन दोष हैं।

×(१) **क्रियाओं का वर्गीकरण गलत है**—यह कहना कि मनुष्य की क्रियायें दो प्रकार की होती हैं—आर्थिक तथा अनार्थिक—गलत है। मनुष्य की क्रियाओं को इस प्रकार दो भागों में विभक्त नहीं किया जा सकता। यदि गहराई से सोचा जाय तो यह कहना पड़ेगा कि संसार में ऐसी कोई भी क्रिया नहीं है जिसका धन से संबंध न हो। यह संभव है कि क्रिया का धन से प्रत्यक्ष संबंध न हो। परन्तु प्रत्येक क्रिया का धन से परोक्ष संबंध अवश्य होना ही है।*

---

studies the wealth-earning and wealth-spending activities of human beings." Chapman, *Elementary Economics*, p. 1]

डाक्टर कैनन

आपका कहना है कि "अर्थशास्त्र की विषय सामग्री हमेशा से जन-समुदाय की संपत्ति रही है" ["The subject matter of political Economy or Economics has always been the wealth of human-beings."—Dr. Edward Cannan, *wealth*, p. 2]

डाक्टर रिचर्ड

इनका मत है कि "अर्थशास्त्र हमारी आवश्यकताओं, क्रियाओं तथा सन्तोष का—अर्थात् जीवन की व्यापार संबंधी क्रियाओं का—अध्ययन करता है।" ["Economics deals with our wants, our efforts, and our satisfactions—with our activities in the business of life."—Dr. R. D. Richard, *Graundwork of Economics*, p. 7]

डाक्टर फेयरचाल्ड

आपका कहना है कि "अर्थशास्त्र मानवीय आवश्यकताओं तथा उन साधनों का जिनके द्वारा मनुष्य उन वस्तुओं को प्राप्त करता है जिनसे आवश्यकताओं को सन्तुष्ट किया जाता है, का विज्ञान है।" ["Economics is the science of human wants and of the means by which men obtains the things that satisfy them."—Dr. F. R. Fairchild, *Essentials of Economics, p. 14*]

*देखिये इसी पुस्तक के पृष्ठपर ४ जो कुछ इस संबंध में लिखा है।

प्रो० मार्शल ने आर्थिक क्रिया की परिभाषा देते हुए कहा है कि यह वह क्रिया है जिसका धन से संबंध होता है। मार्शल ने प्रत्यक्ष तथा परोक्ष शब्द का प्रयोग नहीं किया है। यदि हम इसका अर्थ परोक्ष संबंध में भी लगावें तो हमें यह कहना पड़ेगा कि मनुष्य की प्रत्येक क्रिया आर्थिक क्रिया है। इसी बात को दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि मनुष्य की प्रत्येक क्रिया का एक आर्थिक पहलू (economic aspect) भी होता है। अतएव हम किसी भी क्रिया को पूर्णतः अनार्थिक क्रिया नहीं कह सकते।

(२) मार्शल के अनुसार एक ही क्रिया कभी अर्थशास्त्र के क्षेत्र में आवेगी और कभी नहीं—आचार्य मार्शल ने कहा है कि अर्थशास्त्र में केवल उन क्रियाओं का अध्ययन करना चाहिये जो धन उपार्जन के लिये की जाती हैं। एक नर्तकी यदि सिनेमा में नाच दिखलाकर धन कमाती है तो उसकी क्रिया का हम अध्ययन करेंगे और यदि वह घर में शौक के लिये नाचती है तो नहीं। यदि एक अध्यापक कक्षा में भाषण देता है तब तो हम उसकी क्रिया का अध्ययन करेंगे और यदि वह किसी सभा में भाषण दे रहा है तो नहीं क्योंकि उसे सभा में भाषण देने पर धन की प्राप्ति नहीं होगी। यह बड़ी गलत स्थिति है। भाषण देने की क्रिया एक ही है। परन्तु कभी उसका अध्ययन इस शास्त्र में किया जायगा और कभी नहीं। इसी प्रकार नाचने की क्रिया एक ही है परन्तु कभी उसका अध्ययन किया जायगा और कभी नहीं। वैज्ञानिक दृष्टि से यह बात गलत है। यह तो ठीक है कि आप किसी क्रिया का अध्ययन अर्थशास्त्र में करें या न करें। परन्तु एक ही क्रिया का अध्ययन कभी करें और कभी न करें यह एक अनुचित स्थिति है।

(३) मार्शल के अनुसार कुछ मनुष्यों की क्रियाओं का अध्ययन इस शास्त्र में होता है और कुछ का नहीं—मार्शल की परिभाषा के अनुसार केवल सामान्य, सामाजिक तथा वास्तविक मनुष्यों की क्रियाओं का अध्ययन इस शास्त्र में किया जाता है। परन्तु जो मनुष्य सामान्य नहीं हैं या जो अकेले रहते हैं उनकी क्रियाओं का अध्ययन इस शास्त्र में नहीं किया जाता। यह बात गलत है। जब हम यह कहते हैं कि अर्थशास्त्र में मानवीय आचरणों का अध्ययन किया जाता है तो सभी मनुष्यों के आचरणों का अध्ययन हमें करना होगा। फिर हम श्रेणी-भेद कर यह नहीं कह सकते कि हम अमुक प्रकार के मनुष्यों की क्रियाओं का ही अध्ययन करेंगे और किसी अन्य प्रकार के मनुष्यों की क्रियाओं का नहीं। यह तो इसी प्रकार की बात हो गई कि हम काले मनुष्यों का अध्ययन करेंगे, गोरों का नहीं, या लम्बे मनुष्यों का अध्ययन करेंगे नाटों का नहीं। मनुष्य सब एक से हैं और सभी की क्रियाओं का हमें अध्ययन करना चाहिये।

३· प्रोफेसर रोबिन्स की परिभाषा

(Prof. L. Robbins' Definition of Economics)

प्रोफेसर रोबिन्स (Robbins) ने अपनी परिभाषा में मार्शल की परिभाषा के सभी दोष दूर कर दिये हैं। उनकी परिभाषा की चार मुख्य बातें हैं। वह निम्न हैं :—

(१) मनुष्य की आवश्यकताएँ अनन्त हैं—मनुष्य की आवश्यकताओं का कभी अन्त नहीं होता। एक के बाद दूसरी और दूसरी के बाद तीसरी आवश्यकता उत्पन्न होती रहती है। एक आवश्यकता के सन्तुष्ट होते ही एक दूसरी नई आवश्यकता उत्पन्न हो जाती है। भोजन, कपड़ा, मकान, डाक्टर, किताबें आदि सैकड़ों ऐसी आवश्यकताएँ हैं जो बराबर उत्पन्न होती रहती हैं।

(२) आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के साधन सीमित हैं—परन्तु इन आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के जो साधन हैं वह मात्रा में सीमित (Scarce) हैं। साधन में तीन बातें आती हैं—समय, जीवन तथा धन। ये तीनों वस्तुएँ मात्रा में सीमित हैं। मनुष्य का जीवन थोड़े समय का है। उस थोड़े से जीवन में जो समय मिलता है उसमें से कुछ सोने में, खाने-पीने में और बातें करने आदि में निकल जाता है। बाकी जो समय मिलता है उसी में वह मेहनत कर धन कमा सकता है। परन्तु वह समय इतना नहीं होता कि वह धन कमा कर अपनी सभी आवश्यकताओं को संतुष्ट कर सके। साथ ही आवश्यकताएँ सन्तुष्ट हो जाने पर पुनः जाग्रत हो जाती हैं। अतएव मनुष्य अपनी सभी आवश्यकताओं को कभी भी पूर्णतः सन्तुष्ट नहीं कर सकता।

(३) साधन विभिन्न आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के काम आ सकते हैं—साधन ऐसे होते हैं कि उनसे विभिन्न आवश्यकताओं की सन्तुष्टि हो सकती है। उदाहरण के लिये आप रुपये से चाहें तो भोजन खरीदें और चाहे कपड़ा या पुस्तकें। आप चाहें तो सिनेमा जा सकते हैं या कोई अन्य आवश्यकता पूरी कर सकते हैं। भूमि को चाहे आप मकान बनाने के काम ला सकते हैं या उस पर गेहूँ की खेती कर सकते हैं या उस पर चना उगा सकते हैं या कोई कारखाना खोल सकते हैं, आदि। समय को चाहे आप सोने में व्यतीत करें या पढ़ने में या सिनेमा देखने में या खेलने में। इस प्रकार स्पष्ट है कि साधन विभिन्न आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के काम आ सकते हैं।

(४) मनुष्य को चुनाव करना पड़ता है—क्योंकि मनुष्य को अपने सीमित साधन अपनी असीमित आवश्यकताओं पर व्यय करने होते हैं इस

कारण उसे यह सोचना पड़ता है कि वह किस आवश्यकता को सन्तुष्ट करे और किस को नहीं। यदि मनुष्य अपनी सभी आवश्यकताएँ सन्तुष्ट कर पाता तो वह आँख मूँदकर व्यय करता और चुनाव करने की बात उसके मन में कभी न आती। परन्तु अब उसे हर व्यय बहुत सोच-समझ के साथ करना पड़ता है जिससे उसे अधिकतम सन्तुष्टि मिल सके।

प्रो० रोबिन्स का कहना है कि जहाँ भी मनुष्य अपने सीमित साधनों को अपनी असीमित आवश्यकताओं पर उचित रूप से व्यय करने की समस्या पर विचार करता है वहीं एक आर्थिक समस्या उत्पन्न हो जाती है। जहाँ भी (१) आवश्यकताएँ अनन्त होंगी, (२) साधन सीमित होंगे, और (३) साधन विभिन्न आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिये प्रयोग में लाये जा सकेंगे, वहीं पर चुनाव की समस्या उठ खड़ी होगी और समस्या एक आर्थिक समस्या हो जायगी।

प्रो० रोबिन्स की परिभाषा

प्रो० रोबिन्स के अनुसार अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जिसमें मनुष्य के उन आचरणों का जो उसकी असीमित आवश्यकताएँ, सीमित साधन तथा उनके विभिन्न उपयोगों के कारण उत्पन्न होते हैं अध्ययन करता है। प्रो० रोबिन्स के शब्दों में, "अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो मनुष्य के उन आचरणों का अध्ययन करता है जिनका संबंध उसकी आवश्यकताओं और विभिन्न प्रयोग वाले सीमित साधनों से है।"*

प्रो० रोबिन्स की परिभाषा के गुण

प्रो० रोबिन्स की परिभाषा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि आचार्य मार्शल की परिभाषा में जो दोष हैं वह उन्होंने दूर कर दिये हैं। तार्किक दृष्टि से (Logically) तथा वैज्ञानिक दृष्टि से (Scientifically) प्रो० रोबिन्स की परिभाषा सर्वथा उचित है। मार्शल की परिभाषा में जो संकीर्णता थी वह रोबिन्स की परिभाषा में नहीं है। प्रो० रोबिन्स की परिभाषा के अनुसार मनुष्य की सभी क्रियाओं का एक आर्थिक पहलू होता है और इस कारण हम प्रत्येक क्रिया के आर्थिक पहलू का अध्ययन अर्थशास्त्र में करते हैं। मनुष्य चाहे कोई भी हो, चाहे वह समाज में रहता हो अथवा नहीं, सभी की क्रियाओं का अध्ययन अर्थशास्त्र में किया जाता है।

*"Economics is the science that studies human behaviour as a relationship between ends and scarce means which have alternative uses." L. Robbins, *Nature and Significance of Economic Science*, p. 1

प्रो० रोबिन्स तथा प्रो० मार्शल की परिभाषाओं में भेद

ऊपर के विवरण से मार्शल तथा रोबिन्स की परिभाषाओं का भेद आपकी समझ में आ गया होगा। सूक्ष्म में वह भेद निम्न हैं :—

मार्शल की परिभाषा	रोबिन्स की परिभाषा
१—अर्थशास्त्र में केवल आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है, अनार्थिक क्रियाओं का नहीं।	१—अर्थशास्त्र में प्रत्येक क्रिया के आर्थिक पहलू का अध्ययन किया जाता है।
२—अर्थशास्त्र में सामान्य तथा सामाजिक मनुष्यों की आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।	२—अर्थशास्त्र में सभी मनुष्यों की क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।
३—अर्थशास्त्र में सामान्य मानसिक आचरण (generalised human behaviour) का अध्ययन किया जाता है।	३—अर्थशास्त्र में उन सभी मानवीय आचरणों का अध्ययन किया जाता है जो सीमित साधनों को असीमित आवश्यकताओं पर व्यय करने से संबंधित हैं।

अर्थशास्त्र का धन से संबंध
(Relation of Economics with Wealth)

यह प्रश्न प्रायः पूछा जाता है कि अर्थशास्त्र का धन से क्या संबंध है? क्या यह धन का विज्ञान है? क्या हम इस शास्त्र में धन का अध्ययन करते हैं या मनुष्य की क्रियाओं का?

प्राचीन मत

इस संबंध में आचार्य मार्शल के पहले वाले अर्थशास्त्रियों का, जिनमें आदम स्मिथ (Adam Smith), वाकर (Walker), जे० बी० से (J. B. Say) आदि प्रसिद्ध हैं, कहना था कि अर्थशास्त्र "धन का विज्ञान" है। प्रोफेसर वाकर के अनुसार अर्थशास्त्र "विद्या का वह विभाग है जो धन से संबंधित है" और जे० बी० से का कहना था कि अर्थशास्त्र "धन का विवेचन करने वाली विद्या है।" इन अर्थशास्त्रियों का मत था कि प्रत्येक मनुष्य एक आर्थिक मनुष्य (Economic Man) है। अर्थात् वह जो भी कार्य करता है वह धन कमाने की भावना से करता है। संसार में अन्य कोई भी ऐसी भावना नहीं है जो उसे किसी काम की

ओर प्रेरित करे—यदि है तो केवल एक और वह है धन कमाने की भावना। अधिक से अधिक धन संचय करना प्रत्येक मनुष्य का ध्येय है और इस शास्त्र में वह उन्हीं उपायों का अध्ययन करता है जिससे वह अधिक से अधिक धन कमा सके।

प्रो० मार्शल और उनके बाद का मत

जब इन अर्थशास्त्रियों ने अर्थशास्त्र का विषय 'धन' बना दिया और उसका उद्देश्य इतना घृणित घोषित कर दिया तो इस शास्त्र की निन्दा होना स्वाभाविक ही था। अतः, अनेक साहित्यकारों ने इस शास्त्र की कटु आलोचना आरंभ कर दी।*

प्रोफ़ेसर मार्शल ने पुराने अर्थशास्त्रियों की गलती पहचानी और उन्होंने स्पष्टतया कहा कि अर्थशास्त्र में मानवीय क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। यह ठीक है कि मनुष्य की धन संबंधी क्रियाओं का हम अध्ययन करते हैं, परन्तु अध्ययन मनुष्य की क्रियाओं का होता है न कि धन का। उन्होंने बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा कि अर्थशास्त्र "एक ओर तो धन का अध्ययन है, और दूसरी ओर तथा अधिक महत्वपूर्ण यह मनुष्य के अध्ययन का एक भाग है।"† इसमें मनुष्य का अध्ययन हम पहले करते हैं और धन का बाद में। मनुष्य का अध्ययन मुख्य (Primary) है और धन का अध्ययन गौण (Secondary)। धन का अध्ययन केवल एक साधन (means) के रूप में होता है जो मनुष्य की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिये आवश्यक है। यदि मनुष्य धन के बिना अपनी आवश्यकताएँ सन्तुष्ट कर लेते तो हम इस शास्त्र में धन का अध्ययन करते भी नहीं। इस संबंध में तनिक भी गलत भावना मन में न रहे इसी कारण प्रोफेसर रोबिन्स ने अपनी परिभाषा में 'धन' शब्द का प्रयोग न कर 'साधन' शब्द का प्रयोग किया है।

आजकल सभी अर्थशास्त्री इस मत से सहमत हैं और सभी यह मानते हैं कि अर्थशास्त्र "धन का विज्ञान" नहीं वरन् "मानवीय क्रियाओं का विज्ञान" है जो सीमित साधनों को असीमित आवश्यकताओं पर व्यय करने से संबंधित है।

---

* उदाहरण के लिये कार्लाइल (Carlyle), रस्किन (Ruskin), विलियम मोरिस (William Morris) आदि को ले लीजिये। इन्होंने अर्थशास्त्र को 'घृणित विज्ञान' (Dismal Science) तथा 'कुबेर का संदेश' (Gospel of Mammon) आदि नाम देकर इसकी निन्दा की।

† देखिये एल्फ्रेड मार्शल, *Economic of Industry*, p. I.

परीक्षा प्रश्न

उत्तर-प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—अर्थशास्त्र की परिभाषा दीजिए। अर्थशास्त्र के अध्ययन से सैद्धान्तिक और व्यावहारिक लाभों का उल्लेख कीजिए। (१९५३, १९३९, १९३२)

२—अर्थशास्त्र का विषय समझाइये। अर्थशास्त्र का राजनीतिशास्त्र और न्यायशास्त्र से क्या सम्बन्ध है? (१९५२)

३—अर्थशास्त्र की परिभाषा दीजिए। अर्थशास्त्र का अन्य सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्ध समझाकर लिखिये। (१९५१)

४—"अर्थशास्त्र वह सामाजिक विज्ञान है जो मानव जाति के भौतिक कल्याण और समृद्धि की समस्याओं का अध्ययन करता है।" इस कथन को स्पष्ट कीजिए और अर्थशास्त्र का भूगोल तथा राजनीति से सम्बन्ध बताइये। (१९४३)

५—अर्थशास्त्र की परिभाषा दीजिये और बताइये कि यह अन्य सामाजिक विज्ञानों से किस प्रकार भिन्न है? (१९४१)

६—अर्थशास्त्र किसे कहते हैं? इसकी विषय-सामग्री कितने विभागों में विभाजित की जा सकती है? इन सब विभागों का पारस्परिक सम्बन्ध बतलाइये। (१९४०)

७—"अर्थशास्त्र सामाजिक कल्याण के निमित प्राकृतिक एवं मानवी साधनों के सर्वश्रेष्ठ उपयोग सम्बन्धी समस्याओं की विवेचना करता है" इस कथन को मनुष्य और धन का पारस्परिक सम्बन्ध स्पष्ट करते हुए समझाइये। (१९३९)

८—कुछ लेखकों ने अर्थशास्त्र को धन का विज्ञान कह कर परिभाषित किया है। यह परिभाषा कहाँ तक पर्याप्त है? पूर्णरूप से विवेचना कीजिये। (१९३५)

उत्तर-प्रदेश इन्टर कामर्स

९—आप से यदि किसी अपढ़ ग्रामीण को अर्थशास्त्र का अर्थ समझाने के लिये कहा जाय तो आप यह उसे कैसे समझायेंगे? अर्थशास्त्र के अध्ययन से क्या लाभ हैं? (१९५३)

१०—अर्थशास्त्र की परिभाषा लिखिये। अर्थशास्त्र की विषय सामग्री तथा उसके क्षेत्र को स्पष्ट कीजिए। (१९५२)

११—अर्थशास्त्र क्या है? यह किस विषय का अध्ययन करता है? (१९५०)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

१२—आर्थिक क्रियाओं का क्या अर्थ है? क्या अर्थशास्त्र में सब मनुष्यों की आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है? (१९५३)

१३—"अर्थशास्त्र मनुष्य के साधारण जीवन-व्यापार सम्बन्धी क्रियाओं का अध्ययन है" अर्थशास्त्र के इस परिभाषा की व्याख्या कीजिये और इस विषय की व्यावहारिक उपयोगिता बताइये। (१९५२)

१४—अर्थशास्त्र किसे कहते हैं? इसका अन्य विज्ञानों से सम्बन्ध स्पष्ट कीजिए। (१९५१, १९५०, १९४८)

१५—"अर्थशास्त्र मनुष्य की साधारण व्यापार सम्बन्धी क्रियाओं का अध्ययन है"; "अर्थशास्त्र धन का विज्ञान है"। इन दोनों में से कौन सी परिभाषा आपको मान्य है और क्यों? (१९५०)

१६—"अर्थशास्त्र धन का विज्ञान है" क्या यह एक ठीक परिभाषा है? कारण दीजिए और साथ ही साथ ठीक परिभाषा भी दीजिये। (१६४६, १६४६, १६३६)

१७—अर्थशास्त्र की विषय सामग्री बताइये और भारतीय परिस्थितियों के सन्दर्भ में अर्थशास्त्र के अध्ययन की महत्ता पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। (१६४३)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर कामर्स

१८—अर्थशास्त्र की परिभाषा दीजिये और बताइये कि यह वितरण की समस्याओं को हल करने में किस प्रकार असफल रही है? (१६५१)

१६—"अर्थशास्त्र धन का विज्ञान है।" अर्थशास्त्र की यह परिभाषा क्यों दूषित समझी जाती है? आप जो भी परिभाषा ठीक समझते हैं उसे लिखिये और साथ ही साथ इस विज्ञान की विषय सामग्री भी लिखिये। (१६४४)

पटना इन्टर आर्ट्स

२०—ध्यानपूर्वक अर्थशास्त्र की परिभाषा दीजिये। इसकी विषय सामग्री बतलाइये। (१६४८)

पटना इन्टर कामर्स

२१—अर्थशास्त्र की परिभाषा दीजिए और आर्थिक नियमों के लक्षणों को बतलाइये। (१६५२)

२२—अर्थशास्त्र की परिभाषा दीजिये। इसके अध्ययन का क्षेत्र स्पष्टतया बतलाइये। (१६५१)

२३—'धन और भलाई' पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। (१६५१)

२४—अर्थशास्त्र की परिभाषा दीजिये और बतलाइये कि यह विज्ञान है या कला। (१६५०)

सागर इन्टर आर्ट्स

२५—अर्थशास्त्र क्या है? अर्थशास्त्र हमारी व्यावहारिक समस्याओं में किस प्रकार लाभकारी है? (१६५०)

सागर इन्टर कामर्स

२६—अर्थशास्त्र की परिभाषा दीजिये और आर्थिक नियमों के लक्षण बतलाइये। (१६५२)

२७—अर्थशास्त्र की परिभाषा दीजिये और इसके अध्ययन के क्षेत्र को स्पष्टतया समझाइये। (१६५१)

२८—'पूँजी' तथा 'भलाई' पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। (१६५१)

२६—अर्थशास्त्र की परिभाषा दीजिये और बताइये कि यह विज्ञान है या कला। (१६५०)

दूसरा अध्याय

अर्थशास्त्र विज्ञान है या कला

(Is Economics a Science or an Art)

पिछले अध्याय में यह बताया गया था कि अर्थशास्त्र की परिभाषा में दो बातें बताना अत्यन्त आवश्यक हैं : (१) अर्थशास्त्र में क्या-क्या अध्ययन किया जाता है और (२) अर्थशास्त्र विज्ञान है अथवा कला या दोनों। पहले प्रश्न का उत्तर सविस्तार पिछले अध्याय में दिया जा चुका है। इस अध्याय में दूसरे प्रश्न पर विचार किया जायगा।

१. विज्ञान तथा कला का अर्थ

(Meanings of Science and Art)

इस प्रश्न का उत्तर देने के पहले कि अर्थशास्त्र विज्ञान है या कला या दोनों, यह आवश्यक है कि विज्ञान (Science) और कला (Arts) शब्दों का सही सही अर्थ जान लिया जाय।

विज्ञान का अर्थ

इस शब्द की सबसे उचित तथा मान्य परिभाषा प्रयाग विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभाग के अध्यक्ष, प्रोफेसर जे० के० मेहता (J.K. Mehta) ने दी है। आपका कहना है कि विज्ञान का अथ 'ज्ञान' (Knowledge) है।* किसी भी वस्तु के संबन्ध में ज्ञान प्राप्त करना विज्ञान है। उदाहरण के लिये आप मोटर को ले लीजिये। मोटर के संबन्ध में ज्ञान प्राप्त करना—अर्थात् वह कैसे चलाई जाती है, उसके कौन-कौन से हिस्से हैं, विभिन्न हिस्सों का क्या-क्या कार्य है आदि—एक वैज्ञानिक क्रिया है।

---

*"Science is knowledge"—J. K. Mehta, *Indian Journal of Economics*, 1935.

विज्ञान के प्रकार*

मानव विज्ञान दो प्रकार का होता है—(१) वास्तविक (Real) तथा (२) आदर्श (Normal)। इनका भेद नीचे स्पष्ट किया गया है।

वास्तविक विज्ञान—वास्तविक विज्ञान का काम वास्तविक स्थिति का अध्ययन कर किन्हीं दो घटनाओं में कारण (Cause) तथा परिणाम (Effect) का संबन्ध स्थापित करना है। इस प्रकार वास्तविक विज्ञान का कार्य वर्णात्मक (Descriptive) तथा रचनात्मक (Constructive) दोनों हैं।

वास्तविक विज्ञान के दो भेद हैं—(१) वर्णात्मक तथा (२) रचनात्मक। वर्णात्मक विज्ञान में भूतकाल तथा वर्तमानकाल की परिस्थितियों तथा घटनाओं का सविस्तार वर्णन किया जाता है। अर्थात् वर्णात्मक विज्ञान में यह बताया जाता है कि पहले क्या-क्या हो चुका है और इस समय क्या हो रहा है या व्यक्ति क्या-क्या कह रहे हैं। रचनात्मक विज्ञान का कार्य 'कारण' तथा 'परिणामों' में संबन्ध स्थापित कर नियम प्रतिपादित करना है।

आदर्श विज्ञान—आदर्श विज्ञान का काम उन आदर्शों या उद्देश्यों को बताना है जिनके लिये मनुष्य प्रयत्नशील रहता है। उचित तथा अनुचित का भेद स्पष्ट कर प्राणीमात्र को उन्नति के मार्ग पर ले जाना आदर्श विज्ञान का काम है।

कला का अर्थ

'कला' शब्द का प्रयोग विद्वानों ने दो भिन्न-भिन्न अर्थों में किया है। एक मत के अनुसार 'कला' का अर्थ 'करना' या 'बनाना' है। प्रो० जे० के० मेहता का कहना है कि "कला का अर्थ प्रयोग करना है।"* संगीत-कला, नाट्य-कला आदि में कला शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया जाता है। उदाहरण के लिये जब कोई

---

*विज्ञान का वर्गीकरण देते समय अध्यापकों को ध्यान में रखना चाहिये कि विज्ञान चार प्रकार का होता है जैसे (१) कल्पनामूलक विज्ञान (Abstract Science), (२) भौतिक विज्ञान (Physical Science), (३) जीव विज्ञान (Biological Science), तथा (४) मानव विज्ञान (Human Science) कल्पना मूलक विज्ञान के अन्तर्गत गणित तथा दर्शन जैसे शास्त्र आते हैं; भौतिक विज्ञान के अन्तर्गत खगोल शास्त्र, भूगर्भ शास्त्र, रसायन शास्त्र आदि आते हैं; जीव-विज्ञान के अन्तर्गत वनस्पति विज्ञान, प्राणी विज्ञान आदि आते हैं और मानव-विज्ञान के अन्तर्गत सभी समाज शास्त्र आते हैं जिनमें से अर्थशास्त्र भी एक है।

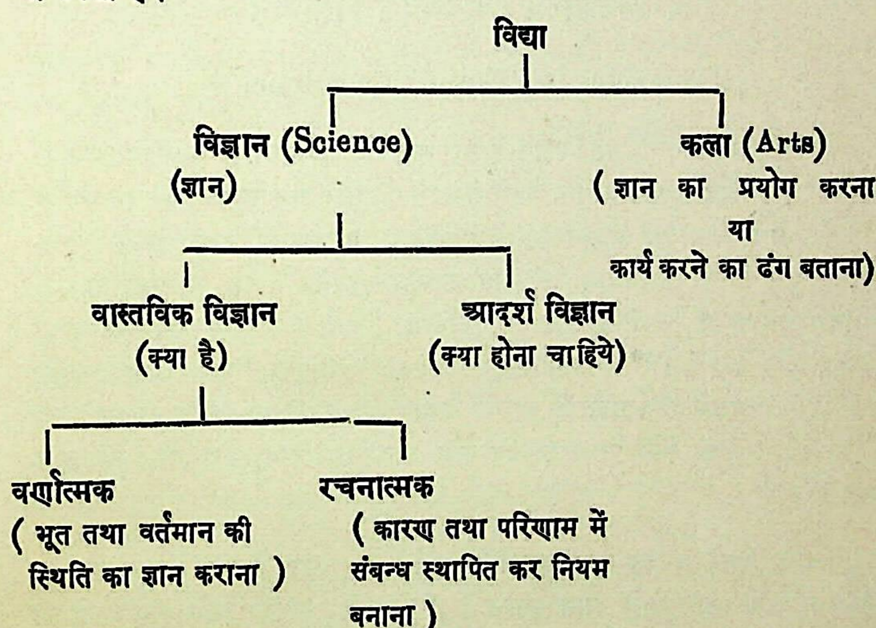
मानव विज्ञान दो प्रकार का होता है : (१) वास्तविक तथा (२) आदर्श। वास्तविक विज्ञान के दो उप-विभाग होते हैं : वर्णात्मक तथा रचनात्मक। क्योंकि अर्थशास्त्र एक मानव शास्त्र है इस कारण हमने केवल उसीका वर्गीकरण दिया है।

†"Art is practice"—J. K. Mehta, *Indian Journal of Economics*, 1935.

व्यक्ति राग अलापना सीख जाता है तभी उसे संगीत-कलाकार या संगीत-कला-विषारद कहा जाता है। इसी प्रकार नृत्य आ जाने पर ही व्यक्ति को नाट्य-कलाकार कहा जाता है।

दूसरे अर्थ में कला का अर्थ "कार्य करने के सर्वोत्तम ढंग" से है। अर्थात् कला हमें यह बताती है कि किसी कार्य को किस ढंग से किया जाय कि वह सबसे अच्छी तरह पूरा हो जाय।

ऊपर के विवरण के अनुसार विज्ञान तथा कला का निम्न वर्गीकरण दिया जा सकता है।



२. अर्थशास्त्र एक वास्तविक विज्ञान है

(Economics is a Positive Science)

विज्ञान तथा कला का अर्थ समझ लेने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि अर्थशास्त्र एक वास्तविक विज्ञान है। इसमें विभिन्न शब्दों की परिभाषा दी जाती है, यह बताया जाता है कि भविष्य में विद्वानों के क्या मत थे और अब क्या हैं, तथा कारण और परिणामों में संबन्ध स्थापित कर विभिन्न नियम स्थापित किये जाते हैं। इसमें बताया जाता है कि अर्थशास्त्र क्या है, भविष्य के विद्वानों का इस संबन्ध में क्या मत था और अब विद्वान क्या परिभाषा देते हैं। धन (Wealth), उत्पादन, उपभोग, उपयोगिता, सूद, लाभ आदि ऐसे अनेक शब्द हैं जिनकी परिभाषा इस

शास्त्र में दी जाती है और जिनका अर्थ समझाया जाता है। साथ ही सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम, ह्रासमान-उत्पत्ति-नियम, माँग का नियम, पूर्ति का नियम, अर्घ का नियम, लगान का नियम, सूद का नियम, लाभ का नियम आदि अनेक नियम हैं जिनका विस्तृत ज्ञान इस शास्त्र में कराया जाता है। अतः, यह निसंदेह कहा जा सकता है कि अर्थशास्त्र एक वर्णात्मक तथा रचनात्मक दोनों प्रकार का वास्तविक विज्ञान है। संसार के सभी अर्थशास्त्री इस मत से सहमत हैं और किसी में भी इस बात से मतभेद नहीं है।

३. अर्थशास्त्र एक आदर्श विज्ञान है

(Economics is a Normative Science)

अर्थशास्त्र एक आदर्श विज्ञान है या नहीं इस प्रश्न पर अर्थशास्त्रियों में बड़ा मतभेद है। इंगलैंड तथा पाश्चात्य देशों के अनेक प्रमुख अर्थशास्त्रियों का यह मत है कि अर्थशास्त्र एक आदर्श विज्ञान नहीं है। आचार्य मार्शल का कहना है कि "अर्थशास्त्र का एक वास्तविक विज्ञान की भाँति अध्ययन करने के पश्चात् अर्थशास्त्री की जिम्मेदारी समाप्त हो जाती है और वह अन्तिम निर्णय की जिम्मेदारी मनुष्य की बुद्धि पर छोड़ देता है।"* प्रोफेसर पीगू (Pigou) भी इसी विचार के हैं। उनका कहना है कि "यद्यपि अर्थशास्त्री के सामने समाज की उन्नति का प्रश्न हमेशा रहता है, फिर भी उसका विशिष्ट कार्य पीछे खड़े होकर व्यक्तियों के ज्ञान की वृद्धि करना है।"†

एक दूसरे स्थान पर आचार्य मार्शल ने कहा है कि "अध्ययन का उद्देश्य ज्ञान के ज्ञान लिये प्राप्त करना है।"‡ यद्यपि मार्शल और पीगू दोनों यह मानते हैं कि अर्थशास्त्री को जनता की भलाई या समृद्धि (Welfare) के लिये

---

* After making a positive study of Economics, the economist "retires and leaves to commonsense the responsibility of ultimate decisions" Marshall, *Principles of Economics*, p. 110.

† "Though for the economist, the goal of social betterment must be held ever in sight, his own special task is not to stand in the forefront of attack, but patiently behind the line to prepare the armament of Knowledge"—A. C. Pigou, *Economics of Welfare.*

‡ "The aims of study are to gain knowledge for its own sake and to obtain guidance in the practical conduct of life and specially social life"—A. Marshall, *Principles of Economics*, P.117

कार्य करना चाहिये, फिर भी उनका यह कहना था कि अर्थशास्त्र का कोई आदर्श (Norm) नहीं है। इसका अध्ययन हम केवल ज्ञान प्राप्त करने के लिए ही करते हैं।

इंगलैंड के प्रसिद्ध वर्तमान अर्थशास्त्री, प्रोफेसर रोबिन्स भी यही कहते हैं कि अर्थशास्त्र केवल एक वास्तविक विज्ञान है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि "जहाँ तक लक्ष्य का प्रश्न है, अर्थशास्त्री निस्पक्ष रहता है। लक्ष्य आर्थिक या अनार्थिक नहीं हो सकते। किसी एक कार्य को करने की विधि मितव्ययतापूर्ण या खर्चीली हो सकती है। परन्तु लक्ष्य लक्ष्य ही है।"*

इस प्रकार एक ओर ऐसे अनेक अर्थशास्त्री हैं जो अर्थशास्त्र को आदर्श विज्ञान नहीं मानते। इसके विपरीत बहुत से अर्थशास्त्री यह मानते हैं कि यह एक आदर्श विज्ञान भी है। ऐसे अर्थशास्त्रियों में अमरीका, यूरुप तथा भारत के अनेक अर्थशास्त्री आते हैं। हमें यह देखना है कि इन दोनों में से कौनसा मत ठीक है।

यदि इस प्रश्न पर गहराई से विचार किया जाय तो हम इसी परिणाम पर पहुँचेंगे कि अर्थशास्त्र का कुछ न कुछ ध्येय अवश्य है। जब हम कोई भी काम करते हैं तो हमारा कुछ न कुछ उद्देश्य होता अवश्य है। जब हम बाजार जाते हैं तो हमारा उद्देश्य सामान खरीदना होता है। जब हम स्कूल जाते हैं तो हमारा लक्ष्य पढ़ना होता है। जब हम मुँह चलाते हैं तो हमारा उद्देश्य भोजन करना होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि संसार की कोई भी क्रिया लीजिये, आप देखेंगे कि वह किसी न किसी उद्देश्य के लिये की गई है। अतएव यह स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र का भी कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होगा। तार्किक दृष्टि से यह बात ठीक उतरती है।

यदि अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री को लिया जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि इस शास्त्र का उद्देश्य है अवश्य। अर्थशास्त्र यह कहता है कि संसार के सभी रहने वालों का अधिकतम आर्थिक कल्याण होना चाहिये। देश से गरीबी दूर होनी चाहिये। श्रम-जीवियों की दशा सुधारनी चाहिये। किसानों की भलाई के लिये खेतों का छोटा तथा छिटकापन दूर करना चाहिये, खेतों में अच्छे-अच्छे औजारों का प्रयोग करना चाहिये, सिंचाई के साधनों को बढ़ाना चाहिये आदि। इन सभी बातों में एक न एक आदर्श छिपा है। अतएव यह कहा जा सकता है कि अर्थशास्त्र एक आदर्श विज्ञान भी है।

---

* "Economist is indifferent between ends. Ends cannot be economic or non-economic. There can be economical or non-economical ways of performing an activity. But ends are ends."—L. Robbins, *The Nature and Significance of Economic Science.*

४. अथशास्त्र कला है

(Economics is an Art)

अर्थशास्त्र एक कला भी है क्योंकि इसमें हम उन उपायों को बताते हैं जिनसे हम अपने उद्देश्य की प्राप्ति कर सकें। उदाहरण के लिये इस शास्त्र में वह उपाय बताये जाते हैं जिनसे खेती की दशा सुधर सके, कृषिकों की आर्थिक दशा सुधर जाय, खेतों की चकबंदी हो सके, उद्योग-धन्धों की उन्नति हो सके, देश की आर्थिक दशा सुधरे आदि। अतएव अर्थशास्त्र एक कला भी है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि अर्थशास्त्र वास्तविक विज्ञान, आदर्श विज्ञान और कला तीनों है।

परीक्षा प्रश्न

उत्तर-प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—अर्थशास्त्र की, सामाजिक विज्ञान के रूप में, विषय-सामग्री पूर्णतया समझाकर लिखिये। (१९४९)

२—"अर्थशास्त्र मानव जाति के धन संबन्धी कल्याण और समृद्धि का अध्ययन करने वाला सामाजिक विज्ञान है।" स्पष्ट कीजिये। (१९४३)

उत्तर-प्रदेश, इन्टर कामर्स

१—'अर्थशास्त्र कला के रूप में' पर नोट लिखिये। (१९५३)

सागर इंटर कामर्स

अर्थशास्त्र की परिभाषा दीजिये और बतलाइये कि यह विज्ञान है या कला। (१९५०)

———

तीसरा अध्याय

अर्थशास्त्र का क्षेत्र

(Scope of Economics)

यह पता लगाने के लिये कि अर्थशास्त्र का क्षेत्र क्या है हमें तीन बातों का उत्तर देना होगा :

१—अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री (Subject-matter of Economics)

२—अर्थशास्त्र का स्वभाव, अर्थात् यह विज्ञान है या कला या दोनों

३—अर्थशास्त्र की सीमाएँ (Limitations of Economics)

१ अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री

(Subject-matter of Economics)

अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री के बारे में प्रथम अध्याय में सविस्तार बताया जा चुका है। फिर भी सूक्ष्म में यह कहा जा सकता है कि प्रोफेसर रोबिन्स के मतानुसार अर्थशास्त्र में प्रत्येक मनुष्य की उन क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है जो सीमित साधनों को असीमित आवश्यकताओं के व्यय से संबंधित हैं। या अन्य शब्दों में यह कहिये कि अर्थशास्त्र में मनुष्य की प्रत्येक क्रिया के आर्थिक पहलू का अध्ययन किया जाता है।

अर्थशास्त्र के क्षेत्र में आने वाली मानवीय क्रियाएँ पाँच भागों में बाँटी जा सकती हैं—(१) उपभोग, (२) उत्पादन, (३) विनिमय, (४) वितरण, तथा (५) सरकारी राजस्व। प्रत्येक मनुष्य को कुछ न कुछ आवश्यकताएँ प्रतीत होती हैं। जब तक आवश्यकताएँ सन्तुष्ट नहीं हो जातीं उसे चैन नहीं पड़ता। आवश्यकताएँ तभी सन्तुष्ट होती हैं जब आवश्यक वस्तुओं का उपभोग किया जाय। इस कारण उपभोग (Consumption) अर्थशास्त्र का एक भाग है। परन्तु उपभोग तभी संभव है जब वस्तुओं तथा धन का उत्पादन किया जाय। अतएव उत्पादन (Production) भी अर्थशास्त्र का एक विभाग है। इस विभाग में हम यह अध्ययन करते हैं कि उत्पत्ति के साधन कौन-कौन से हैं, उनका क्या-क्या काम है, उसकी निपुणता (Efficiency) किन-किन बातों पर निर्भर रहती है, श्रम-विभाजन से क्या लाभ हैं, मशीनों का प्रयोग अच्छा है या बुरा और बड़ी मात्रा में उत्पादन करने से उत्पादन-व्यय क्यों कम हो जाता है आदि। आजकल उत्पादन क्रिया में कई व्यक्ति मिलकर काम करते हैं। अतएव जो वस्तु उत्पादित होती है उसमें उन सभी

व्यक्तियों का भाग रहता है जिन्होंने उत्पादन क्रिया में भाग लिया है। प्रत्येक व्यक्ति का हिस्सा वितरण द्वारा निश्चित किया जाता है। अतएव वितरण (Distribution) भी अर्थशास्त्र का एक विभाग है। इसमें यह अध्ययन किया जाता है कि उत्पत्ति के पाँचों साधनों का हिस्सा किस नियम द्वारा निश्चित किया जाता है। उत्पत्ति के विभिन्न साधनों को क्या मिलना चाहिये और उन्हें क्या मिल रहा है इसका विवेचन भी इस विभाग में किया जाता है। आजकल विशिष्टता (Specialisation) का युग है। यदि कोई बढ़ई है तो कोई लुहार, कोई अध्यापक है तो कोई वकील, कोई डाक्टर है तो कोई इंजीनियर, कोई मिल में काम करता है तो कोई दफ्तर में। क्योंकि एक व्यक्ति केवल एक ही कार्य करता है अतएव यह आवश्यक होता है कि आवश्यकता की अन्य वस्तुओं को वह विनिमय द्वारा प्राप्त कर उनका उपभोग करे। अतएव विनिमय (Exchange) भी अर्थशास्त्र का एक विभाग है। इसमें हम यह अध्ययन करते हैं कि विनिमय के क्या-क्या विभिन्न अंग हैं और किन-किन माध्यम द्वारा विनिमय होता है। आजकल देश की आर्थिक प्रणाली को व्यवस्थित ढंग से चलाने की जिम्मेदारी सरकार की होती है। देश में बेकारी (Unemployment) न हो और सभी व्यक्ति जीवन की आवश्यकताओं को प्राप्त कर सकें यह भार सरकार पर है। अतएव सरकार को अनेक कार्य करने पड़ते हैं। इन कार्यों के लिये सरकार को रुपया चाहिये जिसे वह कर (Tax) लगाकर वसूल करती है। सरकार को कौन-कौन से कर कितनी-कितनी मात्रा में लगाने चाहिये और धन को किस प्रकार किस-किस काम में व्यय करना चाहिये इसका अध्ययन सार्वजनिक राजस्व (Public Finance) नामक विभाग में किया जाता है। इस प्रकार उपभोग, उत्पादन, विनिमय, वितरण तथा सावजनिक राजस्व नामक अर्थशास्त्र के पाँच विभाग हैं।

२· अर्थशास्त्र का स्वभाव
(Nature of Economics)

इसमें यह अध्ययन किया जाता है कि अर्थशास्त्र विज्ञान है या कला या दोनों। पिछले अध्याय में आपको बताया जा चुका है कि अर्थशास्त्र वास्तविक तथा आदर्श विज्ञान है और कला भी।

३. अर्थशास्त्र की सीमाएँ
(Limitations of Economics)

पहले अध्याय में आपको बताया जा चुका है कि प्रोफेसर रोबिन्स ने अर्थशास्त्र का क्षेत्र काफी व्यापक कर दिया है और मार्शल ने जो संकीर्णता ला दी थी

उसे दूर कर दिया है। प्रोफेसर रोबिन्स के मतानुसार अर्थशास्त्र की निम्न सीमाएँ हैं :

१—अर्थशास्त्र में मानवीय क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है, अन्य किसी जीवधारी की क्रिया का नहीं।

२—अर्थशास्त्र में प्रत्येक मानवीय क्रिया के आर्थिक पहलू का ही अध्ययन किया जाता है। प्रत्येक क्रिया के हर पहलू का अध्ययन इस शास्त्र में नहीं किया जाता। अन्य शब्दों में हम मनुष्यों की पूरी की पूरी क्रिया का अध्ययन न कर केवल उसके एक पहलू—आर्थिक पहलू—का ही अध्ययन करते हैं।

३—अर्थशास्त्र में सभी प्रकार के मनुष्यों की क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। चाहे मनुष्य समाज में मिलकर रहे या अकेले और चाहे वह पागल हो या नहीं।

४—अर्थशास्त्र में मनुष्य की सभी क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है चाहे वह क्रियाएँ सामान्य (genral) हों या असाधारण और चाहे वह मनुष्य की साधारण जीवन के व्यापार (ordinary business of life) से संबंध रखती हों अथवा नहीं।

परीक्षा प्रश्न

उत्तर-प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—"अर्थशास्त्र" का विषय समझाइये। अर्थशास्त्र का राजनीति शास्त्र और न्याय शास्त्र से क्या सम्बन्ध है? (१९५२)

२—अर्थशास्त्र की विषय सामग्री क्या है? अर्थशास्त्र अन्य सामाजिक विज्ञानों से किस प्रकार सम्बन्धित है? अच्छी तरह समझा कर लिखिये। (१९४८)

३—अर्थशास्त्र की सामाजिक विज्ञान के रूप में विषय सामग्री पूरी तरह समझा कर लिखिये। (१९४९)

उत्तर-प्रदेश, इन्टर कामर्स

४—अर्थशास्त्र की विषय सामग्री तथा उसके क्षेत्र को स्पष्ट कीजिए। (१९५२)

५—अर्थशास्त्र क्या है? यह किस विषय का अध्ययन करता है? (१९५०)

६—अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री क्या है? इसका ज्ञान व्यापारी के लिए किस प्रकार उपयोगी है? (१९४३)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

७—अर्थशास्त्र की विषय सामग्री क्या है? भारतीय उदाहरण देते हुए बताइये कि अर्थशास्त्र के अध्ययन का व्यावहारिक लाभ क्या है? (१९५२)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर कामर्स

८—अर्थशास्त्र की परिभाषा दीजिये। ध्यान पूर्वक उसकी विषय-सामग्री समझाइये। संक्षिप्त में उसके नियमों का स्वभाव भी बताइये। (१९४९)

९—अर्थशास्त्र की परिभाषा बतलाइये। और इसका क्षेत्र बताइये। (१९४८)

१०—अर्थशास्त्र की विषय सामग्री तथा क्षेत्र को समझाकर लिखिये। व्यावहारिक जीवन की समस्याओं को हल करने में अर्थशास्त्र के अध्ययन का लाभ किस सीमा तक उठाया जा सकता है। (१९४०)

पटना इन्टर आर्ट्स

११—अर्थशास्त्र के अध्ययन की महत्ता तथा उसके क्षेत्र को बताइये। (१९५२)

पटना इन्टर कामर्स

१२—आप अर्थशास्त्र से क्या समझते हैं? इसका क्षेत्र बताइये। (१९५२)

सागर इन्टर कामर्स

१३—अर्थशास्त्र की परिभाषा दीजिये और इसके अध्ययन का क्षेत्र भी स्पष्टतया बताइये। (१९५१)

मध्य भारत इन्टर आर्ट्स

१४—अर्थशास्त्र की विषय सामग्री बताइये तथा भारतीय दशाओं के सन्दर्भ में अर्थशास्त्र के अध्ययन के महत्व पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। (१९५२)

मध्य भारत इन्टर कामर्स

१५—अर्थशास्त्र की विषय सामग्री बताइयें। अपने उत्तर में भारतीय दशाओं के उदाहरण दीजिये। (१९५२)

चौथा अध्याय

अर्थशास्त्र का आदर्श

(Aim of Economics)

पिछले अध्यायों में यह बताया जा चुका है कि अर्थशास्त्र एक आदर्श विज्ञान है और हमने यह माना है कि यह कथन सही है। अतएव अब यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि अर्थशास्त्र का आदर्श (Norm) है क्या ? इस सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। कुछ तो कहते हैं कि अर्थशास्त्र एक आदर्शहीन शास्त्र है और कुछ यह मानते हैं कि इसका उद्देश्य मनुष्यमात्र की अधिकतम भलाई करना है। इस अध्याय में हम इन्हीं सब मतों पर विचार कर यह पता लगावेंगे कि अर्थशास्त्र का वास्तविक आदर्श क्या है।

अर्थशास्त्र आदर्शहीन शास्त्र नहीं है

जो अर्थशास्त्री यह मानते हैं कि अर्थशास्त्र आदर्श विज्ञान नहीं है, वह यह भी कहते हैं कि इस शास्त्र का कोई आदर्श नहीं है। उनका कहना है कि इस शास्त्र से हमें प्रकाश मिलता है, फल नहीं मिलता।* अर्थात् इसके अध्ययन से हमारा ज्ञान बढ़ता है, परन्तु हम यह नहीं कह सकते कि क्या उचित है और क्या अनुचित, क्या हमें प्राप्त करना चाहिये और क्या त्यागना चाहिये।

परन्तु यह विचार उचित नहीं है। प्रत्येक क्रिया करने का कुछ न कुछ उद्देश्य होता है। अर्थशास्त्र का अध्ययन भी किसी न किसी उद्देश्य के लिये किया जाता है। यदि हम अर्थशास्त्र का अध्ययन केवल ज्ञान प्राप्त करने के लिये ही करते हैं, तो ज्ञान प्राप्त करना ही हमारा आदर्श हो जाता है। अतएव यह स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र का कुछ न कुछ आदर्श है अवश्य।

अर्थशास्त्र का आदर्श भौतिक कल्याण है

आचार्य पीगू (Pigou) तथा अन्य विद्वानों का मत है कि अर्थशास्त्र का आदर्श भौतिक कल्याण (Material Welfare) है। अर्थात् प्राणीमात्र की अधिकतम आर्थिक समृद्धि (Maximum Economic Welfare) प्राप्त करना ही इस शास्त्र का उद्देश्य है। आचार्य पीगू ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि यह शास्त्र जितना ज्ञान देता है उससे कहीं अधिक फल भी देता है। हम मनुष्य के दुःख और उसकी भावनाओं का अध्ययन केवल ज्ञान प्राप्ति के लिये ही नहीं करते, परन्तु हमारे

* Economics is light-bearing and not fruit-bearing.

मन में यह भाव भी रहता है कि उनका दुःख किस प्रकार से दूर किया जाय। जिस प्रकार एक डाक्टर डाक्टरी पढ़कर रोगियों का कष्ट दूर करने में अपने ज्ञान को लगाता है, ठीक उसी प्रकार एक अर्थशास्त्री भी ज्ञान प्राप्त कर समाज के व्यक्तियों का दुःख दूर करने में उसका प्रयोग करता है जिससे सामाजिक समृद्धि अधिकतम हो सके। इसी कारण हम इस शास्त्र में बेकारी दूर करने के उपाय बताते हैं, उत्पादन बढ़ाने के तरीकों पर प्रकाश डालते हैं, रहन-सहन का स्तर बढ़ाने के लिये प्रयत्न करते हैं और व्यक्तियों की क्रय-शक्ति (purchasing power) बढ़ाने के लिये प्रयत्नशील रहते हैं। ध्यान रखने की बात है कि हम व्यक्तियों (Individuals) की आर्थिक समृद्धि की बात न कहकर सामाजिक भलाई (Social Welfare) की बात करते हैं। व्यक्ति समाज का एक अंग है। समाज की भलाई में ही व्यक्तियों की भलाई है। परन्तु यदि कुछ गिने-चुने व्यक्ति अमीर हो गये और शेष गरीब ही रहे तो देश का भला नहीं हो सकता। इसी कारण अधिकांश व्यक्तियों की अधिकतम आर्थिक समृद्धि ही इस शास्त्र का आदर्श है।

अर्थशास्त्र का उद्देश्य आनन्द प्राप्त करना है

प्रोफेसर पीगू ने अर्थशास्त्र का आदर्श भौतिक कल्याण या आर्थिक कल्याण बताया है। परन्तु प्रयाग विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभाग के अध्यक्ष, प्रोफेसर जे० के० मेहता (J. K. Mehta) ने भारतीय परम्परा के अनुसार इस शास्त्र का आदर्श आध्यात्मिक सुख (Moral Welfare) निर्धारित किया है। उनका मत है कि आध्यात्मिक सुख से ही आनन्द (Happiness) प्राप्त होता है और आनन्द प्राप्त करना ही जीवन का लक्ष्य है।*

प्रोफेसर मेहता सन्तोष (Satisfaction) तथा आनन्द (Happiness) में भेद करते हैं। उनका कहना है कि मनुष्य को जब किसी वस्तु की आवश्यकता होती है तो उसे दुःख होता है। प्रयत्न कर जब वह अपनी आवश्यकता संतुष्ट कर लेता है तो उसे संतोष (Satisfaction) प्राप्त होता है जिससे उसका दुःख दूर हो जाता है। इस प्रकार सन्तोष से केवल दुःख दूर हो जाता है, अन्य कुछ प्राप्त नहीं होती। आनन्द उस समय प्राप्त होता है जब मनुष्य को कुछ भी दुःख न हो। अतएव आनन्द में सुख ही सुख है, दुःख का नाम ही नहीं है। इसी कारण आनन्द (Happiness) की प्राप्ति सन्तोष की प्राप्ति से कहीं अधिक अच्छी है।

आजकल मनुष्य अपनी आवश्यकतायें बढ़ाते चले जाते हैं। फलतः उनका दुःख बढ़ता जाता है। फिर वह प्रयत्न कर दुःख मिटाते हैं और सन्तोष प्राप्त करते हैं। इस प्रकार उनकी सम्पूर्ण मेहनत का फल यह होता है कि उनका दुःख दूर हो

* देखिये उनकी पुस्तक, Advanced Economic Theory.

जाता है। परन्तु यदि मनुष्य अपनी आवश्यकताओं का अन्त कर दें, तो उन्हें दुःख होगा ही नहीं। ऐसी अवस्था में उन्हें आनन्द की प्राप्ति होगी। अतएव मनुष्य को अपनी आवश्यकताओं का अन्त कर देना चाहिये। आवश्यकताओं को धीरे-धीरे कम करने से ही उनका अन्त हो सकेगा, एक दम उनका अन्त नहीं हो सकता।

प्रोफेसर मेहता (J. K. Mehta) का विचार तार्किक दृष्टि से पूर्णतः सही मालूम पड़ता है। परन्तु इसमें यही एक कठिनाई दीख पड़ती है कि यह व्यवहारिक नहीं है। व्यक्तियों के लिये अपनी आवश्यकतायें कम करना बड़ा कठिन होता है। हो सकता है कि कुछ व्यक्ति अपनी कुछ आवश्यकतायें कम करने में सफल हो जायँ, परन्तु अधिकांश व्यक्ति इस लक्ष्य को नहीं पा सकते। इस कारण प्रोफेसर पीगू ने जो अर्थशास्त्र का उद्देश्य बताया है वही अधिक मान्य तथा व्यवहारिक प्रतीत होता है।

प्रश्न

१—अर्थशास्त्र का आदर्श क्या है ? स्पष्टतया बताइये।

२—'अर्थशास्त्र एक उद्देश्यहीन शास्त्र है।' इस कथन पर टीका कीजिये।

३—'अर्थशास्त्र का उद्देश्य अधिकतम आनन्द प्राप्त करना है'। क्या आप इस विचार से सहमत हैं ?

———

पाँचवाँ अध्याय

अर्थशास्त्र के नियम

(Economic Laws)

प्रत्येक शास्त्र के कुछ न कुछ नियम होते हैं। इन नियमों की सहायता से उस शास्त्र के मर्मज्ञ भविष्य का ठीक-ठीक अनुमान लगाने में सफल हो जाते हैं। अर्थशास्त्र भी एक शास्त्र है और इसके भी कुछ नियम हैं। अर्थशास्त्र के नियमों के बारे में ही हम आपको इस अध्याय में बतावेंगे।

१. नियम की परिभाषा

(Definition of a Law)

किन्हीं दो घटनाओं के पारस्परिक हेतुक (Causal) सम्बन्ध को नियम कहते हैं। मान लीजिये आपने कोई घटना घटते देखी। आप उसका कारण जानना चाहते हैं। कारण जान लेने के पश्चात् आप यह देखते हैं कि जब-जब यह कारण (Cause) उपस्थित होता है, तब-तब क्या यह घटना अवश्य घटती है। यदि ऐसा है तो इसका अर्थ हुआ कि इन दोनों में कारण (Cause) तथा परिणाम (Effect) का सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध को हेतुक सम्बन्ध भी कहते हैं। **वह सामान्य कथन (general statement) जो दो घटनाओं के पारस्परिक हेतुक सम्बन्ध को बताता है नियम कहलाता है।**

एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायगी। मान लीजिये आपने पत्थर का एक टुकड़ा हवा में उछाला। आपने देखा कि वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। अब आप यह जानना चाहते हैं कि यह पत्थर पृथ्वी पर क्यों गिरा, ऊपर हवा में क्यों नहीं रहा। आपने पता लगाया कि पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है जो अपनी ओर सभी पदार्थों को खींचती है। इस तरह आपने देखा कि पत्थर का पृथ्वी पर गिर जाना एक घटना है जिसका कारण पृथ्वी की आकर्षण शक्ति है। अब आपने विभिन्न स्थानों पर, विभिन्न समयों पर और विभिन्न वस्तुओं को हवा में उछाल कर देखा कि क्या वह सब पृथ्वी पर गिर जाती हैं। आपने पाया कि सभी वस्तुओं को पृथ्वी अपनी ओर खींचती है। इस प्रकार खोज के पश्चात् यह स्पष्ट हो गया कि पृथ्वी में आकर्षण शक्ति एक कारण है और उसका परिणाम यह है कि वस्तुयें पृथ्वी की ओर आकर्षित होती हैं। इस प्रकार इन दोनों घटनाओं में एक हेतुक सम्बन्ध है और इस सम्बन्ध को स्पष्ट करने वाला सामान्य कथन एक नियम कहलावेगा।

आर्थिक नियम की परिभाषा

उपर्युक्त परिभाषा वैज्ञानिक नियम की एक सामान्य परिभाषा है। अर्थशास्त्र भी एक विज्ञान है। अतएव आर्थिक नियम की परिभाषा भी इसी आधार पर दी जा सकती है। हम कह सकते हैं कि **किन्हीं दो आर्थिक घटनाओं में पारस्परिक हेतुक सम्बन्ध बताने वाला सामान्य कथन आर्थिक नियम कहलाता है।**

एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायगी। वस्तुओं का क्रय-विक्रय एक आर्थिक क्रिया है। मान लीजिये आपने बाजार में देखा कि जब पेंसिलों का मूल्य दो आना प्रति पेंसिल है तो उसकी माँग ५० पेंसिल है। परन्तु मूल्य घटाकर एक आना प्रति पेंसिल रह जाने पर माँग बढ़कर १०० हो जाती है। इस प्रकार आपने देखा कि मूल्य घट जाना एक कारण है और उसका परिणाम है माँग बढ़ जाना। अब आपको यह देखना है कि इन दोनों घटनाओं में सम्बन्ध हेतुक है या नहीं। इसके लिये आप यह देखेंगे कि जहाँ भी और जब कभी भी किसी वस्तु की कीमत घटती है तो उसकी माँग बढ़ती है या नहीं। आप पावेंगे कि सभी वस्तुओं के बारे में यह बात ठीक उतरती है। अतएव इन दोनों घटनाओं में यह सम्बन्ध बताने वाला सामान्य कथन आर्थिक नियम कहलावेगा।

२. नियमों के प्रकार

(Kinds of Laws)

नियम कई प्रकार के होते हैं जैसे : (१) वैधानिक या राजनीतिक नियम, (२) नैतिक नियम, (३) सामाजिक नियम, तथा (४) वैज्ञानिक नियम। इनका भेद नीचे स्पष्ट किया गया है।

१. वैधानिक नियम (Political Laws)

वैधानिक या राजनीतिक नियम वह नियम हैं जो एक राज्य अपने देशवासियों के लिये बनाता है। सरकार का यह प्रमुख कार्य है कि देश में शान्ति रखे और कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे को हानि न पहुँचाये। अतएव यह नियम कुछ कार्य करने की मनाही करते हैं और कुछ अन्य कार्य करने के लिये प्रोत्साहित करते हैं। उदाहरण के लिये यह नियम यह कहते हैं कि किसी की चोरी न करो, किसी को शारीरिक चोट न पहुँचाओ, किसी की वस्तु पर ताकत से अधिकार न करो आदि। जो इन नियमों को नहीं मानता उन्हें दंड मिलता है जैसे जेल की यातना या जुर्माना या दोनों।

इन नियमों की निम्न विशेषतायें हैं :—

१—यह कुछ कार्य करने की आज्ञा देते हैं और कुछ की मनाही करते हैं।

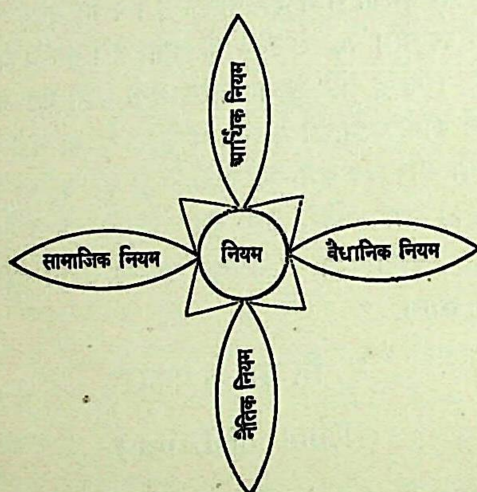
२—इनको न मानने वाले को दंड मिलता है।

३—यह नियम स्थाई (Permanent) नहीं होते । समय-समय पर यह बदलते रहते हैं।

४—यह राज्य की सीमा के भीतर ही लागू होते हैं, दूसरे देश में लागू नहीं होते।

२. नैतिक नियम (Moral Laws)

नैतिक नियम वह नियम हैं जो मनुष्य के आचरण से संबंध रखते हैं। सच बोलना उचित है और झूठ बोलना पाप है, दूसरों को कष्ट देना अनुचित है, सब पर दया रखना धर्म है, अन्याय से लड़ो और धर्म से डरो आदि नियम



चित्र २—नियमों के प्रकार

नैतिक नियम हैं। इस प्रकार यह नियम उचित और अनुचित, पाप और पुण्य, धर्म और अधर्म आदि का ज्ञान कराते हैं और मनुष्य को अच्छा आचरण करने के लिये सदा प्रोत्साहित करते रहते हैं।

इन नियमों की निम्न विशेषतायें हैं :—

१—यह नियम मनुष्य को उचित-अनुचित, पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म आदि का ज्ञान कराते हैं और उसके आचरण से संबंध रखते हैं।

२—इनको न मानने पर राज्य या समाज की ओर से कोई दंड नहीं मिलता। अतएव इनको मानने के लिये मनुष्य वाध्य नहीं होता।

३. सामाजिक नियम (Social Laws)

सामाजिक नियम वह नियम है जो किसी एक समाज में लागू होते हैं। इनको बनाने का कारण यह होता है कि मनुष्यों के सामाजिक संबंध ठीक रहें और उनमें किसी प्रकार की शिथिलता न आने पावे। समाज तभी सुबद्ध रह सकता है जब उसके नियम कड़ाई के साथ माने जायँ और इसी कारण हिन्दू समाज अभी तक

स्थित है। समाजिक नियमों में वह सब रूढ़ियाँ, रीति-रिवाज तथा परम्पराएँ आ जाती हैं जो समाज में रहने वाले व्यक्ति को समय २ पर माननी पड़ती हैं। उदाहरण के लिये शादी, जन्म, मृत्यु, जनेऊ आदि अवसरों पर विभिन्न रीतियों का पालन सामाजिक नियमों के अनुसार ही किया जाता है।

इन नियमों की निम्न विशेषताएँ हैं :—

१—यह नियम मनुष्य के सामाजिक जीवन तथा व्यवहार से संबन्ध रखते हैं।

२—इनको न मानने पर राज्य की ओर से दंड नहीं मिलता। परन्तु समाज में अनादर होने की आशंका या समाज से वहिष्कृत हो जाने का डर लगा रहता है।

३—यह किसी समाज विशेष में ही लागू होते हैं और हर समाज के अलग अलग नियम होते हैं।

४. वैज्ञानिक नियम (Scientific Laws)

वैज्ञानिक नियम वह नियम हैं जो किन्हीं दो घटनाओं में कारण तथा परिणाम (cause and effect) का संबंध स्थापित करते हैं। अर्थात् जब अमुक बात होगी तो इसका परिणाम यह अवश्य निकलेगा।

वैज्ञानिक नियमों की निम्न विशेषताएँ हैं :—

१—यह हर समय तथा हर स्थान पर लागू होते हैं। यह कुछ ऐसे तथ्यों पर आधारित होते हैं जो कभी नहीं बदलते।

२—यह समय समय पर बदलते नहीं।

३—इनको न मानने पर दंड नहीं मिलता।

३. आर्थिक नियमों का स्वरूप

(Nature of Economic Laws)

आर्थिक नियम वैज्ञानिक नियम हैं

अर्थशास्त्र एक विज्ञान है। अतएव इसके नियम भी वैज्ञानिक नियम कहलाते हैं। वैज्ञानिक नियमों की भाँति यह किन्हीं दो आर्थिक घटनाओं में कारण तथा परिणाम का संबन्ध स्थापित करते हैं और उन्हीं की भाँति यह सब स्थान पर समान रूप से लागू होते हैं।

यह सच है कि आर्थिक नियम प्रत्येक परिस्थिति में लाँगू नहीं होते। किसी परिस्थिति विशेष में यह सब स्थानों पर समान रूप से लागू होते हैं। इसी कारण

इन नियमों में एक वाक्यांश जुड़ा रहता है 'यदि अन्य बातें समान रहें तो'। अर्थात् आर्थिक नियमों में यह मानकर चला जाता है कि जिस परिस्थिति के बारे में हम कह रहे हैं वह परिस्थिति बदलेगी नहीं। परन्तु इस बात से इनके वैज्ञानिक स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं आ जाता। भौतिक विज्ञान के नियम भी यह मानकर चलते हैं कि 'समय तथा स्थान अनन्त नही हैं'। सभी विज्ञानों में जब नियम बनाये जाते हैं तो यह मान लिया जाता है कि कुछ परिस्थितियाँ नहीं बदलेंगी। अर्थशास्त्र में भी यही किया जाता है। अतएव हम निसंकोच कह सकते हैं कि **आर्थिक नियम वैज्ञानिक नियम हैं।**

आर्थिक नियम वैज्ञानिक नियमों की भाँति पूर्णतः सही नहीं हैं।

आचार्य मार्शल का कहना था कि अर्थशास्त्र के नियम "कुछ कुछ सही और कुछ कुछ गलत हैं"। वह प्रत्येक परिस्थिति में लागू नहीं होते और इस कारण यह नहीं कहा जा सकता कि वह वैज्ञानिक नियमों की भाँति पूर्णतः सही हैं। वैज्ञानिक नियम प्रत्येक स्थिति में सही उतरते हैं, परन्तु आर्थिक नियमों के बारे में यह बात नहीं कही जा सकती। अतएव आर्थिक नियम केवल "प्रवृत्तियों के द्योतक" हैं। वह केवल इतना बताते हैं कि इस परिस्थिति में ऐसा होने की संभावना है। वैसा होगा या नहीं, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

मार्शल ने आर्थिक नियमों की अनिश्चितता के निम्न कारण बताये।

(अ) आर्थिक नियम मानवीय आचरणों पर आधारित हैं। मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जिसका आचरण प्रत्येक परिस्थिति में एकसा नहीं होता। उसके पास बुद्धि तथा विवेक है और उसका मन भी चलायमान है। अतएव उसका आचरण बदलता रहता है। इसके विपरीत भौतिक विज्ञान के नियम ऐसे पदार्थों पर आधारित हैं जिनमें जान (Life) नहीं होती। अतएव वह प्रत्येक परिस्थिति में एकसा ही कार्य करते हैं। इस कारण भौतिक विज्ञान के नियम अर्थशास्त्र से अधिक सही होते हैं।

(ब) भौतिक शास्त्र में वस्तुओं को प्रयोगशाला में ले जाया जाता है और वहाँ उनकी नाप-तौल कर उन पर नियम बनाये जाते हैं। मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जिसे प्रयोगशाला में नहीं ले जाया जा सकता। उसके सामान्य आचरण (general behaviour) को देखकर ही उस पर नियम बनाये जा सकते हैं। इस प्रकार के बने नियम प्रत्येक परिस्थिति में सही नहीं उतरते।

अतएव आचार्य मार्शल ने स्पष्ट रूप से कहा कि "अर्थशास्त्र में कोई भी ऐसी प्रवृत्ति नहीं है जो आकर्षण शक्ति की भाँति दृढ़ता से लागू हो और निश्चितता के साथ नापी जा सके और इस कारण अर्थशास्त्र का कोई भी नियम ऐसा

नहीं है जिसकी तुलना गुरुत्वाकर्षक नियम (Law of Gravitation) से की जा सके" ।*

आर्थिक नियम ज्वार-भाटे के नियम के समान हैं

आचार्य मार्शल का विचार था कि आर्थिक नियमों की तुलना गुरुत्वाकर्षक नियम से नहीं की जा सकती, परन्तु उनकी तुलना ज्वार-भाटे के नियम से सुगमता से की जा सकती है। ज्वार-भाटे के नियम हमेशा ठीक नहीं उतरते। ज्वार-भाटा सूर्य और चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति पर निर्भर रहता है। यह बताते समय कि आज समुद्र में कितनी ऊँची लहरें उठेंगी, हमेशा "संभवतः" (Probably) शब्द का प्रयोग किया जाता है। मान लीजिये किसी दिन बादल हो जायँ और चन्द्रमा न निकले। ऐसी स्थिति में लहरें कम उठेंगी और पानी कम चढ़ेगा। जिस प्रकार ज्वार-भाटों के नियम में यह आशंका बनी रहती है कि हमारा अनुमान कहीं गलत न निकल जाय, इसी प्रकार आर्थिक नियमों के गलत निकल जाने की भी संभावना बनी रहती है। इसी कारण मार्शल का कहना है कि "आर्थिक नियमों की तुलना ज्वार-भाटे के नियमों से करनी चाहिये, न कि गुरुत्वाकर्षक जैसे निश्चित नियम से" ।†

आर्थिक नियम अन्य सामाजिक नियमों से अधिक सत्य हैं

अर्थशास्त्र एक सामाजिक शास्त्र है क्योंकि समाज में रहने वाले व्यक्तियों की क्रियाओं का यह अध्ययन करता है। राजनीति शास्त्र, इतिहास, भूगोल, नीति शास्त्र, विधान-शास्त्र आदि सभी समाजशास्त्र हैं। इन सभी शास्त्रों की अपेक्षा अर्थशास्त्र के नियम अधिक निश्चित तथा सही हैं। अर्थशास्त्र को छोड़ अन्य समाजशास्त्रों के नियमों के लागू होने की कोई निश्चितता नहीं रहती। परन्तु अर्थशास्त्र के नियम काफी मात्रा में सही होते हैं।

इसका कारण यह है कि अन्य किसी भी समाजशात्र में अध्ययन करने तथा तुलना करने के लिये एक भी माप (measure) नहीं है। अर्थशास्त्र में इन कार्यों के लिये हमारे पास एक माप है—और वह है द्रव्य का माप। अर्थशास्त्र में हम द्रव्य द्वारा तुलना कर यह पता लगा लेते हैं कि कौन सी वस्तु अच्छी है और कौन सी

*"There are no economic tendencies which act as steadily and can be measured as exactly as gravitation can: and consequently there are no laws of economics which can be compared for precision with the law of gravitation"—Marshall, *Economics, of Industry*, p. 23.

† "The laws of econmics are to be compared with the laws of the tides rather than with the simple and exact law of gravitation"—Marshall, *op. cit* p. 24

नहीं, हमें क्या करना चाहिये और क्या नहीं आदि। परन्तु अन्य समाज शास्त्रों में इस प्रकार का कोई भी माप-दंड नहीं है। इस कारण उनके परिणाम पूर्णतः सही नहीं उतरते।

निष्कर्ष

इतना सब अध्ययन करने के बाद हम यह कह सकते हैं कि (१) अर्थशास्त्र के नियम एक वैज्ञानिक नियम हैं, (२) परन्तु वह भौतिक शास्त्रों के नियमों की भाँति पूर्णतः सही नहीं हैं, (३) फिर भी वह ज्वार-भाटे जैसे नियमों से कहीं अधिक सही हैं, तथा (४) अन्य सामाजिक नियमों की अपेक्षा अधिक निश्चित हैं।

परीक्षा प्रश्न

उत्तर प्रदेश इन्टर कामर्स

१—आर्थिक नियमों का क्या स्वभाव है ? आर्थिक नियम वैधानिक नियमों तथा (प्राकृतिक) विज्ञान के नियमों से किस प्रकार भिन्न होते हैं ? (१९५२)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

२—आर्थिक नियमों के स्वभाव पर एक नोट लिखिये। (१९४६,१९४७)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर कामर्स

३—अर्थशास्त्र की परिभाषा दीजिये। ध्यानपूर्वक इसकी विषय-सामग्री बताइये। संक्षिप्त में इसके नियमों के स्वभाव को भी बतलाइये। (१९४९)

सागर इन्टर आर्ट्स

४—आर्थिक नियम पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। (१९५०)

सागर इन्टर कामर्स

५—अर्थशास्त्र की परिभाषा दीजिये और आर्थिक नियमों के लक्षण बतलाइये। (१९५२)

६—आर्थिक नियमों पर एक संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९५१,१९४९)

७—आर्थिक नियमों के स्वभाव को बताइये और उन रीतियों को बताइये जिनके द्वारा ये नियम बनाये जाते हैं। (१९५०)

छठा अध्याय

अर्थशास्त्र के अध्ययन की रीति

(Methodology of Economics)

किसी भी विज्ञान को अध्ययन करने की कुछ रीतियाँ होती हैं और उन्हीं रीतियों द्वारा उस शास्त्र के नियम बनाये जाते हैं। अर्थशास्त्र भी एक विज्ञान है और हमें यह जानना है कि इस विज्ञान के अध्ययन में किन-किन रीतियों का प्रयोग किया जाता है। यह इस अध्याय में बताया जायगा।

१. अध्ययन की रीतियाँ

(Methods of Study)

यह बताने के पहले कि अर्थशास्त्र के अध्ययन में किन-किन रीतियों का प्रयोग किया जाता है, यह जानना बड़ा आवश्यक है कि विज्ञान के अध्ययन की कौन कौन सी रीतियाँ हैं। विज्ञान के अध्ययन की केवल दो रीतियाँ हैं—(१) आगमन रीति तथा (२) निगमन रीति। इनके बारे में नीचे बताया जायगा।

आगमन रीति (Inductive Method)

आगमन रीति में हम घटना के कारणों तथा घटना के बारे में अध्ययन करते हैं और फिर उस घटना से संबंधित आँकड़ों को इकट्ठा कर उनकी सहायता से नियम स्थापित करते हैं। अर्थात् हम विशिष्ट (Particular) से सामान्य (General) की ओर जाते हैं।

इस रीति में सबसे पहले किसी एक घटना का अध्ययन किया जाता है। फिर उस घटना का कारण जानने का प्रयास किया जाता है। इसके लिये घटना से संबंध रखने वाली बातों का भली भाँति निरीक्षण कर उससे संबंधित आँकड़ों को इकट्ठा किया जाता है और उनकी सहायता से सामान्य धारणायें निकाली जाती हैं जिन्हें नियम कहते हैं। इसके बाद प्रयोग (Experiments) द्वारा यह देखा जाता है कि नियम सच हैं या नहीं।

इस प्रकार इस रीति के अनुसार अध्ययन में तीन बातें आती हैं—(१) सबसे पहले घटना का अध्ययन, (२) इसके बाद घटना से संबंध रखने वाली बातों का निरीक्षण तथा घटना से संबंधित आँकड़ों का संकलन, और (३) प्रयोग द्वारा इसकी जाँच करना कि नियम ठीक बनाये गये हैं या नहीं।

आगमन प्रणाली में, अध्ययन के समय दो मुख्य तरीकों का प्रयोग किया जाता है। वह हैं (१) प्रयोगात्मक तरीका (Experimental Method), तथा (२) आंकिक तरीका (Statistical Method)। प्रयोगात्मक तरीके में प्रयोग-शाला में वस्तु पर प्रयोग कर और उसका अध्ययन कर उस पर नियम बनाये जाते हैं और आंकिक तरीके में आँकड़े (Statistics) इकट्ठे कर उनकी सहायता से नियम बनाये जाते हैं। जो भी नियम इन दोनों तरीकों से बने हों, समझ लीजिये कि वह आगमन प्रणाली द्वारा बनाये गये हैं।

निगमन रीति (Deductive Method)

निगमन रीति में हम सामान्य (General) से विशिष्ट (Particular) की ओर जाते हैं। इस रीति में कुछ स्वतःसिद्ध (axioms) तथा आधारभूत (basic) बातों को आधार मानकर चला जाता है और फिर तर्क द्वारा कुछ नियमों का प्रतिपादन किया जाता है जो आधारभूत तथा स्वयंसिद्ध बातों पर आधारित होते हैं। इस प्रणाली में न तो आँकड़े ही इकट्ठे किये जाते हैं और न प्रयोग ही किये जाते हैं। केवल कोरे तर्क का सहारा लिया जाता है।

आगमन तथा निगमन प्रणालियों के उदाहरण

कुछ उदाहरण देकर इन दोनों प्रणालियों का भेद स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिये आपको भूख लगी है। आपने एक रोटी खाई और आपकी भूख कुछ कम हो गई। दूसरी रोटी खाने पर भूख और भी कम हो गई और तीसरी रोटी खाने पर उससे भी अधिक कम हो गई। पाँच रोटियाँ खाने के पश्चात् आपने देखा कि आपकी भूख मिट गई है। इस प्रकार आपने देखा कि वस्तु की हर नई इकाई खाने के पश्चात् भूख क्रमशः कम होती जाती है और अन्त में एक दम मिट जाती है यह एक घटना है। आपने इसका अध्ययन किया, अन्य वस्तुओं को खाकर देखा, विभिन्न मनुष्यों ने विभिन्न वस्तुओं को खाकर देखा, विभिन्न स्थानों पर तथा समयों पर वस्तुओं का उपभोग करके देखा गया और आँकड़े इकट्ठे किये गये। परिणाम सभी स्थान पर एक ही निकला। इस आधार पर जो नियम बनेगा वह आगमन प्रणाली के अनुसार बनेगा।

अब निगमन प्रणाली का उदाहरण लीजिये। आप जानते हैं कि 'मनुष्य नश्वर है।' यह एक आधारभूत तथा स्वयंसिद्ध बात है। इसके आधार पर आप तर्क द्वारा यह कह सकते हैं कि क्योंकि मनुष्य नश्वर है अतएव सभी मनुष्य मरेंगे अवश्य, राम भी एक दिन मरेगा और श्याम भी। मनुष्य मरता क्यों है ? क्योंकि वह पैदा हुआ है। अतएव जो भी पैदा हुआ है वह मरेगा अवश्य चाहे वह मनुष्य हो या जानवर या अन्य कोई प्राणी। इस प्रकार जो नियम बनते हैं वह निगमन प्रणाली के अनुसार बनते हैं।

२. अर्थशास्त्र में दोनों रीतियों का प्रयोग होता है

(Economics Uses Both The Methods)

प्रारंभिक अर्थशास्त्री अर्थशास्त्र में केवल निगमन रीति का प्रयोग करते थे और आगमन रीति का प्रयोग गलत समझते थे। बाद में कुछ अर्थशास्त्रियों ने आगमन रीति का प्रयोग करना आरंभ कर दिया और बताया कि निगमन रीति का प्रयोग अवांछनीय है। इन दोनों मतों में आपस में बड़ा मतभेद रहा। बाद में आचार्य मार्शल ने इस वाद विवाद का अन्त किया और कहा कि अर्थशास्त्र में दोनों रीतियों का समान रूप से प्रयोग होता है। प्रसिद्ध जर्मन अर्थशास्त्री शिश्मौलर (Schmoller) का कथन कि "वैज्ञानिक विचारों में आगमन तथा निगमन दोनों की उसी प्रकार आवश्यकता पड़ती है जिस प्रकार चलने के लिये दायें तथा बायें पैरों की"*मार्शल ने पूर्णतः सही बताया। और वास्तव में यह बात ठीक भी है। यह दोनों रीतियाँ एक दूसरे की पूरक हैं,—प्रतिद्वन्दी नहीं।

यदि हम विभिन्न आर्थिक नियमों को देखें तो यह स्पष्ट हो जायगा कि अर्थशास्त्र के नियम आगमन तथा निगमन दोनों रीतियों पर आधारित हैं। जहाँ सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम निगमन प्रणाली पर आधारित है, क्रमागति-उत्पत्ति वृद्धि नियम आगमन प्रणाली पर आधारित है। जहाँ सम-सीमान्त उपयोगिता नियम में निगमन प्रणाली को अपनाया गया है, वहाँ माँग तथा पूर्ति का नियम आगमन प्रणाली के अनुसार बनाया गया है। इस प्रकार अर्थशास्त्र के नियम दोनों रीतियों पर आधारित हैं।

ध्यान रखने की बात है कि कुछ विषय ऐसे हैं जहाँ निगमन प्रणाली का प्रयोग नहीं हो सकता। उदाहरण के लिये आप माल्थस के जनसंख्या के सिद्धान्त को ले लीजिये। यह सिद्धान्त निगमन प्रणाली द्वारा नहीं प्रतिपादित किया जा सकता। इसी प्रकार कुछ ऐसे विषय हैं जहाँ निगमन प्रणाली ही सफल हो सकती है और आगमन प्रणाली सफल नहीं हो सकती। उदाहरण के लिये ऐसे स्थान जहाँ सामाजिक घटनाएँ बड़ी जटिल और पेचीदा हों या जहाँ सामाजिक समस्यायें शीघ्रता से बदल रही हैं। अतएव कुछ स्थानों पर आगमन प्रणाली का प्रयोग हितकर होता है और कुछ अन्य स्थानों पर निगमन प्रणाली का। इसी कारण इन दोनों रीतियों का उचित सामंजस्य ही अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिये वांछनीय है।

---

* Induction and deduction are both needed for scientific thought as the right and left boot are both needed for walking"–Prof. Schmoller. Quoted by Marshall in his book, *Economic of Industry*, p. 416

प्रश्न

१—अर्थशास्त्र के अध्ययन की कौन-कौन सी रीतियाँ हैं? अच्छी प्रकार समझाइये।

२—आगमन तथा निगमन प्रणालियों को अच्छी प्रकार से समझाइये।

३—अर्थशास्त्र के अध्ययन में आगमन प्रणाली का प्रयोग किया जाता है या निगमन प्रणाली का? किस प्रणाली का प्रयोग अधिक उचित है और क्यों?

———

सातवाँ अध्याय

अर्थशास्त्र के अध्ययन से लाभ

(Advantages of The Study of Economics)

आपको बताया जा चुका है कि अर्थशास्त्र एक ऐसा विज्ञान है जो हमें प्रकाश देता है और फल भी।* अर्थात् इसके अध्ययन से हमारे ज्ञान की वृद्धि तो होनी ही है, साथ ही, व्यावहारिक जीवन में भी इसका अध्ययन अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होता है। इस प्रकार अर्थशास्त्र के अध्ययन से दो प्रकार के लाभ हैं—(१) सैद्धान्तिक (Theoretical) तथा (२) व्यावहारिक (Practical)। सैद्धान्तिक लाभ वह लाभ हैं जिनसे ज्ञान की वृद्धि होती है तथा मानसिक विकास होता है और व्यावहारिक लाभ वह हैं जिनसे दैनिक या व्यावहारिक जीवन में बड़ी उपयोगिता मिलती हैं। इनके बारे में नीचे बताया गया है।

१. अर्थशास्त्र से सैद्धान्तिक लाभ

(Theoretical Advantages)

(अ) अर्थशास्त्र के अध्ययन से मनुष्य का ज्ञान बढ़ता है और वह धन के उपभोग, उत्पादन, विनिमय तथा वितरण से संबंधित बातें ठीक से समझ जाता है। जीवन में धन का स्थान क्या है, धन का प्रयोग किस प्रकार करना चाहिये जिससे सीमित साधनों को असीमित आवश्यकताओं पर व्यय करने पर अधिकतम उपयोगिता मिल सके, धन जीवन का लक्ष्य (end) है या केवल एक साधन (means), धन का संचय किन-किन बातों पर निर्भर रहता है आदि बातों का उसे उचित ज्ञान हो जाता है। वर्तमान आर्थिक प्रणाली किस प्रकार चलती है, इसके क्या-क्या गुण-दोष हैं, अन्य प्रणालियों से यह अच्छी है या बुरी, इसमें क्या-क्या परिवर्तन आवश्यक हैं आदि बातों के बारे में व्यक्तियों का ज्ञान स्पष्ट हो जाता है। सूक्ष्म में अर्थशास्त्र की विभिन्न समस्यायें, जो आजकल के युग में अत्यन्त महत्त्व की हैं, स्पष्ट हो जाती हैं और उनका हल भी समझ में आ जाता है।

(ब) अर्थशास्त्र के अध्ययन से मनुष्य की तर्क करने की शक्ति बढ़ जाती है। अर्थशास्त्र के अनेक नियम निगमन प्रणाली के आधार पर बने हैं। इस प्रणाली के अनुसार कुछ स्वयंसिद्ध तथा आधारभूत तथ्यों के आधार पर कोरे

* "Economics is light-bearing as well as fruit-bearing."

तर्क द्वारा नियम प्रतिपादित किये जाते हैं। इस कारण मनुष्य की तार्किक शक्ति (Reasoning power) बढ़ जाती है।

(स) इस शास्त्र के अध्ययन से मनुष्य की अवलोकन शक्ति (power of observation) बढ़ जाती है। अर्थशास्त्र में मनुष्यों के आचरणों का अध्ययन करना पड़ता है। मनुष्य का अध्ययन प्रयोगशाला में तो हो नहीं सकता। इस कारण समाज में रहते हुए और कार्य करते हुए मनुष्यों को देख-देख कर और उनका अध्ययन कर उनके आचरण (Behaviour) के संबंध में आँकड़े इकट्ठे किये जाते हैं। इस प्रकार मानवीय आचरणों का अध्ययन करने तथा उससे संबंधित आँकड़ों को इकट्ठा करने से मनुष्य की अवलोकन शक्ति काफी तीक्ष्ण हो जाती है।

(द) अर्थशास्त्र के अध्ययन से मनुष्य की मानसिक शक्ति इतनी विलक्षण हो जाती है कि वह अच्छी तथा उपयुक्त बातों को फौरन ग्रहण कर लेता है और बेकार की बातों को त्याग देता है। आगमन प्रणाली में सामान्य मानवीय आचरणों के आधार पर नियम बनाये जाते हैं। अतएव अर्थशास्त्री को यह जानना पड़ता है कि कौनसा आचरण सामान्य है और कौनसा नहीं। अर्थात् कौनसा ऐसा कार्य है जो अधिकांश मनुष्य अधिकांशतः करते हैं और कौनसा कार्य ऐसा नहीं है। इस प्रकार से अध्ययन करते-करते उसका मानसिक विकास इतना अधिक हो जाता है कि आचरण देखते ही वह यह समझ जाता है कि इनमें कौनसा उपयुक्त है और कौनसा अनुपयुक्त। इस प्रकार विभिन्न वस्तुओं के तुलनात्मक अध्ययन की उसे आदत पड़ जाती है और उनका वास्तविक महत्व समझने में उसे कठिनाई नहीं होती।

२. अर्थशास्त्र से व्यावहारिक लाभ
(Practical Advantages)

अर्थशास्त्र से केवल सैद्धान्तिक लाभ ही नहीं होते, वरन् अनेक व्यावहारिक लाभ भी होते हैं। आचार्य मार्शल ने ठीक ही कहा है कि "अर्थशास्त्र का प्रथम उद्देश्य ज्ञान के लिये ज्ञान प्राप्त करना, और दूसरा व्यावहारिक प्रश्नों पर प्रकाश डालना है"।* वास्तव में अर्थशास्त्र का भारी व्यावहारिक महत्व है और गृहस्थ, व्यापारी, मजदूर, राजनीतिज्ञ, समाज सुधारक आदि सभी इससे भारी लाभ उठाते हैं।

गृहस्थों को लाभ

इस शास्त्र का अध्ययन गृहस्थों को बड़े लाभ का है। अर्थशास्त्र का अध्ययन कर उन्हें सम-सीमान्त-उपयोगिता नियम का पता चल जाता है जिस पर चलकर वह अपने व्यय से अधिकतम लाभ उठा सकते हैं। साथ ही यह शास्त्र

* देखिए, *Principls of Economics*, p. 39.

गृहस्थों को पारिवारिक बजट रखना भी सिखाता है जिससे वह व्यय के विभिन्न मदों पर समझदारी से धन व्यय कर सकें। बहुत से मनुष्य अपने व्यय का कोई हिसाब नहीं रखते। फलतः उन्हें पता ही नहीं चलता कि उन्होंने किस मद पर कितना धन व्यय किया है। परिणाम यह होता है कि वह प्रायः अनावश्यक बातों पर काफी धन व्यय कर देते हैं और उन्हें व्यय से जितनी उपयोगिता मिलनी चाहिये वह नहीं मिल पाती। उदाहरण के लिये कभी-कभी सिनेमा, पान, सिगरेट, चाय, शराब आदि पर व्यक्ति आवश्यकता से अधिक धन व्यय कर देते हैं और घर के व्यक्तियों की आवश्यक आवश्यकताएँ अधूरी रह जाती हैं। इसका परिणाम स्वास्थ्य पर बहुत बुरा पड़ता है। अर्थशास्त्र का अध्ययन कर इस प्रकार का अनुचित व्यय रुक जाता है।

अर्थशास्त्र का अध्ययन कर गृहस्थ यह भी समझ जाते हैं कि उन्हें किस बाजार में वस्तुएँ सबसे सस्ती और अच्छी मिलेंगीं। वह यह भी जान जाते हैं कि उन्हें किस वस्तु को किस समय खरीदना चाहिये जिससे सस्ते से सस्ते मूल्य पर वह मिल सकें। उदाहरण के लिये अनाज यदि फसल कटने के समय खरीदे जायँ तो वह अवश्य ही सस्ते मिलेंगे; परन्तु यदि बुवाई के समय वह खरीदे गये तो उनके मूल्य अवश्य बढ़े हुए होंगे।

इस शास्त्र का अध्ययन कर गृहस्थ यह भी समझ जाते हैं कि उन्हें अपनी बचत कहाँ पर लगानी चाहिये, कौनसा विनियोग (Investment) अच्छा और अधिक लाभप्रद है और कौनसा हानिकारक। इस प्रकार वह अपना भला तो करते ही हैं, समाज का भला भी वह करने में सफल हो जाते हैं। समाज की दृष्टि से वही उद्योग तथा फर्में चालू रहनी चाहिये जो ठोस हों।

व्यापारियों तथा उद्योगपतियों को लाभ

व्यापारियों तथा उद्योगपतियों को इस शास्त्र का अध्ययन अत्यन्त महत्व का है। एक व्यापारी के लिये अर्थशास्त्र का ज्ञान उतना ही आवश्यक है जितना एक डाक्टर के लिये डाक्टरी का और एक वकील के लिये कानून का ज्ञान। इस शास्त्र का अध्ययन कर व्यापारी और उद्योगपति यह जान जाते हैं कि कौनसी वस्तु उन्हें किस स्थान पर सबसे सस्ती मिलेगी। आवश्यक सामान तथा कच्चा माल वह उसी स्थान से मँगाते हैं। इसके साथ ही वह यह भी जान जाते हैं कि उनका बना हुआ सामान किस स्थान पर मँहगा बिकेगा। उसी स्थान पर वह अपनी वस्तु बेचते हैं। इस प्रकार सस्ते स्थान से वस्तु मँगाकर मँहगे स्थान पर बेचने से उनको अधिक से अधिक लाभ मिलता ही है। साथ ही देश भर में वस्तुओं के एक से मूल्य होने में भी सहायता मिलती है क्योंकि मँहगे स्थान पर पूर्ति (Supply) बढ़ जाने से वहाँ कीमतें कम होने लगती हैं।

अर्थशास्त्र के अध्ययन से उद्योगपति यह भी जान जाते हैं कि उन्हें अपने उद्योग किस स्थान पर स्थापित करने चाहिये। स्थानीयकरण के सिद्धान्तों का ज्ञान उन्हें इस कार्य में सहायता करता है। स्थानीयकरण के सिद्धान्त के अनुसार उचित स्थान पर उद्योग स्थापित करने से देश में आर्थिक विकास उचित रूप से होता है।

अर्थशास्त्र के विभिन्न सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त कर उद्योगपति यह जान जाते हैं कि उत्पत्ति के विभिन्न साधनों को किस हिसाब से प्रतिफल देना चाहिये। प्रतिफल निर्धारित करने की क्या-क्या रीतियाँ हैं, इनमें से कौनसी रीति सबसे उचित है और क्यों और प्रतिफल किस रीति से देना चाहिये। इतना सब कुछ ज्ञान होने से लाभ यह है कि उत्पत्ति के विभिन्न साधनों में आपस में कोई झगड़ा नहीं होने पाता और हड़तालें बहुत कम हो जाती हैं।

अर्थशास्त्र के अध्ययन से व्यापारियों को बाजार की मंदी तथा तेजी का ज्ञान हो जाता है। समाज के विभिन्न वर्गों की माँग तथा पूर्ति का अनुमान वह सरलता से लगा लेते हैं। प्रतिस्थापन्न नियम (Law of Substitution)—जो उत्पादन में बड़ा महत्व रखता है—के ज्ञान से उत्पादन कम से कम मूल्य पर करना उन्हें आ जाता है। व्यवसायिक संगठन, वैज्ञानिक प्रबंध, श्रम-विभाजन, बाजारी मूल्य आदि के बारे में उनका ज्ञान अच्छा हो जाने के कारण, सफल उद्योगपति बनने में उन्हें बड़ी सहायता मिलती है।

श्रमिकों को लाभ

अर्थशास्त्र का अध्ययन श्रमिकों के लिये भी बड़े लाभ का है। वह यह जान जाते हैं कि उन्हें किस स्थान पर जाकर काम करना चाहिये जिससे उन्हें अधिक से अधिक वेतन मिले। सभी स्थानों पर मज़दूरी एक न होने के कारण यह ज्ञान उनके बड़े लाभ का है। इससे श्रमिकों की गतिशीलता (Mobility) बढ़ती है और साथ ही उनको उचित मजदूरी भी मिल जाती है।

अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों का अध्ययन कर श्रमिक यह समझ जाते हैं कि उचित मजदूरी क्या है और उन्हें उचित मजदूरी मिल रही है या नहीं। यदि उन्हें उचित मजदूरी नहीं मिल रही है तो वह अपने संघों (Unions) द्वारा अपनी माँग रखते हैं और मजदूरी बढ़वाने का प्रयत्न करते हैं।

आजकल के औद्योगिक युग में सबसे विकट समस्या उद्योगपति तथा श्रमिकों के वैमनस्य की है। यदि उद्योगपति तथा श्रमिक दोनों ही अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों को अच्छी तरह जानें तो उनमें आपस में झगड़ा या वैमनस्य होने की कोई भी संभावना नहीं रहेगी।

राजनीतिज्ञों को लाभ

अर्थशास्त्र का ज्ञान राजनीतिज्ञों के लिये बड़े महत्व का है। आजकल राजनीतिक क्षेत्रों में आर्थिक मामलों का महत्त्व बढ़ता जा रहा है। यदि यह कहा जाय कि अधिकांश राजनीतिक झगड़ों का आधार आर्थिक होता है तो अतिशयोक्ति न होगी। अतएव एक राजनीतिज्ञ के लिये आर्थिक समस्याओं का उचित ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

अर्थशास्त्र में सरकारी राजस्व (Public Finance) एक ऐसा विभाग है जिसका अध्ययन राजनीति तथा अर्थशास्त्र दोनों में किया जाता है। इस विभाग के द्वारा राजनीतिज्ञों को यह ज्ञान हो जाता है कि उनको जनता से कितना रुपया किस रूप में लेना चाहिये और किस रूप में उसे व्यय करना चाहिये। कर (Tax) लगाने का जनता पर क्या प्रभाव पड़ता है और उसके क्या-क्या विभिन्न पहलू हैं इसका ज्ञान राजनीतिज्ञ अर्थशास्त्र के अध्ययन से ही कर सकते हैं।

एक राजनीतिज्ञ को विदेशों से अनेक आर्थिक संधियाँ करनी पड़ती हैं। इन आर्थिक संधियों का क्या परिणाम होगा, आर्थिक संधियों में क्या-क्या शर्तें होनी चाहिये, देश की भलाई किस कदम उठाने में है, कौनसी वस्तुओं का आयात देश की भलाई के लिये है आदि बातों का ज्ञान इस शास्त्र को पढ़कर सुगमता से हो सकता है।

एक राजनीतिज्ञ को समय-समय पर अनेक कानून बनाने पड़ते हैं। मजदूरों से कितने घंटे प्रति सप्ताह काम लिया जाय, उसको कितनी छुट्टी दी जाय, उनको हड़ताल करने की आज्ञा दी जाय या नहीं, मज़दूर तथा श्रमिकों के झगड़े किस प्रकार दूर किये जायँ, विदेशी पूँजी को देश में आने दिया जाय या नहीं, मुद्राप्रसार रोकने के लिये क्या कानून बनाया जाय, देश में मूल्य किस प्रकार कम किये जायँ, देश की औद्योगिक उन्नति के लिये क्या किया जाय, बेकारी रोकने के लिये क्या-क्या कदम उठाये जायँ आदि बातों का ज्ञान अर्थशास्त्र का अध्ययन कर ही हो सकता है।

समाज सुधारकों को लाभ

समाज-सुधारकों का काम देश के रहने वालों की आर्थिक दशा सुधारना है। अर्थशास्त्र का अध्ययन उन्हें इस काम में बड़ी सहायता पहुँचाता है। उदाहरण के लिये मजदूरों की दशा सुधारने के लिये उन्हें यह जानना आवश्यक है कि मजदूरों को कितनी मजदूरी मिलनी चाहिये और कितनी उन्हें मिल रही है, तथा उन्हें जो मजदूरी मिल रही है उसे वह किस प्रकार व्यय कर रहे हैं। अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों का अध्ययन कर वह पहली बात जान सकते हैं और मजदूरों के पारिवारिक बजटों का अध्ययन कर दूसरी बात। इतना सब कुछ जान लेने के पश्चात् ही वह मजदूरों की समस्या हल करने में सफल हो सकते हैं।

इसी प्रकार जनसंख्या संबंधी बातों का अध्ययन कर वह यह समझ सकते हैं कि हमारे देश में स्त्री तथा बालकों की मृत्यु-दर अधिक क्यों है और उसे किस प्रकार कम किया जा सकता है, देश में जनसंख्या का आधिक्य है या नहीं और यदि है तो उसे किस प्रकार दूर किया जा सकता है आदि।

विभिन्न वर्गों के पारिवारिक बजटों का अध्ययन कर वह यह पता लगा सकते हैं कि व्यक्ति उचित रूप से व्यय कर रहे हैं या नहीं, उनके व्यय में क्या-क्या परिवर्तन आवश्यक हैं और विभिन्न वर्गों की आर्थिक दशाओं में तुलनात्मक क्या-क्या परिवर्तन हो रहे हैं 'इतना समझ लेने के पश्चात् वह व्यक्तियों की आर्थिक दशा सुधारने में सहायता दे सकते हैं।

ग्राम-सुधार, खादी का प्रयोग तथा प्रसार, घरेलू उद्योग-धन्धों की प्रगति, खेतों की चकबन्दी, जानवरों की नस्ल सुधारना, सड़कों आदि का बनवाना, सामुदायिक विकास योजनाएँ, भू दान, आदि ऐसी अनेक समस्यायें हैं जिनकी प्रगति के लिये समाज-सुधारकों का सहयोग बड़ा आवश्यक है और जिनमें उचित सहयोग वह तभी दे सकते हैं जब अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों का अध्ययन कर वह इन समस्याओं से संबंधित विभिन्न पहलुओं को समझ गये हों।

३. भारतवासियों के लिये अर्थशास्त्र के अध्ययन का महत्त्व

(Advantages of The Study of Economics in India)

ऊपर आपको अर्थशास्त्र से मिलने वाले लाभों को बताया जा चुका है। विभिन्न काम करने वाले इस शास्त्र से विभिन्न प्रकार से लाभ उठा सकते हैं। व्यापारी, उद्योगपति, अर्थशास्त्री, श्रमिक, गृहस्थ, राजनीतिज्ञ तथा समाज सुधारक आदि सभी इस शास्त्र के अध्ययन से व्यावहारिक जीवन में लाभ उठा सकते हैं। यह व्यक्ति चाहे भारत के रहने वाले हों या किसी अन्य देश के, सभी को वही लाभ प्राप्त होंगे। कहने का अर्थ यह है कि इस शास्त्र के अध्ययन से भारत के व्यापारी को भी वही लाभ हों जो इंगलैंड या अमरीका के व्यापारी को। अतएव, भारतवासियों को इस शास्त्र के अध्ययन से होने वाले लाभ बताते समय ऊपर बताये गये (१) सैद्धान्तिक तथा (२) व्यावहारिक लाभ बताने होंगे।

इतना तो है, परन्तु भारत के लिये इस शास्त्र का अध्ययन भारी महत्त्व रखता है। इसका कारण यह है कि भारत की कुछ आधारभूत गंभीर आर्थिक समस्यायें हैं जिनका सुलझाना अत्यन्त आवश्यक है, परन्तु सुगम नहीं है। उन समस्याओं को सुलझाने के लिये इस शास्त्र का अध्ययन विशेष महत्त्व का है। उदाहरण के लिये भारत की गरीबी की समस्या ले लीजिये। यह समस्या इतनी विकट रूप में, सम्भव है, किसी अन्य देश में न हो। इस निर्धनता के

क्या-क्या कारण हैं, इसे किस प्रकार दूर किया जा सकता है, किस प्रकार काम करने से हमें सफलता मिलेगी आदि ऐसे गंभीर प्रश्न हैं जिनका हल सुगम नहीं है। इसी प्रकार भारतीय जनसंख्या की समस्या ले लीजिये। क्या भारत की जनसंख्या की वृद्धि की गति तीव्र है और यदि है तो उसे किस प्रकार रोका जाय, क्या भारत में जन-संख्या का आधिक्य है और यदि है तो इसे किस प्रकार दूर किया जाय आदि ऐसे प्रश्न हैं जिनका उत्तर अर्थशास्त्र के गंभीर अध्ययन के बाद ही समझ में आ सकता है।

इसी प्रकार की अन्य आधारभूत (Basic) समस्यायें भी हैं जैसे देश में उद्योग-धंधों की वृद्धि किस मात्रा में की जाय और कृषि की कितनी, देश में कौन-कौन से उद्योग बढ़ाये जायँ, क्या उद्योग बड़े पैमाने पर बढ़ाये जायँ या छोटे पैमाने पर, क्या खेतों में मशीनों का प्रयोग किया जाय या नहीं, क्या विदेशी पूँजी देश में मँगाना अच्छा है या नहीं आदि यह सब प्रश्न ऐसे हैं जिनका हल बिना अर्थशास्त्र का अध्ययन किये समझ में नहीं आ सकता। अतएव प्रत्येक भारतीय को इस शास्त्र के सिद्धान्तों का तथा भारतीय आर्थिक समस्याओं का उचित ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

परीक्षा प्रश्न

उत्तर प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—अर्थशास्त्र की परिभाषा दीजिये। अर्थशास्त्र के अध्ययन से मिलने वाले सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक लाभों का उल्लेख कीजिये। (१९५३, १९३९, १९३२)

२—अर्थशास्त्र क्या है? व्यावहारिक जीवन में अर्थशास्त्र के अध्ययन से क्या लाभ होते हैं? (१९४०)

उत्तर प्रदेश इन्टर कामर्स

३—अर्थशास्त्र की उपयोगिता (अ) व्यापारी (आ) राजनीतिज्ञ के लिये क्या क्या है? (१९४८)

४—"अर्थशास्त्र का अध्ययन एक व्यापारिक जीवन के लिये लाभदायक तथा उपयुक्त है" समझाइये। (१९४५, १९३२)

५—एक व्यापारी के लिये अर्थशास्त्र के ज्ञान का महत्त्व बताइये। (१९४१)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

६—अर्थशास्त्र की विषय सामग्री का वर्णन कीजिये और अर्थशास्त्र के अध्ययन के महत्त्व पर भारतीय परिस्थितियों को ध्यान में रखकर एक नोट लिखिये। (१९५२, १९४३)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर कामर्स

७—अर्थशास्त्र के अध्ययन के व्यावहारिक लाभ संक्षेप में बताइये। यह ग्रामीण जीवन को सुधारने में कहाँ तक सहायक होता है? (१९५०)

पटना इन्टर आर्ट्स

८—अर्थशास्त्र के अध्ययन की महत्ता तथा उसके क्षेत्र को बताइये। (१६५२)

सागर इन्टर आर्ट्स

६—अर्थशास्त्र क्या है? व्यावहारिक समस्याओं में अर्थशास्त्र से क्या लाभ हैं। (१६५०)

मध्यभारत इन्टर आर्ट्स

१०—अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री बताइये और भारतीय दशाओं के संदर्भ में अर्थशास्त्र के अध्ययन के महत्त्व पर सूक्ष्म टिप्पणी लिखिये। (१६५२)

आठवाँ अध्याय

अर्थशास्त्र के विभाग और उनका पारस्परिक सम्बन्ध

(Division of Economics and Their Inter-relation)

१. अर्थशास्त्र के विभाग

(Divisions of Economics)

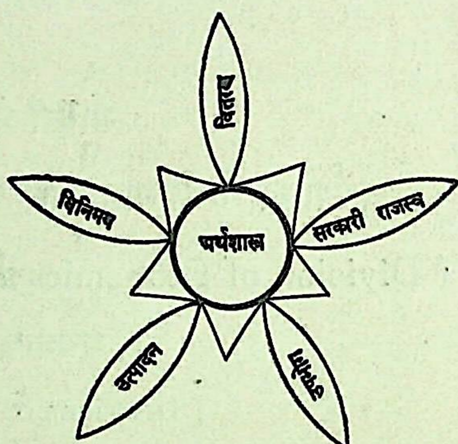
आपको बताया जा चुका है कि अध्ययन की सुगमता के कारण अर्थशास्त्र के विषय को पाँच विभागों में बाँट दिया गया है। मनुष्य की अनेक आवश्यकतायें होती हैं और वस्तुओं के उपभोग के पश्चात् ही वह आवश्यकतायें संतुष्ट होती हैं। अतएव 'उपभोग' अर्थशास्त्र का एक विभाग है। आवश्यकतायें संतुष्ट करने के लिये मनुष्य को प्रयास करना पड़ता है। मेहनत कर वह उपयोगिता का सृजन करता है। इसी को 'उत्पादन' कहते हैं जो अर्थशास्त्र का दूसरा विभाग है। आजकल उत्पादन में इतनी विशिष्टता आ गई है कि प्रत्येक व्यक्ति एक ही वस्तु का उत्पादन करता है और अन्य वस्तुओं को विनिमय द्वारा प्राप्त करता है। अतएव विनिमय अर्थशास्त्र का तीसरा विभाग है। आजकल उत्पादन सामूहिक रूप से होता है और प्रत्येक व्यक्ति की आय वितरण द्वारा निर्धारित होता है। अतएव 'वितरण' भी अर्थशास्त्र का एक विभाग है। वर्तमान समय में सरकार कर (Tax) लगाकर जनता से कुछ द्रव्य ले लेती है और फिर जनता की भलाई पर व्यय कर देश के निवासियों की आर्थिक उन्नति करती है। इस कारण 'सरकारी राजस्व' भी अर्थशास्त्र का एक विभाग है।

ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र के निम्न पाँच विभाग हैं :—

(१) उपभोग
(२) उत्पादन
(३) विनिमय
(४) वितरण
(५) सरकारी राजस्व



चित्र ३—अर्थशास्त्र के विभाग



चित्र ४—अर्थशास्त्र के पाँच विभाग

(१) उपभोग (Consumption)

अर्थशास्त्र का प्रथम विभाग उपभोग है। इसमें हम आवश्यकताओं के लक्षण, आवश्यकताओं का वर्गीकरण, उपभोग के नियम जैसे सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम तथा सम-सीमान्त उपयोगिता नियम, उपभोक्ता का अतिरेक, बचत, पारिवारिक बजट, रहन-सहन का स्तर आदि का अध्ययन करते हैं। मनुष्य कार्य इसी कारण करता है क्योंकि उसे कुछ आवश्यकतायें संतुष्ट करनी होती हैं और उपभोग करने के पश्चात् उसकी आवश्यकता की तृप्ति हो जाती है। इस प्रकार उपभोग अर्थशास्त्र का आरम्भ तथा अंत है।

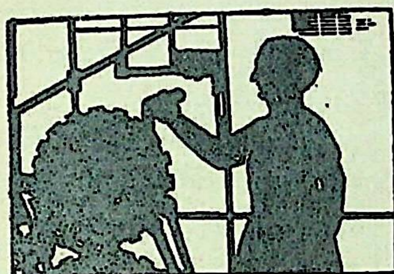


चित्र ५—उपभोग

(२) उत्पादन (Production)

मनुष्य अपनी आवश्यकताओं को तभी संतुष्ट कर सकता है जब वह मेहनत कर उत्पादन करे। 'उपयोगिताओं के सृजन' करने को ही उत्पादन कहते हैं। इस विभाग में यह अध्ययन किया जाता है कि उत्पादन के साधन कितने हैं, उनके क्या-क्या काम हैं और क्या-क्या लक्षण हैं, उत्पत्ति के नियम जैसे क्रमागति उत्पत्ति वृद्धि

नियम, क्रमागति उत्पत्ति ह्रास नियम तथा क्रमागति सम-उत्पत्ति नियम, क्या हैं, श्रम-विभाजन से क्या क्या लाभ हैं, बड़े पैमाने पर उत्पादन करना उचित है या नहीं, औद्योगिक संगठन किस प्रकार हो सकता है, आदि।



चित्र ६—उत्पादन



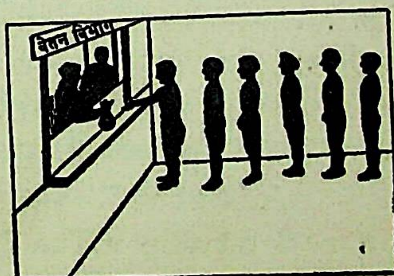
चित्र ७—विनिमय

(३) विनिमय (Exchange)

आर्थिक विकास के प्रारम्भिक दिनों में मनुष्य पूर्णरूप से स्वावलम्बी था। जिन वस्तुओं का वह उत्पादन करता था उन्हीं का वह उपभोग भी करता था। उस समय विनिमय नहीं था। परन्तु जैसे-जैसे आर्थिक प्रणाली विषम होती गई, विनिमय अत्यन्त आवश्यक हो गया और आजकल तो स्थित यह है कि बिना विनिमय के वर्तमान आर्थिक प्रणाली चल ही नहीं सकती। इस विभाग में हम यह अध्ययन करते हैं कि क्रय-विक्रय किस प्रकार होता है, बाजार क्या है, मूल्य किस प्रकार निर्धारित होते हैं, द्रव्य तथा द्रव्य-प्रणाली के क्या-क्या रूप होते हैं, बैंक के क्या-क्या काम हैं, आदि।

(४) वितरण (Distribution)

उत्पादन जब संयुक्त रूप से होने लगा, तब वितरण का प्रश्न भी उठा। जो धन उत्पन्न हुआ है उसमें किन-किन लोगों का हिस्सा है और प्रत्येक हिस्सेदार का भाग कितना है यह प्रश्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थे और इनका सही-सही उत्तर भी अत्यन्त आवश्यक था। इन तथा इनसे सम्बन्धित अन्य प्रश्नों का उत्तर हमें 'वितरण' के विभाग में मिलता है। इस विभाग में यह बताया जाता है कि उत्पादित धन में उन सभी उत्पत्ति के साधनों का हिस्सा है जिन्होंने उत्पादन क्रिया में भाग लिया है और प्रत्येक साधन का भाग माँग तथा पूर्ति के सिद्धान्त के अनुसार निश्चित किया जाता है। इस विभाग में भूमपति का लगान,

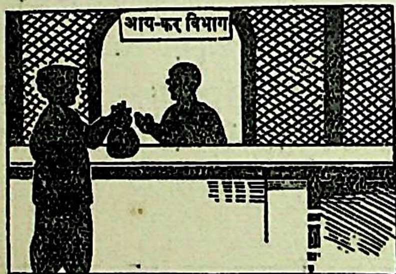


चित्र ८—वितरण

श्रमिक की मजदूरी, पूँजीपति का ब्याज, प्रबन्धक का वेतन और साहसी का लाभ निश्चित करने के सिद्धान्त विस्तार से बताये जाते हैं।

वर्तमान समय में वितरण की समस्या अत्यन्त पेचीदा है। इसका कारण यह है कि इस समय विभिन्न देशों में वितरण संबंधी विभिन्न मत प्रचलित है। इंगलैंड तथा अमरीका में जहाँ पूँजीवाद (Capitalism) का बोल-बाला है, वितरण के सिद्धान्त रूस (U. S. S. R.) जैसे समष्टिवादी (Communistic) देश में प्रचलित सिद्धान्त से भिन्न हैं। अतः, विद्वानों में यह वाद-विवाद चलता रहता है कि पूँजीवाद, समाजवाद तथा समष्टिवाद आदि सिद्धान्तों द्वारा प्रतिपादित वितरण की विभिन्न प्रणालियों में से कौन सी प्रणाली सबसे अच्छी है और क्यों ? क्योंकि प्रत्येक मत के अनुयायी अपने मत के पक्ष की अच्छाइयाँ और दूसरे पक्ष की बुराइयाँ बताते हैं, इस कारण इस वाद-विवाद ने काफी तूल पकड़ लिया है। इन्हीं कारणों से वितरण की समस्या काफी जटिल है।

(५) सरकारी राजस्व (Public Finance)—वर्तमान समय में हमारे आर्थिक जीवन में सरकारी हस्तक्षेप बढ़ता जा रहा है। देश की कोई भी आर्थिक समस्या हो, उसके सुलझाने की जिम्मेदारी सरकार की मानी जाती है। देश में यदि बेकारी है या उद्योगों की कमी है, या मजदूरी कम है या कोई अन्य आर्थिक समस्या है तो उसके सुलझाने का उत्तर-दायित्व सरकार का है। अपनी जिम्मे-दारी को ठीक ढंग से पूरा करने के लिये सरकार जनता पर कर (Tax) लगाती है और इस प्रकार उसे जो आमदनी होती है उसे जनता की भलाई के कार्यों पर व्यय करती है। सरकार को कौन-कौन से कर लगाने चाहिये और कौन से नहीं, कौनसा कर अच्छा है और कौनसा बुरा, कर लगाने का क्या सिद्धान्त है, व्यय-नीति क्या होनी चाहिये और व्यय का क्या सिद्धान्त है, आदि प्रश्नों का अध्ययन इस विभाग में किया जाता है।



चित्र ६—सरकारी राजस्व

२. अर्थशास्त्र के विभागों का पारस्परिक सम्बन्ध
(Inter-relationship of The Various Divisions of Economics)

आपको बताया जा चुका है कि अर्थशास्त्र के पाँच विभाग हैं। परन्तु यह विभाग असंबन्धित नहीं हैं। वास्तव में अर्थशास्त्र का विषय एक ही है और अध्ययन की दृष्टि से ही उसे पाँच विभागों में बाँटा गया है। अतएव प्रत्येक विभाग का एक-दूसरे से गहरा संबन्ध है। यह नीचे के अध्ययन से स्पष्ट हो जायगा।

१· उपभोग तथा उत्पादन

उपभोग तथा उत्पादन में गहरा संबन्ध है। उपभोग के ऊपर उत्पादन की किस्म तथा मात्रा निर्भर है और उत्पादन पर उपभोग निर्भर है। अतएव दोनों एक-दूसरे पर निर्भर हैं।

उपभोग पर उत्पादन की निर्भरता—उपभोग के कारण ही वस्तु की माँग होती है और जब माँग होती है तभी वस्तु का उत्पादन होता है। यदि किसी वस्तु की माँग न हो तो उसका उत्पादन भी नहीं होगा। उदाहरण के लिए पहले भारत में टोपी पहिनने का रिवाज था। उस समय टोपियाँ बहुत बनती थीं। परन्तु अब व्यक्ति नंगे सिर रहने लगे हैं। फलतः टोपियों का उत्पादन भी बहुत कम हो गया है। आजकल पतलून पहिनने का रिवाज बढ़ गया है। इस कारण पतलून का कपड़ा अधिक बनने लगा है।

उत्पादन प्रारंभ करने के पहले उत्पादक यह देखते हैं कि बाजार में वस्तु की माँग कितनी होगी। जितनी माँग का वह अनुमान करते हैं उतनी ही मात्रा में वह वस्तु तैयार करते हैं। इस कारण उत्पादन की मात्रा तथा किस्म उपभोग पर निर्भर है।

उत्पादन पर उपभोग की निर्भरता—केवल उत्पादन ही उपभोग पर निर्भर नहीं है, वरन् उपभोग भी उत्पादन पर निर्भर है। आप किसी वस्तु का उपभोग तभी कर सकते हैं जब वह वस्तु बाजार में उपलब्ध हो। जब तक कोई वस्तु पैदा नहीं होती, कोई भी व्यक्ति उसका उपभोग नहीं कर सकता। उदाहरण के लिये हमारे देश के कई भागों में मद्य-निषेध के कारण शराब आदि का उत्पादन बंद है। अतएव वहाँ कोई शराब नहीं पी सकता। इसी प्रकार मान लीजिये आप एक ऐसा कलम चाहते हैं जिसमें यदि एक बार स्याही भर दी जाय तो वह कभी भी खाली न हो। परन्तु आप ऐसे कलम का उपभोग तभी कर सकते हैं जब ऐसे कलम का कोई उत्पादन करे। स्पष्ट है कि उत्पादन पर भी उपभोग निर्भर है।

२· उपभोग और विनिमय

विनिमय पर उपभोग निर्भर है—आर्थिक प्रगति के आरंभ के दिनों में प्रत्येक मनुष्य अपनी आवश्यकता की हर वस्तु का उत्पादन स्वयं कर उसका उपभोग कर लेता था। इस कारण उस समय विनिमय की आवश्यकता न थी। परन्तु जैसे जैसे मनुष्य की आवश्यकताओं की मात्रा बढ़ती गई, विनिमय आवश्यक हो गया। मनुष्य ने देखा कि प्रयत्न करने पर भी वह आवश्यकता की कुछ ही वस्तुएँ उत्पन्न कर सकता है। अतएव शेष के लिए वह दूसरों पर निर्भर रहने लगा। इस प्रकार विनिमय के कारण ही मनुष्य अपनी विभिन्न आवश्यकताओं को सन्तुष्ट कर

सका है। यदि विनिमय न होता तो मनुष्य अपनी विभिन्न आवश्यकताओं को संतुष्ट न कर पाता।

उपभोग पर विनिमय निर्भर है—परन्तु विनिमय का अस्तित्व उपभोग के कारण ही है। विनिमय इसीलिये होता है क्योंकि मनुष्य की आवश्यकताएँ असीमित हैं। यदि मनुष्य की आवश्यकताएँ सीमित हो जायँ तो उसे विनिमय की आवश्यकता ही न रहे। जिस प्रकार आर्थिक प्रगति के प्रारंभिक दिनों में मनुष्य बिना विनिमय के अपनी आवश्यकताओं को सन्तुष्ट कर लेता था, उसी प्रकार वह विनिमय के बिना अपना काम चला लेता था।

दूसरे, विनिमय उन्हीं वस्तुओं का होता है जिनकी माँग है। यदि कोई वस्तु उपयोगी नहीं है तो उसके बदले में कोई भी व्यक्ति कुछ भी देने को तैयार नहीं होगा।

३. उपभोग और वितरण

वितरण का उपभोग पर प्रभाव—यह तो सभी जानते हैं कि मनुष्य के सभी आर्थिक प्रयत्नों का कारण उसकी आवश्यकताएँ हैं। यदि मनुष्य को आवश्यकताएँ प्रतीत न हों तो वह कोई भी प्रयत्न या मेहनत न करे। वर्तमान समय में प्रयत्न व्यक्तिगत न होकर सामूहिक रूप से होते हैं। अर्थात् आजकल किसी भी काम को करने के लिए सैकड़ों व्यक्ति मिलकर संयुक्त रूप से काम करते हैं। इस प्रकार जो आमदनी होती है उसमें सभी काम करने वालों का हिस्सा होता है और वितरण द्वारा प्रत्येक का हिस्सा निर्धारित होता है। वितरण हो जाने के पश्चात् ही उत्पत्ति के विभिन्न साधन अपनी आवश्यकताएँ पूरी कर पाते हैं। जब तक वितरण नहीं होता, तब तक उपभोग संभव ही नहीं होता। इस प्रकार वितरण पर उपभोग निर्भर रहता है।

वितरण द्वारा यह निश्चित होता है कि राष्ट्रीय आय का कितना भाग किस व्यक्ति को मिलेगा। यदि वितरण इस ढंग से होता है कि सभी व्यक्तियों की आय बराबर हो और देश में न कोई अमीर हो और न गरीब, तो आवश्यक आवश्यकता की वस्तुओं की माँग अधिक होगी और विलासिता की वस्तुओं की माँग कम हो जायगी। परन्तु यदि वितरण इस ढंग से नहीं होता और कुछ व्यक्तियों की आय बहुत अधिक होती है और कुछ की बहुत कम, तो अमीर विलासिता की वस्तुओं का अधिक मात्रा में उपभोग करेंगे। इस प्रकार वितरण से उपभोग की किस्म भी प्रभावित होती है।

उपभोग का वितरण पर प्रभाव—वितरण पर भी उपभोग का बड़ा प्रभाव पड़ता है। वास्तव में उपभोग के कारण ही वितरण की समस्या उत्पन्न होती है।

यदि मनुष्य को कोई आवश्यकता प्रतीत न हो तो वह कोई प्रयत्न ही न करे और फिर सामूहिक उत्पादन तथा वितरण का प्रश्न ही न उठे। अतएव वितरण का जन्म उपभोग के कारण ही होता है।

४ उपभोग तथा सरकारी राजस्व

उपभोग पर राजस्व का प्रभाव—सरकारी राजस्व का उपभोग पर गहरा प्रभाव पड़ता है। उपभोग की ऐसी अनेक वस्तुएँ हैं जिन्हें सरकार हानिकारक समझती है। उदाहरण के लिये मादक वस्तुओं (शराब, भांग, चरस, गाँजा) को ले लीजिये। सरकार इन वस्तुओं का उपभोग बंद कर देती है। भारत के अनेक राज्यों में इन वस्तुओं के उपभोग पर बंधन है। इस प्रकार के सरकारी नियंत्रण का परिणाम यह होता है कि इन वस्तुओं का उपभोग कम हो जाता है। यह सरकारी हस्तक्षेप का उपभोग पर पड़ने वाले प्रभाव का एक उदाहरण है।

सरकार कर लगाकर भी उपभोग पर प्रभाव डाल सकती है। वस्तुओं के उत्पादन तथा उनकी बिक्री के समय सरकार अनेक वस्तुओं पर कर (Tax) लगाती है। उदाहरण के लिये कपड़े के उत्पादन के समय हमारे देश में उस पर उत्पादन-कर लगता है। जब कपड़ा ग्राहकों को बेचा जाता है उस समय उस पर बिक्री-कर लगता है। इन करों का प्रभाव यह होता है कि बाजार में कपड़े का मूल्य बढ़ जाता है। इन करों की दरें बढ़ाकर या इसी प्रकार के अन्य कर लगाकर सरकार कपड़े के उपभोग की मात्रा को प्रभावित कर सकती है। कपड़ा ही क्या, कोई भी वस्तु क्यों न हो, करों के घटाने से उसका उपभोग बढ़ जायगा और कर की मात्रा बढ़ाने से उसका उपभोग बढ़ जायगा।

सरकारी राजस्व पर उपभोग का प्रभाव—उपभोग का भी राजस्व पर गहरा प्रभाव पड़ता है। सरकार की आमदनी वस्तुओं पर कर लगाकर भी होती है। जिन वस्तुओं पर सरकार ने कर लगाया है यदि उनका उपभोग बढ़ जाय तो सरकार की आमदनी बढ़ जायगी और यदि उनका उपभोग घट जाय तो सरकार की आय घट जायगी। अतएव कर लगाते समय सरकार को यह देखना पड़ता है कि इस कर के कारण वस्तु का उपभोग कितना कम होगा और उसकी आय पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

५. उत्पादन और विनियम

उत्पादन विनिमय पर निर्भर है—आजकल व्यक्ति वस्तु का उत्पादन बड़ी मात्रा में करते हैं क्योंकि उनका उद्देश्य वस्तु को बाजार में बेचना होता है। उत्पादित वस्तु को बाजार में बेचकर (अर्थात् उसका विनिमय कर) वह आवश्यकता की अन्य वस्तुएँ क्रय करते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि विनिमय के उद्देश्य से

ही व्यक्ति वस्तु का उत्पादन करते हैं। अतः, आजकल केवल उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन होता है जो विनिमयसाध्य हों।

उत्पादन कार्य उसी समय पूरा समझा जाता है जब उत्पादित वस्तु उपभोक्ताओं के पास तक पहुँच जाय। यह विनिमय द्वारा ही संभव होता है। इस प्रकार विनिमय द्वारा ही उत्पादन की क्रिया पूर्ण होती है।

वर्तमान उत्पादन प्रणाली—श्रम-विभाजन, विशिष्टीकरण (Specialisation) तथा बड़ी मात्रा में उत्पादन आदि जिसके प्रधान अंग हैं—विनिमय के कारण ही संभव हो सकी है। यदि विनिमय की प्रथा आज हट जाय तो उत्पादन का वर्तमान रूप भी बदल जाय।

विनिमय भी उत्पादन पर निर्भर है—यही नहीं, विनिमय भी उत्पादन पर निर्भर है। विनिमय की क्रिया उत्पादन के बाद ही आती है। अर्थात् उत्पादन हो जाने के बाद ही विनिमय होता है। यदि किसी भी वस्तु का उत्पादन न हो तो उसका विनिमय होगा ही नहीं। अतः, बिना उत्पादन के विनिमय संभव नहीं है।

६. उत्पादन तथा वितरण

उत्पादन का वितरण पर प्रभाव—देश की राष्ट्रीय आय (National Income) कितनी होगी यह उत्पादन पर निर्भर है। देश में उत्पादन जितना अधिक होगा, राष्ट्रीय आय भी उतनी ही अधिक होगी और वितरण भी उतना ही अधिक होगा। अतएव वितरण का आकार उत्पादन पर निभर है।

दूसरे, वितरण तभी होता है जब वस्तु का उत्पादन हो। यदि उत्पादन न हो तो वितरण का प्रश्न ही न उठे।

वितरण का उत्पादन पर प्रभाव—वितरण का भी उत्पादन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। वितरण द्वारा ही व्यक्तियों की आय निर्धारित होती है। यदि व्यक्तियों की आय अधिक होगी तो वह अधिक मात्रा में वस्तुओं का उपभोग करेंगे और फलतः उत्पादन भी अधिक मात्रा में होगा। इस प्रकार वितरण पर उत्पादन की मात्रा निर्भर रहती है।

यही नहीं, उत्पादन का प्रकार अर्थात् उत्पादन किन-किन वस्तुओं का हो यह भी वितरण पर निर्भर रहता है। यदि राष्ट्रीय आय का वितरण इस प्रकार है कि सभी वर्ग के लोगों की आय बराबर है, तो आवश्यक आवश्यकता की वस्तुओं का उत्पादन अधिक मात्रा में होगा। परन्तु यदि अमीर तथा धनिक वर्ग के लोगों की आय अधिक है तो विलासिता की वस्तुओं का उपभोग और इस कारण उत्पादन अधिक होगा।

पुनः, वितरण द्वारा उत्पत्ति के विभिन्न साधनों की आय निश्चित होती है। यदि वितरण उचित है तो उत्पत्ति के सभी साधनों में मेल रहेगा और वह प्रसन्नता से अधिक उत्पादन करेंगे। परन्तु यदि वितरण ठीक नहीं है, तो उनमें परस्पर बैर तथा घृणा होगी और फलतः उत्पादन भी अधिक न होगा। श्रमिक तथा मिल-मालिकों का झगड़ा वितरण की दोषपूर्ण प्रणाली के ही कारण होता है।

७. उत्पादन तथा सरकारी राजस्व

उत्पादन पर राजस्व का प्रभाव—सरकार की आय-व्यय नीति का उत्पादन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। सरकार प्रत्यक्ष कर अधिक लगाती है या परोक्ष, सरकार किन-किन वस्तुओं पर उत्पादन-कर लगाती है और किन-किन पर नहीं किन-किन वस्तुओं पर उत्पादन-कर की दर अधिक है और किन पर कम, सरकार किन-किन उद्योगों को संरक्षणता (Protection) प्रदान करती है और किनको नहीं, आदि बातों पर उद्योगों की प्रगति निर्भर रहती है। जिन उद्योगों को संरक्षणता प्रदान कर विदेशी प्रतिस्पर्धा से सरकार उनकी रक्षा करती है, उनकी प्रगति बड़ी तीव्र गति से होती है। भारत का चीनी उद्योग इसका ज्वलन्त उदाहरण है। इसी प्रकार जिन उद्योगों पर कर (Tax) कम है वह अधिक तेजी से बढ़ते हैं और जिन पर कर का भार अधिक होता है उनकी प्रगति धीमी होती है।

पुनः, उत्पादन के लिये देश में शान्ति तथा सुरक्षा की बड़ी आवश्यकता होती है। यदि देश में शान्ति नहीं है और उद्योगपतियों को यह आश्वासन नहीं है कि उनका धन सुरक्षित रहेगा, तो वह उत्पादन करेंगे ही नहीं। अतः सरकार की नीति पर उत्पादन की मात्रा निर्भर रहती है।

सरकार जनता से कर द्वारा जो रुपया वसूल करती है उसे पुनः व्यय कर देती है। सरकार यह रुपया किन-किन वस्तुओं को क्रय करने में व्यय करती है इस पर उद्योगों की प्रगति निर्भर रहती है। उदाहरण के लिये युद्ध के समय सरकार लाखों-करोड़ों रुपया गोला-बारूद आदि खरीदने में व्यय करती है। अतएव इन उद्योगों की, युद्ध के समय, भारी प्रगति होती है।

उत्पादन भी सरकारी राजस्व को प्रभावित करता है—सरकार की पर्याप्त आमदनी वस्तुओं की उत्पत्ति पर कर (Tax) लगाकर होती है। आय-कर भी वस्तुओं की उत्पत्ति पर निर्भर रहता है क्योंकि जब उत्पत्ति अधिक होगी तभी आमदनी भी अधिक होगी और आय भी अधिक होगी। यदि वस्तुओं का उत्पादन कम हो जाय, तो सरकार की आमदनी भी कम हो जायगी और फलतः उसके बहुत से प्रोग्राम पूरे नहीं हो पावेंगे। इसी प्रकार, यदि देश में उत्पादन बढ़ जाय तो सरकार की आमदनी भी बढ़ जायगी।

८· विनिमय और वितरण

विनिमय का वितरण पर प्रभाव—यह तो सभी जानते हैं कि आजकल अनेक व्यक्ति मिलकर उत्पादन करते हैं। इस प्रकार जो वस्तुएँ सामूहिक रूप से उत्पन्न की जाती है उनका विनिमय किया जाता है और विनिमय के पश्चात् जो आमदनी होती है वह सभी उत्पादन करने वालों में वितरित करदी जाती है। इस प्रकार वितरण के पहले विनिमय का होना आवश्यक है।

पुनः, व्यक्तियों को वितरण के द्वारा जो आमदनी होती है उसे वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति पर व्यय करते हैं। यह वह विनिमय द्वारा करते हैं। इस प्रकार वितरण के पहले विनिमय आता है और उसके बाद भी।

वितरण भी विनिमय से प्रभावित होता है—यदि वितरण की जाने वाली रकम की मात्रा अधिक है तो प्रत्येक व्यक्ति की आमदनी भी अधिक होगी। आमदनी अधिक होने पर वह अधिक वस्तुएँ खरीदेंगे जिसका परिणाम यह होगा कि विनिमय अधिक होगा। इस प्रकार वितरण की मात्रा पर विनिमय की मात्रा निर्भर है।

यदि गहराई से सोचा जाय तो यह कहना पड़ेगा कि विनिमय तथा वितरण में एक ही प्रकार की समस्या का अध्ययन किया जाता है। विनिमय में हम वस्तुओं के मूल्य निर्धारण की समस्या का अध्ययन करते हैं और वितरण में साधनों के मूल्य निर्धारण के प्रश्न का। दोनों समस्यायें मूलतः एक ही है। इसी से दोनों की घनिष्टता का अनुमान लगाया जा सकता है।

(९) विनिमय और सरकारी राजस्व

विनिमय पर राजस्व का प्रभाव—वर्तमान समय में विनिमय अर्थशास्त्र का अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग है। महत्वपूर्ण होने के साथ ही यह बड़ा जटिल भी है। इसके अन्तर्गत द्रव्य, मुद्रा, बैंक, द्रव्य-नीति, मुद्रा-प्रणाली आदि अनेक जटिल समस्याओं को सुलझाना पड़ता है। इन सब बातों में सरकारी नियंत्रण तथा हस्तक्षेप अत्यन्त आवश्यक समझा जाता है। इसका कारण यह है कि यह सब मामले देश के लिए बड़े महत्वपूर्ण हैं और उनके ऊपर देश का आर्थिक भविष्य बहुत अधिक मात्रा में निर्भर रहता है। इसी से विनिमय के ऊपर सरकारी राजस्व के प्रभाव का अनुमान लगाया जा सकता है।

राजस्व पर विनिमय का प्रभाव—सरकार विनिमय की अनेक क्रियाओं पर कर (Tax) लगाती है। उदाहरण के लिये बिक्री कर (Sales Tax), बाजार-कर (Market Tax) आदि से होने वाली आय विनिमय की क्रिया पर ही निर्भर है। यदि क्रय-विक्रय अधिक मात्रा में होता है तो सरकार की आमदनी अधिक होगी

विनिमय कम होने पर सरकारी आय घट जायगी। भारत में बिक्री कर अत्यन्त महत्वपूर्ण कर हो गया है और इससे राज्य की सरकारों को जो आय होती है उस पर अनेक सरकारी कार्य निर्भर रहते हैं।

(१०) वितरण तथा सरकारी राजस्व

वितरण पर राजस्व का प्रभाव—देश की वितरण प्रणाली सरकार की नीति पर निर्भर रहती है। सरकार पूँजीवादी है, समाजवादी या समष्टिवादी इस पर यह निर्भर रहता है कि गरीब श्रमिकों की आमदनी कितनी होगी। पूँजीवादी सरकार श्रमिकों की मजदूरी निश्चित नहीं करती और उद्योगपति उनका खुले रूप से शोषण करते हैं। परन्तु समाजवादी सरकार श्रमिकों की मजदूरी की न्यूनतम सीमा निश्चित कर देती है और उनको मजदूरी उनकी उत्पत्ति के अनुपात में मिलती है। समष्टिवादी सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक की आमदनी उसकी आवश्यकता के अनुसार होती है।* इस प्रकार सरकार किस मत को मानती है इस पर यह निर्भर रहता है कि वितरण किस प्रकार से होगा और प्रत्येक व्यक्ति की आमदनी कितनी होगी।

राजस्व पर वितरण का प्रभाव—वितरण द्वारा ही व्यक्तियों की आय निश्चित होती है और आय पर ही उपभोग तथा उत्पादन निर्भर हैं। यदि वितरण न्यायोचित है तो व्यक्तियों की आमदनी अधिक होगी और फलतः देश में उपभोग तथा उत्पादन भी अधिक मात्रा में होंगे। जब उपभोग तथा उत्पादन अधिक मात्रा में होंगे तो सरकार की आमदन, जो उपभोग तथा उत्पादन पर कर लगाकर होती है, भी अधिक होगी। इस प्रकार वितरण-नीति पर सरकारी आमदनी निर्भर है।

पुनः, यदि वितरण न्यायोचित है तो सभी वर्ग के लोग हिल-मिलकर और मित्रता के साथ रहेंगे। फलतः देश में ऊधम कम होगा और शान्ति रहेगी। ऐसा होने पर सरकार का शांति रखने का काम सुलभ हो जायगा और उसका सुरक्षा पर होने वाला व्यय भी कम हो जायगा।

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अर्थशास्त्र के विभिन्न भागों में गहरा संबंध है और उनका पारस्परिक संबंध बड़ा गहरा है।

परीक्षा प्रश्न

उत्तर प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—अर्थशास्त्र में "उपभोग" का अर्थ समझाइये। उपभोग और उत्पत्ति का सम्बन्ध भी बताइये। (१९५३, १९४१)

*Every one according to his need.

२—अर्थशास्त्र का विषय कौन-कौन से मुख्य विभागों में विभक्त है। उनके पारस्परिक सम्बन्ध को समझाइये। (१९५०, १९४७, १९३४, १९२९)

३—उपभोग और वितरण का पारस्परिक सम्बन्ध उदाहरण सहित समझाकर लिखिये। (१९४४)

४—अर्थशास्त्र किसे कहते हैं ? इनको कितने विभागों में बाँटा करते हैं ? विभिन्न विभागों के पारस्परिक सम्बन्ध को भी स्पष्ट कीजिये। (१९४०)

उत्तर प्रदेश इन्टर कामर्स

५—अर्थशास्त्र की क्या विषय सामग्री है ? इसका ज्ञान एक व्यापारी के लिये किस प्रकार उपयोगी है ? (१९४३)

६—अर्थशास्त्र की परिभाषा दीजिये और बतलाइये कि वितरण की समस्या हल करने में यह कैसे निष्फल रहा है ? (१९३२)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

७—अर्थशास्त्र की विषय सामग्री प्रायः किन किन विभागों में विभक्त की जाती है ? इनका पारस्परिक सबंध बताइये। (१९५३, १९५१)

८—अर्थशास्त्र के मुख्य विभागों की व्याख्या कीजिये।

(अ) उत्पत्ति और उपभोग (आ) विनिमय और वितरण का पारस्परिक सम्बन्ध समझाइये। (१९४९, १९४७)

९—अर्थशास्त्र की विषय सामग्री किन-किन मुख्य विभागों में विभक्त की जा सकती है ? (अ) उपभोग और उत्पत्ति (आ) उत्पत्ति और वितरण में सबंध समझाइये। (१९४५)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर कामर्स

१०—अर्थशास्त्र की परिभाषा दीजिये। यह किस प्रकार वितरण की समस्याओं को सुलझाने में असफल रहा है ? (१९५१)

सागर, इन्टर कामर्स

११—अर्थशास्त्र के कितने विभाग हैं ? हम लोग प्रत्येक विभाग के अन्दर मनुष्य की किन-किन क्रियाओं का अध्ययन करते हैं ? (१९५१)

नवाँ अध्याय

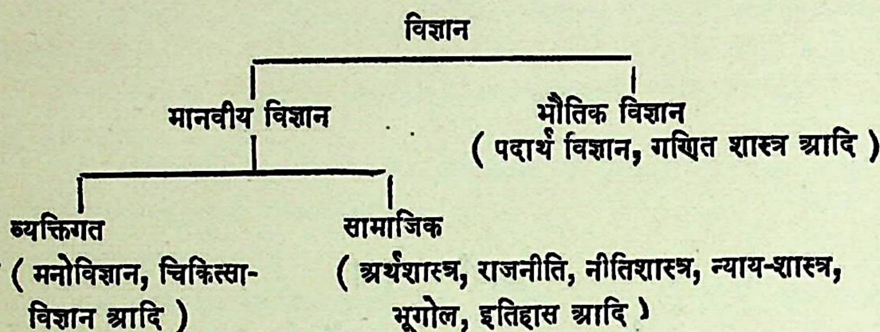
अर्थशास्त्र का अन्य शास्त्रों से सम्बन्ध

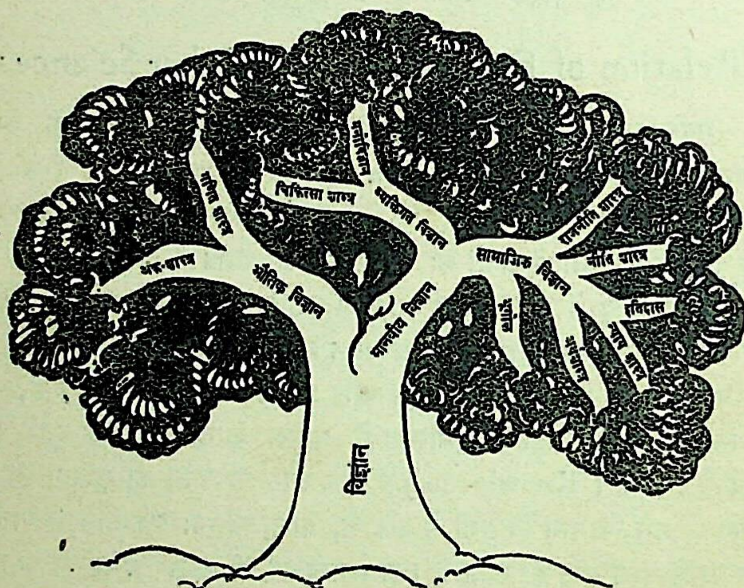
(Relation of Economics with Other Sciences)

मनुष्य कई प्रकार के कार्य करता है और उसके प्रत्येक प्रकार के कार्यों का अध्ययन एक भिन्न शास्त्र में किया जाता है। अन्य शब्दों में मनुष्य के विभिन्न प्रकार के कार्यों का अध्ययन करने के लिये भिन्न-भिन्न शास्त्र बना दिये गये हैं। मनुष्य की धन सम्बन्धी क्रियाओं का अध्ययन अर्थशास्त्र में किया जाता है, उसकी राष्ट्र सम्बन्धी क्रियाओं का अध्ययन राजनीति शास्त्र में किया जाता है और उसके आचार-विचार सम्बन्धी क्रियाओं का अध्ययन नीति-शास्त्र में किया जाता है, आदि। यद्यपि प्रत्येक शास्त्र एक स्वतंत्र शास्त्र है और प्रत्येक का क्षेत्र निश्चित है, फिर भी यह शास्त्र असम्बन्धित नहीं हैं। वास्तव में प्रत्येक शास्त्र का एक दूसरे से घनिष्ट सम्बन्ध है। विद्या (Knowledge) एक है और अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हम भले ही उसे विभिन्न विभागों में बाँट लें, परन्तु वस्तुतः एक होने के नाते उनका आपस का सम्बन्ध बना ही रहता है। अर्थशास्त्र का भी अन्य शास्त्रों से घना सम्बन्ध है और इस अध्याय में यही बताया जायगा।

विज्ञानों का भेद

विज्ञान को दो भागों में बाँटा जा सकता है—(१) मानवीय विज्ञान, तथा (२) भौतिक विज्ञान। मानवीय विज्ञान वह है जिनमें मनुष्यों की विभिन्न क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। इसके विपरीत भौतिक विज्ञानों (Physical Science) में भौतिक पदार्थों का अध्ययन किया जाता है। मानवीय विज्ञान को दो उप-विभागों में बाँटा जा सकता है—(१) सामाजिक विज्ञान, तथा (२) व्यक्तिगत विज्ञान। सामाजिक विज्ञान में मनुष्य का अध्ययन समाज के एक अंग के रूप में किया जाता है और व्यक्तिगत शास्त्र में मनुष्य का अध्ययन एक अलग व्यक्ति के रूप में किया जाता है। नीति-शास्त्र, न्याय शास्त्र, राजनीति, इतिहास, भूगोल आदि समाजिक शास्त्र के अन्तर्गत आते हैं और मनोविज्ञान, चिकित्साशास्त्र आदि व्यक्तिगत शास्त्र के अन्तर्गत आते हैं। इस प्रकार विज्ञान का निम्न वर्गीकरण है—





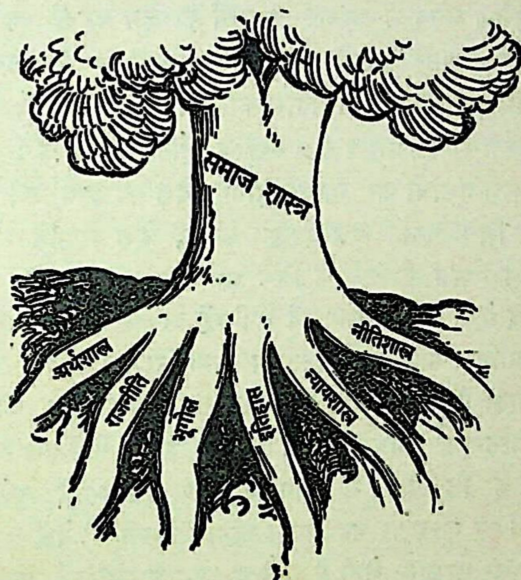
चित्र १०—विज्ञान के प्रकार

१. अर्थशास्त्र का विभिन्न सामाजिक शास्त्रों से सम्बन्ध
(Relation of Economics with Other Social Sciences)

अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र (Economics and Sociology)

सामाजिक मनुष्यों के विभिन्न कार्यों को अध्ययन करने वाला शास्त्र समाजशास्त्र कहलाता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी की तरह जो भी कार्य करता है उन सबका अध्ययन समाजशास्त्र में होता है। इस प्रकार अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, न्याय-शास्त्र आदि सभी शास्त्र समाज शास्त्र के एक अंग हैं। समाजशास्त्र पिता है और विभिन्न सामाजिक शास्त्र उसके पुत्र हैं। अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र का पुत्र-पिता का सम्बन्ध है और इसीसे इनके पारस्परिक सम्बन्ध का अनुमान लगाया जा सकता है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी के रूप में इतने विभिन्न प्रकार के कार्य करता है कि उन सबका अध्ययन एक साथ करना बड़ा कठिन है। इसी कारण समाजशास्त्र को विभिन्न शास्त्रों में बाँट दिया गया है और अर्थशास्त्र भी उसका एक भाग है।



चित्र ११—समाज शास्त्र की विभिन्न जड़ें

अर्थशास्त्र में मनुष्य की एक विशेष प्रकार की सामाजिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। अतः अर्थशास्त्र समाज शास्त्र का ही एक अंग है। इसी कारण अर्थशास्त्र अपने विकास के लिये समाजशास्त्र के अनेक तथ्यों का प्रयोग कर उनसे लाभ उठाता है।

अर्थशास्त्र और राजनीतिशास्त्र (Economics and Politics)

अर्थशास्त्र तथा राजनीति शास्त्र दोनों में ही मनुष्य की क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। अर्थशास्त्र में मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है और राजनीति शास्त्र में उसकी राजनीतिक क्रियाओं का। इस प्रकार यद्यपि यह शास्त्र मनुष्य की क्रियाओं के दो विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करते हैं, फिर भी क्योंकि इनके अध्ययन का लक्ष्य मनुष्य ही है इस कारण दोनों शास्त्रों में गहरा सम्बन्ध है।

राजनीति शास्त्र में राष्ट्र तथा सरकार की विभिन्न क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। सरकार की कुछ क्रियायें आर्थिक भी हैं। इस प्रकार की सरकारी क्रियाओं का अध्ययन सरकारी राजस्व (Public Finance) या सरकारी अर्थशास्त्र (Public Economics) नामक शास्त्रों के अन्तर्गत किया जाता है।

सरकारी राजस्व का विषय अर्थशास्त्र तथा राजनीति शास्त्र दोनों के अन्तर्गत आता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि राजनीति-शास्त्र तथा अर्थशास्त्र की कुछ विषय-सामग्री एक ही है।

पुनः, आधुनिक समय में सरकार के कार्यों का क्षेत्र बढ़ता जा रहा है। अब सरकार का काम देश में शान्ति रखने तक ही सीमित नहीं रहा है। उसको जनता की सभी प्रकार की दशा सुधारने के लिये प्रयास करना पड़ता है। आजकल के मशीन-युग में आर्थिक समस्याओं का प्रभाव बड़ा व्यापक होता जा रहा है। देश से बेकारी दूर करना, देश में उद्योग-धंधों की मात्रा बढ़ाना, देश की कृषि की दशा सुधारना, जनता के भोजन के लिये पर्याप्त अन्न इकट्ठा करना, देश में होने वाली मँहगी को रोकना, देश में अधिक अन्न उगाने के लिये आन्दोलन करना, देश के श्रमिकों की दशा सुधारना आदि ऐसी अनेक समस्यायें हैं जिन्हें सरकार को हल करनी पड़ती हैं। इससे सरकार का आर्थिक मामलों में हस्तक्षेप तथा राजनीति और अर्थशास्त्र का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। यदि आप रूस जैसे समष्टिवादी देश का उदाहरण लें, तो वहाँ तो देश की सम्पूर्ण आर्थिक उन्नति सरकार द्वारा नियंत्रित है। सरकार ही यह निश्चित करती है कि देश में कौन-कौन से उद्योग-धंधे खुलें, वह कितना उत्पादन करें और किस मूल्य पर वह अपना सामान जनता को वेचें।

किसी देश की सरकार कैसी है इसका प्रभाव वहाँ की आर्थिक प्रगति पर गहरा पड़ता है। यदि देश की सरकार कमजोर है और वह अपनी जनता को सुख और शान्ति नहीं दे सकती तो यह निश्चित है कि जनता का अधिकांश समय अपनी रक्षा करने में लग जावेगा और वह अपनी अन्य आवश्यकताओं को संतुष्ट नहीं कर पावेगी। इसका परिणाम यह होगा कि देश अधिक आर्थिक उन्नति नहीं कर पावेगा। हम सभी जानते हैं कि भारतीय इतिहास के अन्धकाल (Dark Age) में जब देश में कोई सुदृढ़ सरकार नहीं थी, उस समय देश की भारी आर्थिक तथा सांस्कृतिक अवनति हुई। एक सुदृढ़ सरकार बन जाने के पश्चात् ही देश उन्नति कर सका। फिर, यदि देश की सरकार युद्ध में विश्वास करती है तो देश के उद्योग-धंधे भी युद्ध के लिये आवश्यक सामान बनाने में लग जावेंगे और जनता का जीवन-स्तर नीचा हो जावेगा। इन सब बातों से अर्थशास्त्र तथा राजनीति शास्त्र का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है।

अर्थशास्त्र और इतिहास (Economics and History)

इतिहास में भूतकाल में की गई मानवीय क्रियाओं का लेखा रहता है। मानवीय क्रियायें कई प्रकार की होती हैं। उनकी कुछ क्रियायें आर्थिक भी होती हैं और उन क्रियाओं का लेखा भी इतिहास में रहता है। मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं का ज्ञान आर्थिक इतिहास (Economic History) नामक शास्त्र पढ़ कर किया

जा सकता है। इस शास्त्र की विषय-सामग्री अर्थशास्त्र तथा इतिहास दोनों शास्त्रों के क्षेत्र में आ जाती है। आर्थिक इतिहास अर्थशास्त्र तथा इतिहास दोनों शास्त्रों का एक अंग है।

इतिहास पढ़कर हमें यह ज्ञान हो जाता है कि मनुष्य के सम्मुख कौन-कौन सी समस्यायें आईं और उसने उन समस्याओं को दूर करने के लिये क्या-क्या प्रयास किये। इससे हमें भूतकाल की परिस्थितियों का ज्ञान तो हो ही जाता है, साथ ही भविष्य में आने वाली समस्याओं को सुलझाने में भी सहायता मिलती है। उदाहरण के लिये उन्नीसवीं सदी में इंगलैंड 'मुक्त-द्वार (Laissez faire) की नीति का प्रतिपादन कर रहा था। इससे उसके उद्योगों की उन्नति हो रही थी परन्तु अन्य देशों के उद्योग पनपने नहीं पाते थे। अतः जर्मनी ने संरक्षणता (Protection) की नीति का अनुसरण किया और यह कहा कि कम उन्नति वाले देश अपने उद्योगों को संरक्षणता प्रदान करने पर ही उनकी उन्नति कर सकते हैं। बाद में संरक्षणता की नीति को अमरीका, भारत आदि सभी देशों ने अपनाया। इस प्रकार दूसरे देशों का इतिहास जानकर अन्य देश अपनी आर्थिक नीति निर्धारित करते हैं।

अर्थशास्त्र में बहुत से विषयों का अध्ययन इतिहास की भाँति होता है। उदाहरण के लिये विभिन्न आर्थिक समस्याओं पर अर्थशास्त्रियों के विचारों को ले लीजिये। अर्थशास्त्र की परिभाषा पर जे० बी० से आदि का क्या विचार था, मार्शल ने उसमें क्या परिवर्तन किये, पीगू ने क्या नई बात रखी और फिर रोबिन्स ने क्या नई परिभाषा दी इन सब बातों के इतिहास का अर्थशास्त्र में अध्ययन किया जाता है और इसे 'आर्थिक विचारों का अध्ययन' (History of Economic Thought) कहते हैं।

अर्थशास्त्र में बहुत से नियम इतिहास के अध्ययन पर आधारित हैं। उदाहरण के लिये माल्थस का जनसंख्या का सिद्धान्त ले लीजिये। माल्थस ने विभिन्न देशों की जनसंख्या तथा अन्न की मात्रा का विभिन्न कालों में पता लगाकर ही अपना सिद्धान्त प्रतिपादित किया। ईंगिल का नियम भी इतिहास के अध्ययन का ही परिणाम है। व्यापार चक्र (Trade Cycle) की गति तथा समय का ज्ञान इतिहास के अध्ययन से ही होता है। इसीसे अर्थशास्त्र तथा इतिहास का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है।

अर्थशास्त्र तथा भूगोल (Economics and Geography)

भूगोल-शास्त्र में देश के प्राकृतिक साधनों के भौगोलिक वितरण का ज्ञान कराया जाता है। अर्थशास्त्र में भी हमें देश में पाये जाने वाले प्राकृतिक साधनों का ज्ञान करना होता है और साथ में यह भी देखना पड़ता है कि कौन से साधन

कहाँ पाये जाते हैं। इस ज्ञान के सहारे ही हम उद्योगों के स्थानीयकरण की समस्या सुलझाते हैं। इससे स्पष्ट है कि दोनों शास्त्रों की कुछ विषय-सामग्री एकसी है।

भूगोल शास्त्र के कई विभाग हैं। उसका एक विभाग आर्थिक भूगोल कहलाता है। इसमें उन सभी बातों का अध्ययन किया जाता है जिनका अर्थशास्त्र से घनिष्ठ संबंध है। इसमें देश की भौगोलिक परिस्थितियों का मनुष्य पर पड़ने वाला प्रभाव, देश के प्राकृतिक साधन तथा उनका वितरण, देश में पाये जाने वाले उद्योग-धन्धे तथा उनका स्थानीयकरण और देश के यातायात के साधनों का अध्ययन किया जाता है। इन सभी बातों का ज्ञान अर्थशास्त्र में भी करना पड़ता है।

मनुष्य की भौगोलिक परिस्थितियों का उसके आर्थिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। एक देश के रहने वाले किस प्रकार का जीवन व्यतीत कर सकेंगे यह देश की प्राकृतिक परिस्थितियों पर निर्भर होता है। देश में कौन-कौन से उद्योग खुल सकेंगे, देश में औद्योगिक उन्नति हो सकती है या नहीं, देश के अधिकांश व्यक्ति कृषि पर निर्भर रहेंगे या उद्योगों पर आदि ऐसी अनेक आर्थिक समस्यायें हैं जिनका भूगोल से गहरा सम्बन्ध है। अतएव यह कहा जा सकता है कि अर्थशास्त्र तथा भूगोल में भारी संबन्ध है।

अर्थशास्त्र और नीति-शास्त्र (Economics and Ethics)

नीति-शास्त्र हमें सदाचार की बातें बताता है। मनुष्य को झूठ नहीं बोलना चाहिये, चोरी करना बुरा है, प्राणीमात्र का उद्देश्य सुख की प्राप्ति करना है आदि बातें हमें नीति-शास्त्र से पता लगती हैं। अर्थशास्त्र भी हमें इन्हीं आदेशों पर चलने का पाठ पढ़ाता है। अर्थशास्त्र यह कहता है कि व्यापार में सचाई सबसे अच्छी नीति है (Honesty is best policy)। अर्थशास्त्र हमें यह भी बताता है कि मनुष्य को अपनी आवश्यकताओं की मात्रा कम करके सुख प्राप्त करने के लिये प्रयास करना चाहिये। अर्थशास्त्र यह कहता है कि देश की आर्थिक उन्नति के लिये यह आवश्यक है कि देश में सुख तथा शान्ति रहे और यह तभी संभव हो सकता है जब मनुष्य सदाचार से रहें और चोरी, डकैती आदि हानिकारक क्रियाओं का त्याग करें।

प्राचीन समय में कुछ अर्थशास्त्रियों का यह मत था कि अर्थशास्त्र का नीति-शास्त्र से कोई संबंध नहीं है। अर्थशास्त्र तो हमें धन प्राप्त करने के तरीकों को बताता है और उसमें यह आवश्यक नहीं है कि सदाचार से चला जाय। व्यापार तथा दुकानदारी में समय-समय पर झूठ बोलना पड़ता है। बिना झूठ बोले अधिक धन कमाना संभव नहीं है। परन्तु आजकल इस मत को कोई नहीं मानता। दुकानदारी भी ईमानदारी पर ही चलती है। बेईमानी से भले ही कोई एक व्यक्ति रुपया कमाने में कभी सफल हो जाय। परन्तु यदि सभी व्यक्ति बेईमानी से रुपया

कमाना चाहें तो सभी व्यापार और लेन-देन बन्द हो जायँ। इस कारण यह स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र की प्रत्येक क्रिया में नीति-शास्त्र के अनुसार चलना अत्यन्त आवश्यक है। इसीसे दोनों शास्त्रों का संबंध स्पष्ट हो जाता है।

अर्थशास्त्र तथा न्याय शास्त्र (Economics and Jurisprudence)

न्याय-शास्त्र हमें यह बताता है कि कानून या न्याय की दृष्टि से क्या करना उचित है और क्या अनुचित है या क्या करने का हमें अधिकार है और क्या करने पर दंड मिलेगा। अर्थशास्त्र के लिये भी यह आवश्यक है कि जो भी नियम उसके अन्तर्गत बनें वह देश में प्रचलित विधान के विरुद्ध न हों। उदाहरण के लिये चोरी करना सभी देशों के कानून से अनुचित है। अतएव अर्थशास्त्र में भी चोरी करना अच्छा नहीं माना जाता और यह शास्त्र यह नहीं कहता कि चोरी करके पेट भरा जाय।

इसी प्रकार देश के कानून भी आर्थिक क्रियाओं को अधिक सफलीभूत बनाते हैं। मनुष्य आर्थिक प्रयत्न तभी करता है जब उसे पूर्ण विश्वास हो कि मेहनत का उचित फल उसे मिल जायगा और जो धन वह संचित करेगा उसके उपभोग का उसे पूर्ण अधिकार रहेगा। देश के कानून मनुष्य को इस प्रकार का आश्वासन देते हैं।

देश के कानून मनुष्य की हर प्रकार से रक्षा करने के लिये बनाये जाते हैं। मनुष्य की आर्थिक सुरक्षा का भार भी उन्हीं के ऊपर होता है। परिणामतः सरकार अनेक आर्थिक मामलों पर कानून बनाती है। उदाहरण के लिये फैक्टरी नियम (Factory Laws), उत्तराधिकार नियम (Law of Inheritance), व्यापार संबंधी नियम, बैंक संबंधी नियम आदि सरकार बनाती है और ये सब नियम देश के सामान्य नियमों के एक अंग होते हैं। इसीसे अथशास्त्र तथा न्यायशास्त्र का संबंध समझा जा सकता है।

२. अर्थशास्त्र का व्यक्तिगत शास्त्रों से संबंध

(Economics and Individual Sciences)

अर्थशास्त्र का उन शास्त्रों से भी संबंध है जो मनुष्य का अध्ययन एक स्वतन्त्र व्यक्ति के रूप में करते हैं। इस प्रकार के शास्त्रों में मनोविज्ञान प्रमुख है। अर्थ-शास्त्र तथा मनोविज्ञान का संबंध नीचे बताया गया है।

अर्थशास्त्र तथा मनोविज्ञान (Economics and Psychology)

अर्थशास्त्र तथा मनोविज्ञान का पारस्परिक गहरा संबन्ध है। अर्थशास्त्र के बहुत से नियम मनोवैज्ञानिक हैं। क्रमागत-उपयोगिता-ह्रास नियम, सम-सीमान्त उपयोगिता नियम, माँग का नियम, पूर्ति का नियम आदि सभी नियम मनोवैज्ञानिक

विश्लेषण पर आधारित हैं। उपयोगिता का माप पूर्णरूप से मनोवैज्ञानिक है। किसी एक वस्तु से हमें कितनी उपयोगिता मिलेगी यह हमारी मन की दशा या स्थिति पर निर्भर है। मनुष्य को अपनी आवश्यकतायें किस प्रकार सन्तुष्ट करना चाहिये यह भी एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन है। वास्तव में अर्थशास्त्र तथा मनोविज्ञान का संबंध उसी प्रकार का है जिस प्रकार गणित-शास्त्र (Mathematics) तथा अमिट सत्यों (Axioms) का। जिस प्रकार गणित-शास्त्र में हम कुछ सत्यों को आधार मानकर चलते हैं, उसी प्रकार अर्थशास्त्र में भी हम उपयोगिता नामक एक मनोवैज्ञानिक सत्य के आधार पर चलते हैं और यह मानते हैं कि प्रत्येक मनुष्य उपयोगिताओं की प्राप्ति के लिये कष्ट करने को तत्पर हो जाता है। यदि इस मनोवैज्ञानिक सत्य को झूठ मान लिया जाय तो अर्थशास्त्र का सम्पूर्ण अध्ययन ही बदल देना होगा। अतएव यह कहा जा सकता है कि अर्थशास्त्र का अध्ययन कुछ मनोवैज्ञानिक सत्यों पर आधारित है।

३. अर्थशास्त्र का प्राकृतिक विज्ञानों से संबंध

(Economics and Physical Sciences)

अर्थशास्त्र का संबंध उन विज्ञानों से भी है जो पदार्थों का अध्ययन करते हैं। नीचे इस प्रकार के शास्त्रों से अर्थशास्त्र का संबंध बताया गया है।

अर्थशास्त्र तथा अंक-शास्त्र (Economics and Statistics)

अंकशास्त्र में अंकों को एकत्रित किया जाता है, उनका वर्गीकरण किया जाता है, उनका मिलान किया जाता है और फिर उन पर नियम बनाये जाते हैं। अर्थशास्त्र में भी अंकों की सहायता से बहुत से नियमों का स्पष्टीकरण किया जाता है तथा उनके आधार पर अनेक नियम प्रतिपादित किये जाते हैं। इस कार्य में अर्थशास्त्र को अंक-शास्त्र से बड़ी सहायता मिलती है।

अर्थशास्त्र की अनेक समस्याओं को सुलझाने के लिये हमें अंकशास्त्र की सहायता लेनी पड़ती है। उदाहरण के लिये इस समय हमारे देश में अन्न की भारी कमी है। इस समस्या को सुलझाने के लिये हमें यह जानना आवश्यक हो जाता है कि देश में कितना अन्न पैदा होता है और देश में कितने व्यक्ति हैं तथा उनकी अन्न-संबंधी कितनी आवश्यकता है। यह सब अंक प्राप्त हो जाने के पश्चात् ही हम इस समस्या को सुलझा सकते हैं। इसी प्रकार देश की औद्योगिक उन्नति का प्रश्न ले लीजिये। यह समस्या तभी सुलझ सकती है जब हमें देश के प्राकृतिक साधनों से संबन्ध रखने वाले अंकों का भली-भाँति ज्ञान हो। इसी प्रकार देश की योजनात्मक उन्नति (Planned development) का प्रश्न है। इसे सुलझाने के लिये यह आवश्यक है कि देश के खनिज पदार्थ, कृषि, उद्योग-धन्धे, व्यापार

आदि के आँकड़ों का ज्ञान प्राप्त किया जाय। इसीसे अर्थशास्त्र तथा अंक-शास्त्र का संबन्ध स्पष्ट हो जाता है।

अर्थशास्त्र तथा गणित शास्त्र (Economics and Mathematics)

अर्थशास्त्र और गणित-शास्त्र में गहरा संबंध है। किसी समय इस बात पर वाद-विवाद चलता था कि अर्थशास्त्र में गणित का प्रयोग किया जाय या नहीं। परन्तु आजकल अर्थशास्त्र के अध्ययन में गणित का प्रयोग बहुत व्यापक हो गया है। ऊपरी कक्षाओं में गणित के ज्ञान के बिना अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों को न तो ठीक से समझा ही जा सकता है और न उनका अध्ययन ही किया जा सकता है।

आजकल अर्थशास्त्र में प्रवैगिक दशाओं (Dynamic conditions) का अध्ययन होने लगा है। प्रवैगिक दशाओं का सही अध्ययन गणित के प्रयोग के बिना नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि प्रवैगिक स्थिति का अध्ययन करते समय अनेक परिवर्तनों का अध्ययन एक-साथ किया जाता है।

आजकल गणनात्मक अर्थशास्त्र (Mathematical Economics) भी अध्ययन का एक विषय बन गया है। इस विषय में गणित के द्वारा अर्थशास्त्र का अध्ययन किया जाता है। आर्थिक समस्याएँ आजकल इतनी जटिल और उलझी हुई हो गई हैं कि गणित के प्रयोग के बिना उनका ठीक हल नहीं निकाला जा सकता। अतएव अर्थशास्त्र का गणित से गहरा संबंध है।

परीक्षा प्रश्न

उत्तर प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—"अर्थशास्त्र" का विषय समझाइये। अर्थशास्त्र का राजनीति-शास्त्र और न्याय-शास्त्र से क्या सम्बन्ध है? (१९५२)

२—अर्थशास्त्र की विषय सामग्री क्या है? अर्थशास्त्र अन्य सामाजिक विज्ञानों से किस प्रकार सम्बन्धित है? पूरी तरह समझाकर लिखिये। (१९४८)

३—अर्थशास्त्र और मनोविज्ञान का पारस्परिक सम्बन्ध उदाहरण सहित बताइये। (१९४४)

४—अर्थशास्त्र का भूगोल तथा राजनीति-शास्त्र से सम्बन्ध समझाकर लिखिये। (१९४१)

५—अर्थशास्त्र की परिभाषा दीजिये और बताइये कि अन्य सामाजिक विज्ञानों से यह किस प्रकार भिन्न है। (१९४१)

६—अर्थशास्त्र की विषय-सामग्री की व्याख्या कीजिये और इसका नीतिशास्त्र, राजनीति शास्त्र और समाज शास्त्र से सम्बन्ध स्पष्ट कीजिये। (१९३७)

उत्तर प्रदेश इन्टर कामर्स

७—अर्थशास्त्र अन्य विज्ञानों से किस प्रकार संबंधित है? उदाहरण देकर समझाइये। (१९४१)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

८—अर्थशास्त्र क्या है ? इसका अन्य विज्ञानों से सम्बन्ध स्पष्ट कीजिये । (१९५१, १९५०, १९४८)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर कामर्स

९—उदाहरण सहित समझाइये कि अर्थशास्त्र अन्य सामाजिक विज्ञानों से किस प्रकार संबन्धित है ? (१९५२, १९५१)

———

दसवाँ अध्याय

आर्थिक जीवन का विकास

(Development of Economic Life)

यदि हम उस युग की दशा का ध्यान करें जब मनुष्य जंगलों में, खोहें तथा कंदराओं में रहता था और फिर उस दशा का वर्तमान युग के वैभव, सुख तथा आराम से तुलना करें तो स्पष्ट हो जाता है कि मानव ने भारी आर्थिक प्रगति करली है। कंदराओं में रहने वाला मानव आज ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं में रहता है। नंगे पैर पैदल चलने वाला मानव आज आकाश में उड़ता है और गति में हवा से बातें करता है। जंगली जानवरों से अपने शारीरिक बल से या पत्थरों से रक्षा करने वाला मानव आज अणु-बम का प्रयोग सीख गया है और भीषण विनष्टकारी तोपों को काम में लाने लगा है। किसी समय अर्ध-नग्न रहने वाला या पत्तों से अपने शरीर को ढकने वाला मानव आज बड़ी-बड़ी मिलों में कपड़ों का उत्पादन करता है और बढ़िया रेशमी तथा शीतल कपड़ों से अपना शरीर ढकता है। क्या यह भारी प्रगति का उदाहरण नहीं ? मानव के अतिरिक्त ऐसा कोई भी ऐसा प्राणी नहीं है जिसने इतनी अधिक प्रगति की हो।

मानव की आर्थिक प्रगति का अध्ययन दो प्रकार से किया जा सकता है: (१) मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं के विकास का अध्ययन कर, और (२) समाज के आर्थिक संगठन के इतिहास का अध्ययन कर। इन दोनों प्रकार से अध्ययन कर हम मानव की आर्थिक प्रगति के इतिहास का वर्णन करेंगे।

१· मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं का विकास

(Development of Man's Economic Activities)

यह तो आप जानते ही हैं कि मनुष्य काम इसी कारण करता है क्योंकि उसकी कुछ आवश्यकताएँ हैं। आवश्यकताओं से कष्ट होता है और कष्ट को दूर करने के लिये ही मनुष्य प्रयत्न करता है और प्रयत्न द्वारा सन्तोष प्राप्त करता है। इस प्रकार आर्थिक क्रियाओं के विकास का इतिहास आवश्यकताएँ, प्रयत्न तथा सन्तोष का इतिहास है। जैसे-जैसे मनुष्य की आवश्यकताएँ बढ़ीं, उसने क्या-क्या नवीन प्रयत्न किये और किस-किस प्रकार उसने सन्तोष प्राप्त किया, इसीका ज्ञान हमें प्राप्त करना है।

(१) प्रथम काल : प्रत्यक्ष प्रयत्नों का काल

प्रारंभ में जब मनुष्य सभ्य नहीं था, आवश्यकता, प्रयत्न तथा सन्तोष में संबंध बड़ा आसान तथा प्रत्यक्ष था। उस समय मानव की आवश्यकताएँ कम थीं, परन्तु जो भी थीं वह अत्यन्त आवश्यक थीं। अतएव जैसे ही उसे आवश्यकता प्रतीत होती थी वह प्रयत्न कर उसे फौरन ही सन्तुष्ट करने का प्रयास करता था। उदाहरण के लिये भूख लगने पर या तो वह किसी जंगली पेड़ से फल तोड़ लेता था या किसी जंगली जानवर को मारकर उसका मांस खा लेता था। यदि वह किसी समय आवश्यकता से अधिक फल तोड़ लेता या जानवर मार लेता, तो उन्हें जोड़कर रखने के साधन उसके पास नहीं थे। अतएव प्रत्येक आवश्यकता के लिये वह नया प्रयत्न करता था और आवश्यकता पुनः प्रतीत होने पर वह फिर प्रयत्न करता था। आर्थिक विकास का यह प्रथम काल था। इसमें आवश्यकता प्रतीत होने पर मनुष्य प्रयत्न करता था और परिणामस्वरूप उसे प्रत्यक्ष सन्तोष प्राप्त होता था। बाकी जितने भी काल हैं उनमें सन्तोष प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त नहीं होता था। इस कारण प्रथम काल को प्रत्यक्ष सन्तोष या प्रत्यक्ष प्रयत्नों का काल कहते हैं।

आवश्यकताएँ——————प्रयत्न——————सन्तोष

(२) दूसरा काल : परोक्ष प्रयत्नों का काल

प्रथम काल या प्रत्यक्ष प्रयत्नों का काल उसी समय तक चला जब तक मनुष्यों की आवश्यकताएँ कम रहीं। परन्तु जैसे-जैसे आवश्यकताओं की संख्या बढ़ी, आर्थिक जीवन अधिक विषम होता गया। मनुष्यों ने सोचा कि भलाई इसी में है कि कुछ व्यक्ति शिकार खेलने जायँ और कुछ अन्य घर पर बैठे-बैठे जानवर मारने के औजार तैयार करते रहें और बाद में औजार देकर मरे हुए जानवर अपना पेट भरने के लिये ले लें। इसमें लाभ सभी को था। जो व्यक्ति जानवर मारने जाते थे उनके पास इतना समय नहीं बचता था कि वह औजार तैयार कर सकें और बिना औजार तैयार किये जानवरों को अधिक संख्या में मारना संभव न था। इस प्रकार सरल सा यह श्रम-विभाजन उपयुक्त समझा जाने लगा। समाज जैसे-जैसे अधिक सभ्य होता गया और आवश्यकताएँ जैसे-जैसे बढ़ने लगीं, व्यक्ति यह समझने लगे कि वह केवल एक काम ही अधिक अच्छी तरह कर सकते हैं और यदि वह उसी काम में लगे रहें तो वह अपनी आवश्यकता की बाकी वस्तुएँ विनिमय (exchange) द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। आवश्यकता, प्रयत्न तथा सन्तोष का संबंध अब परोक्ष हो गया। मनुष्य प्रयत्न करने के पश्चात् विनिमय के लिये रुकने लगा और विनिमय के पश्चात् ही वह सन्तोष प्राप्त करता था। अन्य शब्दों में "प्रयत्न तथा सन्तोष के बीच

अब एक खाई है जिस पर वस्तु-परिवर्तन (barter) का पुल है जैसे नीचे दिखलाया गया है" ।*

विनिमय

आवश्यकता—प्रयत्न सन्तोष

(३) तीसरा काल : सामूहिक औद्योगिक प्रयत्नों का काल

जब मनुष्य ने काफी अधिक प्रगति करली और जब वह सभ्य कहा जाने लगा तभी विकास का तीसरा काल आरंभ हुआ। दूसरे काल में ही मनुष्य ने यह समझ लिया था कि किसी एक काम में लगा रहना और विनिमय द्वारा अपनी आवश्यकताओं को पूरा करना, प्रत्यक्ष प्रयत्नों से कहीं अच्छा है। अब उसकी समझ में यह भी आ गया कि अकेले काम करने से समूह में मिलकर काम करना कहीं अधिक अच्छा है। इस प्रकार इस काल में व्यक्ति सहयोग से काम करने लगे। श्रम-विभाजन अधिक सूक्ष्म हो गया। अब एक व्यक्ति किसी एक काम की सभी क्रियाओं को न करके केवल एक ही क्रिया को करने लगा। उदाहरण के लिये एक मेज बनाने के लिए एक व्यक्ति पेड़ गिराता था, दूसरा पेड़ काट-काट कर लकड़ी करता था, तीसरा लकड़ी छील-छील कर तख्ते तैयार करता था, चौथा तख्तों से मेज के विभिन्न हिस्से तैयार करता था और पाँचवाँ उस पर पालिश करता था।

इस प्रकार सामूहिक रूप से या मिलकर किसी एक काम को करने से एक और समस्या उठ खड़ी हुई। वस्तु जो तैयार होती थी और उसके बदले में जो मिलता था वह किसी एक व्यक्ति की संपत्ति न होकर उन सभी की मिली हुई सम्पत्ति मानी जाने लगी जिन्होंने उस वस्तु को तैयार किया था। उदाहरण के लिये यदि एक मेज को पाँच आदमियों ने मिलकर बनाया था और उसके बदले में दो मन गेहूँ मिले थे तो वह गेहूँ किसी एक व्यक्ति की संपत्ति न होकर उन पाँचों व्यक्तियों के थे जिन्होंने उत्पादन क्रिया में भाग लिया था। अतएव पाँचों व्यक्तियों का अलग-अलग हिस्सा निर्धारित करना बड़ा आवश्यक हो गया। उत्पादन क्रिया में हिस्सा निर्धारित करने की समस्या वितरण की है। इस प्रकार 'विनिमय' के अतिरिक्त 'वितरण' नामक एक और पुल खड़ा हो गया और इन दोनों पुलों को पार करने के पश्चात् ही व्यक्ति को सन्तोष मिलता था। अब दशा निम्न प्रकार हो गई। †

---

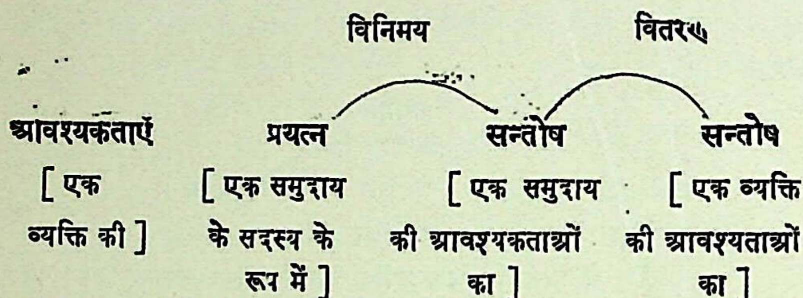
*"Between the effort and the satisfaction of the want there is now a gap and this gap is bridged by barter i.e., the exchange of one product for another. Thus :

Exchange

Wants—Efforts Satisfaction."

See, Penson, *Economics of Everyday Life*, Vol I, page 9.

† देखिये प्रो० पेन्सन (Penson) की ऊपर बताई गई पुस्तक, पृष्ठ १२



(४) चौथा काल : द्रव्य के उपयोग का काल

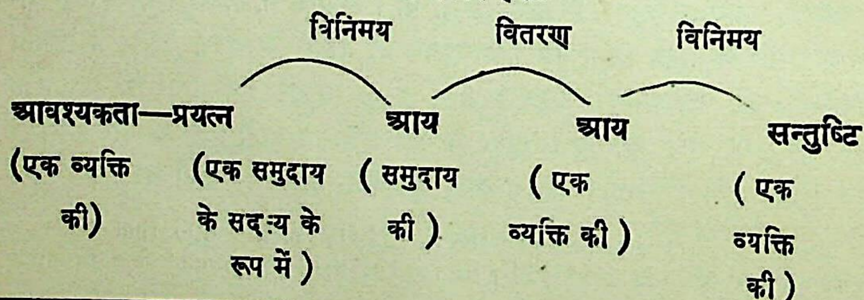
चौथा काल वर्तमान काल है। इसमें और तीसरे काल में मुख्य दो भेद हैं।

(१) वस्तु परिवर्तन के स्थान पर द्रव्य (money) का प्रयोग,

(२) औद्योगिक प्रयत्नों का अधिक विषम हो जाना।

द्रव्य के प्रयोग के कारण तथा प्रयत्नों के अधिक विषम हो जाने से आवश्यकता, प्रयत्न तथा सन्तोष की शृंखला और भी लम्बी हो गई और कम से कम तीन पुलों को पार किये बिना सन्तोष नहीं पाया जा सकता।

इस युग में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये मनुष्य दूसरों के साथ मिलकर काम करते हैं। जो वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं उन्हें बेच कर (अर्थात् विनिमय द्वारा) धन प्राप्त किया जाता है। इस धन को सभी काम करने वालों में बाँट (वितरण द्वारा) दिया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति को जो मिलता है उसको व्यय कर (अर्थात् विनिमय द्वारा) वह अपनी आवश्यकताओं को पूरा करता है। इस प्रकार इस युग में (१) विनिमय; (२) वितरण तथा (३) विनिमय नामक तीन पुल हैं जिन्हें सन्तोष प्राप्त करने के लिए पार करना होता है। इस काल में प्रयत्न तथा सन्तोष की शृंखला निम्न प्रकार है।*



*आवश्यकता, प्रयत्न तथा सन्तोष के संबंध और उससे संबंधित ज्ञान के लिये प्रोफेसर पेन्सन की पुस्तक, *Economics of Everyday Life*, Vol I पढ़ना उचित है। देखिये पृष्ठ संख्या ६ से १४ तक।

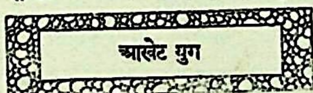
२. समाज के आर्थिक संगठन का इतिहास

(History of the Economic Organisation of the Society)

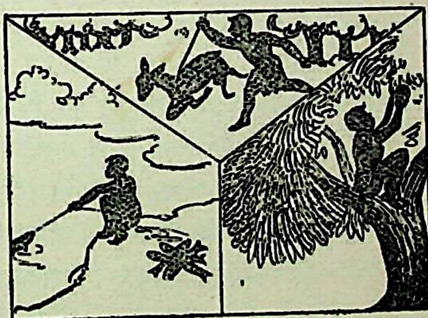
ऊपर आपको मनुष्य की क्रियाओं तथा सन्तोष का आर्थिक इतिहास बताया जा चुका है। अब हम समाज के आर्थिक संगठन के इतिहास द्वारा आपको यह बतावेंगे कि मनुष्य के आर्थिक जीवन का विकास किस प्रकार हुआ है।

वर्तमान आर्थिक उन्नति तक पहुँचते-पहुँचते मानव कई अवस्थायें (Stages) से होकर निकला है। वह अवस्थाएँ क्रमशः हैं (१) आखेट युग, (२) चारागाह युग, (३) कृषि युग, (४) दस्तकारी युग, तथा (५) औद्योगिक युग। हम एक एक करके इनके बारे में बतावेंगे।

मानव की सभ्यता का प्रथम सोपान आखेट युग (Hunting Stage) कहलाता है। इस अवस्था में मनुष्य जंगली पशुओं की भाँति जंगलों में अध-नग्न तथा असभ्य अवस्था में रहता था। इस समय उसकी आवश्यकताएँ बड़ी सीमित



थीं और वह सुगमता से सन्तुष्ट करली जाती थीं। उसकी प्रमुख आवश्यकता भूख मिटाने की थी। जंगली जानवरों को मारकार, मछली पकड़ कर तथा पेड़ों से फल तोड़ कर वह अपना पेट भरता था। अपने शरीर के अंग वह पत्तों व पेड़ों की छाल लपेट कर ढकता था। बाद में मरे हुये पशुओं की खाल लपेटने का चलन आरंभ हो गया। इस समय मनुष्य अकेले या बहुत छोटे-छोटे समूहों में रहता था। मनुष्य को इतना ज्ञान नहीं हो पाया था कि वह वस्तुओं का रूप बदल सके। अतएव प्राकृतिक अवस्था में ही उनका उपभोग वह करता था।



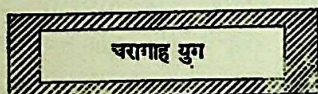
चित्र १२—आखेट युग

धीरे-धीरे यह प्रारंभिक रूप कुछ बदला। मनुष्य को जंगली जानवरों से अपनी रक्षा करने की समस्या प्रतीत होने लगी। अतः वह कुछ बड़े समुदाय में मिलकर रहने लगा। कुटुम्ब या परिवार समूह की एक इकाई बन गई। साथ ही वह पहाड़ों की खोह या कंदराओं में रहने लगा। अब उसके सामने समस्या पेट भरने की थी। जब अधिक मनुष्य एक साथ मिलकर रहेंगे तो उन्हें अधिक भोजन भी चाहिये। मनुष्य की तरह जानवरों को भी अपनी रक्षा का ज्ञान होता है। अतएव जिस स्थान पर अधिक मनुष्य रहते थे वहाँ से भाग कर जानवर घने जंगलों में चले जाया करते थे। समस्या गंभीर होने

पर मनुष्य ने पक्षियों को मारना सीखा। जब उनका भी मिलना कठिन हो गया तो उसने ऐसे औज़ार बनाये जिनकी सहायता से दूर से ही जानवर मारे जा सकते थे। ऐसे औज़ार बन जाने के कारण मनुष्य अपने को अधिक सुरक्षित समझने लगा। फलतः वह दूर तक जाकर शिकार करने लगा। इससे जनसंख्या में भी गतिशीलता आ गई।

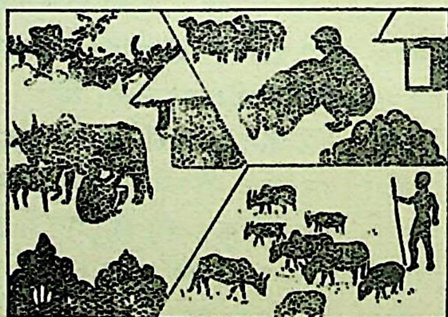
धीरे-धीरे औज़ारों में परिवर्तन होने लगा। वे पत्थर के और बड़े नुकीले होने लगे। बाद में धातुओं के भी औज़ार बनने लगे। मनुष्य इनकी सहायता से दूर-दूर तक शिकार करने निकलने लगे। इस समय व्यक्तिगत संपत्ति (Private Property) का आरंभ नहीं हुआ था। विनिमय और वितरण की समस्यायें भी उत्पन्न नहीं हुई थीं। मनुष्य अपनी आवश्यकताओं को प्रत्यक्ष रूप से सन्तुष्ट कर लेता था और इस कारण संचय का प्रश्न ही नहीं था। जीवन सादा और अधिक प्राकृतिक था।

चरागाह युग आर्थिक प्रगति का दूसरा सोपान है। इस युग की विशेषता यह है कि मनुष्य का आर्थिक जीवन पशुओं के चारों ओर केन्द्रित था। अभी तक



(अर्थात् आखेट युग में) मनुष्य जानवरों को मार कर अपना पेट भरता था। परन्तु जानवरों की संख्या कम हो चली थी और उनको मारने में मनुष्य को बड़ा कष्ट होता था। अतएव मनुष्य ने यही ठीक समझा कि यदि इनको पालकर रखा जाय तो इनकी कमी प्रतीत नहीं होगी। अतएव मनुष्य ने जानवरों को पालना आरंभ कर दिया।

जानवरों के पालने से मनुष्य के जीवन में कई परिवर्तन आ गये। उसका जीवन अधिक व्यवस्थित हो गया। उसको जानवरों के मांस के अतिरिक्त उनका दूध और ऊन भी मिलने लगा। जीवन पहले की अपेक्षा अधिक सुरक्षित और सुखमय हो गया।



चित्र १३—चरागाह युग

परन्तु जानवरों के लिये घास की आवश्यकता थी। मनुष्य को उस समय इतना ज्ञान न था कि वह चरी आदि उगाता। अतएव वह घास पर ही निर्भर था। मनुष्य वहीं रहता जहाँ घास पर्याप्त मात्रा में पाई जाती। परन्तु जैसे ही घास समाप्त हो जाती, वह दूसरे स्थान पर चला जाता जहाँ घास अधिक मात्रा में मिलने की संभावना रहती। इस प्रकार कुछ समय के लिये तो मनुष्य का स्थान स्थिर

रहता परन्तु इसके पश्चात् वह स्थान छोड़कर दूसरी जगह चला जाता। इस प्रकार इस समय तक मनुष्य के जीवन में पूर्ण रूप से स्थिरता नहीं आई थी।

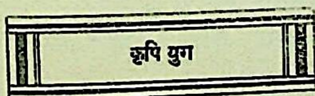
जानवरों तथा घास के मैदानों में रहने के लिये मनुष्य के समूहों में प्रायः झगड़े होते थे। पहले जो समूह जीतता था वह हारे हुए समूह के सभी व्यक्तियों को मार डालता था। परन्तु अब यह प्रथा बंद हो गई। अब जीतने वाला समूह, हारे वाले समूह के व्यक्तियों के सभी जानवर छीन लेता और व्यक्तियों को अपना दास बना लेता। इस प्रकार इस युग में दासता प्रथा का जन्म हुआ।

इस युग में मनुष्य और समूह का धन पशुओं में गिना जाता था। जिस व्यक्ति के पास जितने अधिक पशु होते वह उतना ही अधिक धनी माना जाता। यही बात समूह के बारे में भी थी। पशु ही व्यक्ति की संपत्ति थे। इस प्रकार व्यक्तिगत संपत्ति का भाव इस युग में आरंभ हुआ। परन्तु भूमि के स्वामित्व का भाव अभी तक उत्पन्न नहीं हुआ था और न विनिमय तथा व्यापार संबंधी ज्ञान ही अभी उत्पन्न हुए थे।

दास प्रथा आरंभ हो जाने के कारण व्यक्तियों को काम से अवकास मिलने लगा। पालतू जानवरों के कारण भोजन का भी कष्ट अधिक न था। अतएव मनुष्य अपना समय विभिन्न प्रकार के औजार बनाने में लगाने लगा। हाथ के बने छोटे-छोटे औजारों का प्रारंभ इस समय हुआ और अच्छे-अच्छे घरों का निर्माण भी होने लगा।

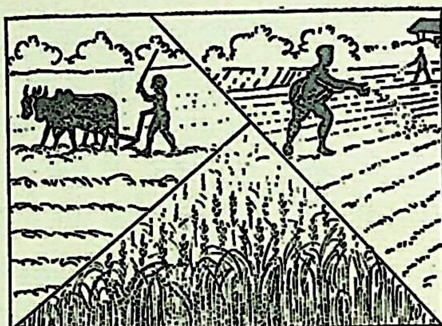
जीवन अपेक्षाकृत पहले से अधिक सुखमय होने के कारण इस समय जन-संख्या की वृद्धि भी पहले से अधिक तेजी से होने लगी।

चरागाह युग में मनुष्य की भोजन की समस्या सुलभ हो गई थी, परन्तु अच्छी तरह सुलझी न थी। अतएव उसका ध्यान उसी ओर लगा रहा। चारागाह युग में मनुष्य यह जानने लगा था कि घास किस प्रकार तथा किस समय उगती है और इसके उगने के लिये क्या-क्या वस्तुएँ आवश्यक हैं। क्रमशः उसे विभिन्न प्रकार के पौधों और बीजों के बारे में भी ज्ञान हो गया। कुछ लोगों ने इस ज्ञान का उचित प्रयोग किया और भूमि साफ कर बीज बोने आरंभ कर दिये। ऐसे ही कृषि का आरंभ हुआ। विभिन्न देशों में खेती करना विभिन्न समयों पर आरंभ हुआ। भारत में वैदिक काल में ही खेती करना शुरू हो गया था।



धीरे-धीरे मनुष्यों ने खेती में अधिक विशिष्टता प्राप्त करली। वह विभिन्न

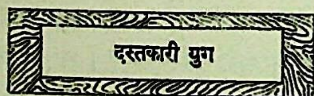
फसलें उगाने लगा। अपनी आवश्यकता के साथ-साथ वह जानवरों के चारे की आवश्यकता भी कृषि द्वारा पूरी करने लगा। सूक्ष्म में, मनुष्य का प्रमुख व्यवसाय कृषि बन गया।


चित्र १४—कृषि युग

कृषि करने के लिये मनुष्य को उस स्थान पर रहना आवश्यक हो गया जहाँ पर वह खेती करता था। अतएव मनुष्य की गतिशीलता में कमी आ गई और मनुष्य स्थाई जीवन व्यतीत करने लगा।

क्योंकि मनुष्य स्थाई जीवन व्यतीत करने लगा और उसे अपनी खेती और जानवरों की रक्षा की समस्या रहती थी, इस कारण उसने मिलकर रहना प्रारंभ कर दिया। वह समझने लगा कि कई व्यक्ति मिलकर सबकी रक्षा कर सकते हैं, परन्तु एक व्यक्ति अकेले अपनी रक्षा नहीं कर सकता। इस प्रकार सामूहिक जीवन का आरंभ हुआ और गाँवों की नींव पड़ी।

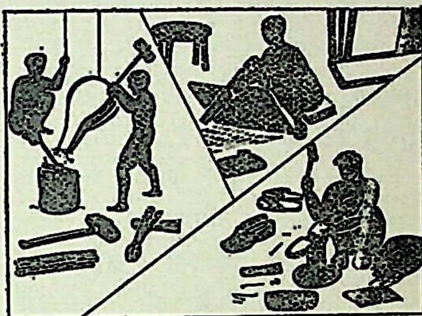
इस युग में व्यक्तिगत संपत्ति की भावना को और अधिक प्रोत्साहन मिला। अभी तक पशु ही व्यक्तिगत संपत्ति में आते थे। परन्तु जब भूमि भी व्यक्तिगत संपत्ति का अंग बन गई। अच्छी भूमि मात्रा में कम थी। इस कारण भूमि के लिये भी युद्ध होने लगे। दासता प्रथा का अन्त नहीं हुआ था। हारे हुए व्यक्ति दास बना लिये जाते थे और दास की भाँति कार्य करते थे।



दस्तकारी का युग मनुष्य के आर्थिक विकास का चतुर्थ सोपान है। भूमि पर खेती करने के कारण मनुष्य की भोजन की समस्या विकट न रही और अन्य प्रकार से उन्नति करने के लिये काफी समय मिलने लगा। मनुष्य का ध्यान सबसे पहले कृषि संबंधी औजार बनाने की ओर गया। पहले औजार लकड़ी के बनते थे। परन्तु अब धातु का प्रयोग होने लगा।

कुछ व्यक्ति तो खेती में लगे ही थे। परन्तु अब कुछ व्यक्ति दस्तकारी के काम में भी लग गये। औजार बनाने के अतिरिक्त यह व्यक्ति कुछ अन्य काम नहीं करते थे। बात यहीं तक समाप्त नहीं हुई। दस्तकारी में भी विभिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न प्रकार की दस्तकारी करने लगे। कोई बढ़ई का काम करने लगा तो कोई लुहार का और कोई कुछ अन्य। इस प्रकार विशिष्टता (Specialisation) बढ़ गई।

विशिष्टीकरण के साथ-साथ विनिमय का आरंभ होना स्वाभाविक ही है क्योंकि बिना विनिमय की सुविधा के विशिष्टीकरण संभव हो ही नहीं सकता। अतएव विनिमय का आरंभ हो गया। विनिमय प्रायः वस्तुओं में ही होता था। अर्थात् मनुष्य एक वस्तु देकर दूसरी वस्तु ले लिया करते थे। बाद में वस्तु-परिवर्तन के स्थान पर द्रव्य का प्रयोग होने लगा।



चित्र १६—दस्तकारी युग

यह हम बता ही चुके हैं कि इस युग में विभिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न दस्तकारी करने लगे। बाद में प्रत्येक दस्तकारी करने वालों का एक अलग संघ बन गया जिन्हें 'शिल्पकार संघ' कहा जाता है। इन संघों द्वारा ही विभिन्न शिल्पकारों पर नियंत्रण रखा जाता था और यही व्यापार की भी देख-रेख करते थे। यही लोग यह निश्चित करते थे कि किन-किन लोगों को यह काम सिखाया जाय और किनको नहीं। इस प्रकार इन संघों का एक प्रकार से एकाधिकार था।

दस्तकारी के युग में मनुष्य धातुओं का प्रयोग सीख गया था और छोटी मात्रा में अनेक प्रकार के औजार बनाने लगा था। परन्तु उसका ज्ञान उत्तरोत्तर बढ़ता गया और वह धीरे-धीरे मशीनों का प्रयोग भी सीख गया।

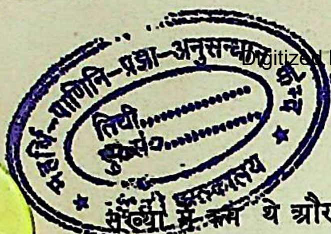


औद्योगिक युग

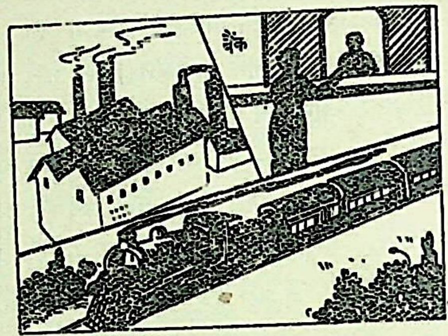
अठारहवीं शताब्दी के अन्त में तथा उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में इंगलैंड में कुछ महत्त्वपूर्ण औद्योगिक आविष्कार हुए जिनके कारण निर्माण की कला में भारी परिवर्तन हो गया। इन आविष्कारों को 'औद्योगिक क्रान्ति' (Industrial Revoluton) के नाम से पुकारा जाता है। यह आविष्कार धीरे-धीरे कर अन्य देशों में भी फैल गये। परिणामतः उत्पादन में मशीनों का प्रयोग होने लगा। इसी कारण वर्तमान युग 'मशीन युग' कहलाता है।

मशीनों के प्रयोग के कारण बड़े-बड़े कारखानों का निर्माण हुआ। सैकड़ों-हजारों श्रमिक मिलकर कारखानों में काम करने लगे। काम करने वाले मजदूरों का कोई व्यक्तित्व न था। उत्पादित वस्तु के लिए श्रेय किसी एक श्रमिक को न मिलता था। अतएव दस्तकारी प्रथा का अंत हो गया और शिल्पकार संघ भी समाप्त हो गये।

कारखानों के निर्माण में तथा मशीनों के खरीदने में काफी पूँजी की आवश्यकता पड़ती थी। अतः बड़े-बड़े पूँजीपति ही कारखाने खोल सकते थे। पूँजीपति



संख्या में कम थे और श्रमिक संख्या में अधिक। अतएव पूँजीपति उनको कम मजदूरी देकर अधिक काम करवाने लगे। इस प्रकार श्रमिकों का आर्थिक शोषण आरंभ हो गया। 'पूँजीवादी प्रथा' का आरंभ इस युग के साथ हो गया।



चित्र १६—औद्योगिक युग

जहाँ कारखाने थे वहाँ बहुत से मनुष्य आकर बस गये। फलतः, बड़े-बड़े शहरों का निर्माण हुआ। जहाँ खनिज पदार्थ मिलते थे वहाँ भी बड़े-बड़े औद्योगिक केन्द्र स्थापित हो गये।

बड़े पैमाने पर उत्पादन होने के कारण व्यापार भी काफी मात्रा में होने लगा। राष्ट्रीय व्यापार के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार भी उन्नति करने लगा। व्यापार की सुविधा के लिये यातायात के साधन भी उन्नति कर गये और रेल, समुद्री जहाज तथा हवाई जहाज़ों का प्रयोग होने लगा। यही नहीं, बैंक, पोस्ट आफिस, बीमा कम्पनियों आदि की भी मात्रा बढ़ी। साथ ही साख (Credit) तथा साख के यंत्रों का प्रयोग भी बहुत अधिक बढ़ गया।

पूँजीवादी प्रथा तथा उससे संबंधित आर्थिक संगठन के कारण समाज दो भागों में बंट गया : (१) अमीर, तथा (२) निर्धन या (१) पूँजीपति, तथा (२) मजदूर। धीरे-धीरे इन वर्गों में संघर्ष बढ़ने लगा और श्रमिक अपने हितों के लिये संगठित होने लगे। 'श्रम संघों' (Trade Unions) का जन्म इसी प्रकार हुआ। 'हड़तालों' द्वारा श्रमिक संघ अपनी मांग पूरी कराने में बहुत कुछ सफल हो गये। देश की सरकारों को भी श्रम-कानून तथा फैक्टरी कानून पास कर मजदूरों की दशा सुधारनी पड़ी है।

परीक्षा प्रश्न

उत्तर प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—पशुपालन अवस्था (कृषि प्रणाली) पर संक्षिप्त नोट लिखिये। (१६५३, १६४६)

२—आदिकाल से अब तक विभिन्न श्रेणियों के द्वारा आर्थिक जीवन का जो विकास हुआ है, उसका वर्णन कीजिये और प्रत्येक श्रेणी के लक्षणों को संक्षेप में बताइये। (१६४२)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर कामर्स

३—चरागाह युग में आखेट युग से घनी आबादी क्यों होती है और कृषि युग से आबादी कम क्यों होती है ? (१६४५)

सागर इन्टर कामर्स

४—आर्थिक आवश्यकतायें किस प्रकार संतुष्ट की जा सकती हैं ? (१६५२)

ग्यारहवाँ अध्याय

अर्थशास्त्र के कुछ महत्त्वपूर्ण शब्द

(Some Important Economic Terms)

प्रत्येक शास्त्र में उसके विशेष भाव स्पष्ट करने के लिये कुछ नये-नये शब्द गढ़ने पड़ते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि दिन प्रति दिन की बोलचाल की भाषा के साधारण शब्द अपना लिये जाते हैं और उन्हें एक विशेष अर्थ दे दिया जाता है। अर्थशास्त्र में भी यही किया गया है। प्रचलित भाषा के अनेक शब्द लेकर उन्हें एक विशेष अर्थ दे दिया गया है। इस प्रकार के शब्दों का विशिष्ट वैज्ञानिक अर्थ जान लेना अत्यन्त आवश्यक है जिससे अर्थशास्त्र का अध्ययन करते समय किसी प्रकार का भ्रम मन में न रहे। इस अध्याय में इस प्रकार के कुछ महत्त्व-पूर्ण शब्दों का अर्थ बताया गया है।

१. पदार्थ*
(Goods)

अर्थ

वह सब भौतिक तथा अभौतिक वस्तुयें जिनसे मनुष्य को उपयोगिता मिलती है, पदार्थ कहलाती हैं। वस्तुएँ चाहे कोई भी हों और किसी भी प्रकार की हों, यदि उनसे व्यक्तियों को उपयोगिता मिलती है तो वे सब वस्तुयें पदार्थ कहलाती हैं।

किसी वस्तु से हमें उपयोगिता तभी मिलती है जब वह हमारी कोई भी आवश्यकता संतुष्ट कर सके। संसार में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जो मानव की कोई न कोई आवश्यकता संतुष्ट न कर सके। अतएव संसार की सभी वस्तुयें पदार्थ हैं।†

---

* कुछ विद्वानों ने 'Goods' शब्द का हिन्दी रूपान्तर 'पदार्थ' किया है और कुछ ने 'माल'। परन्तु ये दोनों ही शब्द पूर्णतः उचित नहीं हैं। पदार्थ अँग्रेजी शब्द 'Commodity' का हिन्दी रूपान्तर है। और Commodity तथा Goods में बड़ा भेद है। 'Stock' शब्द का अर्थ 'माल' होता है। यह प्रायः पूछा जाता है कि आपकी दूकान में कितना 'माल' या Stock है। फिर भी, 'पदार्थ' तथा 'माल' में हमें पदार्थ शब्द अधिक उपयुक्त लगा है। इसीसे हमने 'Goods' का हिन्दी पर्यायवाची शब्द 'पदार्थ' ही किया है।

† आचार्य मार्शल का कहना है कि "सभी ऐच्छिक वस्तुयें, अर्थात् वह जो मानवीय आव-श्यकताओं को संतुष्ट करती हैं, पदार्थ हैं।" ["Goods are all desirable things, all things that satisfy human wants"—Dr. A. Marshall, *Economics of Industry*, p. 34.

ऊपर की परिभाषा में यह बताया गया है कि वस्तु चाहे भौतिक हो या अभौतिक, यदि उससे उपयोगिता मिलती है तो वह पदार्थ है। भौतिक वस्तु से हमारा आशय उन वस्तुओं से है जो आँख से देखी जा सकें या हाथ से छुई जा सकें। उदाहरण के लिये मेज, कुर्सी, कलम, दवात, कागज, पेन्सिल, धोती, चप्पल आदि सभी भौतिक पदार्थ हैं। अभौतिक पदार्थ वे होते हैं जिनको देखा नहीं जा सकता, परन्तु जिनको अनुभव किया जा सकता है। उदाहरण के लिये गवैया का गला, दूकान की धाक (Goodwill), श्रमिक की कार्यशीलता, अध्यापक की योग्यता, आदि। इस प्रकार, सूक्ष्म में, यह कहा जा सकता है कि संसार की सभी वस्तुयें पदार्थ कही जा सकती हैं।

पदार्थ के प्रकार

पदार्थ कई प्रकार का होता है। नीचे उनके विभिन्न प्रकार बताये गये हैं :—

१. मुक्त (Free) तथा आर्थिक (Economic) पदार्थ

मुक्त पदार्थ वह पदार्थ हैं जो मनुष्य को निःशुल्क या मुफ्त मिले हैं और जिनके लिये उसे कुछ व्यय नहीं करना पड़ा है*। ऐसे सब पदार्थ प्रकृति द्वारा दिये गये होते हैं और इसी कारण ये मनुष्य को निःशुल्क मिल जाते हैं। इनकी दूसरी विशेषता यह है कि ये बहुत अधिक मात्रा में पाये जाते हैं—अर्थात् इनकी पूर्ति (Supply) इनकी माँग (Demand) से अधिक होती है। अन्य शब्दों में यह कहिये कि ये मात्रा में 'सीमित' (Scarce) नहीं होते। इस प्रकार मुक्त पदार्थों की निम्न दो विशेषतायें हैं :

(१) ये प्रकृति द्वारा मनुष्य को निःशुल्क मिल जाते हैं, तथा
(२) ये असीमित मात्रा में पाये जाते हैं।

उदाहरण के लिये सूर्य की रोशनी, चन्द्रमा की चाँदनी, धूप, हवा, बरसात आदि सब मुक्त पदार्थ हैं।

आर्थिक पदार्थ वे पदार्थ हैं जिन्हें मनुष्य ने अपनी मेहनत से पैदा किया है या इकट्ठा किया है। ये प्राकृतिक अवस्था में नहीं पाये जाते और प्राकृतिक होने पर मनुष्य का श्रम किसी न किसी अवस्था में इनमें मिला रहता है। ये मात्रा में सीमित

* मार्शल के अनुसार "मुक्त पदार्थ वे हैं जिनका कोई स्वामी नहीं होता और जो बिना किसी मानसिक श्रम के प्रकृति द्वारा उत्पन्न किये जाते हैं।" ["Those goods are free, which are not appropriated and are afforded by Nature without requiring the effort of man"—Marshall, *Economics of Industry*, p. 36]

होते हैं, अर्थात् इनकी पूर्ति इनकी माँग से कम होती है।* इनको बिना पैसा दिये या व्यय किये नहीं पाया जा सकता। इस प्रकार आर्थिक पदार्थों के निम्न गुण हैं :

(१) ये मात्रा में सीमित होते हैं।

(२) इनमें मनुष्य का श्रम लगा रहता है।

(३) इन्हें बिना पैसा व्यय किये नहीं पाया जा सकता।

मेज, कुर्सी, कलम, पेन्सिल, कागज, दवात, स्याही, कमीज, कोट, पतलून आदि सभी आर्थिक पदार्थ हैं।

मुक्त तथा आर्थिक पदार्थ का भेद समझने के लिये यह ध्यान में रखना चाहिये कि प्रत्येक प्रकृति-दत्त वस्तु आरम्भ में मुक्त पदार्थ थी। परन्तु मनुष्य के श्रम तथा मेहनत के फलस्वरूप उनमें से अनेक अब आर्थिक पदार्थ हो गये हैं। उदाहरण के लिये भूमि (Land) को ले लीजिये। यह किसी समय प्रकृति की निःशुल्क भेंट थी और इस कारण मुक्त पदार्थ थी। परन्तु आजकल यह आर्थिक पदार्थ बन गई है क्योंकि मनुष्य ने मेहनत करके इसे साफ किया है और जोतकर खेती के योग्य बनाया है। इसी प्रकार ऐसे जंगल जहाँ मनुष्य ने अपनी मेहनत से रास्ता तैयार किया है और जहाँ की लकड़ी वह मेहनत कर काट-काट कर बेचता है, आर्थिक पदार्थ कहे जायँगे। इसी प्रकार हवा मुक्त पदार्थ है। परन्तु एवरेस्ट पहाड़ की चोटी पर टानजिंग तथा हिलेरी ने कृत्रिम तरीके से प्राप्त हवा का प्रयोग किया था। वह हवा आर्थिक पदार्थ की श्रेणी में आवेगी क्योंकि उसे मनुष्य ने तैयार किया था। इसी प्रकार नदियों के पास जो बालू (Sand) पाई जाती है वह मुक्त पदार्थ है। परन्तु मकान बनवाते समय जब वह मिट्टी शहर में मँगानी पड़ती है तब वह आर्थिक पदार्थ हो जाती है क्योंकि द्रव्य व्यय करने पर ही बालू शहर में मिलती है और जो व्यक्ति मिट्टी नदी के पास से शहर तक लाता है वह मेहनत करता है।

२. भौतिक (Material) तथा अभौतिक (Non-material) पदार्थ

भौतिक पदार्थ वे सब पदार्थ हैं जिन्हें हाथ से छुआ जा सकता है, आँख से देखा जा सकता है और जिनमें आकार (shape) तथा वजन (weight)

* डाक्टर ऐली का कहना है कि "आर्थिक पदार्थ वह हैं जो सभी आवश्यकताओं को संतुष्ट कर सकने के लिये आवश्यक मात्रा से कम मात्रा में पाये जाते हैं। अतएव हम...उनके लिये त्याग करने को तत्पर रहते हैं और वे प्रायः श्रम द्वारा ही प्राप्त होते हैं।" ["Economic goods are those which exist in quantities less than sufficient to satisfy all wants for them. Hence we...are willing to undergo sacrifice for them, and usually they are obtained only by exertion"—Dr. Richord T. Ely, *Outline of Economics*, p. 96]

होता है। उदाहरण के लिये पुस्तक, कलम, मेज, कुर्सी, खड़िया, कापी, रजिस्टर आदि सब भौतिक पदार्थ हैं। ध्यान रखने की बात है कि भौतिक पदार्थ में वस्तुओं के साथ-साथ उनके प्रयोग करने तथा उनके लाभ उठाने के सम्पूर्ण अधिकारों को भी शामिल कर लिया जाता है। उदाहरण के लिये किताब को जब हम भौतिक पदार्थ कहते हैं तो हमारा आशय केवल किताब से ही नहीं वरन् उसके प्रकाशन तथा लेखन के अधिकारों से भी है। ये मनुष्य के आंतरिक गुण से सम्बन्ध नहीं रखते, इस कारण यह वाह्य (External) होते हैं। साथ ही ये हस्तान्तरित (Transferable) हो सकते हैं और इनका स्वामित्व बदला जा सकता है। इस प्रकार भौतिक पदार्थों के निम्न तीन गुण होते हैं :

(१) ये देखे तथा छुए जा सकते हैं और इनका आकार एवं वजन होता है।

(२) ये वाह्य होते हैं।

(३) ये हस्तान्तरित किये जा सकते हैं तथा इनका स्वामित्व बदला जा सकता है।

अभौतिक पदार्थ वे पदार्थ हैं जिन्हें न देखा जा सकता है, न छुआ जा सकता है, न सूँघा जा सकता है और न चखा ही जा सकता है। इनका न आकार होता है और न वजन। फिर भी ऐसे पदार्थ पाये जाते हैं और मनुष्य को उपयोगिता प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिये गवैया के गाने की कला, नर्तकी के नाचने का ढंग, व्यापारिक कुशलता, वकील की चतुराई, अध्यापक की बुद्धि या उसका ज्ञान, दूकान की धाक या व्यापारिक हितेच्छा (Goodwill) आदि।

ये पदार्थ आंतरिक (Internal) भी हो सकते हैं तथा वाह्य (External) भी। गवैया का गाने का ढंग, व्यापारिक कुशलता, नर्त्तकी के नाचने की कला आदि आंतरिक गुण हैं और ये मनुष्य के व्यक्तित्व से पृथक् नहीं हो सकते। इस कारण इन्हें आंतरिक अभौतिक पदार्थ कहा जाता है। परन्तु दुकान की धाक या व्यापारिक हितेच्छा व्यापरियों के व्यापारिक संबंध आदि वाह्य अभौतिक पदार्थ कहलाते हैं क्योंकि ये मनुष्य के व्यक्तित्व से पृथक् होते हैं।

आचार्य मार्शल ने अभौतिक पदार्थ का भेद आंतरिक तथा वाह्य में बड़े स्पष्ट शब्दों में किया है। उनका कहना है कि आंतरिक अभौतिक पदार्थ वे हैं जो मनुष्य के भीतर पाये जाते हैं और जो व्यक्ति के कार्य करने तथा लाभ उठाने की

शक्ति तथा गुण से संबंध रखते हैं। इसके विपरीत उसके तथा दूसरे व्यक्तियों के पारस्परिक लाभप्रद संबंध वाह्य अभौतिक पदार्थ कहलाते हैं।*

३. हस्तांतरित योग्य (Transferable) तथा अ-हस्तांतरित योग्य (Non-transferable) पदार्थ

हस्तांतरित योग्य पदार्थ वे हैं जिनका स्वामित्व बदला जा सकता है अर्थात् जो खरीदे तथा बेचे जा सकते हैं। उदाहरण के लिये कलम, पेन्सिल, मेज, घर, व्यापारिक धाक आदि सब हस्तांतरित योग्य पदार्थ हैं। ध्यान रखने की बात है कि किसी पदार्थ के हस्तांतरित योग्य होने के लिये यह आवश्यक नहीं है कि उसे एक स्थान से दूसरे स्थान तक सुगमता से ले जाया जा सके। मकान को हटाया नहीं जा सकता, परन्तु उसका स्वामित्व बदल सकता है।

अ-हस्तांतरित योग्य पदार्थ वे हैं जिनका स्वामित्व नहीं बदल सकता क्योंकि वे वस्तुएँ विनिमयसाध्य नहीं हैं। उदाहरण के लिये मनुष्य के व्यक्तिगत गुण जैसे नर्तकी के नाचने की कला, वकील की बहस करने की दक्षता, अध्यापक के पढ़ाने की कुशलता आदि सभी अ-हस्तांतरित योग्य पदार्थ हैं क्योंकि ये विनिमयसाध्य नहीं हैं, अर्थात् इनको खरीदा तथा बेचा नहीं जा सकता।

४. उपभोग (Consumption) तथा उत्पादन (Production) पदार्थ

उपभोग पदार्थ से आशय उन पदार्थों से है जिनका उपयोग प्रत्यक्षरूप से आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिये किया जाता है। उदाहरण के लिये पहिनने के कपड़े, भोजन, जूते, किताबें आदि उपभोग पदार्थ हैं।

उत्पादन पदार्थ से हमारा आशय उन पदार्थों से है जिनका प्रयोग उत्पादन करने के लिये किया जाता है। ऐसे पदार्थ तात्कालिक सन्तुष्टि प्रदान नहीं करते और परोक्ष रूप से उपभोग के काम आते हैं। कच्चा माल, मशीन, कोयला, बीज आदि उत्पादन पदार्थ के उदाहरण हैं। इन पदार्थों के प्रयोग से वस्तुओं का निर्माण होता है जो हमारी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करती हैं।

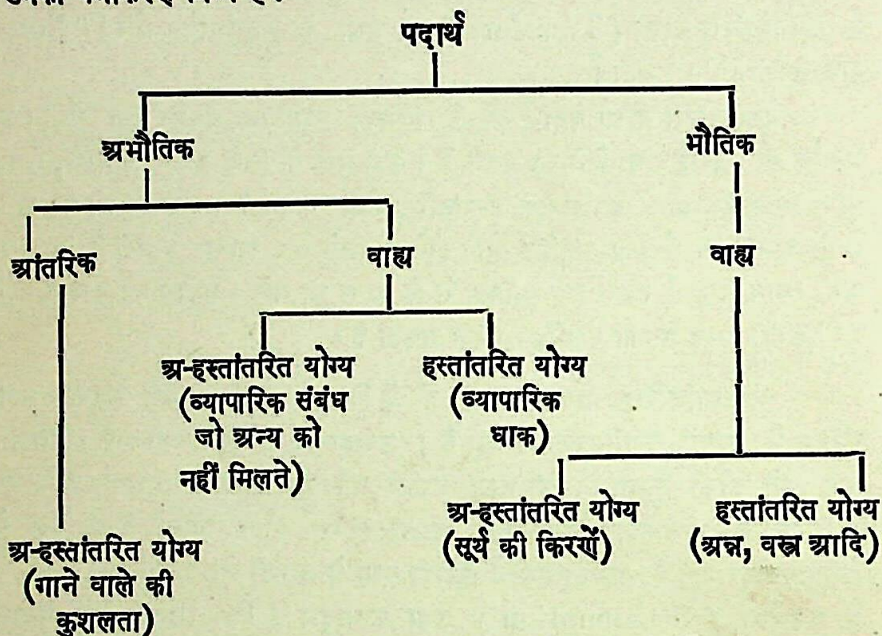
पदार्थ का वर्गीकरण

आचार्य मार्शल † ने पदार्थ का एक वर्गीकरण दिया है। उन्होंने सबसे पहले पदार्थ को दो भागों में बांटा है (१) भौतिक तथा (२) अभौतिक। इनको

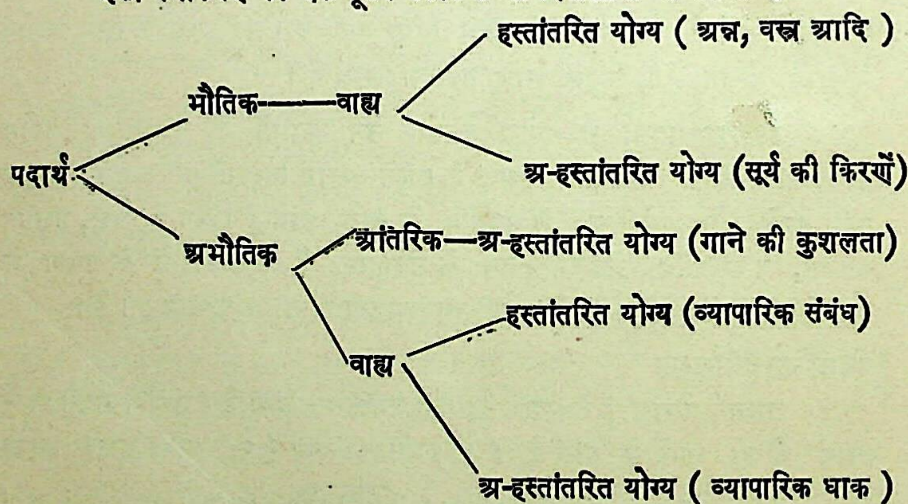
*"A man's *non-material* goods fall into two classes. One consists of his own qualities and faculties for action and for enjoyment...All these lie within himself and are called *internal*. The second class are called *external* because they consist of relations beneficial to him and other people."—Prof. Alfred Marshall, *Economics of Industry*, p. 35

† देखिये Marshall, *Principles of Economics*, p. 54-55

पुनः हस्तांतरित योग्य तथा अ-हस्तांतरित योग्य उप-विभागों में विभक्त किया है। उनका वर्गीकरण निम्न है :



इसी वर्गीकरण को एक दूसरे प्रकार से भी दिखलाया जा सकता है :—



२. संपत्ति या धन

(Wealth)

धन के व्यावहारिक तथा आर्थिक अर्थों में बड़ा भेद है। साधारण भाषा में वही व्यक्ति धनी कहलाता है जिसके पास बहुत सा रुपया, गहना तथा जायदाद

हो। बड़े-बड़े महलों में रहने वाले तथा मोटरों की सैर करने वाले व्यक्तियों को ही हम धनी कहते हैं। एक भीख माँगने वाले के लिये कोई भी न कहेगा कि इसके पास धन है। फिर भी, अर्थशास्त्र के अनुसार एक भिखमंगे के पास भी धन हो सकता है।

धन का अर्थ

अर्थशास्त्र में सभी मूल्यवान वस्तुएँ धन कहलाती हैं। मूल्यवान वस्तु वही होती है जिसके बदले में हमें कुछ अन्य वस्तुएँ मिल सकें। अन्य शब्दों में प्रत्येक मूल्यवान वस्तु का कुछ अर्थ (Value) होता है। अर्थ उन्हीं वस्तुओं का होगा जिनसे व्यक्ति को (१) उपयोगिता मिलती हो, (२) जो मात्रा में सीमित हों और (३) जिनका स्वामित्व बदला जा सके या जो हस्तांतरित योग्य हों। यही तीनों गुण आर्थिक पदार्थ (Economic Goods) के भी हैं। इस कारण 'आर्थिक पदार्थ' तथा 'धन' पर्यायवाची शब्द माने जाते हैं। दोनों का एक ही अर्थ है।

कुछ विद्वानों का मत है कि केवल भौतिक (material) पदार्थ ही धन की परिभाषा में लाने चाहिये। अभौतिक पदार्थ से व्यक्ति को आय भले ही हो जाती हो और वे चाहे कितने ही अच्छे क्यों न हों, परन्तु क्योंकि वे हस्तांतरित नहीं किये जा सकते इस कारण उन्हें संपत्ति कहना ठीक नहीं है। डाक्टर फेयर-चाइल्ड (Dr. Fairchild) ने यही विचार प्रकट किया है।* प्रो० फिशर और प्रो० मेहता भी इसी मत से सहमत दीख पड़ते हैं। परन्तु अपने मत के पक्ष में उन्होंने दूसरा कारण दिया है। उदाहरण के लिए प्रो० जे० के० मेहता (J. K. Mehta) का कहना है कि प्रत्येक अभौतिक वस्तु किसी न किसी भौतिक वस्तु के गुण का ही रूप है। अभौतिक वस्तुओं का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। अतएव जब हम सभी भौतिक वस्तुओं को धन में गिन लेते हैं और उसके पश्चात् अभौतिक वस्तु को भी गिने, तो एक ही वस्तु को दो बार गिनने की गलती हम करते हैं।† अतः, हम कह सकते हैं कि प्रत्येक भौतिक तथा मूल्यवान पदार्थ धन है।

धन के आवश्यक गुण

धन के प्रायः तीन आवश्यक गुण माने जाते हैं। वे हैं—(१) उपयोगिता,

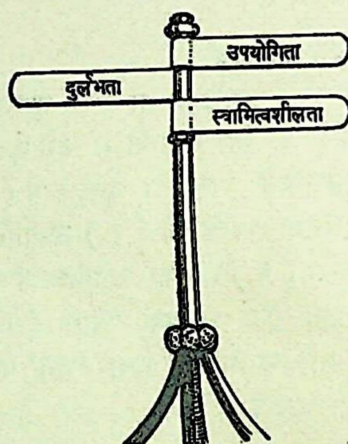
---

* डाक्टर फेयरचाइल्ड (Dr. Fairchild) का विचार है कि "सभी उपादेय तथा भौतिक पदार्थ जिनका स्वामी व्यक्ति है धन कहलाते हैं।" आगे चलकर वह प्रश्न करते हैं कि "क्या अच्छा स्वास्थ्य धन है?" इसका उत्तर देते हुए वह कहते हैं कि "नहीं। यदि बहुत अच्छा और उपादेय है तो क्योंकि यह अभौतिक हैं इसलिये संपत्ति नहीं है।" देखिये F. R. Fairchild, *Essential of Economics*, p. 17-8

† Prof. J. K. Mehta, *Gruondwork of Economics*, p. 12.

(२) दुर्लभता, तथा (३) स्वामित्वशीलता। हम एक एक करके इनके बारे में नीचे बतावेंगे।

(१) उपयोगिता (Utility)—कोई वस्तु धन तभी हो सकती है जब उसमें उपयोगिता हो, अर्थात् व्यक्तियों की आवश्यकता को सन्तुष्ट करने की शक्ति हो। यदि कोई वस्तु ऐसी है जिसकी किसी को भी उपयोगी न हो या जिसे कोई भी पसन्द न करे, तो स्पष्ट है कि उसके बदले में कोई कुछ भी देने को तैयार न होगा। अतएव कोई वस्तु 'धन' तभी कही जा सकती है जब वह उपयोगी हो।



चित्र १७—(धन के गुण)

(२) दुर्लभता (Scarcity)—वस्तु तभी धन कही जावेगी जब वह मात्रा में सीमित हो। दुर्लभता का अर्थ यह है कि वस्तु अपरिमित मात्रा में प्राप्त न हो या उसकी पूर्ति (Supply) उसकी माँग (Demand) से कम हो। जब वस्तु अपरिमित मात्रा में उपलब्ध रहती है तो उसको कोई भी व्यक्ति बिना किसी मेहनत के प्राप्त कर सकता है। उदाहरण के लिये हवा या धूप ले लीजिये। क्योंकि वे वस्तुएँ दुर्लभ नहीं हैं इस कारण कोई भी व्यक्ति इनके बदले में कुछ भी देने को तैयार नहीं होता। जब वस्तु दुर्लभ होती है, अर्थात् मात्रा में परिमित होती है तभी उसके बदले में अन्य वस्तुएँ या द्रव्य प्राप्त होता है। अतएव दुर्लभता धन का एक प्रमुख गुण है।

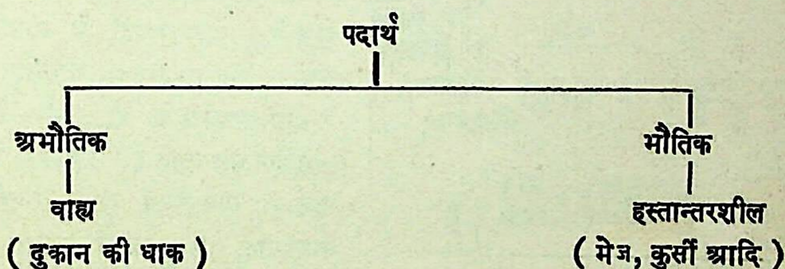
(३) स्वामित्वशीलता या हस्तांतरितता (Transferability)—संपत्ति का एक आवश्यक गुण यह भी है कि वह हस्तांतरित की जा सके, अर्थात् उसका स्वामित्व बदला जा सके। आप किसी भी वस्तु के लिये उसी समय द्रव्य देने को तत्पर होंगे जब आप उस वस्तु के मालिक हो सकते हैं। किताब, कलम, मेज, कुर्सी आदि ऐसे पदार्थ हैं जिनका स्वामित्व बदल सकता है। इस कारण इनको संपत्ति कहा जाता है। परन्तु व्यक्तिगत गुण आंतरिक होते हैं। वह परिवर्तनशील नहीं होते क्योंकि उनका स्वामित्व नहीं बदला जा सकता। अतएव ऐसे गुणों के बदले में कोई भी व्यक्ति कुछ भी देने को तैयार नहीं होता।

क्या व्यक्तिगत गुण धन हैं

ऊपर के विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि व्यक्तिगत गुण जो आंतरिक होते हैं स्वामित्वशील नहीं होते। अतएव यदि स्वामित्वशीलता धन का एक आवश्यक

लक्षण माना जाय तो व्यक्तिगत गुण (जैसे वकील की बहस करने की शक्ति, गवैयों का गला, नृतकी के नाचने की कला आदि) संपत्ति नहीं कहे जा सकते। मार्शल आदि विद्वानों ने आंतरिक व्यक्तिगत गुणों को संपत्ति नहीं माना है। हमको 'वस्तु' और उसके 'गुण' (Quality) में भेद करना चाहिये। गाने वाला अपने गले के सुरीलेपन को (जो एक गुण है) नहीं बेच सकता। परन्तु वह गाना गाकर धन कमा सकता है। गाना गाना, जो एक प्रकार की सेवा है, धन है न कि गाने वाले का सुरीला राग। इसी प्रकार "घोड़ा एक धन है, न कि घोड़े की ताकत। भ्रम इसलिये होता है कि घोड़ा—जो एक संपत्ति है—और उसके उन गुणों को जिनके कारण वह उपयोगी है, में भेद नहीं समझा जाता।"*

इस प्रकार पदार्थ का जो हम पीछे वर्गीकरण दे आये हैं उसमें से केवल निम्न ही संपत्ति हैं :—



इस प्रकार व्यक्तिगत गुण धन में सम्मिलित नहीं किये जाते।

धन का वर्गीकरण

धन निम्न चार प्रकार का होता है :—

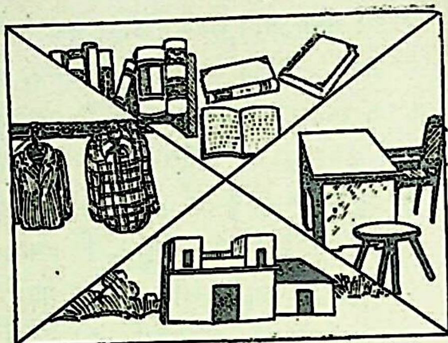
(१) वैयक्तिक धन (Personal Wealth)
(२) सामूहिक धन (Social or Collective Wealth)
(३) राष्ट्रीय धन (National Wealth)
(४) अन्तर्राष्ट्रीय धन (International Wealth)

इनका भेद नीचे स्पष्ट किया गया है।

(१) वैयक्तिक धन—किसी एक व्यक्ति (Individual) के अधिकार में जो संपत्ति पाई जाती है उसे वैयक्तिक या व्यक्तिगत धन कहते हैं। व्यक्ति के पास

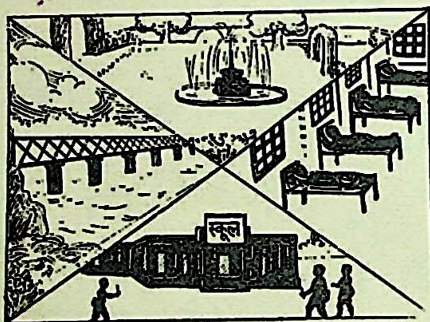
*"It is not the strength of a horse that is wealth, but the horse itself. The mistake comes from confusing the horse, which is an object of wealth, with those qualities which make the horse useful."—F. G. Fairchild, *Essential of Economics*, p. 18.

पाये जाने वाले सभी (१) भौतिक तथा हस्तान्तरशील पदार्थ और (२) अभौतिक परन्तु वाह्य पदार्थ व्यक्तिगत संपत्ति के भीतर आ जाते हैं। परन्तु व्यक्ति के व्यक्तिगत गुण उसकी वैयक्तिक संपत्ति में नहीं आते। इस प्रकार व्यक्ति के पास जो रुपया-पैसा, मकान, जायदाद, फर्नीचर, कपड़े, व्यावसायिक हिस्से आदि हैं वह सब वैयक्तिक संपत्ति माने जाते हैं।



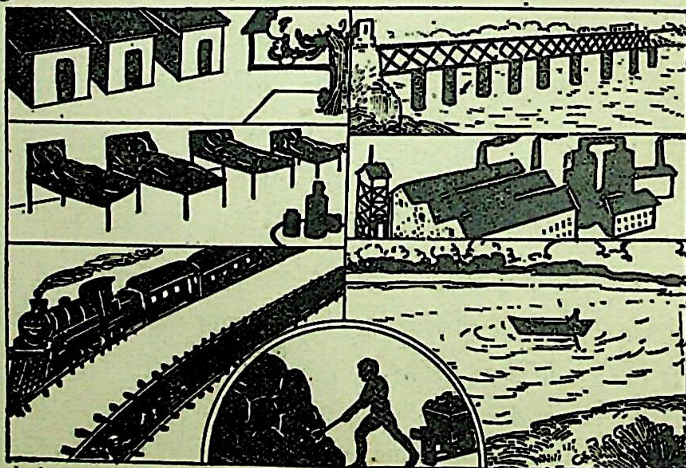
चित्र १८—वैयक्तिक संपत्ति

(२) सामूहिक धन—सामूहिक धन में वह सब संपत्ति शामिल की जाती है जिस पर समाज के व्यक्तियों का सम्मिलित या सामूहिक रूप से अधिकार होता है। अन्य शब्दों में नगर-पालिकाओं, जिला-परिषद, प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सरकारों की जो संपत्ति है उसे सामूहिक धन कहते हैं। उदाहरण के लिये पार्क या सार्वजनिक बगीचे, सड़कें, पुल बन्दरगाह, सार्वजनिक वाचनालय, सार्वजनिक स्कूल, सार्वजनिक अस्पताल, नहरें, आदि सभी सामूहिक संपत्ति के उदाहरण हैं।



चित्र १९—सामूहिक संपत्ति

(३) राष्ट्रीय धन —राष्ट्रीय संपत्ति के अन्तर्गत वह सब पदार्थ आते हैं जिन



चित्र २०—राष्ट्रीय संपत्ति

पर किसी एक राष्ट्र या देश का अधिकार होता है। इसमें निम्न लिखित पदार्थ आ जाते हैं :—

(१) देश के नागरिकों की वैयक्तिक संपत्ति।

(२) देश की सार्वजनिक संपत्ति।

(३) देश के प्राकृतिक साधन जैसे खनिज पदार्थ, जलवायु, वन, नदियाँ, प्रपात आदि।

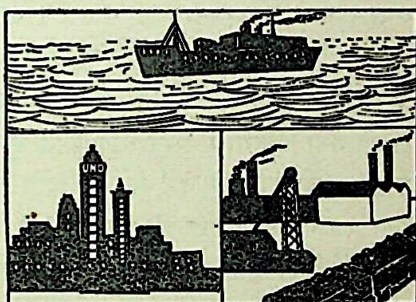
(४) देश के व्यापारिक तथा औद्योगिक सम्बन्ध, साख, नाम या प्रसिद्धि आदि जिनसे देश के व्यवसाय तथा व्यापार में सहायता मिलती है।

कुछ अर्थशास्त्री व्यक्तियों के व्यक्तिगत गुणों को तथा उनकी आंतरिक शक्तियों को भी राष्ट्रीय संपत्ति में मिला लेते हैं। परन्तु ऐसा करना इस कारण उचित नहीं है क्योंकि हम व्यक्तिगत गुणों को संपत्ति से पृथक् मान चुके हैं।

(४) अन्तर्राष्ट्रीय धन—संसार भर के सभी राष्ट्रों की संपत्ति के योग को अन्तर्राष्ट्रीय संपत्ति कहते हैं। इनके अतिरिक्त वह सब पदार्थ जिन पर सभी राष्ट्रों का सम्मिलित अधिकार है, भी इसमें मिला ली जाती हैं। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय धन में निम्न पदार्थ आते हैं :—

(१) सभी राष्ट्रों की राष्ट्रीय संपत्तियाँ

(२) ऐसी संस्थायें और उनका धन जिन पर सभी राष्ट्रों का अधिकार है जैसे अन्तर्राष्ट्रीय-श्रम संघ, संयुक्त राष्ट्र संघ आदि तथा उनका धन।



चित्र २१—अंतर्राष्ट्रीय संपत्ति

(३) सामान्य वस्तुयें जैसे महासागर, वायुमंडल आदि।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे यह स्पष्ट है कि जब तक कोई पदार्थ परिवर्तनशील नहीं है, वह धन नहीं कहा जा सकता। उदाहरण के लिये बी० ए० या एम० ए० की डिग्री ले लीजिये। यह डिग्री उपयोगी है और सीमित भी है। परन्तु क्योंकि यह बेची नहीं जा सकती, अतएव यह धन नहीं है। परन्तु किसी पुस्तक के छपवाने तथा बिकवाने का अधिकार (Copyright) धन है क्योंकि उपयोगी तथा दुर्लभ होने के साथ-साथ यह बेचा भी जा सकता है। व्यक्तिगत गुण चाहे जितने भी उपयोगी क्यों न हों संपत्ति नहीं कहे जा सकते। इस प्रकार गानेवाले का गला संपत्ति नहीं है। सूर्य की धूप भी संपत्ति नहीं है क्योंकि वह बेची या खरीदी नहीं जा सकती। देश के प्राकृतिक साधन राष्ट्रीय धन के अन्तर्गत आते हैं।

३· उपयोगिता

अर्थ

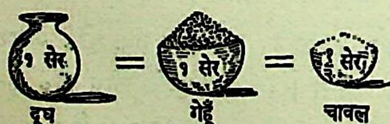
किसी वस्तु की आवश्यकतायें संतुष्ट करने की शक्ति को उपयोगिता कहते हैं। मान लीजिये किसी को भूख लगी है। खाना खाने पर उसकी भूख मिट जाती है। हम कहेंगे कि भोजन से व्यक्ति को उपयोगिता मिलती है। वस्तु चाहे कोई भी हो, यदि उसके उपभोग से किसी भी प्रकार की आवश्यकता संतुष्ट होती है तो यह कहा जावेगा कि वस्तु से उपयोगिता मिलती है।

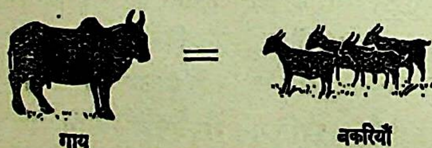
उपयोगिता तथा भलाई—दिन प्रति दिन की भाषा में वही वस्तु उपयोगी मानी जाती है जिससे हमारे स्वास्थ्य को लाभ पहुँचे और जो हमें किसी प्रकार की हानि न पहुँचाये। उदाहरण के लिये शराब को उपयोगी नहीं कहा जायगा। परन्तु अर्थशास्त्र में इस बात का ध्यान नहीं रखा जाता कि वस्तु से स्वास्थ्य सुधरेगा या नहीं। यदि वस्तु किसी आवश्यकता को पूरी करती है तो उसे उपयोगी माना जावेगा।

उपयोगिता की निर्भरता—ध्यान रखने की बात है कि वस्तु से मिलने वाली उपयोगिता दो बातों पर निर्भर रहती है—(१) वस्तु की उपादेयता (usefulness) तथा (२) आवश्यकता की तीव्रता। वस्तु किस प्रकार की है और कैसी बनी है इस पर उपयोगिता की मात्रा निर्भर रहती है। मान लीजिये किसी को काले पेटेंट लैदर के जूते पसन्द हैं। यदि उसे इसी चमड़े के जूते मिल गये तब तो उसे काफी अधिक उपयोगिता मिलेगी। परन्तु यदि पेटेंट चमड़े के जूते बाजार में नहीं हैं और व्यक्ति किसी अन्य चमड़े के बने जूते खरीदता है तो उसे अधिक उपयोगिता नहीं मिलेगी। इसी प्रकार यदि व्यक्ति की आवश्यकता तीव्र है तो उसे अधिक उपयोगिता मिलेगी और यदि आवश्यकता तीव्र नहीं है तो उपयोगिता भी कम मिलेगी।*

४· अर्घ
(Value)

किसी एक वस्तु के बदले में जितनी मात्रा में कोई दूसरी वस्तु मिल सके वह उसकी विनिमय शक्ति या अर्घ कहलाता है। उदाहरण के लिये यदि १ सेर चावल के बदले में दो सेर गेहूँ मिलें तो चावल का अर्घ दुगने गेहूँ कहलावेगा। यदि एक सेर दूध के बदले में १ सेर गेहूँ मिले, तो दूध का अर्घ गेहूँ के बराबर कहा जावेगा। इसी प्रकार यदि एक गाय के बदले में चार बकरियाँ मिलें तो गाय





चित्र २२—अर्घ

* 'उपयोगिता' की परिभाषा तथा इसके प्रकार का विस्तृत उल्लेख 'उपभोग' के भाग में किया गया है।

का अर्घ चार बकरियाँ कहा जावेगा। किसी एक वस्तु के बदले में अन्य वस्तुयें प्राप्त करने की शक्ति ही अर्घ कहलाता है।*

अर्घ का पता लगाते समय हमें दो वस्तुओं की विनिमय-शक्ति की तुलना करनी होती है। अर्घ का तभी पता लग सकता है जब कम से कम दो वस्तुयें हों। यदि संसार में केवल एक ही वस्तु होती तो उसका अर्घ कुछ भी नहीं होता क्योंकि हम तुलना करने ही नहीं पाते।†

इसी प्रकार यदि किसी वस्तु के बदले में हमें कोई भी अन्य वस्तु न मिले तो उस वस्तु का अर्घ कुछ भी नहीं होगा। संसार में ऐसी अनेक वस्तुयें हैं जो प्रचुर मात्रा में मिलती हैं और इस कारण कोई भी व्यक्ति उनके बदले में कुछ भी देने को तैयार नहीं होता। उदाहरण के लिये सूर्य की किरणें, हवा, दूध आदि को ले लीजिये। यह सभी वस्तुयें बड़ी उपयोगी हैं, परन्तु इनका अर्घ नहीं है। अर्घ का प्रधान गुण उपयोगिता नहीं, वरन् दुर्लभता है। जो वस्तु दुर्लभ होगी उसीका अर्घ होगा।

५. मूल्य

(Price)

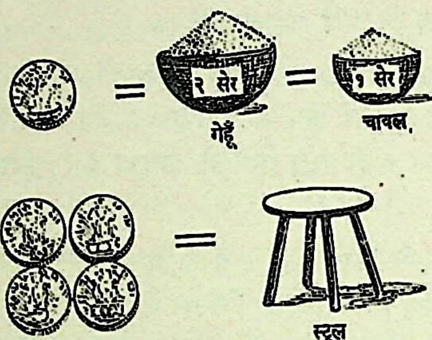
जब किसी वस्तु का अर्घ किसी अन्य वस्तु में न आँक कर द्रव्य में आँका जाता है तो उसे मूल्य कहते हैं। उदाहरण के लिये यदि यह कहा जाय कि दो सेर गेहूँ का मूल्य एक रुपया है तो इसका अर्थ यह होगा कि गेहूँ का मूल्य

* प्रो० मार्शल ने अर्घ की परिभाषा देते हुए लिखा है कि "अर्घ या विनिमय शक्ति...दूसरी वस्तु की वह मात्रा है जो पहली वस्तु के बदले में मिलती है। इस प्रकार यह एक तुलनात्मक शब्द है और किसी एक समय या स्थान पर दो वस्तुओं के सम्बन्ध को बताता है।" [The value, that is the exchange value,......is the amount of that second thing which can be got there and then in exchange for the first. Thus the term value is relative, and expresses the relation between two things at a particular place and time"—Marshall, *Economics of Industry*, p. 39.]

प्रो० एडम स्मिथ का कहना है कि "अर्घ शब्द के दो विभिन्न अर्थ हैं। कभी-कभी यह किसी वस्तु की उपयोगिता को बताता है और कभी-कभी अन्य वस्तुयें खरीदने की शक्ति। परन्तु पहले अर्थ में इस शब्द का प्रयोग उचित नहीं है।" ["The word value has two different meanings, and sometimes expresses the utility of some particular object and sometimes power of purchasing other goods which the possession of that object conveys. But experience has shown that it is not well to use the word in the former sense"—Quoted by Marshall. See his। *Economics of Industry*, p. 39.]

† देखिये Moreland, *Introduction to Econamics*, pp. 15-16.

२०, रुपये मन या रुपये का २ सेर है। इसी प्रकार यदि चावल एक रुपये का एक



चित्र २३—मूल्य

सेर आता है तो यह कहा जायगा कि चावल का मूल्य ४० रुपया मन है। यदि एक स्टूल चार रुपये में मिल जाय तो कहा जायगा कि स्टूल का मूल्य चार रुपये हैं।

परीक्षा प्रश्न

उत्तर प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—उत्पादक वस्तुओं पर संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९४५)

२—धन और मूल्य पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। (१९३८, १९३५)

३—अन्तर्राष्ट्रीय संपत्ति पर टिप्पणी लिखिये। (१९३५)

उत्तर प्रदेश इन्टर कामर्स

४—सम्पत्ति और मूल्य पर नोट लिखिये। (१९५०)

५—"आर्थिक वस्तु" पर नोट लिखिये। (१९४९)

६—सामाजिक धन, 'राष्ट्रीय धन', "अन्तर्राष्ट्रीय धन" और "व्यक्तिगत धन" के भेद बताइये। प्रत्येक के तीन उदाहरण भी दीजिये। (१९४८)

७—आप धन का क्या अर्थ समझते हैं? धन के क्या लक्षण हैं? समझाकर लिखिये। (१९४७)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

८—संपत्ति की परिभाषा दीजिये। वैयक्तिक या व्यक्तिगत और सामाजिक संपत्ति में भेद बताइये और यह भी बताइये कि "आर्थिक वस्तुओं" से आप क्या समझते हैं। (१९५३)

९—संपत्ति पर संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९५३, १९५२)

१०—प्रकृत्ति दत्त (Free) और आर्थिक वस्तुओं पर नोट लिखिये। (१९५१)

११—"धन" की परिभाषा दीजिये। बताइये कि निम्नलिखित आपकी धन की परिभाषा के अन्तर्गत आते हैं या नहीं :—(क) किसी देश के प्राकृतिक साधन, (ख) धूप, (ग) गाने का स्वर, (घ) बी० ए० की डिग्री, (ङ) कापी राइट। कारण भी दीजिये। (१९३८)

१२—अर्थशास्त्र में धन से जो अर्थ लिया जाता है उसे सविस्तार लिखिये। यदि आपसे भारतीय धन की गणना करने के लिये कहा जाय तब आप अपनी गणना में किन-किन वस्तुओं को सम्मिलित करेंगे? (१९३१)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर कामर्स

१३—संपत्ति पर एक नोट लिखिये। (१९४६, १९४७)

१४—'धन' की परिभाषा दीजिये और अर्थशास्त्र में धन का जो कुछ भी अर्थ लिया जाता है उसको सविस्तार समझाइये। (१९४१)

पटना इन्टर आर्ट्स

१५—आप 'धन' से क्या समझते हैं ? उन गुणों का वर्णन कीजिए जो किसी चीज में धन कहलाने के लिये आवश्यक होते हैं। (१९५१)

१६—प्रयोग-अर्घ और विनिमय-अर्घ का भेद बताइये। यह भी बताइये कि पानी या हवा के लिये कोई मूल्य क्यों नहीं दिया जाता ? (१९४८)

१७—'पदार्थ', 'धन' तथा 'पूँजी' की परिभाषा दीजिये। वह कौन से गुण हैं जिनसे एक दूसरे का भेद पता चलता है। (१९४८)

पटना इन्टर कामर्स

१८—'धन' तथा 'अर्घ' की परिभाषा दीजिये और यह भी बताइये कि मनुष्य के लिये इनका क्या महत्व है ? (१९५१)

१९—'धन' पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। (१९४९)

२०—पदार्थ का वर्गीकरण बताइये। उपभोग पदार्थ तथा पूँजी पदार्थ में भेद बताइये। उदाहरण भी दीजिये। (१९४८)

२१—'उपभोग पदार्थ' तथा 'पूँजी पदार्थ' में भेद कीजिये। निम्नलिखित को आप किस श्रेणी में रखेंगे :—

(अ) एक डाक्टर की मोटर,
(ब) कालेज के चपरासी की साइकिल,
(स) गाँव के एक लड़के के हाथ का गन्ना,
(द) चीनी की मिल के गोदाम में गन्ना, (१९४७)

सागर इन्टर आर्ट्स

२२—'धन' 'उपयोगिता' तथा 'मूल्य' पर सूक्ष्म टिप्पणी लिखिये। (१९५२)

२३—उपयोगिता की परिभाषा दीजिये। मूल्य तथा सीमान्त उपयोगिता का सम्बन्ध बतलाइये। (१९५१)

२४—पूँजी पर एक सूक्ष्म टिप्पणी लिखिये। (१९४८)

सागर इन्टर कामर्स

२५—'उपयोगिता' से आप क्या समझते हैं ? (१९५२)

मध्य भारत इन्टर आर्ट्स

२६—धन की परिभाषा दीजिये। कारण बताइये कि निम्न धन हैं या नहीं :—

(अ) पुस्तक का सर्वाधिकार (Copy-right), (ब) बी० ए० की डिग्री, (स) गायक की आवाज, (द) हिन्द महासागर। (१९५३)

उपभोग

CONSUMPTION

उपभोग का अर्थ केवल पेट भरना ही नहीं है। इस शब्द का प्रयोग प्राप्त संपत्ति के अनुकूलतम उपयोग अर्थ में करना चाहिये।

—सी० जीड

विषय-सूची

अध्याय			पृष्ठ संख्या
१२—उपभोग	...	...	९७—१०५
१३—आवश्यकताएँ	...	...	१०६—११४
१४—आवश्यकताओं के लक्षण	...	...	११५—१२४
१५—आवश्यकताओं का वर्गीकरण	...	...	१२५—१३९
१६—उपयोगिता	...	...	१४०—१५३
१७—सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम		...	१५४—१६८
१८—सम-सीमान्त उपयोगिता नियम		...	१६९—१७८
१९—उपभोक्ता का अतिरेक	...	...	१७९—१९१
२०—रहन-सहन का स्तर	...	...	१९२—२०३
२१—पारिवारिक बजट	...	...	२०४—२१४
२२—पारिवारिक बजटों का संकलन	...	...	२१५—२३३
२३—आय और व्यय	...	...	२३४—२४४
२४—बचत	...	...	२४५—२५०
२५—विलासिताएँ तथा अपव्यय	...	...	२५१—२५६

बारहवाँ अध्याय

उपभोग

(Consumption)

यह आपको बताया जा चुका है कि उपभोग अर्थशास्त्र का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विभाग है। इसका कारण यह है कि उपभोग द्वारा ही मनुष्य अपनी सम्पूर्ण आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करता है। यदि मनुष्य आवश्यकताओं के उपभोग की जरूरत न समझे तो उत्पादन, विनिमय तथा वितरण आदि जितनी भी क्रियायें हैं उनको कोई भी न करे। इसी कारण उपभोग का बड़ा महत्त्व है।

१· उपभोग की परिभाषा

(Definition of Consumption)

उपभोग का अर्थ

जब उपभोग का इतना महत्त्व है तो उसका सही-सही अर्थ जानना भी बड़ा आवश्यक है। विभिन्न विद्वानों ने उपभोग की भिन्न-भिन्न प्रकार से परिभाषायें दी हैं। इनमें से कुछ सही हैं और कुछ गलत। हम पहले विभिन्न परिभाषाओं के गुण-दोष देखेंगे और उसके पश्चात् उपभोग की एक सही परिभाषा देंगे।

(१) भौतिक पदार्थ का नष्ट होना उपभोग है—कुछ विद्वानों का मत है कि जब किसी वस्तु का उपभोग किया जाता है तो उसके फलस्वरूप उस वस्तु का नाश हो जाता है। उदाहरण के लिये रोटी खा लेने पर रोटी का नाश हो जाता है या कोयला जला लेने पर कोयला नष्ट हो जाता है आदि। अतः, भौतिक पदार्थ का नष्ट होना ही उपभोग है।

परन्तु ऐसा सोचना पूर्णतः अनुचित है। वस्तु के उपभोग से उस वस्तु का नाश नहीं होता, केवल उसका रूप बदल जाता है। वस्तु पुराने रूप में न रहकर एक नया रूप ले लेती है। उदाहरण के लिये खा लेने पर रोटी रक्त, चर्बी आदि में बदल जाती है। कोयले की कारबन-डाई-आक्साइड हवा बन जाती है। विज्ञान हमें बताता है कि भौतिक पदार्थ न तो कभी नष्ट ही हो सकते हैं और न नये बनाये ही जा सकते हैं। अतः, यह परिभाषा पूर्णतः गलत है।

(२) उपयोगिता के ह्रास को उपभोग कहते हैं—जब किसी वस्तु का उपभोग किया जाता है तो उसकी उपयोगिता पहले से कम हो जाती है। उदाहरण

के लिये नये कोट या जूते की जो उपयोगिता होती है वह पुराने की नहीं होती। पुरानी किताबें यदि आप बाजार में बेचने जायँ तो आपको आधे दाम ही मिलेंगे और यदि किताब का संस्करण पुराना है या पुस्तक अधिक गंदी है तो उससे भी कम। इसका क्या कारण है? आपने किताब का उपभोग किया है जिससे उसकी उपयोगिता पहले से कम हो गई है और इस कारण उसका बाजारी-मूल्य भी कम हो गया है। अतएव यह कहना सर्वथा उचित है कि उपभोग से उपयोगिता का ह्रास होता है।*

यह ठीक है कि उपभोग के कारण उपयोगिता का ह्रास हो जाता है, परन्तु क्या हम इसे उपभोग की परिभाषा कह सकते हैं? जब हम किसी वस्तु का उपभोग करते हैं तो परिणाम यह होता है कि वस्तु की उपयोगिता घट जाती है। यह उपभोग की क्रिया का परिणाम है, न कि स्वयं उपभोग की क्रिया। किसी क्रिया के परिणाम को क्रिया कह कर परिभाषित करना बड़ी भारी भूल है। अतः, यह परिभाषा ठीक नहीं है।

(३) किसी क्रिया से प्राप्त प्रत्यक्ष सन्तोष उपभोग है—जब हम किसी वस्तु का उपभोग करते हैं तो उससे हमें कुछ सन्तोष प्राप्त होता है। यह सन्तोष दो प्रकार का होता है—प्रत्यक्ष तथा परोक्ष। प्राप्त होने वाला प्रत्यक्ष सन्तोष उपभोग है और परोक्ष सन्तोष उत्पादन।

इस परिभाषा को समझने के लिये प्रत्यक्ष तथा परोक्ष सन्तोष का भेद समझना अत्यन्त आवश्यक है। मान लीजिये आपको भूख लग रही है। भूख मिटाने के लिये आपने रोटी खाई। रोटी खाने से आपको जो सन्तोष मिला वह प्रत्यक्ष सन्तोष कहा जावेगा। परन्तु रोटी खाने से आपके शरीर में रक्त तथा माँस बढ़ेगा जिससे आपकी शक्ति बढ़ेगी और आपको कुछ उपयोगिता प्राप्त होगी। इस प्रकार के सन्तोष को परोक्ष सन्तोष कहेंगे। एक दूसरा उदाहरण लीजिये। कपड़ा साफ करने के लिये आप साबुन का प्रयोग करते हैं। कपड़ा साफ हो जाने पर आपको जो सन्तोष प्राप्त होता है उसे प्रत्यक्ष सन्तोष कहेंगे। परन्तु साफ कपड़ा पहन कर बाजार जाने पर आपको जो सन्तोष प्राप्त होगा तथा आपको जो आदर प्राप्त होगा उसे परोक्ष सन्तोष कहेंगे। किसी क्रिया से प्राप्त होने वाला प्रत्यक्ष सन्तोष उपभोग है।

यह परिभाषा जो कुछ कहती है उतना ठीक है। परन्तु इसकी कमी यह है कि यह पूर्ण नहीं है। यह केवल सन्तोष की बात करती है, वस्तु की उपयोगिता

*कुछ व्यक्ति उपयोगिता 'ह्रास' के स्थान पर उपयोगिता 'नष्ट' हो जाना कहते हैं। परन्तु ऐसा कहना गलत है। उपभोग से उपयोगिता नष्ट नहीं होती, केवल कम हो जाती है जैसा कि ऊपर के उदाहरणों में बताया गया है।

ह्रास की बात नहीं करती। उपभोग एक क्रिया है, यह भी यह स्पष्ट नहीं करती। अतएव यह केवल आंशिक परिभाषा ही है।

(४) **उपभोग की सही परिभाषा**—उपभोग की सही परिभाषा देने के पहले निम्न बातें अच्छी तरह समझ लेना जरूरी हैं :

(१) उपभोग एक क्रिया है।
(२) इससे प्रत्यक्ष सन्तोष प्राप्त होता है।
(३) इससे वस्तु की उपयोगिता कम हो जाती है।

अतः हम कह सकते हैं कि **उपभोग वह क्रिया है जिससे प्रत्यक्ष सन्तोष प्राप्त होता है और जिसके फलस्वरूप वस्तु की उपयोगिता कम हो जाती है।**

२. उपभोग तथा उत्पादन में भेद

(Difference Between Consumption and Production)

उपभोग का अर्थ पूरी तरह समझ में आ जाय इसके लिये आवश्यक है कि उपभोग तथा उत्पादन का भेद स्पष्ट कर दिया जाय। ऊपर एक परिभाषा में बताया गया है कि प्रत्यक्ष सन्तोष उपभोग है और परोक्ष सन्तोष उत्पादन। परन्तु इससे दोनों के भेद का ठीक से पता नहीं चलता।

प्रो० मार्शल (Prof. Marshall) का कहना है कि उपभोग प्रतिकूल उत्पादन है अर्थात् उत्पादन का ठीक उल्टा है।* उत्पादन द्वारा नई नई वस्तुओं का निर्माण होता है और उपयोगिताओं का सृजन होता है। इसके विपरीत उपभोग में वस्तुओं का सेवन किया जाता है और इससे उपयोगिता का ह्रास हो जाता है। परन्तु इससे भी दोनों का भेद स्पष्ट नहीं होता। यदि हम कहें कि स्त्री प्रतिकूल मनुष्य है या मनुष्य की उल्टी है तो दोनों का भेद तो स्पष्ट नहीं होता। आवश्यकता इस बात की है कि दोनों का भेद विस्तार से स्पष्ट किया जाय।

कुछ विद्वानों का कहना है कि उत्पादन में उपयोगिता का सृजन होता है और उपभोग में उपयोगिता का ह्रास। परन्तु यह भेद भी पूर्णतः स्पष्ट नहीं है। यदि ध्यान से देखा जाय तो यह कहा जा सकता है कि उपभोग तथा उत्पादन दोनों ही क्रियाओं से व्यक्ति को उपयोगिता प्राप्त होती है। फिर दोनों में भेद क्या है? भेद केवल इतना है कि उपभोग की क्रिया से प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिता क्रमशः कम होती जाती है और उत्पादन की क्रिया से प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिता क्रमशः बढ़ती जाती है। यह ध्यान रखने की बात है कि हम सीमान्त

*"Consumption may be regarded as negative production"—Marshall, *Economics of Industry*, p. 42

उपयोगिता की बात कहते हैं, कुल उपयोगिता की नहीं। उपभोग तथा उत्पादन दोनों ही क्रियाओं में कुल उपयोगिता बढ़ेगी अवश्य—हाँ उनके बढ़ने की गति भिन्न होगी। अतः जहाँ भी हम देखें कि किसी क्रिया के फलस्वरूप प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिता क्रमशः घट रही है, हमें यह समझ लेना चाहिये कि यह उपभोग की क्रिया है और इसके विपरीत जहाँ भी सीमान्त उपयोगिता क्रमशः बढ़ रही हो, क्रिया उत्पादन की है।*

३· उपभोग के प्रकार

(Kinds of Consumption)

उपभोग के कई भेद हैं। उन्हें नीचे स्पष्ट किया गया है :

(१) शीघ्र तथा धीमा उपभोग—जब हम किसी वस्तु का उपभोग करते हैं तो हो सकता है कि उपभोग की क्रिया शीघ्र ही समाप्त हो जाय या वह अधिक समय तक चलती रहे। प्यास मिटाने के लिये आप एक गिलास पानी पीते हैं। इसमें उपभोग की क्रिया शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। इसके विपरीत आप जो कोट पहिनते हैं वह कई वर्षों में फटता है। इसमें उपभोग की यह क्रिया कई वर्षों तक चलती रहती है। आपकी मोटर १०-१५ वर्षों में खराब होती है, उपभोग की यह क्रिया १०-१५ वर्ष तक चलती रहती है। आप जिस मकान में रहते हैं वह ५० वर्षों में खराब होता है। आप मकान का उपभोग ५० वर्ष तक करते रहते हैं। अतः कुछ उपभोग की क्रिया शीघ्र समाप्त हो जाती है और कुछ वर्षों चलती रहती है। **जो क्रिया शीघ्र समाप्त हो जाती है उसे शीघ्र उपभोग कहते हैं और जो वर्षों चलती रहती है उसे धीमा उपभोग कहते हैं।**†

जो वस्तुएँ शीघ्र नाशवान (perishable) होती हैं उनका उपभोग शीघ्र उपभोग होता है। उदाहरण के लिये फल, तरकारी, पानी, शर्बत, बर्फ आदि का

---

* "An activity is called consumption when it is looked at from the point of view of that want in the process of satisfaction or removal of which it yields, unit by unit, diminishing satisfaction"—J. K. Mehta, *Groundworks of Economics*, p. 27. ["एक क्रिया उस समय उपभोग कहलाती है, जब उसे उस आवश्यकता के दृष्टिकोण से देखा जाय जिसको सन्तुष्ट करने में हमें प्रति इकाई ह्रासमान उपयोगिता मिलती है।"]

†"भूख मिटाने के लिये रोटी का उपभोग किया जाता है और पढ़ते समय एक किताब का उपभोग किया जाता है। इस प्रकार किसी वस्तु का उपभोग शीघ्र हो सकता है या धीमा।" [Bread is consumed to appease hunger; a book is consumed when it is read. Thus the consumption of a commodity may take place quickly or slowly"—Dr. R. D. Richards, *Groundwork of Economics*, p. 123]

उपभोग ले लीजिये। परन्तु जो वस्तुएँ टिकाऊ (durable) होती हैं उनका उपभोग धीमा होता है। उदाहरण के लिये मकान, साइकिल, मोटर, कमीज, धोती, कोट, जूता आदि ले लीजिये।

(२) उत्पादक तथा अंतिम उपभोग—कुछ अर्थशास्त्री उपभोग की क्रिया को उत्पादक (Productive) तथा अंतिम (Final) उपभोग में भी बाँटते हैं। जब किसी वस्तु का प्रयोग उत्पादन के लिये किया जाय तो उसे उत्पादक उपभोग कहा जाता है और जब किसी आवश्यकता की पूर्ति के लिये वस्तु का प्रत्यक्ष उपभोग किया जाय तो उसे अंतिम उपभोग कहते हैं। उदाहरण के लिये मिलों में कोयले या कच्चे माल का उपभोग उत्पादक उपभोग है क्योंकि इनका प्रयोग उत्पादन के लिये किया गया है। इसके विपरीत, भूख मिटाने के लिये रोटी, प्यास बुझाने के लिये पानी का प्रयोग आदि अंतिम उपभोग के उदाहरण हैं।

यह वर्गीकरण पूर्णतः सही नहीं है क्योंकि उत्पादक उपभोग को उपभोग की क्रिया न मानकर उत्पादन की क्रिया मानना ही उचित है। जब हम रूई का प्रयोग कपड़ा बनाने के लिये करते हैं तो यह क्रिया उपभोग की न होकर उत्पादन की है। इस कारण यह वर्गीकरण उचित नहीं है।

४. उपभोग का महत्व*

(Importance of Consumption)

सैद्धान्तिक लाभ

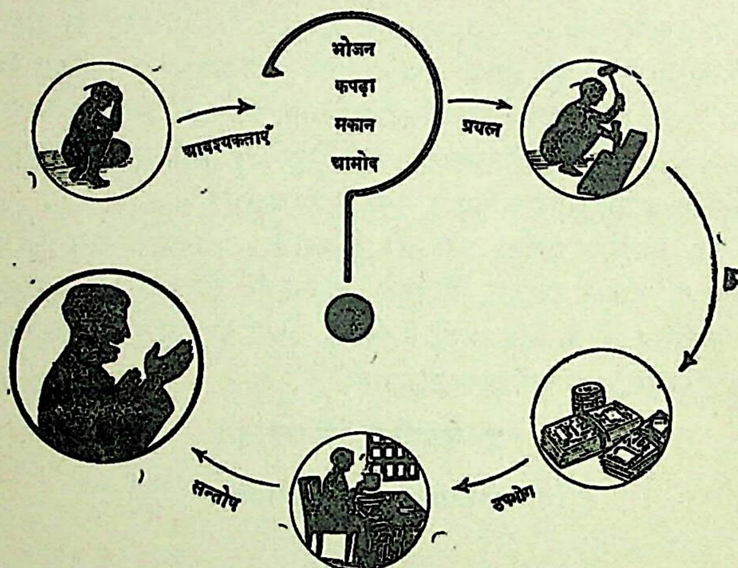
उपभोग सभी आर्थिक क्रियाओं की जननी है—यह तो आप जानते ही हैं कि मनुष्य को अनेक आवश्यकतायें होती हैं। जब तक वह आवश्यकताओं को सन्तुष्ट नहीं कर लेता उसे क्लेश होता है और आवश्यकताएँ सन्तुष्ट कर लेने पर उसे सुख की प्राप्ति होती है। इसी सुख के लिये वह प्रयास कर धन कमाता है और धन को व्यय कर आवश्यकता की वस्तु ख़रीद कर और उसका उपभोग कर अपनी आवश्यकता पूरी करता है। यदि मनुष्य वस्तुओं के उपभोग की आवश्यकता न समझे तो वह धन कमाने और वस्तुओं के क्रय करने के लिये प्रयत्न ही न करे। इसी कारण यह कहा जाता है कि उपभोग उत्पादन, विनिमय तथा वितरण का जनक है।†

---

* "Consumption is the sole end and purpose of all production, and the interest the producer ought to be attended to only so far as it may be necessary for promoting that of the consumer"—Adam Smith, *Wealth of Nations*, (Everyman's Library Edition) Vol. II, p. 155.

" A true theory of consumption is the key-stone of political Economy"—J. N. Keynes, *Scope and Method of Political Economy*, p. 107

प्रत्येक क्रिया का उद्देश्य उपभोग है—यही नहीं, मनुष्य की प्रत्येक आर्थिक क्रिया का उद्देश्य उपभोग है अर्थात् मनुष्य उपभोग के उद्देश्य से ही कार्य करता है। किसान लू और धूप में पसीने से लथपथ खेत में काम करते हैं, दुकानदार पलथी मारे दिन भर ग्राहकों की प्रतीक्षा करते रहते हैं। आखिर क्यों ? उनके परिश्रम का कारण यही है कि वह अपनी कुछ आवश्यकतायें पूरी करना चाहते हैं। यदि उनका उद्देश्य उपभोग न होता तो वह कोई भी काम नहीं करते।



चित्र २४—उपभोग का महत्व

उपभोग आर्थिक-कल्याण का माप है—वर्तमान समय में प्रत्येक देश की सरकार का उद्देश्य यही होता है कि देश में रहने वालों का आर्थिक कल्याण (Economic Welfare) अधिकतम हो। प्रत्येक सरकार इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिये प्रयास करती है और जो सरकार इसमें अधिक मात्रा में सफल हो जाती है उसी की प्रशंसा की जाती है। किस देश के रहने वालों का आर्थिक कल्याण अधिक है इसका पता उपभोग देखकर किया जा सकता है। जिस देश के लोग अधिक मात्रा में अपनी आवश्यकतायें पूरी कर लेते हैं, समझ लेना चाहिये कि वह देश अधिक समृद्धशाली है और जिस देश के लोग अधिक मात्रा में उपभोग करने के साथ-साथ उचित प्रकार से उपभोग करते हैं, समझ लेना चाहिये कि वहाँ आर्थिक कल्याण अधिक है। मान लीजिये किसी देश के रहने वालों की आमदनी काफी अधिक है। परन्तु वह अपना रुपया शराब, जुआ, सिनेमा आदि पर व्यय कर देते हैं और अच्छे तथा सुपाच्य भोजन या बच्चों की पढ़ाई-लिखाई की ओर ध्यान नहीं देते। ऐसा देश समृद्धशाली होते हुए भी अधिकतम आर्थिक कल्याण

वाला नहीं हो सकता। परन्तु यदि देश के व्यक्ति रुपया विवेकपूर्ण ढंग से व्यय करते हैं तो निसंदेह वहाँ आर्थिक-कल्याण भी अधिकतम होगा।

प्रो० एडम स्मिथ (Adam Smith) का कहना है कि "उपभोग सभी उत्पादन का एकमात्र कारण तथा उद्देश्य है।* केन्स (Keynes) का कहना है कि "उपभोग का सही सिद्धान्त अर्थशास्त्र की आधार-शिला है।"†

व्यावहारिक लाभ

उपभोग से अनेक व्यावहारिक लाभ भी हैं। उन्हें नीचे बताया गया है :

अर्थशास्त्रियों को लाभ—उपभोग का अध्ययन अर्थशास्त्रियों के लिये बड़े महत्व का है। (१) इसके अध्ययन से उन्हें यह पता चल जाता है कि देश में किस प्रकार की वस्तुओं का उपभोग अधिक हो रहा है और किनका कम। यदि उपभोग की जाने वाली वस्तुएँ आवश्यक आवश्यकता की हैं, हानिकारक नहीं हैं और बुद्धिमानी तथा विवेक से नियोजित की गई हैं तो उन्हें यह पता लग जाता है कि उस देश के रहने वालों का रहन-सहन का स्तर ऊँचा है और उनका आर्थिक कल्याण भी अधिक हो रहा है। यदि उन्हें पता चले कि नशीली तथा हानिकारक वस्तुओं का उपभोग बढ़ता जा रहा है तो आन्दोलन चलाकर वह सरकार को ऐसे नियम पास करने के लिये वाध्य कर सकते हैं जिससे इन वस्तुओं का उपभोग कम हो जाय। (२) अर्थशास्त्री यह भी देख सकते हैं कि मनुष्य उपभोग पर धन व्यय करते समय सम-सीमान्त उपयोगिता नियम का पालन कर रहे हैं अथवा नहीं। (३) मनुष्यों के उपभोग का अध्ययन कर वह ऐंजिल्स नियम (Engel's Law) क्रमागति-उपयोगिता-ह्रास नियम (Law of Diminishing Marginal Utility) आदि नियमों का प्रतिपादन कर सकते हैं। (४) अर्थशास्त्री यह भी बता सकते हैं कि मनुष्यों को अधिक व्यय करना चाहिये या अधिक बचाना चाहिये जिससे देश की आर्थिक दशा सुधरे और उत्पादन तथा उपभोग कम न हो।

व्यवसायियों को लाभ—उपभोग के अध्ययन से व्यवसायियों को अनेक लाभ हैं। (१) वह यह पता लगा लेते हैं कि मनुष्य किन-किन वस्तुओं का अधिक

---

*"Consumption is the sole end and purpose of all Production"—Adam Smith, *Wealth of Nations*, (Everyman's Library Edition) Vol. ii, p. 155.

† "A true theory of Consumption is the Keystone of political economy"—Neville Keynes, *Scope and Method of Political Economy*, p. 107.

उपभोग करते हैं और फिर उसी प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन बढ़ा सकते हैं। (२) व्यवसायी यह भी पता चला सकते हैं कि उपभोक्ताओं को किस वस्तु के उपभोग से अधिक अतिरेक (Consumer's Surplus) प्राप्त होता है और फिर उस वस्तु के मूल्य बढ़ा सकते हैं। (३) उपभोग देख कर ही वह वस्तुओं का आयात-निर्यात करते हैं। जहाँ जिस वस्तु की आवश्यकता होती है वहाँ उस वस्तु को भेज देते हैं और जहाँ जो वस्तु सस्ती होती है वहीं से वह वस्तु मँगा लेते हैं। (४) व्यवसायी उत्पादन करने के पहले यह अनुमान लगाने का प्रयास करते हैं कि वस्तु की माँग कितनी होगी और उसीके अनुसार उत्पादन करते हैं। अतः, व्यवसायियों के लिये उपभोग का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है।

गृहस्थों को लाभ—उपभोग का अध्ययन गृहस्थ या गृहस्वामियों के लिये भी बड़ा उपयोगी है। इसके अध्ययन से उन्हें उन नियमों का ज्ञान हो जाता है जिनके द्वारा वह अपने धन से अधिकतम सन्तोष (Maximum Satisfaction) प्राप्त कर सकते हैं। क्रमागत उपयोगिता ह्रास नियम तथा सम-सीमान्त उपयोगिता नियम उन्हें इस कार्य में सहायता देते हैं। पारिवारिक बजटों (Family Budgets) के अध्ययन से वह अपने धन का सदुपयोग सीख जाते हैं और अनावश्यक व्यय कम कर अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं।

राजनीतिज्ञों को लाभ—उपभोग का अध्ययन राजनीतिज्ञों को भी बड़ा उपयोगी है। (१) वह यह समझ जाते हैं कि कौनसा उपभोग लाभदायक है और कौनसा हानिकारक और फिर वह लाभदायक उपभोग की मात्रा बढ़ाने का प्रयास करते हैं और जो उपभोग हानिकारक होते हैं उन्हें कानून द्वारा बंद करने का प्रयास करते हैं। उदाहरण के लिये हम देखते हैं कि विभिन्न राज्यीय सरकारों ने मद्य-निषेध (Prohibition) से संबंधित कानून पास कर नशीली वस्तुओं के उपभोग पर प्रतिबंध लगा दिया है। जुआ को बुरा समझ उस पर भी रोक लगा दी है। सिनेमा आदि पर कर (Tax) की मात्रा बढ़ा दी है जिससे लोग सिनेमा अधिक न देखें। इन सब तरीकों का प्रयोग कर राजनीतिज्ञ उपभोग को निर्धारित करते हैं। (२) यही नहीं, उपभोग का अध्ययन कर राजनीतिज्ञ यह समझ जाते हैं कि किस वस्तु से उपभोक्ताओं को अधिक उपभोक्ता का अतिरेक (Consumer's Surplus) प्राप्त हो रहा है और ऐसी वस्तुओं पर कर की मात्रा बढ़ा सकते हैं। (३) उपभोग का अध्ययन कर वह यह समझ जाते हैं कि देश में कौनसी वस्तुओं की माँग अधिक है और उसके उत्पादन को बढ़ाने का सब प्रकार से प्रयास करते हैं। (४) उपभोग का अध्ययन कर वह यह भी निश्चित कर लेते हैं कि देश में किन-किन वस्तुओं का आयात करना चाहिये और किनका नहीं। यह निश्चित कर वह विभिन्न देशों से आवश्यक व्यापारिक समझौता कर लेते हैं।

परीक्षा प्रश्न

उत्तर-प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—अर्थशास्त्र में 'उपभोग' का अर्थ समझाइये। उपभोग और उत्पत्ति में क्या संबंध है? (१९५३, १९४१, १९२७)

२—'उत्पादक उपभोग' और 'अन्तिम उपभोग' पर एक नोट लिखिये। (१९३९, १९३६)

३—'उपभोग' पर संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९३८)

४—'उपभोग' से आप क्या समझते हैं? स्पष्टतया समझाइये। विभिन्न प्रकार के उपभोगों का उदाहरण दीजिये। कुछ व्यक्ति उपभोग को आर्थिक क्रियाओं का उद्देश्य बताते हैं और कुछ अन्य शक्ति प्रदान करने का एक साधन। आपके विचार में कौनसा मत ठीक है और क्यों? (१९३२)

५—अर्थशास्त्र में 'उपभोग' शब्द का क्या अर्थ किया जाता है? आपके प्रदेश में रहने वाले एक साधारण भारतीय किसान के उपभोग को सुधारने के लिये आप क्या सुझाव रखेंगे? (१९३१)

उत्तर-प्रदेश, इन्टर कामर्स

६—'उपभोग' का क्या अर्थ है? उपभोग और उत्पत्ति का क्या संबंध है? (१९४६)

७—बर्बादी और उपभोग शब्दों का भेद उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिये। क्या उत्पत्ति पर दोनों का समान प्रभाव पड़ता है? (१९४४)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

८—'उपभोग' और बर्बादी पर एक संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९५३)

९—'आर्थिक प्रयत्नों का उद्देश्य सन्तुष्टि है'। अर्थशास्त्र के अध्ययन में अर्थशास्त्र के महत्व को ध्यान में रखते हुए इसको स्पष्ट कीजिये। (१९३१)

सागर इन्टर कामर्स

१०—उपभोग से आप क्या समझते हैं? (१९५२)

११—'आवश्यकतायें सम्पूर्ण आर्थिक प्रयत्नों की जननी हैं'। समझाइये। (१९५०)

———

तेरहवाँ अध्याय

आवश्यकताएँ

(Wants)

संसार का ऐसा कोई भी जीवधारी नहीं है—चाहे वह मनुष्य हो या कीड़ा-मकोड़ा—जिसको कुछ न कुछ आवश्यकताएँ न हों। चाहे और आवश्यकताएँ न भी हों, परन्तु पेट भरने की आवश्यकता ऐसी है जो सभी जीवधारियों में समान रूप से पाई जाती है। मनुष्य ने अन्य जीवधारियों की अपेक्षा अधिक मानसिक प्रगति की है। अतएव उसे भोजन के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं की भी आवश्यकता प्रतीत होती है। मनुष्यों में भी किसी को कम और किसी को अधिक आवश्यकताएँ प्रतीत होती हैं। परन्तु संसार में रहने वाला ऐसा कोई भी व्यक्ति न मिलेगा जिसको आवश्यकताएँ न हों। जब आवश्यकताओं का इतना महत्त्व है तो इनका अर्थ जानना बड़ा आवश्यक है।

१· आवश्यकता की परिभाषा

(Definition of Wants)

आवश्यकता का अर्थ

साधारणतया बोलचाल की भाषा में 'इच्छा' (Desire) तथा 'आवश्यकता' (Want) में भेद नहीं किया जाता। दोनों एक दूसरे के पर्यायवाची शब्द माने जाते हैं। यह कहना कि भिखारी को मोटर की आवश्यकता है, इतना ही सही समझा जाता है जितना यह कहना कि सेठ श्यामलाल को पान खाने की इच्छा है। परन्तु अर्थशास्त्र में इन दोनों शब्दों में बड़ा भेद माना जाता है। किसी वस्तु को पाने की 'लालसा' या 'कामना' को इच्छा कहते हैं।* एक भिखारी मोटर चाहता है। हम कहेंगे कि उसे मोटर की इच्छा है। एक बालक चाँद लेना चाहता है। हम कहेंगे कि बालक को चाँद की इच्छा या लालसा है। रामलाल अभी गरीब है परन्तु अब चाहता है कि अमीर होकर एक मकान बनवाये। रामलाल की मकान की चाह को अभी इच्छा कहा जायगा। परन्तु यदि सेठ रामप्रसाद एक

* "A person is said to have a want for a commodity when the presentation of that commodity gives him satisfaction"—J. K. Mehta, *Groundwork of Economics*, p. 30

रेडियो चाहते हैं और यदि (१) रेडियो खरीदने की उनकी इच्छा है, (२) उसके खरीदने के लिये उनके पास धन भी है, और (३) धन व्यय करने के लिये वह तैयार भी हैं तो उनकी इच्छा को आवश्यकता कहा जायगा। बिना इन तीनों बातों के किसी भी इच्छा को आवश्यकता नहीं कहा जा सकता। अतएव आवश्यकता की परिभाषा देते हुए कहा जा सकता है कि **आवश्यकता उस इच्छा को कहते हैं जिसको पूरा करने के लिये मनुष्य के पास पर्याप्त धन हो और साथ ही उस धन को व्यय करने के लिये वह तत्पर भो हो।***

आवश्यकता तभी हो सकती है जब

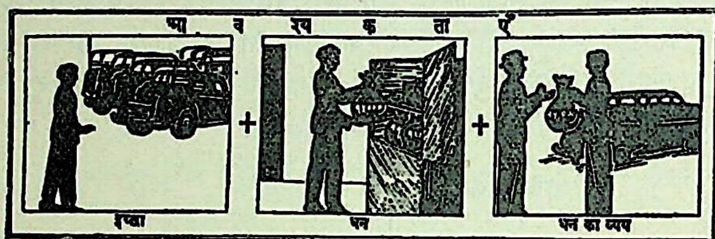
(१) वस्तु की इच्छा हो।
(२) वस्तु प्राप्त करने के लिये पर्याप्त धन हो।
(३) धन व्यय करने के लिये मनुष्य तत्पर हो।

(१) वस्तु की इच्छा—कोई भी इच्छा या लालसा उसी समय आवश्यकता बन सकती है जब उस वस्तु के पाने की मनुष्य को इच्छा हो। जब तक वस्तु की इच्छा नहीं होगी मनुष्य उसके लिये धन व्यय करने को तैयार ही नहीं होगा। उदाहरण के लिये एक बिना पढ़े-लिखे व्यक्ति के लिये अँग्रेजी भाषा में लिखी पुस्तक का कोई भी उपयोग नहीं है और इस कारण वह पुस्तक के लिये कुछ भी व्यय करने को तैयार नहीं होगा चाहे वह पुस्तक कितनी ही प्रसिद्ध क्यों न हो। अतएव 'वस्तु की इच्छा' होना सबसे जरूरी है।

(२) वस्तु के पाने के लिये पर्याप्त धन का होना—परन्तु केवल वस्तु की इच्छा से ही काम नहीं चलता। जब तक वस्तु को प्राप्त करने के लिये हमारे पास पर्याप्त धन या साधन नहीं हैं, तब तक हम उस वस्तु को प्राप्त नहीं कर सकते। मान लीजिये हम एक मोटर खरीदना चाहते हैं। उसके लिये जब तक हमारे पास दस-पन्द्रह हजार रुपया नहीं है, हम मोटर खरीद ही नहीं सकते। अतएव जितने मूल्य की वस्तु है, उतना रुपया होना आवश्यकता के लिये बड़ा जरूरी है।

* "Want implies three things: the desire to possess a thing, the means of purchasing it, and the willingness to use those means for this particular purpose"—T. H. Penson, *Economics of Everyday Life*, Vol. II, p. 30

(३) धन व्यय करने की तत्परता—परन्तु धन के साथ ही यह आवश्यक है कि मनुष्य उस धन को व्यय करने को तैयार हो। आपके पास मान लीजिये १५ हजार रुपया है। परन्तु आप उसे मोटर खरीदने के लिये व्यय करना नहीं



चित्र २५—आवश्यकता के आवश्यक गुण

चाहते। तो आप कभी भी मोटर प्राप्त नहीं कर सकते। यदि कोई सेठ, जिसके पास लाखों रुपया है, कंजूसी के कारण कुछ भी व्यय करने को तैयार नहीं है तो उसकी इच्छा कभी भी आवश्यकता नहीं हो सकती।

आवश्यकता 'प्रभावोत्पादक इच्छा' है—कुछ अर्थशास्त्री आवश्यकता को प्रभावोत्पादक इच्छा (Effective desire) भी कहते हैं।* जब किसी इच्छा को पूरा करने के लिये मनुष्य के पास पर्याप्त धन होता है और वह उस धन को व्यय करने को तैयार भी हो जाता है तो उसकी इच्छा प्रभावोत्पादक हो जाती है। ऐसा कहना ठीक भी है क्योंकि बिना धन के और उसे व्यय करने की तत्परता के मनुष्य की इच्छा का बाजार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अतएव 'प्रभावोत्पादक इच्छा' को आवश्यकता कहा जा सकता है।

आवश्यकता तथा माँग में भेद नहीं है—आवश्यकता का दूसरा पर्यायवाची शब्द 'माँग' है।† आवश्यकता के लिये जिन तीनों बातों का होना जरूरी है,

* Want is "effective desire for particular things which expresses itself in the effort or sacrifice necessary to obtain them." देखिये Penson, *Economics of Everyday Life*, Vol. II p. 14 [आवश्यकता किसी वस्तु की प्रभावोत्पादक इच्छा है जिसके लिये प्रयत्न तथा बलिदान किया जाता है।] "Desires which urge men to effective action are called wants." देखिये Kolhatkar and Kogekar, *Introduction to Economics*, p. 34. [ऐसी इच्छायें जो मनुष्य को प्रभावोत्पादक कार्य करने की प्रेरणा देती हैं, आवश्यकतायें कहलाती हैं।]

† देखिये T. H. Penson, *Economics of Everyday life*, p. 42. He says "The wants we deal with in Economics.........are in fact the wants which give rise to effective demand." [आवश्यकतायें जिनका हम अर्थशास्त्र में अध्ययन करते हैं ....वास्तव में वह आवश्यकतायें हैं जो प्रभावपूर्ण माँग को जन्म देती हैं।]

माँग के लिये भी वह जरूरी हैं। अतएव आवश्यकता को 'माँग' कहना सर्वथा उचित है।

इतना सब जान लेने के बाद हम यह कह सकते हैं कि आवश्यकता का अर्थ वही है जो प्रभावोत्पादक इच्छा या माँग का और इन सबका अर्थ इच्छा से भिन्न है।

२· आवश्यकताओं की विभिन्नता के कारण

(Causes of Difference in Wants)

यह बताया जा चुका है कि संसार में रहने वाले प्रत्येक मनुष्य की कुछ न कुछ आवश्यकताएँ होती अवश्य हैं, परन्तु वह सदैव एकसी नहीं होतीं। किसी को कुछ वस्तुओं की आवश्यकता होती है और किसी को कुछ अन्य वस्तुओं की। किसी को गर्म कपड़ों की आवश्यकता होती है, तो कुछ लोग सूती कपड़ों से ही काम चला लेते हैं। किन्हीं को अपने बालों के लिये तेल, कंघी आदि की आवश्यकता होती है तो कोई इनके बिना भी काम चला लेते हैं। कोई मोटर या साइकिल पर चढ़े घूमते हैं तो कोई पैदल ही चल कर काम लेते हैं। किस व्यक्ति को किन-किन वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है और कितने से उसका काम चल जाता है यह कई कारणों पर निर्भर रहता है। इन कारणों को छैः भागों में बाँटा जा सकता है :—जैसे (१) भौतिक (Physical) कारण, (२) शारीरिक (Physiological) कारण, (३) आर्थिक (Economic) कारण, (४) सामाजिक (Social) कारण, (५) धार्मिक (Religious) और नैतिक (Moral) कारण, तथा (६) आदत, रीति-रिवाज और फैशन। इनके बारे में नीचे बताया गया है।

(१) भौतिक कारण—किसी देश की भौगोलिक स्थिति तथा आबहवा का आवश्यकताओं पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। ठंडे देश के रहने वालों को मात्रा में अधिक तथा ऊनी कपड़े चाहिये। शरीर में गर्मी रखने के लिये भी उन्हें अनेक गर्म तासीर वाली वस्तुओं का सेवन करना पड़ता है। जहाँ मेह अधिक बरसता है, वहाँ के लोगों को छाता या बरसाती रखनी जरूरी हो जाती है। जहाँ मच्छर अधिक होते हैं वहाँ के लोगों को मसहरी लगानी पड़ती है। इस प्रकार भौतिक कारणों पर मनुष्य की आवश्यकतायें निर्भर रहती हैं।

(२) शारीरिक कारण—मनुष्य को अपना शरीर चलाने के लिये अनेक वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है। मनुष्य को किस प्रकार का भोजन खाना चाहिये यह इस बात पर निर्भर रहता है कि मनुष्य किस प्रकार का काम करता है। जो मनुष्य अधिक शारीरिक परिश्रम करते हैं उन्हें अधिक भोजन खाने की आवश्यकता होती है। जो मनुष्य दिमागी कार्य करते हैं उन्हें चावल, मछली, घी, दूध, फल

आदि का सेवन आवश्यक समझा जाता है। बालक तथा बीमारों को दूध तथा फल का सेवन जरूरी होता है। इस प्रकार शारीरिक अवस्था के साथ-साथ मनुष्य की आवश्यकताएँ भी बदल जाती हैं।

(३) आर्थिक कारण—मनुष्य की आर्थिक स्थिति के अनुसार उसकी आवश्यकताएँ भी बदल जाती हैं। जो व्यक्ति गरीब होते हैं उनकी आवश्यकताएँ मात्रा में कम होती हैं। इसके विपरीत अमीरों की आवश्यकताएँ बहुत अधिक होती हैं। यही नहीं, गरीब प्रायः आवश्यक आवश्यकताओं (Necessaries) का ही अधिक उपभोग करते हैं। परन्तु अमीर आराम तथा विलासिता की वस्तुओं का भी उपभोग अधिक करते हैं।

(४) सामाजिक कारण—जो मनुष्य जिस समाज में रहते हैं उनके अनुसार उनकी आवश्यकताएँ भी बदल जाती हैं। अतिथि आने पर भारत में पान-सुपाड़ी आदि देने का रिवाज है, परन्तु पाश्चात्य देशों में चाय-काफी आदि देने का चलन है। हिन्दुओं में मृतक को जलाने का रिवाज है और मुसलमान तथा ईसाइयों में मृतकों को गाड़ने की प्रथा है। भारत में शादी-विवाह आदि अवसरों पर अनेक संस्कारों को करने का रिवाज है जो अन्य देशों में नहीं पाया जाता।

(५) धार्मिक तथा नैतिक कारण—धार्मिक तथा नैतिक विश्वास पर भी आवश्यकताएँ निर्भर रहती हैं। जो व्यक्ति हिन्दू धर्म के मानने वाले हैं वह मन के नियंत्रण तथा आवश्यकताओं के कम करने में विश्वास करते हैं। 'सादा जीवन तथा उच्च विचार' ही उनके जीवन का उद्देश्य होता है। ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकताएँ बहुत कम होती हैं। इसके विपरीत, जो इस विचार से सहमत नहीं हैं वह अधिक धन कमा कर अधिक से अधिक मात्रा में आवश्यकताएँ सन्तुष्ट करने में विश्वास करते हैं।

(६) आदत, रीति-रिवाज तथा फैशन—मनुष्य की आदत, प्रचलित रीति-रिवाज तथा फैशन पर भी आवश्यकताएँ निर्भर रहती हैं। ऐसी अनेक वस्तुएँ हैं जिनके सेवन की मनुष्य को आदत पड़ जाती है और उनका सेवन वह छोड़ नहीं पाता। उदाहरण के लिये सिगरेट, चाय, पान, सुपाड़ी आदि वस्तुओं का सेवन बहुत कुछ आदत पर ही निर्भर रहता है। कुछ लोगों की आदत हो जाती है कि वह रात-दिन पंखे में ही सोते हैं। रीति-रिवाज तथा फैशन से भी आवश्यकताएँ बदल जाती हैं। कालेज में आते ही विद्यार्थी कोट-पतलून पहनना आरम्भ कर देते हैं। गाँव से आने वाले विद्यार्थी भी फैशन से रहना सीख जाते हैं।

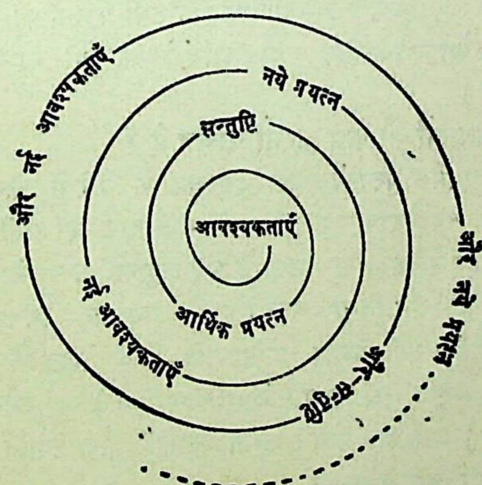
३. आवश्यकताएँ तथा आर्थिक क्रियायें

(Wants and Economic Activities)

अर्थशास्त्र में आवश्यकताओं का बड़ा महत्त्व है क्योंकि वे आर्थिक क्रियाओं की जननी हैं। सभी मनुष्यों को कुछ न कुछ आवश्यकताएँ हैं। जब तक आवश्यकताएँ रहती हैं, मनुष्य को दुःख या क्लेश का अनुभव होता रहता है। इसी क्लेश या दुःख को दूर करने के लिये मनुष्य आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करना चाहते हैं। आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के लिये उन्हें मेहनत कर धन कमाने के लिये बाध्य होना पड़ता है। धन कमाने के लिये मनुष्य जो मेहनत या काम करता है उन्हें आर्थिक क्रियायें कहा जाता है। इसी कारण हम यह कहते हैं कि आवश्यकताओं के कारण ही मनुष्य आर्थिक प्रयत्न करता है।

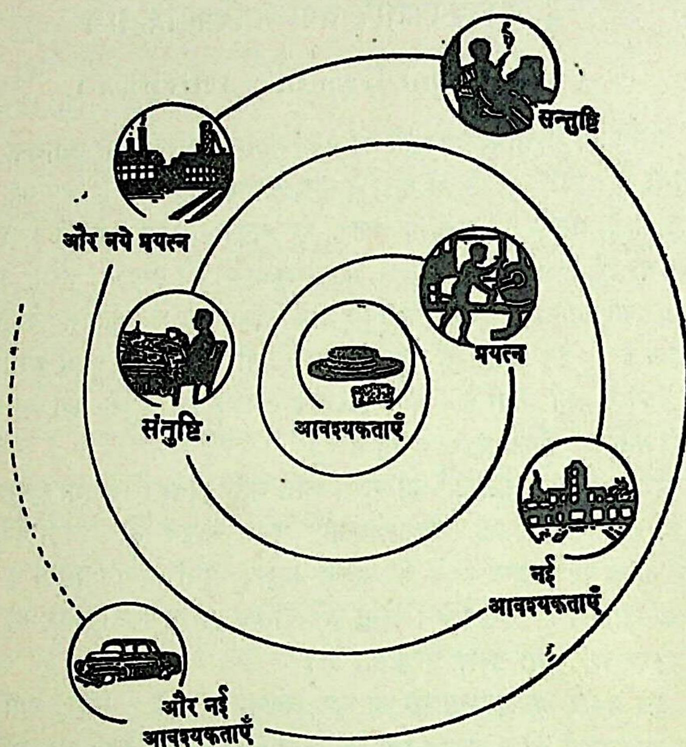
परन्तु आवश्यकताओं का कभी अंत नहीं होता। पुरानी आवश्यकताएँ सन्तुष्ट हो जाने पर नई-नई आवश्यकताएँ पुनः जाग्रत हो उठती हैं। इन नई आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के लिये मनुष्य पुनः प्रयास करता है और इन आवश्यकताओं को दूर करता है। परन्तु जैसे ही यह आवश्यकताएँ दूर हो जाती हैं, नई आवश्यकताएँ पुनः उत्पन्न हो जाती हैं।

इस प्रकार आवश्यकताओं का चक्र चलता रहता है। मनुष्य आर्थिक प्रयास कर आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करता है, परन्तु शीघ्र ही नई आवश्यकताएँ उठ खड़ी



चित्र २६—आवश्यकता तथा प्रयत्नों का चक्र

होती हैं। मनुष्य और भी अधिक मेहनत करता है, धन कमाता है और इन नवीन आवश्यकताओं को दूर करता है, परन्तु शीघ्र ही और भी नई आवश्यकताएँ उत्पन्न



चित्र २७—आवश्यकता तथा प्रयत्नों का चक्र

हो जाती हैं। आवश्यकताओं तथा आर्थिक क्रियाओं का यही क्रम जीवन पर्यन्त चलता रहता है।

क्या आवश्यकताओं को कम करना उचित है ?

हमारी धार्मिक पुस्तकों में भी इस चक्र के बारे में लिखा है। उनका कहना है कि मनुष्य की सब आवश्यकताएँ कभी भी सन्तुष्ट नहीं होतीं और इस कारण वह हमेशा दुःख और क्लेश पाता रहता है। इस दुःख से बचने का तरीका यही है कि आवश्यकताओं को कम किया जाय। अपने मन पर नियंत्रण रख मनुष्य इसमें सफल हो सकता है। यही विचार प्रोफेसर जे० के० मेहता ने भी रखे हैं।* उनका कहना है कि मनुष्य को सुख (Satisfaction) की ओर न जाकर शान्ति (Happiness) पाने का प्रयास करना चाहिये और शान्ति तभी मिल सकती है जब आवश्यकताएँ कम से कम हों।

उपर्युक्त मत भारतीय परंपरा के अनुकूल है। परन्तु पाश्चात्य देशवासी यही

*देखिये प्रोफेसर जे० के० मेहता की पुस्तक, *Advanced Economic Theory*, पृष्ठ १२-१४

समझते हैं कि जीवन का ध्येय अधिक से अधिक आवश्यकताएँ सन्तुष्ट करना है और जो मनुष्य जितनी अधिक आवश्यकताएँ सन्तुष्ट करने में सफल हो जाता है उसका जीवन-स्तर (Standard of Living) उतना ही ऊँचा है। परन्तु इसी मनोवृत्ति का यह दुःखद परिणाम है कि संसार में महायुद्ध होते हैं और मनुष्य अपने भाई का शोषण करने में नहीं हिचकिचाते। जब तक यह मनोवृत्ति रहेगी संसार से न तो वर्ग-भेद हट सकता है और न जीवों का शोषण ही समाप्त हो सकता है। अतएव आवश्यकताओं के कम करने में ही मानव का कल्याण है।

जो व्यक्ति आवश्यकताएँ कम करने के पक्ष में नहीं हैं उनका कहना है कि यदि सभी मनुष्य अपनी आवश्यकताएँ कम कर देंगे तो हमको अपनी बड़ी-बड़ी मिलें बन्द करनी पड़ेंगी, हमारी वर्तमान औद्योगिक प्रगति पिछड़ जायगी और हमें उसी स्थिति में चला जाना होगा जिसमें हमारे दादा-परदादा थे और जिसको छोड़कर हम आगे बढ़े हैं। सूक्ष्म में हम आगे बढ़ने के स्थान पर पीछे हटेंगे। परन्तु यह विचार सर्वथा ठीक नहीं है। यह विचार उन लोगों के हैं जो आवश्यकताएँ बढ़ाने में ही जीवन का सार मानते हैं। जब हमारा उद्देश्य आवश्यकताएँ कम करना ही है तो फिर इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए यदि हमें बड़ी-बड़ी मिलें बन्द करनी पड़ें, जहाँ मनुष्य का शोषण होता है तो इसमें डर ही क्या है ? यदि हमें वर्तमान सभ्यता को, जहाँ भाई भाई का बैरी है, बदलना पड़े तो इसमें किसी को क्या आपत्ति हो सकती है ? अतएव आवश्यकताएँ कम करने में कोई बुराई नहीं है।

परीक्षा प्रश्न

उत्तर प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—आवश्यकताओं की परिभाषा दीजिए। आवश्यकताओं पर परिस्थितियों का प्रभाव बताइये। (१९५३)

२—आवश्यकताओं और उत्पत्ति के पारस्परिक संबन्ध को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिये। (१९४४)

उत्तर प्रदेश इन्टर कामर्स

३—अर्थशास्त्र में आवश्यकता का क्या अर्थ होता है ? (१९४८)

४—आवश्यकताओं और क्रियाओं का संबन्ध बताइए। (१९४२, १९३२)

राजपूताना तथा अजमेर इंटर आर्ट्स

५—"आवश्यकताएँ—प्रयत्न—संतोष ही अर्थशास्त्र का चक्र है"। बैसटियट के इस कथन की व्याख्या कीजिए। (१९५०)

६—आवश्यकताएँ क्रियाओं को जन्म देती हैं या क्रियाएँ आवश्यकताओं को ? उदाहरण देकर समझाइये। आवश्यकताओं को बढ़ाना कहाँ तक उचित है। (१९४३)

७—भारतीय किसान की आवश्यकताओं पर रीति-रिवाज, आदत और तर्क (reason) का क्या प्रभाव पड़ता है ? (१९३८)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर कामर्स

८—आवश्यकताएँ किन-किन बातों पर निर्भर रहती हैं ? क्या यह सत्य है कि आय की अपेक्षा आवश्यकताएँ अधिक शीघ्रता से बढ़ती हैं ? यदि हाँ तो फिर इन दोनों का संतुलन आप कैसे करेंगे ? (१९४६)

सागर इन्टर कामर्स

९—आवश्यकताओं से आप क्या समझते हैं ? (१९५२)

चौदहवाँ अध्याय
आवश्यकताओं के लक्षण
(Characteristics of Wants)

पिछले अध्याय में आपको आवश्यकताओं का अर्थ तथा उनकी विभिन्नता तथा निर्भरता के कारण बताये जा चुके हैं। आवश्यकताओं के बारे में अधिक जानकारी के लिये उनके लक्षणों का जानना भी बड़ा जरूरी है। इन लक्षणों पर कई नियम भी आधारित हैं। इनके बारे में नीचे बताया गया है।

१. आवश्यकताएँ अनन्त हैं

आवश्यकताओं का कभी अन्त नहीं होता।* मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा है कि उसकी सभी आवश्यकताएँ कभी भी पूरी नहीं होतीं। एक आवश्यकता पूरी होते ही एक नई आवश्यकता उठ खड़ी होती है और उस नई आवश्यकता को सन्तुष्ट करते ही और भी नई आवश्कताएँ उत्पन्न हो जाती हैं। जीवन का क्रम इसी प्रकार चलता रहता है। जब मनुष्य के पास आमदनी कम होती है तो वह सूखी रोटी खाकर या चना चबाकर और जमीन पर सोकर अपने दिन काट लेता है। परन्तु जैसे जैसे उसकी आमदनी बढ़ती जाती है उसकी आवश्यकताएँ भी बढ़ती जाती हैं। उसे सूखी रोटी के स्थान पर गेहूँ की चुपड़ी पतली पतली रोटियाँ चाहिये। साथ में तीन-चार साग तरकारियाँ भी हों। पहनने को अच्छे, बारीक तथा साफ कपड़े चाहिये। मकान भी बड़ा, हवादार तथा साफ सुथरा होना चाहिये। चढ़ने के लिये सवारी चाहिये आदि। आवश्यकताएँ इसी प्रकार बढ़ा करती हैं।†

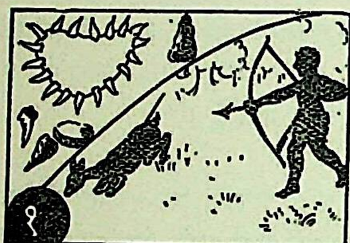
अधिक दूर जाने की आवश्यकता नहीं, यदि हम प्राचीन समय से अब तक के मानवीय प्रगति के इतिहास को ही देखें तो हमें पता चल जायगा कि आवश्य-

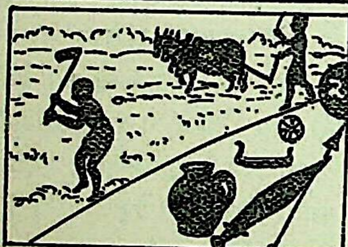
*"Human wants and desires are countless in number and very various in kind"—Marshell, *Economics of Industry* p. 56. ["मानवीय आवश्यकताएँ तथा इच्छाएँ संख्या में असंख्य हैं तथा अनेक प्रकार की हैं"]

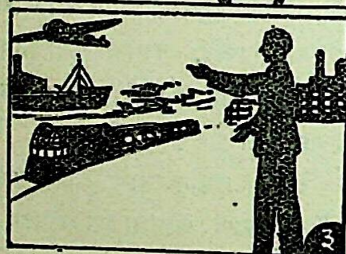
† प्रोफेसर मोरलैंड (Moreland) ने एक वकील का उदाहरण लेकर आवश्यकता के इस लक्षण को समझाया है। उनका कहना है कि आरम्भ में वकील इक्के में बैठकर कचहरी जाता है। जैसे जैसे उसकी आमदनी बढ़ती जाती है और उसकी इक्के पर बैठकर जाने की आवश्यकता पूरी हो जाती है, वह ताँगे पर जाने लगता है। फिर वह निजी घोड़ा और बग्घी रखने की बात सोचता है। इतना हो जाने पर वह मोटर रखने का विचार करता है। इसके साथ ही उसकी रेडियो, कोठी आदि की आवश्यकताएँ भी बढ़ने लगती हैं। देखिए उनकी पुस्तक, *In Introduction to Economics*, पृष्ठ १६१-६२.

कताओं का यह लक्षण पूर्णतया सही है। सभ्यता के आरंभ के दिनों में मनुष्य जंगलों में रहते थे। न उस समय मकान थे और न शहर। पत्तों से तन ढक कर अर्ध-नग्न अवस्था में वह अपना जीवन बिताते थे। जानवरों को मारकर या फल तोड़कर ही वह अपना पेट भरते थे। उनकी आवश्यकताएँ बड़ी सीमित थीं और उनका जीवन बहुत सादा।

परन्तु जैसे ही मनुष्य की यह आवश्यकताएँ पूरी होने लगीं और उसका ज्ञान बढ़ा, उसे नई नई आवश्यकताएँ प्रतीत होने लगीं। भोजन की सुविधा के लिये वह खेती करने लगा और जानवर पालने लगा। खुले में न रहकर वह झोपड़ों में रहने लगा। पत्तों के स्थान पर वह कुछ कपड़े भी पहनने लगा। इस स्थिति में उसकी आवश्यकताएँ पहले से अधिक थीं, जीवन अधिक सुखमय था और सभ्य भी वह पहले से अधिक था।







चित्र २८—प्रगति के साथ आवश्यकताओं की वृद्धि

परन्तु उसकी यह सब आवश्यकताएँ पूरी हुईं और उसे पुनः नई-नई आवश्यकताएँ प्रतीत होने लगीं। उसने शक्ति का प्रयोग सीखा। नये-नये कारखानों का निर्माण हुआ। रेलें, हवाई जहाज और मोटरें चलने लगे। मनुष्य दर्जियों के हाथ से कटे-सिले बढ़िया-बढ़िया कपड़ा पहनने लगा। बड़े-बड़े शहर तथा मकानों का निर्माण हुआ और घर घर में रेडियो आदि हो गये। परन्तु फिर भी मनुष्य सन्तुष्ट नहीं हुआ है और वह निरन्तर प्रगति करने में लगा है।

आधारित नियम—आवश्यकता के इसी लक्षण पर प्रगति का नियम (Law of Progress) आधारित है। अंग्रेजी में कहावत है कि 'आवश्यकता खोज की जननी है' (Necessity is the mother of invention)। मनुष्य ने जितनी भी खोजें की है और जितनी भी नइ-नई वस्तुओं का निर्माण उसके किया है उसका एक मात्र कारण यही है कि मनुष्य की सभी आवश्यकताएँ कभी पूरी नहीं होतीं।

२. मनुष्य की प्रत्येक आवश्यकता सन्तुष्ट की जा सकती है

यद्यपि मनुष्य की सभी आवश्यकताओं का कभी भी अन्त नहीं होता, परन्तु

उसकी प्रत्येक आवश्यकता व्यक्तिगतरूप से (individually) सन्तुष्ट की जा सकती है।* उदाहरण के लिये यदि कोई मनुष्य भूखा है तो चार-पाँच रोटी खाने के बाद उसकी भूख पूरी हो सकती है। इसी प्रकार यदि कोई मनुष्य प्यासा है तो एक-दो ग्लास पानी पीने के बाद उसकी प्यास शान्त हो जायगी। यही क्या, आप कोई भी आवश्यकता ले लीजिये, व्यक्तिगत रूप से वह अवश्य ही सन्तुष्ट की जा सकती है।

आधारित नियम—आवश्यकता के इस लक्षण पर अर्थशास्त्र का एक महत्वपूर्ण नियम, क्रमागति उपयोगिता ह्रास नियम (Law of Diminishing Utility) आधारित है। यह नियम यह बताता है कि मनुष्य जैसे जैसे किसी वस्तु का उपभोग करता जाता है, उसकी आवश्यकता की तीव्रता क्रमशः कम होती जाती है क्योंकि उसकी आवश्यकता कुछ-कुछ सन्तुष्ट होती जाती है। कुछ इकाइयों के उपभोग के बाद एक समय ऐसा आता है जब मनुष्य की आवश्यकता पूर्ण रूप से सन्तुष्ट हो जाती है और वह उपभोग बन्द कर देता है।

३. आवश्यकताएँ बार-बार उत्पन्न होती हैं

यदि किसी एक आवश्यकता को आपने एक बार सन्तुष्ट कर लिया तो इसका यह अर्थ नहीं कि वह दुबारा न उत्पन्न हो। वास्तव में कुछ समय के पश्चात् आवश्यकताएँ पुनः उत्पन्न हो जाती हैं। उदाहरण के लिये आप भोजन की आवश्यकता ले लीजिये। सुबह खाना खा लेने के पश्चात्, दोपहर को आपको पुनः भूख लगने लगती है और दोपहर के भोजन के बाद शाम को आप पुनः भोजन करना चाहते हैं। इसी प्रकार दिन भर में आप तीन-चार बार पानी पीते हैं। वर्ष में आप तीन-चार पैन्टें अवश्य सिलवाते हैं। इन सबसे यह स्पष्ट है कि आवश्यकताएँ एक बार सन्तुष्ट हो जाने के बाद पुनः उत्पन्न हो जाती हैं।

परन्तु ध्यान रखने की बात यह है कि कुछ समय बीत जाने के बाद ही वह पुनः उत्पन्न होती हैं। वह समय चाहे कुछ घंटे का हो, या कुछ दिन या कुछ महीने या कुछ वर्ष का। यह निर्भर रहता है आवश्यकता की प्रकृति पर। हो सकता है नई मोटर की आवश्यकता कुछ वर्षों बाद उत्पन्न हो और पानी की कुछ घंटे बाद ही।

४. आवश्यकताओं की तीव्रता भिन्न होती है

आवश्यकताओं की तीव्रता (Intensity) एकसी नहीं होती। कुछ वस्तुओं की आवश्यकता इतनी अधिक तीव्र होती है कि उनको फौरन ही सन्तुष्ट करना पड़ता है और कुछ ऐसी होती हैं जिनको महीनों टाला जा सकता है। मनुष्य हमेशा

---

*"Ther is a limit to each separate want"—Dr. A. Marshell, *Principles of Economics* ["प्रत्येक आवश्यकता की एक सीमा है"]

तीव्रता के क्रम के अनुसार ही वस्तुओं का उपभोग करता है। इसका कारण यह है कि जो आवश्यकता जितनी अधिक तीव्र होती है, उससे उपयोगिता उतनी ही अधिक प्राप्त होती है।

ध्यान रखने की बात है कि जो वस्तुएँ जीवन के लिये जितनी अधिक आवश्यक होती हैं, उनकी तीव्रता भी उतनी ही अधिक होती है। उदाहरण के लिये भोजन, पानी, कपड़ा आदि की आवश्यकता सबसे अधिक तीव्र होती हैं और मनुष्य इन्हें सबसे पहले सन्तुष्ट करता है। इनके बाद ही वह आराम या विलासिता की वस्तुओं का उपभोग करता है।

दूसरी बात ध्यान रखने की यह है कि किसी एक वस्तु की तीव्रता सभी मनुष्यों को एकसी नहीं होती। एक किसान के लिये कोट-पतलून की तीव्रता बहुत ही कम होगी। परन्तु एक विद्यार्थी या डाक्टर या वकील के लिये काफी अधिक। अर्थशास्त्र का विषय पढ़ने वाले विद्यार्थी के लिये अर्थशास्त्र की पुस्तक की तीव्रता बहुत होगी, परन्तु विज्ञान के विद्यार्थी के लिये बहुत कम।

आधारित नियम—आवश्यकता के इस लक्षण पर अर्थशास्त्र का एक महत्वपूर्ण नियम, सम-सीमान्त उपयोगिता नियम (Law of Equi-marginal utility) आधारित है। यह नियम यह बताता है कि मनुष्य उन वस्तुओं पर अपना धन सबसे पहले व्यय करता है जिनसे उसे सबसे अधिक उपयोगिता प्राप्त होती है। और सबसे अधिक उपयोगिता उसे उसी वस्तु से प्राप्त होगी जिनकी आवश्यकता सबसे तीव्र हो। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सम-सीमान्त उपयोगिता नियम हमें यह बताता है कि सबसे तीव्र आवश्यकता वाली वस्तुओं को मनुष्य को सबसे पहले सन्तुष्ट करना चाहिये।

५. आवश्यकताओं में प्रतिस्पर्धा होती है

आवश्यकताएँ सदैव एक दूसरे से प्रतियोगिता (competition) करती रहती हैं और प्रत्येक यह चाहती है कि वह दूसरे से पहले सन्तुष्ट कर ली जाय। यह हमारा हर दिन का अनुभव है कि कई आवश्यकताएँ एक साथ हमारे सामने आती हैं और क्योंकि हम प्रत्येक को सन्तुष्ट नहीं कर सकते, इस कारण हमें यह सोचना पड़ता है कि इनमें से किन-किन आवश्यकताओं को सन्तुष्ट किया जाय और किस क्रम (order) से किया जाय।

उदाहरण के लिये मान लीजिये राम एक विद्यार्थी है और उसके पास दो रुपये हैं। वह इन रुपयों को किताब, कलम, कागज, भोजन, चप्पल, सिनेमा आदि पर व्यय कर सकता है। जैसे ही उसके मन में यह आवेगा कि वह दो रुपया व्यय करने को प्रस्तुत है उसके सामने यह सब आवश्यकताएँ उठ खड़ी होंगी। परन्तु वह

दो रुपये से सभी आवश्यकताओं को सन्तुष्ट नहीं कर सकता। वह इनमें से एक-दो आवश्यकताओं को ही पूरा कर सकता है। ऐसी स्थिति में सभी आवश्यकताएँ सन्तुष्टि के लिये जोर डालेंगी। उनमें आपस में प्रतिस्पर्धा होगी। परन्तु जो आवश्यकता सबसे अधिक तीव्र होगी राम उसीको सबसे पहले सन्तुष्ट करेगा।

आधारित नियम—आवश्यकता के इस लक्षण पर प्रतिस्थापन्न नियम (Law of Substitution) आधारित हैं। यह नियम यह बताता है कि मनुष्य समान उपयोगिता वाली परन्तु अधिक महँगी वस्तुओं के स्थान पर कम महँगी और कम आवश्यक वस्तुओं के स्थान पर अधिक आवश्यक वस्तुओं का प्रयोग करता है।

६. कुछ आवश्यकताएँ एक दूसरे की पूरक होती हैं

कुछ आवश्यकताएँ एक दूसरे की पूरक (Complementary) या सहायक होती हैं। पूरक का अर्थ है कि एक का उपभोग करने के लिये दूसरी आवश्यकता का उपभोग आवश्यक है। अर्थात् दोनों का एक साथ ही उपभोग हो सकता है अलग-अलग नहीं। उदाहरण के लिये आप फाउनटेनपेन तथा स्याही, मोटर तथा पेट्रोल, चश्मे का फ्रेम तथा शीशा, ग्रामोफोन रिकार्ड तथा सुई, सीने की मशीन तथा डोरा आदि को ले लीजिये। जब तक दोनों वस्तुएँ नहीं होंगी, आवश्यकता पूरी नहीं हो सकती। न तो आप बिना फ्रेम के शीशा ही काम में ला सकते हैं और न शीशों के बिना फ्रेम ही। इसी प्रकार बिना कलम के स्याही या स्याही के बिना कलम का प्रयोग लिखने के लिये नहीं हो सकता।

७. आवश्यकताएँ आदत बन जाती हैं

यह प्रायः देखा जाता है कि जब आप किसी वस्तु का अधिक दिनों तक प्रयोग करते रहते हैं, तो उसकी बू, स्वाद, रंग या किस्म के आप आदी हो जाते हैं और किसी अन्य मार्के की वह वस्तु आपको पसन्द नहीं आती। उदाहरण के लिये आप चाय ले लीजिये। जो लिप्टन (Lipton) चाय के शौकीन हैं उन्हें अन्य मार्के की चायों में वह स्वाद ही नहीं आता। इसी प्रकार जो बिनाका (Binaca) टुथ-पेस्ट व्यवहार में लाते हैं उन्हें मेकलीन (Macleans) या कोलोनस आदि का स्वाद ही पसन्द नहीं आता। यही बात जूते, कपड़े, मकान, साग, भोजन आदि के बारे में है। किसी को काफी मसालेदार भोजन पसन्द है तो किसी को कम मसाले का, किसी को आलू की तरकारी पसन्द आती है तो किसी को गोभी की, किसी को लंगड़ा आम अच्छा लगता है तो किसी को दशहरी। कहने का अर्थ यह है कि विभिन्न मनुष्य भिन्न-भिन्न वस्तुएँ पसन्द करते हैं और जिसे जो वस्तु पसन्द आ जाती है उसीका वह सेवन करता है। दूसरे शब्दों में, उन वस्तुओं के सेवन की उन्हें आदत पड़ जाती है और उनका सेवन बन्द कर देना उनके लिये सुगम नहीं होता।

८. वर्तमान आवश्यकताओं का उपभोग भविष्य में उन्ही आवश्यकताओं के उपभोग से अधिक महत्वपूर्ण लगता है

मनुष्यों को वर्तमान आवश्यकताओं का उपभोग भविष्य में उन्हीं आवश्यकताओं के उपभोग से कहीं अच्छा लगता है। यदि उन्हें यह स्वतन्त्रता हो कि चाहे वह किसी आवश्यकता को इसी समय सन्तुष्ट करलें और चाहे एक या दो वर्ष बाद, तो सभी यह चाहेंगे कि उन्हें इसी समय सन्तुष्ट कर लिया जाय। इसका कारण स्पष्ट है। भविष्य अनिश्चित है। हम नहीं जानते कि कल क्या होगा। अधिकतर मनुष्य वर्तमान की सोचते हैं, भविष्य का ध्यान ही नहीं करते। कुछ में इतनी समझ ही नहीं होती कि वह भविष्य की सोचें। वह दूरदर्शी नहीं होते। अतएव वह वर्तमान का ही ध्यान रखते हैं और भविष्य की नहीं सोचते।

आधारित नियम—आवश्यकताओं के इस लक्षण पर ब्याज (Interest) का एक महत्वपूर्ण नियम जिसे समय-अधिमान-नियम (Time Preference Theory) कहते हैं तथा जिसे फिशर (Irwing Fisher) ने प्रतिपादित किया है आधारित है। समय-अधिमान-नियम हमें यह बताता है कि मनुष्य भविष्य की अपेक्षा वर्तमान को जितना अधिक पसन्द करता है, सूद की दर उतनी ही होती है।

९. आवश्यकताएँ ज्ञान के साथ बढ़ती हैं

जैसे-जैसे मनुष्य का ज्ञान बढ़ता जाता है, उसकी आवश्यकताएँ भी बढ़ती जाती हैं। शिक्षा, विज्ञापन, समाचार-पत्र, रेडियो आदि सभी ऐसे साधन हैं जो ज्ञान बढ़ाते हैं और जिनके कारण आवश्यकताएँ बढ़ती हैं। संसार में नई-नई दवाइयाँ नित्य निकलती हैं। इसका ज्ञान हमको अखबारों से होता है। डाक्टर भी इनके गुणों को पढ़कर इनका प्रयोग करते हैं और बाद में इनका उपभोग बढ़ जाता है। उदाहरण के लिये 'पेन्सलीन' नामक दवा को ले लीजिये। दो-चार वर्षों में ही इसका प्रयोग कितना व्यापक हो गया है ! पहले इसे कोई जानता न था। एक दूसरा उदाहरण लीजिये। मान लीजिये रामू पहले अंग्रेजी भाषा नहीं जानता था। उसके लिये अंग्रेजी में लिखो पुस्तक की कोई उपयोगिता नहीं थी। परन्तु अब वह अंग्रेजी पढ़ गया है। अतः, उसके लिये अंग्रेजी भाषा में लिखी पुस्तक की भी उपयोगिता हो गई है। स्पष्ट है कि अंग्रेजी भाषा के ज्ञान के साथ उसकी अंग्रेजी पुस्तकों की आवश्यकता भी बढ़ गई।

१०. आवश्यकताएँ सामाजिक रीति-रिवाज तथा फैशन द्वारा निर्धारित होती हैं

मनुष्य की अनेक आवश्यकताएँ सामाजिक रीति-रिवाज तथा फैशन द्वारा निर्धारित होती हैं। हमारे पहनने के कपड़े, अतिथियों के आने पर उनके स्वागत के

लिये आवश्यक वस्तुएँ, विवाह आदि अवसरों पर लेन-देन की वस्तुएँ प्रायः सामाजिक रीति-रिवाज पर निर्भर रहती हैं। व्यक्ति उसमें थोड़ा-बहुत परिवर्तन भले ही करदें, परन्तु अधिकतर वह सामाजिक प्रथाओं पर ही चलते हैं। कारण स्पष्ट है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है और वह समाज से दूर नहीं रह सकता। समाज में रहने के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वह समाज के बताये गये तरीके पर चले।

फैशन का भी हमारी आवश्यकताओं पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। थोड़े समय पहले हमारे देश में टोपी लगाने का बड़ा फैशन था। अधिकांश व्यक्ति उस समय टोपी पहनते थे। परन्तु अब बाल रखने का फैशन हो गया है। अतएव यदि कोई व्यक्ति टोपी पहनकर निकलता है तो लोग उसे निगाह उठा-उठा कर देखते हैं। इसी प्रकार अब पतलून पहनने का फैशन हो गया है। जो विद्यार्थी अब धोती पहनते हैं उन्हें लोग शिष्ट नहीं समझते।

क्या आवश्यकताओं के लक्षणों के कुछ अपवाद भी हैं?

कुछ अर्थशास्त्रियों का मत है कि आवश्यकताओं के उपर्युक्त लक्षण पूर्णतः सही नहीं हैं। उनके कुछ अपवाद भी हैं। इस मत को मानने वालों में प्रो० मोरलैंड (Moreland) का नाम विशेष उल्लेखनीय है।* परन्तु प्रोफेसर मोरलैंड का यह मत सही नहीं है। उनके बताये अपवाद ऊपरी (Apparent) ही हैं, वास्तविक नहीं। गहराई से विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि उनमें कुछ भी सचाई नहीं है। प्रो० मोरलैंड द्वारा बताये गये अपवाद निम्न हैं :

(१) साधुओं की आवश्यकताएँ अनन्त नहीं होतीं—आवश्यकताओं का यह गुण होता है कि उनका कभी अन्त नहीं होता, एक के बाद दूसरी आवश्यकता स्वतः उठ खड़ी होती है। परन्तु साधू तथा सन्यासियों की आवश्यकताएँ मात्रा में सीमित होती हैं। कुछ मामूली सी आवश्यकताओं के अतिरिक्त उन्हें अधिक आवश्यकताएँ प्रतीत नहीं होतीं। अतएव यह कहा जा सकता है कि साधू-सन्यासी इस लक्षण के अपवाद हैं।

परन्तु यदि गहराई से विचार किया जाय तो कहा जा सकता है कि यह धारणा उचित नहीं है। साधू तथा सन्यासियों को भी आवश्यकताएँ प्रतीत होती हैं। परन्तु वह उनका नियंत्रण करते हैं, और उनका उपभोग नहीं करते। क्योंकि वह आवश्यकताओं को सन्तुष्ट नहीं करते, हमें यह प्रतीत होता है कि साधुओं को आवश्यकताएँ प्रतीत नहीं होतीं। आवश्यकताएँ प्रतीत होना एक बात है और उनका उपभोग न करना दूसरी बात। क्योंकि अन्य व्यक्तियों की भाँति साधुओं को भी आवश्यकताएँ प्रतीत होती हैं, अतएव यह कोई अपवाद नहीं है।

* देखिये प्रोफेसर मोरलैंड की पुस्तक, *An Introduction to Economics*

कुछ पुस्तकों में यह लिखा है कि साधू-सन्यासी साधारण व्यक्ति नहीं हैं और अर्थशास्त्र के क्षेत्र में नहीं आते। इस कारण जो बात साधुओं के बारे में सही नहीं उतरती वह अपवाद नहीं कही जा सकती। परन्तु ऐसा कहना भारी भूल है। प्रोफेसर राबिन्स आदि विद्वानों का कहना है कि साधुओं की क्रियायें भी अर्थशास्त्र के क्षेत्र में आती हैं। अतएव उपर्युक्त मत सर्वथा अनुचित है।

(२) दिखावट या शान-शौकत प्रदर्शन की आवश्यकता कभी पूरी नहीं होती—आवश्यकता का यह एक लक्षण है कि प्रत्येक आवश्यकता पूरी हो जाती है। परन्तु दिखावट या शान-शौकत प्रदर्शन (love of display) की एक ऐसी आवश्यकता है जो कभी भी पूरी नहीं होती। जितनी आप अपनी शान बढ़ाना चाहते हैं और दिखावा करने के लिये नई-नई तथा महँगी वस्तुओं का संचय तथा प्रयोग करते हैं, उतनी ही आपकी यह आवश्यकता बलवती होती जाती है। अच्छे-अच्छे महल, मोटर, हीरे-जवाहरात, कपड़े आदि से ही शान बढ़ती है और मनुष्य के पास चाहे ये सब वस्तुएँ कितनी ही मात्रा में क्यों न हों, वह कभी भी सन्तुष्ट नहीं होता।

परन्तु यह कोई अपवाद नहीं है। इसका कारण यह है कि दिखावट या शान-शौकत की आवश्यकता किसी एक वस्तु की आवश्यकता न होकर कई वस्तुओं की सम्मिलित आवश्यकता है। इनमें से प्रत्येक वस्तु की आवश्यकता अलग-अलग सन्तुष्ट हो सकती है और हो जाती है। चाहे आप अकेले मोटर की आवश्यकता ले लें या मकान की या कपड़ों की और फिर उस वस्तु की पूर्ति (Supply) बढ़ाते जाइये, एक समय आवेगा कि वह आवश्यकता पूरी तरह सन्तुष्ट हो जायगी।

(३) शक्ति प्रदर्शन की आवश्यकता भी पूरी नहीं होती—प्रोफेसर मोरलैंड का कहना है कि शक्ति प्रदर्शन की आवश्यकता (Display of hower) एक ऐसी आवश्यकता है जो कभी भी पूरी नहीं होती। कुछ मनुष्यों की यह तीव्र इच्छा रहती है कि दूसरे लोग उनका लोहा माने, उनकी शक्ति के अन्दर रहें और उन्हें सम्मान देते रहें। हिटलर इसी धारणा के कारण संसार को जीतने के स्वप्न देखता था। जिन व्यक्तियों की ऐसी धारणा होती है वह कभी भी सन्तुष्ट नहीं होती।

परन्तु शक्ति-प्रदर्शन करने की आवश्यकता एक आवश्यकता न होकर कई आवश्यकताओं की सम्मिलित आवश्यकता है। व्यक्ति शक्ति का प्रदर्शन केवल दिखावे के लिये न करके, कुछ उद्देश्यों के कारण करते हैं। कोई प्रभुत्व के लिये संसार का सम्राट् बनना चाहते हैं, तो कोई संसार भर का धन इकट्ठा करना चाहते हैं। यह आवश्यकताएँ एक न होकर कई मिली आवश्यकताएँ हैं। अतएव यह कोई अपवाद नहीं है।

कुछ पुस्तकों में लिखा है कि शक्ति-प्रदर्शन करने वाले व्यक्ति असाधारण होते हैं, इस कारण उनकी क्रियाओं का हम अध्ययन नहीं करते। परन्तु ऐसा कहना सर्वथा गलत है। वास्तव में प्रत्येक व्यक्ति में शक्ति-प्रदर्शन करने की इच्छा होती है—चाहे वह कम हो और चाहे अधिक। अतएव फिर तो हमें सभी मनुष्यों का अध्ययन करना बन्द करना पड़ेगा।

(४) कंजूस रुपये से कभी संतुष्ट नहीं होता—एक कंजूस रुपया इकट्ठा करना चाहता है। धन को वह कभी व्यय नहीं करता। ऐसे व्यक्तियों के पास चाहे कितना ही रुपया क्यों न हो जाय, वह कभी सन्तुष्ट नहीं होते। अतएव यह कहना कि प्रत्येक आवश्यकता सन्तुष्ट हो जाती है, ठीक नहीं है।

यहाँ भी हमें यह कहना पड़ेगा कि कंजूस धन का संचय धन के लिये नहीं करते। वे जानते हैं कि धन से अनेक वस्तुयें क्रय की जा सकती हैं। अतएव धन या रुपये-पैसे का मोह किसी एक वस्तु की आवश्यकता न होकर रुपये-पैसे से खरीदी जा सकने वाली वस्तुओं की सम्मिलित इच्छा है। इसी कारण सभी व्यक्ति कुछ न कुछ रुपया बचाकर रखना चाहते हैं। कंजूसों को रुपये की लालसा बहुत बढ़ी हुई होती है और साधारण मनुष्यों की कुछ कम। परन्तु होती यह लालसा सभी में है।

अतः यह कहा जा सकता है कि आवश्यकता के लक्षणों के कोई भी अपवाद नहीं हैं। ऊपर से देखने पर वह अपवाद से प्रतीत होते हैं, परन्तु वास्तव में यह अपवाद नहीं हैं।

परीक्षा प्रश्न

उत्तर प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—आवश्यकताओं के लक्षणों का विवेचन कीजिये। (१९५३)

२—आवश्यकताओं से आप क्या समझते हैं? आवश्यकताओं की मुख्य मुख्य विशेषताओं को समझाकर लिखिये। (१९५२)

३—मानवीय आवश्यकताओं के मुख्य लक्षण क्या हैं? अर्थशास्त्र के अध्ययन में इनका महत्त्व बताइये। (१९४८, १९४६)

४—'सन्तुष्ट की जाने वाली आवश्यकताओं' पर एक नोट लिखिए। (१९४५)

५—मानवीय आवश्यकताओं के क्या मुख्य लक्षण हैं? आवश्यकताओं की वृद्धि उचित है या नहीं? (१९४२)

६—आवश्यकतायें उत्पादक क्रियाओं की जननी है और उत्पादक क्रियायें नई आवश्यकताओं का सृजन करती हैं। स्पष्टतया समझाइये। (१९३८)

उत्तर प्रदेश इन्टर कामर्स

७—मानवीय आवश्यकताओं के क्या प्रधान लक्षण हैं? (१९४८)

८—मानवीय आवश्यकताओं के अनेक लक्षण होते हैं। इन लक्षणों से जो नियम निकाले गये हैं उनमें से कुछ के नाम बताइये और उनकी विवेचना कीजिये। (१९४७)

९—मानवीय आवश्यकताओं के क्या लक्षण हैं? (१९४२, १९३२)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

१०—आवश्यकताओं के लक्षणों की व्याख्या कीजिये। अर्थशास्त्र में इनके अध्ययन का क्या महत्व है? (१९५१, १९४६)

११—आवश्यकताओं के मुख्य लक्षण बताइये। क्या इनकी संख्या में वृद्धि करना उचित है? (१९४९)

१२—आवश्यकताओं के मुख्य लक्षण बताइये। (१९३८)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर कामर्स

१३—आवश्यकताओं के मुख्य लक्षण बताइये और यह भी बताइये कि अर्थशास्त्र के अध्ययन में इनका क्या महत्व है? (१९५०)

१४—आवश्यकतायें किन किन बातों पर निर्भर रहती हैं? क्या यह सत्य है कि आय की अपेक्षा आवश्यकतायें अधिक शीघ्रता से बढ़ती हैं? यदि बात ऐसी है तो इन दोनों के संतुलन के लिये आप क्या करेंगे? (१९४६)

पटना इन्टर आर्ट्स

१५—मानवीय आवश्यकताओं के क्या प्रमुख लक्षण हैं? प्रत्येक का आर्थिक महत्व क्या है? (१९४६)

सागर इन्टर आर्ट्स

१६—मानवीय आवश्यकताओं के लक्षणों को बताइये। (१९५१)

१७—मानवीय आवश्यकताओं के प्रमुख लक्षणों को समझाइये। (१९४९)

१८—मानवीय आवश्यकताओं की परिभाषा दीजिये। (१९४९)

१९—मानवीय आवश्यकताओं के क्या लक्षण हैं? कौनसी आवश्यकतायें अधिक तीव्र होती हैं और क्यों? (१९४८)

सागर इन्टर कामर्स

२०—मानवीय आवश्यकताओं के लक्षणों को बताइये और यह भी बताइये कि आर्थिक क्रियाओं से उनका क्या संबंध है? (१९५१)

२१—मानवीय आवश्यकताओं की प्रकृति और लक्षण बताइये। (१९५०)

२२—आवश्यकताओं की परिभाषा ध्यानपूर्वक दीजिये और उनके प्रमुख लक्षणों को बताइये। (१९४९)

पन्द्रहवाँ अध्याय

आवश्यकताओं का वर्गीकरण

(Classification of Wants)

पिछले अध्याय में आपको बताया जा चुका है कि मनुष्य की आवश्यकताएँ असीमित होती हैं और वह बराबर उत्पन्न होती रहती हैं। परन्तु वह सब एकसी तीव्र नहीं होतीं। कुछ आवश्यकताएँ अधिक तीव्र होती हैं और कुछ कम। जो आवश्यकताएँ हमारे जीवन के लिये सबसे आवश्यक होती हैं, वे सबसे तीव्र होती हैं और जो कम आवयश्यक होती हैं वे कम तीव्र होती हैं। सबसे तीव्र आवश्यकताओं को आवश्यक आवश्यकताएँ (Necessaries) और सबसे कम तीव्र आवश्यकताओं को विलासिताएँ (Luxuries) कहते हैं। इनके बीच की जो आवश्यकताएँ हैं उन्हें आराम-सम्बन्धी आवश्यकताएँ (Comforts) कहते हैं। इस प्रकार तीव्रता के क्रमानुसार आवश्यकताओं के तीन मुख्य भेद हैं।*

१—आवश्यक आवश्यकताएँ (Necessaries)

२—आराम सम्बन्धी आश्यकताएँ (Comforts)

३—विलासिताएँ (Luxuries)

इनका अर्थ नीचे स्पष्ट किया गया है।

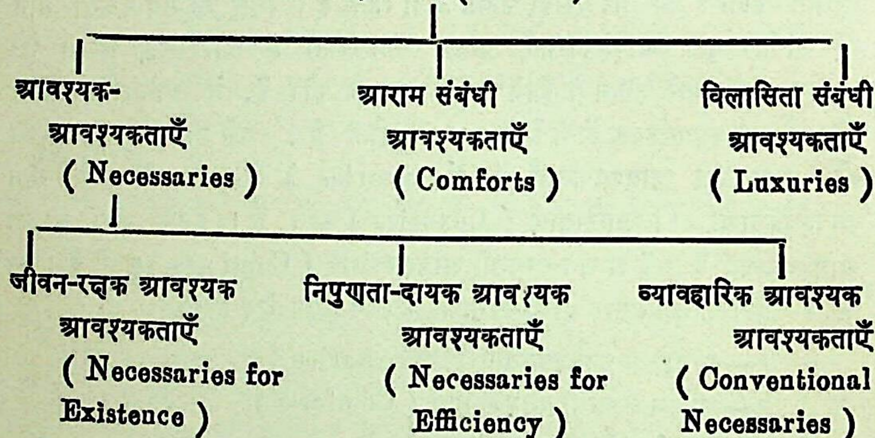
१. आवश्यक आवश्यकताएँ

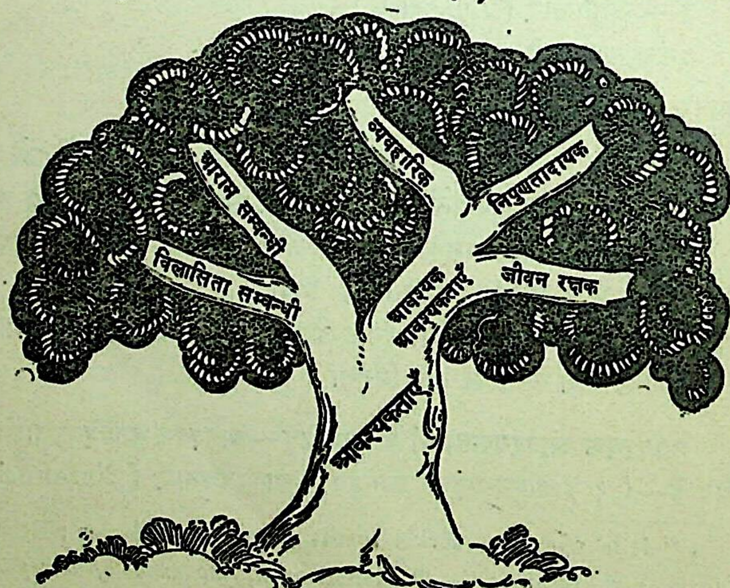
आवश्यक आवश्यकताएँ उन आवश्यकताओं को कहते हैं जो जीवित रहने, कार्य-क्षमता बनाये रखने तथा सामाजिक सम्मान पाने के लिये अनिवार्य हैं। ये आवश्यकताएँ आधारभूत, प्रारम्भिक तथा अनिवार्य हैं। इनके उपभोग के बिना न तो मनुष्य जीवित रह सकता है, न निपुण ही बना रह सकता है और न समाज में प्रतिष्ठा ही पा सकता है। इनके उपभोग के बिना मनुष्य को भारी पीड़ा होती है और उपभोग करने पर सुख मिलता है।

आवश्यक आवश्यकताओं के उप-भेद—आवश्यक आवश्यकताओं के तीन उप-भेद हैं—(१) जीवन-रक्षक आवश्यक आवश्यकताएँ (Necessaries for

* "It is usual to divide wants into three classes : Necessaries, Comforts and Luxuries"—T. H. Penson, *Economics of Everyday Life*, Vol. II, p. 18.

Existence), निपुणतादायक आवश्यक आवश्यकताएँ (Necessaries for Efficiency), तथा व्यवहारिक आवश्यक आवश्यकताएँ (Conventional Necessaries)। जो आवश्यकताएँ हमें जीवित रखने के लिये आवश्यक हैं उन्हें जीवन-रक्षक आवश्यक आवश्यकताएँ कहते हैं। जो वस्तुएँ हमारी निपुणता (Efficiency) बनाये रखने के लिये आवश्यक हैं उन्हें निपुणतादायक आवश्यक आवश्यकताएँ कहते हैं और जिन आवश्यकताओं के उपभोग से समाज में हमारा आदर तथा सम्मान बना रहता है उन्हें व्यवहारिक आवश्यक आवश्यकताएँ कहते हैं। इनका विस्तार से भेद नीचे बताया गया है।

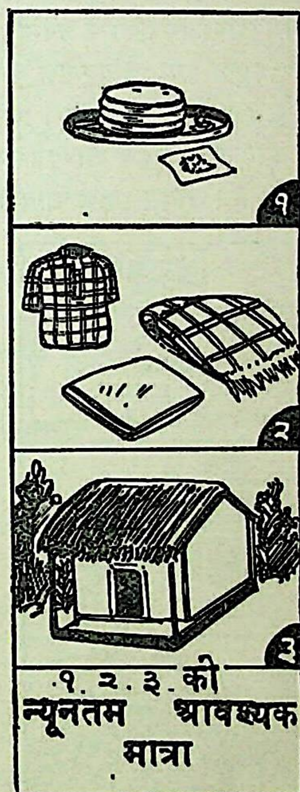




चित्र २१—आवश्यकताओं के भेद

१. (अ) जीवन-रक्षक आवश्यक आवश्यकताएँ—यह वह आवश्यकताएँ हैं जिनका उपभोग जीवित रहने के लिये आवश्यक है। यदि इनका उपभोग न किया जाय तो मनुष्य शीघ्र ही मर जायगा। भोजन, वस्त्र, मकान आदि की वह न्यूनतम मात्रा (Minimum quantity) जो शरीर चलाने के लिये आवश्यक है इस श्रेणी में आती है।

जैसा सभी जानते हैं, मनुष्य बिना भोजन के जीवित नहीं रह सकता। भोजन यदि अच्छा तथा मात्रा में अधिक हुआ तो मनुष्य का स्वास्थ्य अच्छा होगा और उसके शरीर में काम करने की पर्याप्त शक्ति भी होगी। जीवन-रक्षक आवश्यक आवश्यकता की श्रेणी में भोजन की पर्याप्त मात्रा नहीं है, वरन् केवल उतनी ही मात्रा आती है जो मनुष्य को जीवित रखने के लिये पर्याप्त हो। इसीलिये 'न्यूनतम मात्रा' शब्दों का प्रयोग किया गया है जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसी प्रकार शरीर की ठंड तथा गर्मी से रक्षा करने के लिये मनुष्य को कुछ कपड़े चाहिये। कपड़े बढ़िया क़िस्मके भी हो सकते हैं और घटिया भी। वह मात्रा में कम भी हो सकते हैं और अधिक भी। इस श्रेणी में कपड़ों की केवल उतनी ही मात्रा सम्मिलित की जाती है जो शरीर चलाने के लिये नितान्त जरूरी हो। इसी प्रकार शरीर चलाने तथा जीवित रहने के लिये जितनी भी वस्तुएँ आवश्यक हैं उनकी न्यूनतम आवश्यक मात्रा इस श्रेणी में आ जाती है।

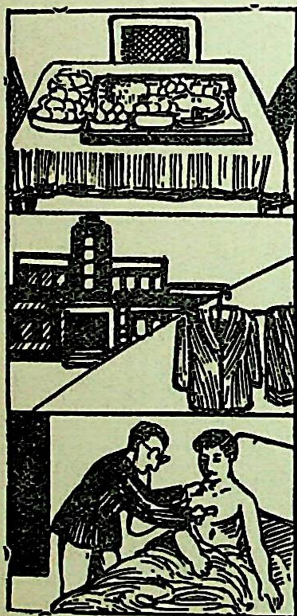


चित्र ३०—आवश्यक आवयकताएँ

ध्यान रखने की बात है कि सभी देशों का जलवायु तथा उनकी प्राकृतिक दशा एकसी नहीं है। कहीं ठंड इतनी अधिक पड़ती है कि मनुष्य का ऊनी कपड़ों के बिना काम नहीं चल सकता और कहीं गर्मी इतनी पड़ती है कि मनुष्य अपने शरीर पर कपड़े भी नहीं रख सकते। अतः, स्पष्ट है कि दोनों देशों के लिये कपड़ों की न्यूनतम आवश्यक मात्रा भिन्न-भिन्न है। ठंडे देश में जीवित रहने के लिये ऊनी कपड़े, ऊनी कंबल, मोजे, जूते आदि जरूरी हैं, परन्तु गर्म देश के लिये नहीं। यही बात भोजन के बारे में भी है। एक ठंडे देश में अधिक गर्मी देने वाला भोजन करना जरूरी हो जाता है परन्तु गर्म

देश में ठंडी वस्तुओं का सेवन करना पड़ता है। इन सबसे स्पष्ट है कि देश तथा ऋतुओं के अनुसार मनुष्य की 'न्यूनतम आवश्यक मात्रा' भी बदलती रहती है। हमारे देश में गर्मी के दिनों में शरीर नंगा रखा जा सकता है, परन्तु जाड़ों में नहीं। अफरीका में अमेजन तथा कांगो नदियों के आस-पास के क्षेत्र में रहने वाले व्यक्ति शरीर को ढकने की आवश्यकता नहीं समझते, परन्तु टन्ड्रा जैसे शीत देश के व्यक्ति यदि ऐसा करें तो ठंड में मर जायँ।

(५-ब) निपुणतादायक आवश्यक आवश्यकताएँ—जीवन-रक्षक आवश्यक आवश्यकताओं के उपभोग से मनुष्य केवल जीवित भर रह सकता है। परन्तु अपने को निपुण तथा कार्यकुशल बनाने के लिये यह आवश्यक होता है कि उसके शरीर में कुछ अधिक शक्ति हो। अतएव उसे कुछ नई वस्तुओं का उपभोग करना पड़ता है और जीवन-रक्षक आवश्यक आवश्यकताओं का अधिक मात्रा में उपभोग करना पड़ता है। जीवन-रक्षक आवश्यक आवश्यकताओं के अतिरिक्त वह सब आवश्यकताएँ जिनके उपभोग से मनुष्य की निपुणता तथा कार्यकुशलता बढ़ती है, निपुणतादायक आवश्यक आवश्यकताएँ कहलाती हैं। इन आवश्यकताओं पर जितना व्यय किया जाता है, मनुष्य को आर्थिक लाभ उससे अधिक अनुपात में होता है।



चित्र ३१—निपुणतादायक आवश्यक आवश्यकताएँ

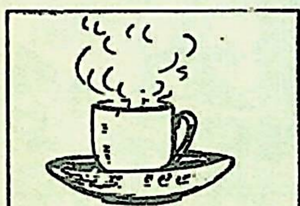
इस श्रेणी में चार प्रकार की आवश्यकताएँ सम्मिलित रहती हैं: (१) जीवित रहने के लिये आवश्यक भोजन से अधिक पुष्टिकर तथा संतुलित भोजन; (२) पहिनने के लिये पर्याप्त वस्त्र, बैठने के लिये मेज-कुर्सी आदि तथा रहने के लिये हवादार मकान; (३) बीमारी के समय चिकित्सा तथा डाक्टरी प्रबंध, तथा (४) बच्चों को उस श्रेणी तक शिक्षा देने का प्रबन्ध जिस तक उनके पिता ने पढ़ा है जिससे वह अपने पिता के बराबर तो निपुण हो ही सके।*

यह पता लगाना कि किस श्रेणी के व्यक्तियों के लिये कौन सी वस्तुएँ जीवन-रक्षक आवश्यक आवश्यकताएँ हैं और कौनसी निपुणतादायक या विलासिता की वस्तुएँ सुगम नहीं है। एक अध्यापक के लिये

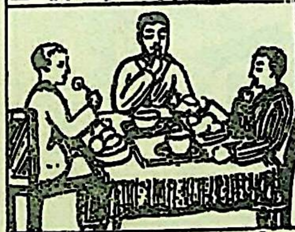
*देखिये प्रो॰ मोरलैंड की पुस्तक, *An Introduction to Economics*, p. 151

फाउन्टेनपेन या कलम, एक डाक्टर के लिये मोटर, एक वकील के लिये वकालत-संबंधी किताबें, एक विद्यार्थी के लिये पुस्तकें निपुणतादायक-पदार्थ हैं या नहीं ? इसका उत्तर देने का एक ही तरीका है। देखिये कि इन वस्तुओं के सेवन से मनुष्य की कार्य क्षमता किस अनुपात में बढ़ती है। यदि जितना व्यय किया जाय उससे अधिक अनुपात में कार्यक्षमता बढ़ती है तो समझ लीजिये कि यह निपुणतादायक वस्तुएँ हैं अन्यथा नहीं।

(१. स) व्यावहारिक आवश्यक आवश्यकताएँ*—इन आवश्यकताओं को कुछ लेखक प्रतिष्ठारक्षक या कृत्रिम आवश्यकताएँ भी कहते हैं†। ये वे आवश्यकताएँ हैं जिनका उपभोग सामाजिक प्रथाओं तथा रीति रिवाजों के कारण और समाज में अपनी प्रतिष्ठा तथा सम्मान बनाये रखने के लिये किया जाता है।







चित्र ३२—व्यावहारिक आवश्यक आवश्यकताएँ

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में वह जन्मा है और समाज में ही वह रहता है। समाज के रहने वाले अन्य प्राणियों से उसका चलन तथा व्यवहार है। समाज के विभिन्न व्यक्तियों में मेल-मिलाप रहे और उनमें झगड़ा न हो इस उद्देश्य से कुछ सामाजिक नियम बना दिये गये हैं जिनका पालन सभी करते हैं। इन सामाजिक नियमों तथा प्रथाओं का पालन हम सबके लिये अनिवार्य-सा ही है। सामाजिक प्रथाओं तथा रीति-रिवाजों के पालन से उत्पन्न आवश्यकताओं को ही व्यावहारिक आवश्यक आवश्यकताएँ कहते हैं।

व्यावहारिक आवश्यक आवश्यकताएँ (Conventional Necessaries) देश तथा वर्ग के अनुसार बदलती रहती हैं। पाश्चात्य देशों में अतिथि के आने पर चाय-काफी तथा

* बड़ी महत्व की बात है कि 'व्यावहारिक आवश्यक आवश्यकता' का उप-भेद सबसे पहले आचार्य मार्शल ने किया था। इसके पहले आवश्यक आवश्यकता के दो ही उप-भेद माने जाते थे। इस मत की पुष्टि के लिये डाक्टर रिचार्ड्स की पुस्तक, *Outline of Economics*, पृष्ठ १२९ देखिये।

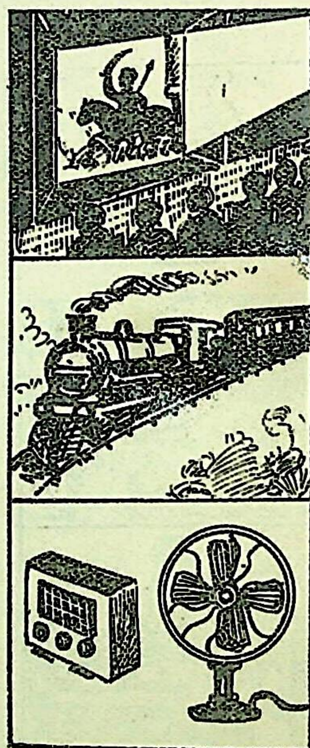
† परन्तु ऐसा कहना उचित नहीं है क्योंकि अंग्रेजी के शब्द 'Convention' का हिन्दी पर्यायवाची शब्द 'व्यवहार' या 'चलन' है। इसलिये हमने 'Conventional Necessaries' को व्यावहारिक आवश्यक आवश्यकताएँ कहना ही उचित समझा है।

सिगरेट आदि देने का चलन है, परन्तु भारत में पान-सुपाड़ी खिलाने की प्रथा है। मृत्यु, जन्म, आदि अवसरों पर भारत में बड़ी-बड़ी ज्यौनार तथा दावतें देने की प्रथा है, परन्तु विलायत में इस तरह की प्रथा नहीं है। भारत में मृतक को जलाया जाता है, परन्तु विदेशों में उसे गाड़ा जाता है। इस प्रकार विभिन्न देशों में भिन्न-भिन्न सामाजिक प्रथाएँ हैं। यही नहीं, वर्ग के अनुसार भी प्रथायें बदलती रहती हैं। राजा-महाराजाओं के यहाँ कुछ ऐसी रिवाजें पाई जाती हैं जो गरीब या मध्य वर्ग में नहीं पाई जातीं। इसका कारण भी स्पष्ट है। प्रथाएँ वर्ग के लोगों की व्यय-शक्ति के अनुसार भी बनती हैं। गरीबों के यहाँ शादी आदि के अवसर पर या ज्यौनार के समय सोने-चाँदी के वर्तनों का चलन भला कैसे हो सकता है! परन्तु अमीरों के यहाँ इनका चलन व्यापक है और इनका प्रयोग न करने पर उनकी बड़ी बदनामी होती है।

व्यावहारिक आवश्यक आवश्यकताओं के उपभोग से मनुष्य की निपुणता में कोई वृद्धि नहीं होती। हाँ, उसे उपयोगिता अवश्य प्राप्त होती है और यदि इनका उपभोग न किया जाय तो उसकी बदनामी होने के कारण उसे बहुत क्लेश मिलता है।

(२) आराम संबंधी आवश्यकताएँ (Comforts)

आवश्यक आवश्यकताएँ मनुष्य को जीवित रहने तथा उसकी निपुणता बनाये रखने के लिये जरूरी होती हैं। परन्तु मनुष्य की हमेशा से यह इच्छा रही है और रहती भी है कि वह अधिक सुखमय, पूर्ण और शिष्ट जीवन व्यतीत करे। अतएव वह आवश्यक आवश्यकताओं के अतिरिक्त भी बहुत सी अन्य वस्तुओं का उपभोग करता है। ऐसी सब आवश्यकताएँ जिनके उपभोग से मनुष्य का जीवन अधिक सुखी तथा शिष्ट हो जाता है आराम संबंधी आवश्यकताएँ कहलाती हैं।

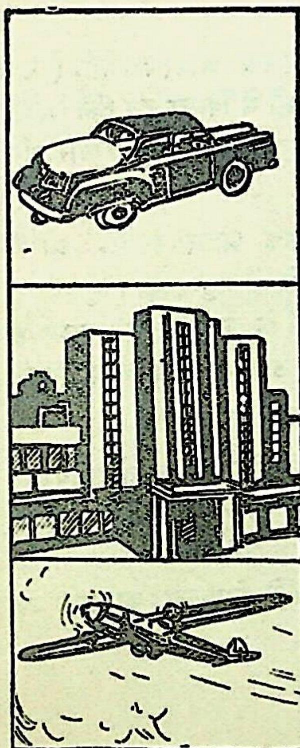


चित्र ३३—आराम संबंधी आवश्यकताएँ

आराम संबंधी आवश्यकताओं के बारे में ध्यान रखने योग्य बात यह है कि (१) इनके उपभोग से मनुष्य को पर्याप्त आनन्द (pleasure) प्राप्त होता है, (२) मनुष्य की निपुणता में थोड़ी वृद्धि होती है, और (३) जीवन अधिक सुखमय और शिष्ट हो जाता है। इनके उपभोग न करने से (१) बहुत पीड़ा

प्रतीत होती है, (२) मनुष्य की वर्तमान निपुणता में हानि नहीं होती, (३) परन्तु जीवन बड़ा नीरस लगता है।

आराम संबंधी वस्तुओं की श्रेणी में अच्छे-अच्छे कपड़े, अच्छा फर्नीचर, काम करने के लिये नौकर-चाकर, मनोविनोद की सुविधायें जैसे सिनेमा, खेल, देशाटन आदि, लिखने के लिये अच्छा फाउन्टेनपेन, अच्छे कागज आदि आते हैं।


चित्र ३४—विलासिताएँ

(३) विलासिताएँ (Luxuries)

ये वे आवश्यकताएँ हैं जिनके उपभोग से हमें बड़ा सुख मिलता है, परन्तु जिनसे हमारी कार्यक्षमता में कोई वृद्धि नहीं होती, वरन् वह उल्टी कम हो जाती है। प्रो० जीड (Gide) ने इनको 'अनावश्यक आवश्यकताएँ' (superfluous wants), तथा प्रो० एली (Ely) ने इन्हें 'अत्यधिक व्यक्तिगत उपभोग' (excessive personal consumption) कहकर परिभाषित किया है। सर सिडनी चैपमैन (Sir Sydney Chapman) ने विलासिता की बड़ी सुन्दर परिभाषा दी है। उनका कहना है कि "ये वे वस्तुएँ हैं जो उपभोग करने पर व्यक्ति की कार्यशीलता नहीं बढ़ातीं, वरन् उसे कम कर देती हैं।"*

बड़ी-बड़ी और ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं में रहना, घर में कई मोटरें रखना, कीमती हीरा-जवाहरातों को पहिनना, बहुमूल्य तस्वीरें एकत्रित करके रखना, सुन्दर-सुन्दर बगीचे आदि लगवाना विलासिताओं के कुछ उदाहरण हैं। ध्यान रखने की बात है कि सभी मनुष्यों के लिये विलासिता की वस्तुओं की सूची एक नहीं होगी। मनुष्य के कार्य तथा उसकी आर्थिक स्थिति के अनुसार सूची बदल जायगी। उदाहरण के लिये एक गरीब किसान के लिये एक साइकिल विलासिता की वस्तु होगी, परन्तु एक डाक्टर के लिये मोटरकार भी विलासिता की वस्तु नहीं होगी।

*"Luxuries are things which when consumed do not appreciably add to, and may even detract from, a person's efficiency"—Sir Sydney Chapman, *Outline of Political Economy*, p. 60.

विलासिता की वस्तुओं के सेवन से (१) हमको बहुत सुख मिलता है और (२) हमारी शान-शौकत बढ़ जाती है। परन्तु (१) हमारी कार्य-क्षमता में कोई वृद्धि नहीं होती, वरन् कभी-कभी उल्टी कम हो जाती है और (२) व्यय किये गये धन के अनुपात में हमें उपयोगिता प्राप्त नहीं होती।

आवश्यकताओं का वर्गीकरण

आवश्यकताओं को तीन भागों में (१) आवश्यक आवश्यकताएँ, (२) आराम सम्बन्धी आवश्यकताएँ, तथा (३) विलासिताओं में विभक्त हम तीन आधार पर कर सकते हैं : (१) निपुणता, (२) सुख दुःख, तथा (३) कीमत और माँग का संबंध। इन्हें एक-एक कर नीचे बताया गया है।

(१) निपुणता (Efficiency)—आवश्यक आवश्यकताएँ, आराम तथा विलासिताओं के उपभोग से या उपभोग न करने से मनुष्य की निपुणता पर भिन्न-भिन्न प्रभाव पड़ता है। आवश्यक आवश्यकताओं के उपभोग से मनुष्य की निपुणता वही रहती है। आराम संबंधी वस्तुओं के उपभोग से निपुणता में कुछ वृद्धि होती है। विलासिताओं के उपभोग से निपुणता प्रायः घट जाती है।

यदि आवश्यक आवश्यकताओं का उपभोग न किया जाय तो निपुणता में भारी कमी आ जाती है। आराम संबंधी आवश्यकताओं के उपभोग न करने से वर्तमान निपुणता में कोई कमी नहीं आती। हाँ, भविष्य में जो निपुणता मिल सकती थी वह नहीं मिलती। विलासिताओं के उपभोग न करने से निपुणता का ह्रास रुक जाता है।

निपुणता के आधार पर वर्गीकरण निम्न प्रकार होगा :

आवश्यकताओं के प्रकार	उपभोग करने से	उपभोग न करने से
१. आवश्यक आवश्यकताएँ	१. निपुणता वही रहती है।	१. निपुणता में भारी कमी हो जाती है।
२. आराम संबंधी आवश्यकताएँ	२. निपुणता में कुछ वृद्धि।	२. निपुणता में कोई कमी नहीं होती।
३. विलासिताएँ	३. निपुणता में कमी हो जाती है।	३. निपुणता घटने से बच जाती है।

इस चित्र में काला वाला भाग पहली स्थिति को बताता है और सफेद वाला बाद की स्थिति को।

(२) सुख-दुख—आवश्यक आवश्यकताओं के उपभोग से मनुष्य को कुछ सुख प्राप्त होता है, आराम संबंधी आवश्यकताओं से पर्याप्त सुख प्राप्त होता है और विलासिताओं के उपभोग से अत्यधिक सुख मिलता है। इसके विपरीत आवश्यक आवश्यकताओं के उपभोग न करने से मनुष्य को अत्यधिक दुःख होता है, आराम-संबंधी वस्तुओं के उपभोग न करने से कुछ दुःख होता है और विलासिता की वस्तुओं के उपभोग न करने से कुछ भी दुःख नहीं होता।

सुख-दुःख के अनुसार वर्गीकरण

आवश्यकताओं के प्रकार	उपभोग करने से सुख	उपभोग न करने से दुख
१. आवश्यक आवश्यकताएँ	कुछ सुख प्राप्त होता है	अत्यन्त दुःख मिलता है
२. आराम संबंधी आवश्यकताएँ	पर्याप्त सुख मिलता है	कुछ दुःख मिलता है
३. विलासिता संबंधी आवश्यकताएँ	अत्यधिक सुख प्राप्त होता है	कुछ भी दुःख नहीं मिलता

इस चित्र में काला भाग पहली स्थिति को बताता है और सफेद वाला बाद की स्थिति को।

(३) कीमत तथा माँग—आवश्यकताओं का वर्गीकरण कीमत तथा माँग के अनुसार भी किया जा सकता है। आवश्यक आवश्यकताओं की कीमत बढ़ने या घटने पर माँग में बहुत कम परिवर्तन होता है, माँग लगभग वही रहती है। आराम संबंधी आवश्यकताओं की कीमत में घट-बढ़ होने पर माँग में उसी अनुपात में परिवर्तन होता है जितने अनुपात में कीमत में परिवर्तन हुआ है। विलासिता की वस्तुओं की कीमतें घटने-बढ़ने पर बहुत भारी परिवर्तन होता है अर्थात् कीमत के अनुपात से बहुत अधिक।

कीमत तथा माँग के अनुसार वर्गीकरण

आवश्यकताओं के प्रकार	कीमत के बढ़ने पर माँग में आनुपातिक कमी	कीमत घटने पर माँग में आनुपातिक वृद्धि
१. आवश्यक आवश्यकताएँ	थोड़ी सी कमी	थोड़ी सी वृद्धि
२. आराम संबंधी आवश्यकताएँ	उसी अनुपात में कमी	उसी अनुपात में वृद्धि
३. विलासिताएँ	बहुत अधिक कमी	बहुत अधिक वृद्धि

इस चित्र में काला भाग पहली स्थिति को बताता है और सफेद वाला भाग बाद की स्थिति को।

आवश्यकताओं का वर्गीकरण वस्तुगत नहीं है

आवश्यकताओं का जो ऊपर वर्गीकरण दिया गया है उसके संबंध में यह बात ध्यान रखने की है कि यह वर्गीकरण वस्तुओं के अनुसार नहीं है। अर्थात् हम यह नहीं कह सकते कि यदि रामू किसान के लिये कोट आराम की वस्तु है तो प्रत्येक व्यक्ति के लिये भी वह आराम की ही वस्तु होगी या किसी सेठ के लिये यदि मोटर आवश्यकता की वस्तु है तो मोटर प्रत्येक व्यक्ति के लिये आवश्यकता की ही वस्तु होगी। कौन सी वस्तु आवश्यक आवश्यकता, आराम-संबंधी या विलासिता की है यह (१) काल, (२) देश, (३) आर्थिक स्थिति या आय, (४)

पेशा, (५) वस्तु की इकाई, तथा (६) आदत पर निर्भर रहता है। वास्तव में विभिन्न आवश्यकतायें सापेक्षिक (Relative) हैं।*

१. काल—काल या समय के परिवर्तन से आवश्यकताओं के वर्गीकरण पर भी प्रभाव पड़ता है। मुगल काल में बर्फ अत्यन्त मूल्यवान वस्तु थी। बड़े-बड़े सरदारों तथा मनसबदारों के लिये भी यह विलासिता की वस्तु समझी जाती थी। परन्तु आजकल यह साधारण व्यक्तियों के लिये भी आवश्यकता की वस्तु हो गई है। इसी प्रकार रेल का सफर या मोटर का सफर है। कुछ वर्ष पहले मोटर की सैर राजा-महाराजाओं के लिये भी विलासिता की वस्तु थी। आज सभी के लिये वह आवश्यक आवश्यकता की वस्तु हो गई है।

यह तो हमने एक बहुत लम्बे समय का उदाहरण दिया। समय चाहे थोड़ा सा ही क्यों न हो फिर भी उपर्युक्त बात ठीक उतरती है। जाड़े में ऊनी कपड़े आवश्यक आवश्यकता की वस्तु होते हैं, परन्तु गर्मियों में उनका उपयोग विलासिता की श्रेणी में आ जायगा। इसी प्रकार वर्फ, पंखा, लस्सी आदि का उपभोग ले लीजिये। गर्मी में यह आवश्यक आवश्यकताओं की वस्तुएँ हैं, परन्तु जाड़े के दिनों में विलासिता की।

२. देश—देश की प्राकृतिक स्थिति तथा उसकी जलवायु के अनुसार भी वस्तुओं के वर्गीकरण में भिन्नता आ जाती है। ठंडे देशों के रहने वालों के लिये पहिनने को गर्म कपड़े, तापने को अंगीठी तथा ओढ़ने को कम्बल या रजाई आवश्यक आवश्यकता की वस्तुएँ हैं। परन्तु भारत जैसे गर्म देश के निवासियों को यही विलासिता या आराम की वस्तुएँ हैं। उन स्थानों पर जहाँ वर्षा अधिक होती है बरसाती जूते आवश्यक आवश्यकता की वस्तु है, परन्तु उत्तर प्रदेश के रहने वालों के लिये वह आराम या विलासिता की वस्तु है।

३. आर्थिक-स्थिति—मनुष्य की आर्थिक स्थिति या उसकी आय के अनुसार भी वस्तुओं का वर्गीकरण बदलता रहता है। एक सेठ के लिये रेडियो, मोटर या अच्छा फर्नीचर आवश्यकता या आराम की वस्तुएँ हैं, परन्तु एक गरीब क्लर्क

*डाक्टर रिचार्ड्स (Richards) का कहना है कि "आवश्यक आवश्यकताएँ तथा विलासिताएँ सापेक्षिक शब्द हैं। एक वस्तु जो सौ वर्ष पहले सभ्य समाज में विलासिता की वस्तु समझी जाती थी, अब रहन-सहन का स्तर ऊँचा हो जाने के कारण, आवश्यक आवश्यकता की वस्तु समझी जाने लगी है।" [The terms necessary and luxury are,however, relative terms. An article that was regarded in civilized communities as a luxury a hundred years ago may, as a result of the raising of the standard of life, now be deemed a necessary." Vide, his *Outline of Economics*, p. 129.

यां किसान या मजदूर के लिये ये विलासिता की वस्तुएँ हैं। राजा-महाराजाओं को सुन्दर कपड़े तथा हीरा-जवाहरात पहिनना आवश्यक है, परन्तु कम आय वालों के लिये ये विलासिता की वस्तुएँ हैं।

४. पेशा—मनुष्य के पेशे या व्यवसाय के अनुसार भी वस्तुओं का वर्गीकरण बदल जाता है। एक डाक्टर के लिये जिसे अनेक मरीजों को देखने जाना पड़ता हैं, जान-बीमा करने वालों (Insurance agents) के लिये, प्रधान-मन्त्री या अन्य सचिवों के लिये मोटर आवश्यक आवश्यकता की वस्तु है, एक प्रोफेसर या वकील के लिये वह आराम की वस्तु है, परन्तु एक बेकार व्यक्ति के लिये जो केवल हवाखोरी के लिये मोटर रखता है वह विलासिता की वस्तु है। इसी प्रकार एक अध्यापक तथा विद्यार्थी के लिये फाउनटेनपेन आवश्यक आवश्यकता की वस्तु है, एक दुकानदार को आराम की और एक बिना पढ़े-लिखे किसान को विलासिता की।

५. वस्तु की इकाई—वस्तु की इकाई का भी वर्गीकरण पर प्रभाव होता है। यदि किसी वस्तु की आपके पास एक इकाई (Unit) हो तो वह आपके लिये आवश्यक आवश्यकता की वस्तु हो सकती है, परन्तु यदि उसी वस्तु की आपके पास कई इकाइयाँ हों तो वही आपके लिए विलासिता की वस्तु हो जायगी। उदाहरण के लिये डाक्टर के लिये एक कार आवश्यक आवश्यकता की वस्तु है, परन्तु यदि उसके पास तीन-चार कारें हो जायँ तो वही विलासिता की वस्तु हो जायगी। एक जोड़ी जूता आवश्यक आवश्यकता की वस्तु है, तीन-चार जोड़ियाँ आराम की और २०-२५ जोड़ियाँ विलासिता की। विद्यार्थी के लिये एक कलम आवश्यक आवश्यकता की वस्तु है, दो कलमें आराम की और १०-१५ कलमें विलासिता की।

६. आदत—आदत के अनुसार भी वस्तुओं का वर्गीकरण बदल जाता है। जिस वस्तु के उपभोग की मनुष्य की आदत पड़ जाती है, उसके लिये वह आवश्यक आवश्यकता की वस्तु हो जाती है। उदाहरण के लिये अखबार, चाय, सिगरेट आदि ले लीजिये। जिन लोगों को इनके उपभोग की आदत पड़ गई है, यदि उन्हें ये वस्तुएँ न मिलें तो उन्हें अत्यन्त दुःख होगा। अतः उनके लिये ये आवश्यक आवश्यकता की वस्तुएँ हैं।

परीक्षा प्रश्न

उत्तर प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—क्या एक ही वस्तु जैसे मोटर गाड़ी या फाउन्टेनपेन विभिन्न परिस्थितियों में आवश्यक आवश्यकता की वस्तु, आराम की वस्तु या विलासिता की वस्तु समझी जा सकती है ? उदाहरण देकर विस्तार पूर्वक समझाइये। (१९५२)

२—आवश्यक आवश्यकता की वस्तुएँ, आराम देने वाली वस्तुएँ तथा विलास की वस्तुओं के अंतर को उदाहरण देकर समझाइये। (१९५१)

३—आवश्यक आवश्यकताएँ तथा आराम सम्बन्धी आवश्यकताओं पर नोट लिखिये। (१९४८)

४—व्यावहारिक या रिवाजी आवश्यकताओं पर संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९४७, १९४५, १९४३, १९३६)

५—आवश्यक आवश्यकताओं तथा आराम संबंधी आवश्यकताओं के भेद बताइये। (१९३७, १९३५)

६—विलासिताओं पर एक संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९३६)

उत्तर प्रदेश इन्टर कामर्स

७—आवश्यक आवश्यकतायें, आराम सम्बन्धी आवश्यकतायें और विलासिता संबंधी आवश्यकतायें क्या होती हैं? इनका एक दूसरे से भेद आप कैसे बतायेंगे? (१९५३, १९४६)

८—आवश्यकताओं को आवश्यक आवश्यकता की वस्तुओं, आराम संबंधी वस्तुओं और विलासिता की वस्तुओं में आप किस आधार पर श्रेणीबद्ध या विभक्त करेंगे? भारतीय उदाहरणों द्वारा समझाइये। (१९४९)

९—आवश्यक आवश्यकताओं और आराम तथा विलासिता सम्बन्धी आवश्यकताओं का भेद बताइये। क्या एक ही वस्तु एक ही व्यक्ति के लिये कभी आवश्यक आवश्यकता की, कभी आराम की और कभी विलासिता की वस्तु हो सकती है? (१९४०)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

१०—आवश्यक आवश्यकतायें, आराम तथा विलासिता सम्बन्धी आवश्यकताओं में क्या भेद है? यह भेद किस आधार पर किया जाता है? इस भेद का महत्व बताइये। (१९५३)

११—आवश्यक आवश्यकतायें, आराम तथा विलासिता संबंधी आवश्यकताओं में क्या भेद है? भारतीय उदाहरण दीजिये। (१९५२, १९५१, १९४८)

१२—आर्थिक आवश्यकताओं का वर्गीकरण आवश्यक आवश्यकतायें, विलासिता तथा आराम सम्बन्धी आवश्यकताओं में किया जाता है। इन तीनों का सविस्तार वर्णन कीजिये। इनका भेद करने के लिये आप किन प्रमाणों का प्रयोग करेंगे? (१९४६)

१३—व्यावहारिक आवश्यकतायें किसे कहते हैं? उपभोग पर आदत का क्या प्रभाव पड़ता है? भारतीय उदाहरण दीजिये। (१९४७)

१४—यह स्पष्ट कीजिये कि आवश्यकताओं का आवश्यक आवश्यकताओं, आराम तथा विलासिता में वर्गीकरण वस्तुओं के आधार पर नहीं किया गया है वरन् उनकी इकाइयों के आधार पर और व्यक्तिगत उपभोक्ताओं, समय और स्थान के आधार पर उसमें परिवर्तन हो जाता है। (१९४५)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर कामर्स

१५—विलासिताओं पर एक नोट लिखिये। (१९५१)

१६—उपभोग को आवश्यक आवश्यकतायें, आराम तथा विलासिता में किस प्रकार विभाजित करते हैं? उदाहरण सहित उत्तर दीजिये। (१९४८)

पटना इन्टर कामर्स

१७—व्यावहारिक आवश्यकताओं पर एक सूक्ष्म नोट लिखिये। (१९५०)

सागर इन्टर आर्ट्स

१८—आवश्यक आवश्यकतायें, आराम तथा विलासिताओं पर एक सूक्ष्म नोट लिखिये। (१९५१)

१९—मानवीय आवश्यकताओं की परिभाषा दीजिये। इनका वर्गीकरण आप किस प्रकार करेंगे? (१९४९)

सागर इन्टर कामर्स

२०—आर्थिक क्रियाओं का एक वर्गीकरण दीजिये। विलासिताएँ किस आ ार पर वांछनीय हैं? (१९५१)

२१—विलासिताओं पर एक सूक्ष्म नोट लिखिये। (१९५०)

२२—आवश्यक आवश्यकताओं पर एक सूक्ष्म नोट लिखिये। (१९४९)

मध्य भारत इन्टर आर्ट्स

२३—आवश्यकताओं का आवश्यक आवश्यकता, आराम तथा विलासिता में जो वर्गीकरण है उसे समझाइये। (१९५३)

मध्य भारत इन्टर कामर्स

२४—आवश्यकताओं का आवश्यक आवश्यकता, आराम तथा विलासिता में जो वर्गीकरण है उसकी समस्या को बताइये। (१९५२)

सोलहवाँ अध्याय

उपयोगिता

(Utility)

अर्थशास्त्र में उपयोगिता का बड़ा भारी महत्व है क्योंकि इसके द्वारा ही हम विभिन्न वस्तुओं की पारस्परिक उपादेयता का पता लगाते हैं। जिस प्रकार एक डाक्टर के लिये थर्मामीटर, एक बजाज के लिये गज और एक बनिया के लिये तराजू की आवश्यकता बार-बार पड़ती है, ठीक उसी प्रकार एक अर्थशास्त्री भी उपयोगिता का बार-बार प्रयोग करता है और इसके बिना उसका काम नहीं चलता। जब उपयोगिता का इतना महत्व है, तो इसका सही-सही अर्थ जानना अत्यन्त आवश्यक है।

१. उपयोगिता का अर्थ

(Meaning of Utility)

अर्थशास्त्र में उपयोगिता का पर्यायवाची शब्द 'सन्तुष्टि' (Satisfaction) है। वस्तु के उपभोग से मनुष्य को जो सन्तुष्टि मिलती है उसे उपयोगिता कहते हैं।*

हमें सन्तुष्टि क्यों मिलती है ?—प्रश्न यह उठता है कि जब हम किसी वस्तु का उपभोग करते हैं तो हमें सन्तुष्टि क्यों मिलती है? सन्तुष्टि मिलने का कारण यह है कि जब हमें किसी वस्तु की आवश्यकता है तो हमारे मन में कुछ क्लेश या दुःख होता है। इसी क्लेश या दुःख को मिटाने के लिए ही हम वस्तुओं का उपभोग करते हैं। जब हम वस्तु का उपभोग कर लेते हैं तो हमारी आवश्यकता पूरी हो जाती है और हमारा क्लेश दूर हो जाता है। इसी कारण हम यह कहते हैं कि उपभोग से हमें सन्तुष्टि मिलती है।

सन्तुष्टि किन-किन बातों पर निर्भर है ?—अब दूसरा प्रश्न यह उठता है कि किसी वस्तु के उपभोग से हमें जो सन्तुष्टि मिलती है वह किन-किन बातों पर

* "Utility is the measure of the amount of satisfaction, more correctly perhaps, of the intensity of satisfaction". M. Briggs, *A Text-Book of Economics* | p. 61.

निर्भर है ? वस्तु से मिलने वाली सन्तुष्टि दो बातों पर निर्भर है (१) वस्तु की किस्म (quality), तथा (२) आवश्यकता की तीव्रता पर।

यदि वस्तु अच्छी बनी है, अच्छे किस्म की है और मजबूत तथा सस्ती है तो हमें उससे अधिक उपयोगिता मिलेगी। परन्तु यदि बात ऐसी नहीं है तो उपयोगिता बहुत कम मिलेगी। उदाहरण के लिये आप जूते को ले लीजिये। यदि जूते का चमड़ा अच्छा और चमकदार है, उसकी सिलाई मजबूत है और वह अच्छी कम्पनी का बना है तो उससे हमें अधिक उपयोगिता प्राप्त होगी। परन्तु यदि वह खराब चमड़े का बना है तथा देखने में भद्दा है तो स्पष्ट है हमें उपयोगिता बहुत कम मिलेगी।

दूसरी बात हमारी उपयोगिता की तीव्रता है। हमारी आवश्यकता जितनी अधिक तीव्र होगी, हमें उतना ही अधिक क्लेश होगा और वस्तु के उपभोग के बाद हमें उतनी ही अधिक सन्तुष्टि प्राप्त होगी। यही कारण है कि आवश्यक आवश्यकताओं के उपभोग से हमें सबसे अधिक और विलासिताओं से सबसे कम उपयोगिता मिलती है।

'आवश्यकताएँ सन्तुष्ट करने की शक्ति' गलत परिभाषा है—कुछ पुस्तकों में उपयोगिता की परिभाषा 'आवश्यकताएँ सन्तुष्ट करने की शक्ति' की गई है। परन्तु यह परिभाषा गलत है। इसका कारण स्पष्ट है। ऊपर बताया जा चुका है कि उपयोगिता दो बातों पर निर्भर है : (१) वस्तु पर तथा (२) आवश्यकता की तीव्रता पर। यह परिभाषा केवल पहली बात को ही कहती है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य की आवश्यकता की तीव्रता का उपयोगिता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। परन्तु ऐसा सोचना गलत है।

उपयोगिता तथा उपादेयता

दिन प्रति दिन की भाषा में उपयोगिता और उपादेयता में भेद नहीं किया जाता। वास्तव में वही वस्तु उपयोगी कही जाती है जो उपादेय या लाभदायक हो अर्थात् जो हमारे स्वास्थ्य या शरीर को हानि न पहुँचाये। उदाहरण के लिये दूध, घी, मक्खन, फल, कलम, किताब आदि को उपयोगी माना जाता है और शराब, सिगरेट, सिनेमा आदि को अनुपयोगी। परन्तु हम अर्थशास्त्र में इस प्रकार का भेद नहीं करते। जो भी वस्तु हमारी आवश्यकता पूरी करे और हमें सन्तुष्टि प्रदान करे, उपयोगी कही जाती है चाहे उसका प्रभाव हमारे स्वास्थ्य या जीवन पर कुछ भी क्यों न पड़े। उदाहरण के लिये सिनेमा देखने, शराब पीने, दूध पीने, सैर करने, किताब पढ़ने आदि सभी क्रियाओं से हमें उपयोगिता मिलती है।

उपयोगिता वस्तुगत नहीं है

ध्यान रखने की बात है कि उपयोगिता किसी वस्तु विशेष में निहित नहीं

होती। प्यासे होने पर जब हम एक गिलास पानी पीते हैं और हमें जो उपयोगिता मिलती है उससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि पानी में कुछ उपयोगिता निहित है। यदि बात ऐसी होती तो जब भी हम पानी पीते हमको उतनी ही उपयोगिता मिलती। परन्तु बात ऐसी नहीं है। जब हमको प्यास नहीं होती, उस समय यदि हमको पानी पीने को दिया जाय तो हमको कुछ भी उपयोगिता नहीं मिलेगी। इससे स्पष्ट हो जाता है कि उपयोगिता किसी वस्तु में निहित नहीं है और हमें उपयोगिता उसी समय मिलती है जब वस्तु की हमें आवश्यकता हो।

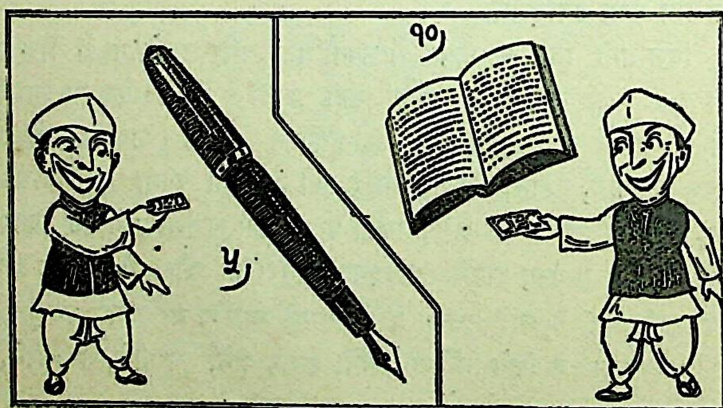
इस बात से हम इस परिणाम पर भी पहुँच जाते हैं कि किसी वस्तु के उपभोग से हमें जो उपयोगिता मिलती है वह हमारी आवश्यकता की तीव्रता के अनुपात में होती है। जितनी अधिक तीव्र हमारी उपयोगिता होती है उतनी ही अधिक हमें उपयोगिता मिलेगी।

२. उपयोगिता का माप

(Measurement of Utility)

आपको बताया जा चुका है कि अर्थशास्त्र में वस्तुओं की उपादेयता को मापने का यंत्र 'उपयोगिता' है। जिस प्रकार एक बजाज गज की सहायता से कपड़ा नापता है, और एक डाक्टर थर्मामीटर की सहायता से तापमान मापता है, उसी प्रकार एक अर्थशास्त्री वस्तुओं की उपादेयता 'उपयोगिता' द्वारा मापता है।

उपयोगिता पता लगाने का तरीका—अर्थशास्त्र में उपयोगिता पता लगाने का तरीका बड़ा सुगम है। हम यह पता लगाते हैं कि कोई व्यक्ति किसी एक वस्तु के बदले में कितना धन देने को तैयार है। जो व्यक्ति जिस वस्तु के लिये जितना



चित्र ३५—उपयोगिता का माप

धन देने को तैयार है, उस व्यक्ति के लिये उस वस्तु की उतनी ही उपयोगिता

है। उदाहरण के लिये एक कलम के लिये यदि राम १० रुपये देने को तैयार है और श्याम १२ रुपये, तो हम यह कहेंगे कि राम के लिये कलम की उपयोगिता १० और श्याम के लिये १२ है। मनुष्य के लिये जिस वस्तु की आवश्यकता जितनी ही अधिक तीव्र होगी, या अन्य शब्दों में कहिये, कि वस्तु मनुष्य की जितनी ही अधिक तीव्र आवश्यकता सन्तुष्ट कर सकेगी, वह वस्तु के लिये उतना ही अधिक धन देने को तत्पर हो जायगा।

उपयोगिता मापने का तरीका—उपयोगिता प्रायः इकाइयों (Units) में मापी जाती है। यदि किसी वस्तु के लिये एक मनुष्य १० रुपये देने को तैयार है और किसी दूसरी के लिये पाँच रुपया, तो हम कहेंगे कि उसे पहली वस्तु से १० इकाई तथा दूसरी से ५ इकाई उपयोगिता प्राप्त होती है। हम यह भी कह सकते हैं कि पहली वस्तु हमें दूसरी की अपेक्षा दुगनी अधिक उपयोगी है।

क्या उपयोगिता मापी जा सकती है ?

कुछ विद्वानों* का मत है कि उपयोगिता ठीक से मापी नहीं जा सकती। उपयोगिता एक आत्मनिष्ठ (subjective) गुण है। जब हम किसी वस्तु का उपभोग करते हैं तो हम यह बता सकते हैं कि इस वस्तु से हमें कितनी उपयोगिता मिल रही है। कोई दूसरा व्यक्ति भला कैसे कह सकता है कि इससे हमें कितनी उपयोगिता मिलती है? बात ठीक है। परन्तु अर्थशास्त्रियों का यह कहना है कि मनुष्य जिस वस्तु के लिये जितना धन देने को तैयार है वह उसकी उपयोगिता का माप है।†

वास्तव में होता यह है कि जब भी कोई मनुष्य किसी वस्तु को मापता है तो वह उस वस्तु का किसी दूसरी वस्तु से तुलना करता है। उदाहरण के लिये एक बजाज को ले लीजिये। वह मापते समय कपड़े की तुलना गज से करता है। अर्थ-

---

* उदाहरण के लिये प्रो० L. Robbins, Dr. Allen आदि। "Now of course in daily life we do continually assume that the comparison can be made....... ......But, although it may be convenient to assume this, there is no way of proving that the assumption rests on ascertainable facts." L. Robbins, *Nature and Significance of Economic Science*, p. 139-40

‡ देखिये प्रोफेसर ए० सी० पीगू (A. C. Pigou) की पुस्तक *Welfare of Economics*

"It cannot be measured, but it can be compared with a corresponding utility, that of mony". M. Briggs, *A Text Book of Economics*, p. 63.

शास्त्री भी उपयोगिता मापते समय वस्तु की तुलना रुपयों से करते हैं। अतः उपयोगिता मापने का यह हमारा तरीक़ा पूर्णतः ठीक है।*

३. सीमान्त उपयोगिता

(Marginal Utility)

अर्थ—उपभोग की कुछ क्रियायें ऐसी हैं कि आवश्यकता सन्तुष्ट करने के लिये मनुष्य को वस्तु की कई इकाइयों का सेवन करना पड़ता है। उदाहरण के लिए पेट भरने के लिये मनुष्य एक ही रोटी न खाकर चार-पाँच रोटियाँ खाता है। गर्मी के दिनों में प्यास बुझाने के लिये वह केवल एक गिलास पानी न पीकर, तीन-चार गिलास पानी पीता है। उपभोग की ऐसी क्रियाओं में (जहाँ वस्तु की कई इकाइयों का उपभोग करने के पश्चात् उपभोग रोका जाता है) अन्तिम इकाई से जो उपयोगिता प्राप्त होती है उसे सीमान्त उपयोगिता कहते हैं। उदाहरण के लिये यदि कोई व्यक्ति पाँच रोटी खाकर उपभोग बन्द कर देता है तो पाँचवीं रोटी से उसे जो उपयोगिता मिलेगी उसे सीमान्त उपयोगिता कहेंगे। अतः यह कहा जा सकता है कि **जब मनुष्य किसी वस्तु की कई इकाइयों का उपभोग करने के पश्चात् उपभोग रोक देता है, तो उपभोग की अन्तिम इकाई से मिलने वाली उपयोगिता सीमान्त उपयोगिता कहलाती है।**†

सीमान्त उपयोगिता की उपर्युक्त परिभाषा में तीन बातें ध्यान देने योग्य हैं:

(१) उपभोग की क्रिया में कई इकाइयों का उपभोग किया गया होना चाहिये—यदि केवल एक ही इकाई का उपभोग किया गया है तो सीमान्त उपयोगिता का सही-सही अर्थ समझ में नहीं आ सकता। कारण यह है कि प्रथम इकाई की उपयोगिता ही सीमान्त उपयोगिता होगी, वही कुल उपयोगिता होगी और वही औसत उपयोगिता भी।

(२) उपभोग की क्रिया बन्द हो गई होनी चाहिये—अंतिम इकाई से प्राप्त उपयोगिता को ही सीमान्त उपयोगिता कहते हैं। अतएव जब तक उपभोग की क्रिया बन्द नहीं हो जाती, हम यह नहीं कह सकते कि कौनसी इकाई अंतिम है। और जब तक अंतिम इकाई का पता नहीं चलता, सीमान्त उपयोगिता का पता नहीं लगाया जा सकता।

---

* विशेष जानकारी के लिये पढ़िये प्रोफेसर जे० के० मेहता की पुस्तक '*Advanced Economic Theory*.

† "Jevons used the term "Final Utility" for the utility of the last unit, but……"marginal" is a better term than "final" for in practice few human wants are completety satisfied." M. Briggs, A *Text Book of Economics* p. 69.

(३) अंतिम इकाई से प्राप्त उपयोगिता सीमान्त उपयोगिता कहलाती है—उपभोग की क्रिया में जो सबसे अंतिम इकाई से उपयोगिता मिले उसी को सीमान्त उपयोगिता कहते हैं। सीमान्त इकाई दूसरी, तीसरी, चौथी या कोई निश्चित इकाई नहीं है, परन्तु उपभोग की अंतिम इकाई है।

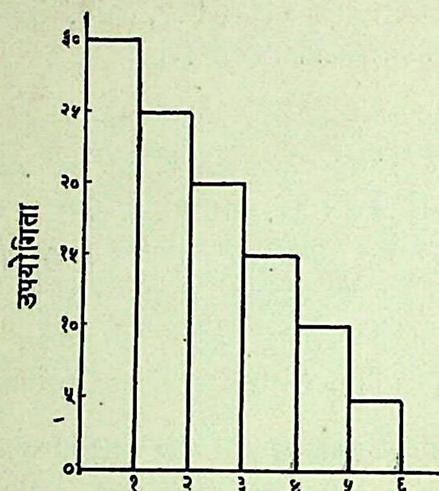
उदाहरण—एक उदाहरण लेकर सीमान्त उपयोगिता को समझाया जा सकता है। मान लीजिये एक मनुष्य बहुत भूखा है और वह भूख मिटाने के लिए रोटी खाता है। पहली रोटी से उसे ३०, दूसरी से २५, तीसरी से २०, चौथी से १५, पाँचवीं से १० और छठी से ५ उपयोगिता मिलती है। छठी रोटी खाने के बाद वह भोजन बंद कर देता है। इस उदाहरण में छटी इकाई अंतिम इकाई है। इस कारण उसे छठी इकाई से जो उपयोगिता मिली है उसे सीमान्त उपयोगिता कहेंगे। छठी रोटी से ५ उपयोगिता मिली है। अतः यह सीमान्त उपयोगिता हुई।

तालिका—ऊपर के उदाहरण को नीचे तालिका द्वारा दिखलाया जा सकता है :

इकाइयाँ	प्राप्त उपयोगिता
१	३०
२	२५
३	२०
४	१५
५	१०
६	५

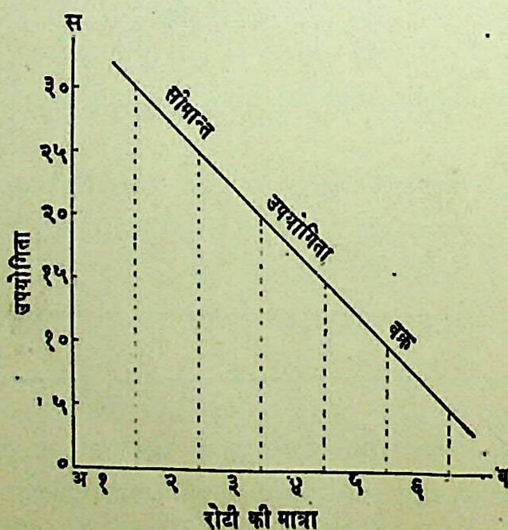
यदि मनुष्य केवल चार रोटियाँ खाता और उसके बाद उपभोग बन्द कर देता तो चौथी रोटी से प्राप्त १५ उपयोगिता सीमान्त-उपयोगिता कहलाती। इसके विपरीत यदि वह छठी से भी अधिक अर्थात् सातवीं रोटी खाता और उससे उसे शून्य उपयोगिता मिलती, तो सीमान्त उपयोगिता शून्य कहलाती।

रेखाचित्र—सीमान्त उपयोगिता को रेखाचित्र द्वारा भी दिखलाया जा सकता है। रेखाचित्र दो प्रकार से बनाये जा सकते हैं (१) समकोण रेखाचित्र



चित्र ३६—सीमान्त उपयोगिता (समकोण रेखाचित्र)

(Bar Diagram), या (२) वक्र (Curve) रेखाचित्र। उपर्युक्त उदाहरण को नीचे दोनों प्रकार के रेखाचित्रों द्वारा दिखलाया गया है।



चित्र ३७—सीमान्त उपयोगिता वक्र

४· कुल उपयोगिता
(Total Utility)

अर्थ—जब हम वस्तु की कई इकाइयों का उपभोग करते हैं तो सभी इकाइयों से प्राप्त उपयोगिताओं के योग को कुल उपयोगिता कहा जाता है। उदाहरण के लिये यदि कोई मनुष्य प्यास बुझाने के लिये तीन गिलास पानी पीता है तो तीनों गिलास पानी से मिलाकर उसे जो उपयोगिता मिलेगी उसे कुल उपयोगिता कहेंगे। अतः कहा जा सकता है कि **उपभोग की किसी भी एक क्रिया में सभी इकाइयों से प्राप्त उपयोगिता को कुल उपयोगिता कहते हैं।**

इस परिभाषा में निम्न बातें विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं :

(१) उपभोग की एक क्रिया—उपभोग की क्रिया एक होनी चाहिये। यह नहीं कि हम कई क्रियाओं से प्राप्त होने वाली उपयोगिताओं को जोड़ लें और कहें कि कुल उपयोगिता इतनी है। ऐसा कहना अनुचित होगा। यदि हमें भूख लगी है और उसके लिये रोटी खा रहे हैं तो हमें विभिन्न रोटियों से जो उपयोगिता मिली है उसी के योग को 'कुल उपयोगिता' कहना चाहिये। यह नहीं कि भोजन, कपड़ा, मकान आदि से प्राप्त उपयोगिताओं के योग को कुल उपयोगिता कहने लगें।

(२) सभी इकाइयों से प्राप्त उपयोगिता का योग—उपभोग की किसी भी क्रिया में हम जितनी भी इकाइयों का प्रयोग करते हैं—तीन, या चार या पाँच-उन सभी से प्राप्त उपयोगिताओं के योग को कुल उपयोगिता कहते हैं। हमको न तो कोई इकाई छोड़नी ही चाहिये और न कोई बढ़ानी ही चाहिये।

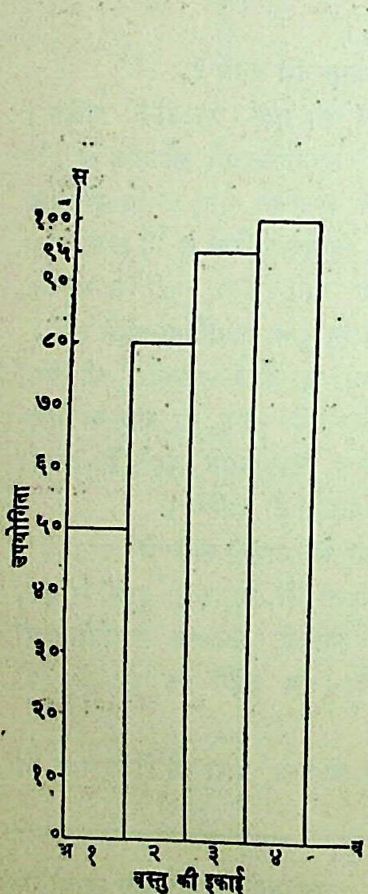
उदाहरण—मान लीजिये रामबाबू बाजार से नारंगी खरीदने जाता है। वह चार नारंगियाँ खरीदता है। मान लीजिये पहली से उसे ५०, दूसरी से ३०, तीसरी से १५ तथा चौथी से ५ उपयोगिता प्राप्त होती है। इन सब उपयोगिताओं का योग (५०+३०+१५+५)=१०० हुआ। हम कहेंगे कि रामबाबू को नारंगियों से कुल उपयोगिता १०० प्राप्त हुई।

तालिका—ऊपर के उदाहरण को निम्न तालिका द्वारा भी दिखलाया जा सकता है :

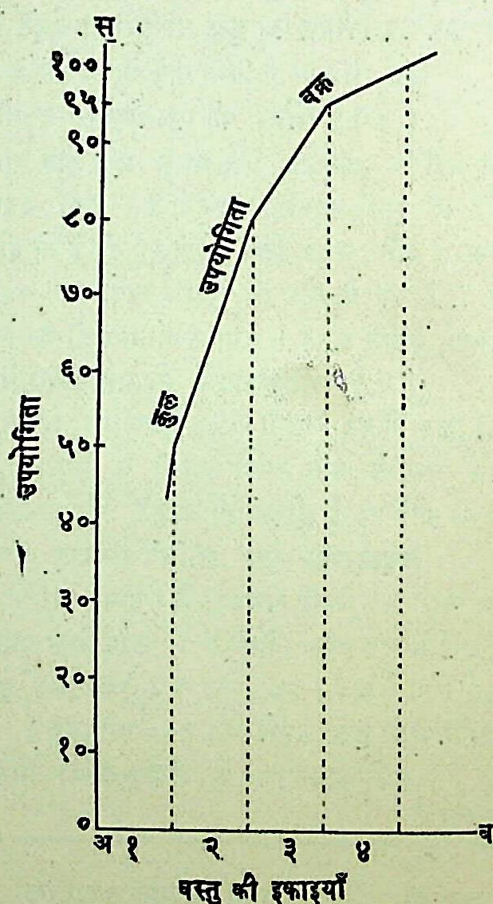
इकाइयाँ	हर नारंगी से प्राप्त उपयोगिता	नारंगियों से प्राप्त कुल उपयोगिता
१	५०	५०
२	३०	८०
३	१५	९५
४	५	१००
कुल योग	१००	

यदि रामबाबू चार के स्थान पर तीन नारंगियाँ ही खरीदता तो कुल उपयोगिता (५०+३०+१५)=९५ ही होती। और यदि वह पाँच नारंगियाँ खरीदता और पाँचवें से उसे ३ उपयोगिता मिलती, तो कुल उपयोगिता (५०+३०+१५ +५+३)=१०३ होती। अतः, उपभोग की गई इकाइयों पर कुल उपयोगिता निर्भर रहती है।

रेखा चित्र—ऊपर के उदाहरण को रेखाचित्रों द्वारा दिखलाया जा सकता है। रेखाचित्र समकोण हो सकता है और वक्र भी। वह नीचे दिये गये हैं।



चित्र ३८—कुल उपयोगिता



चित्र ३९—कुल उपयोगिता वक्र

ध्यान रखने की बात है कि क्योंकि हम कुल-उपयोगिता दिखाने के लिये रेखाचित्र खींच रहे हैं, इस कारण हमें प्रति इकाई से मिलने वाली उपयोगिता की सहायता से रेखाचित्र नहीं बनाना चाहिये, वरन् हर नई इकाई के पश्चात् जो कुल-उपयोगिता प्राप्त होती है उसका प्रयोग करना चाहिये। पहली नारंगी से ५० उप-

योगिता मिलती है। अतः पहली नारंगी के बाद कुल उपयोगिता ५० हुई। दूसरी नारंगी से ३० उपयोगिता मिलती है। दूसरी नारंगी खरीदने के बाद कुल उपयोगिता (५०+३०)=८० हुई। तीसरी नारंगी से १५ उपयोगिता मिलती है। इस कारण तीसरी नारंगी खरीदने पर कुल उपयोगिता। (५०+३०+१५)=९५ हुई। इसी प्रकार चौथी नारंगी खरीदने पर कुल उपयोगिता (५०+३०+१५+५)=१०० हुई। रेखाचित्र कुल उपयोगिताओं की सहायता से ही बनाये गये हैं।

५. सीमान्त तथा कुल उपयोगिताओं का संबंध

(Relation Between Marginal and Total Utilities)

सीमान्त तथा कुल उपयोगिताओं का अर्थ समझ लेने के पश्चात् हमें इन दोनों प्रकार की आवश्यकताओं का आपसी संबंध भी जान लेना चाहिये। सीमान्त तथा कुल दोनों प्रकार की आवश्यकताओं में निम्न संबंध है। (१) जब सीमान्त उपयोगिता घटती है, कुल उपयोगिता बढ़ती है। (२) जब सीमान्त उपयोगिता शून्य होती है, कुल उपयोगिता अधिकतम हो गई होती है और (३) जब सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक (negative) होती है, कुल उपयोगिता घटने लगती है।

हम कोई भी उदाहरण लें, उपयोगिताओं का यह संबंध सदैव ठीक उतरता है। इसका कारण स्पष्ट है। कुल उपयोगिता सीमान्त-उपयोगिताओं का योग है। इस कारण जब तक सीमान्त उपयोगिता धनात्मक (positive) रहती है, कुल उपयोगिता बढ़ती जाती है। परन्तु क्योंकि सीमान्त उपयोगिता का यह गुण है कि जैसे-जैसे उपभोग की मात्रा बढ़ती जाती है, वह कम होती जाती है अर्थात् हर नई इकाई के उपभोग के बाद सीमान्त उपयोगिता कम हो जाती है, इस कारण जब सीमान्त उपयोगिता शून्य होती है, कुल उपयोगिता अधिकतम हो गई होती है। सीमान्त उपयोगिता के शून्य हो जाने पर इसकी कोइ भी संभावना नहीं रहती कि अगली इकाई उपभोग करने पर उपयोगिता शून्य से अधिक हो जायगी इस कारण यह कहना कभी भी गलत नहीं होता कि सीमान्त उपयोगिता शून्य होने पर कुल उपयोगिता अधिकतम होती है। सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक होने पर कुल उपयोगिता का घट जाना स्पष्ट ही है क्योंकि कुल-उपयोगिता सीमान्त-उपयोगिताओं का योग है।

उदाहरण—एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायगी। मान लीजिये कोई आदमी कुर्सियाँ खरीदता हैं। उसे विभिन्न कुर्सियों से निम्न सीमान्त उपयोगिता प्राप्त होती है :

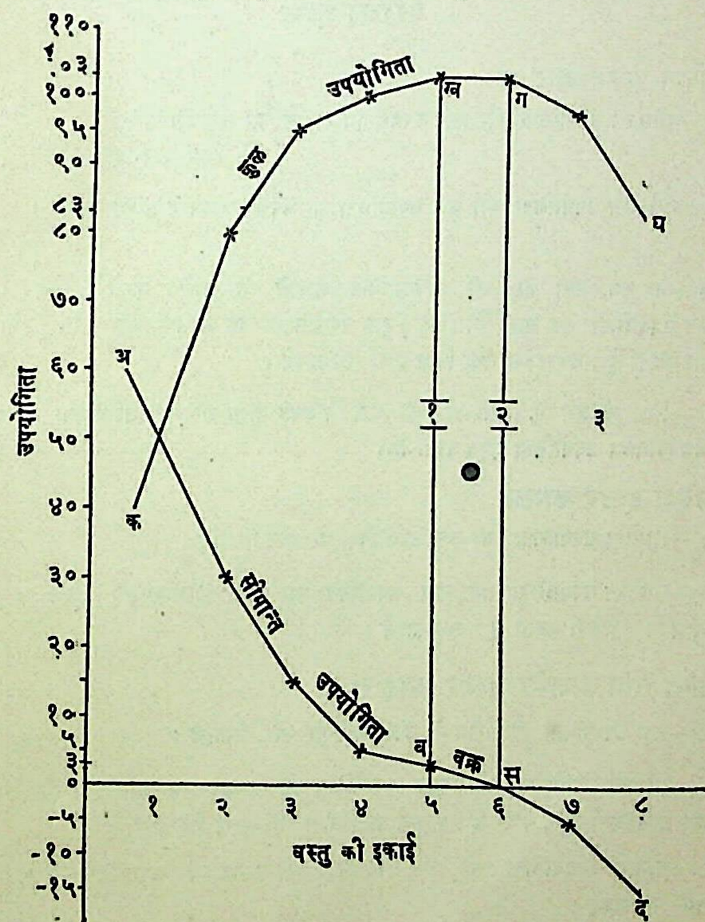
वस्तु की इकाई	प्राप्त सीमान्त उपयोगिता
१	५०
२	३०
३	१५
४	५
५	३
६	०
७	५
८	१५

यदि हम प्रति इकाई उपभोग करने के पश्चात् प्राप्त हुई कुल-उपयोगिता का पता लगावें तो वह निम्न प्रकार होगी :

वम्तु की इकाई	प्राप्त कुल-उपयोगिता	
१	५०	=५०
२	५०+३०	=८०
३	५०+३०+१५	=६५
४	५०+३०+१५+५	=१००
५	५०+३०+१५+५+३	=१०३
६	५०+३०+१५+५+३+०	=१०३
७	५०+३०+१५+५+३+०—५	=९८
८	५०+३०+१५+५+३+०—५—१५	=८३

उदाहरण से स्पष्ट है कि जब तक सीमान्त उपयोगिता धनात्मक (Positive) है, कुल उपयोगिता बढ़ रही है। जब सीमान्त उपयोगिता शून्य (०) है (ऐसा छठी इकाई पर होता है), कुल उपयोगिता अधिकतम (१०३) पर पहुँच गई है। छठी इकाई के बाद सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक हो रही है और कुल उपयोगिता भी कम हो रही है। सातवीं इकाई के उपभोग के बाद कुल-उपयोगिता ९८ है और आठवीं के बाद ८३।

रेखाचित्र—सीमान्त तथा कुल उपयोगिताओं के संबंध को रेखाचित्र द्वारा भी दिखलाया जा सकता है। यह नीचे किया गया है :



चित्र ४०

इस रेखाचित्र में अ द सीमान्त-उपयोगिता वक्र है और क ख ग घ कुल-उपयोगिता-वक्र। ब तक सीमान्त उपयोगिता वक्र धनात्मक है। परिणामतः हम देखते

हैं कि क ख तक कुल-उपयोगिता वक्र बढ़ता हुआ है। वक्र ऊँचा होता जा रहा है। जिससे यह स्पष्ट है कि कुल-उपयोगिता बढ़ रही है। स बिन्दु पर सीमान्त उपयोगिता शून्य हो गई है। उस समय तक कुल-उपयोगिता अधिकतम (Maximum) हो चुकी है। ख तथा ग विन्दु एक ही ऊँचाई पर हैं, जो अधिकतम है। स बिन्दु के बाद सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक हो जाती है। फलतः ग के बाद कुल-उपयोगिता वक्र भी नीचे गिरने लगता है। इससे स्पष्ट है कि कुल उपयोगिता कम हो रही है।

परीक्षा प्रश्न

उत्तर प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—सीमान्त उपयोगिता और कुल उपयोगिता पर संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९५२, १९४६, १९४३, १९३४)

२—सीमान्त उपयोगिता तथा कुल उपयोगिता का संबंध उदाहरण सहित बताइये। (१९४५)

३—जब हम किसी वस्तु की अधिकाधिक इकाइयों का उपभोग करते हैं, तब (i) वस्तु की सीमान्त उपयोगिता घट जाती है, (ii) कुल उपयोगिता बढ़ जाती है और (iii) हमारी वस्तु की माँग घट जाती है। उदाहरण तथा चित्र द्वारा समझाइये। (१९४४)

४—सिद्ध कीजिये कि किसी वस्तु की एक निश्चित मात्रा की कुल उपयोगिता तब अधिकतम होती है जब सीमान्त उपयोगिता शून्य होती है। (१९३८)

उत्तर प्रदेश इन्टर कामर्स

५—सीमान्त उपयोगिता तथा कुल उपयोगिता पर नोट लिखिये। (१९५३)

६—सीमान्त उपयोगिता तथा कुल उपयोगिता का अन्तर स्पष्ट कीजिये। मूल्य के निर्धारण में इनमें से कौन सहायता करती है? समझाइये। (१९४५)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

७—कुल उपयोगिता और सीमान्त उपयोगिता पर नोट लिखिये। (१९५३, १९५१)

८—सीमान्त उपयोगिता और कुल उपयोगिता को अच्छी तरह समझाइये और बताइये कि जब सीमान्त उपयोगिता शून्य होती है तब कुल उपयोगिता अधिकतम कैसे होती है? (१९४५)

९—सीमान्त उपयोगिता तथा कुल उपयोगिता को समझाइये। उपयोगिता ह्रास नियम को भी सविस्तार समझाइये। (१९३८)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर कामर्स

१०—क्या आप इस कथन से सहमत हैं कि, "कुल उपयोगिता घटती दर पर एक सीमान्त बिन्दु तक बढ़ती जाती है"। अपने उत्तर के पक्ष में दलील दीजिये। (१९५३)

११—सीमान्त उपयोगिता पर एक नोट लिखिये। (१६४८)

पटना इन्टर कामर्स

१२—सीमान्त उपयोगिता पर एक संक्षिप्त नोट लिखिये। (१६४६)

सागर इन्टर आर्ट्स

१३—सीमान्त उपयोगिता तथा कुल उपयोगिता का अर्थ समझाइये। (१६५०)

सागर इन्टर कामर्स

१४—सीमान्त उपयोगिता तथा कुल उपयोगिता पर संक्षिप्त नोट लिखिये। (१६४६)

———

सत्रहवाँ अध्याय

सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम

(Law of Diminishing Marginal Utility

१. नियम की व्याख्या

(Discussion of the Law)

यह हर कोई जानता है कि उपभोग की किसी भी क्रिया को थोड़े समय तक करने के पश्चात् आदमी की उससे अरुचि हो जाती है और वह उपभोग की क्रिया बंद कर देता है। आप कोई भी उदाहरण ले लीजिये, यह बात ठीक पावेंगे। एक भूखा मनुष्य पाँच-छै रोटियाँ खाने के बाद भोजन करना बन्द कर देता है। एक प्यासा, एक-दो गिलास पानी पीने के बाद पानी पीना बंद कर देता है क्योंकि उसकी प्यास बुझ गई होती है। एक विद्यार्थी दो-तीन पेन्सिलें खरीदने के पश्चात् उनका खरीदना बंद कर देता है क्योंकि अधिक पेन्सिलों की उसे आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। एक अध्यापक चार-पाँच कमीजें सिलवाने के बाद उनका सिलवाना रोक देता है क्योंकि कमीजों की उसकी आवश्यकता पूरी हो गई होती है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में इस प्रकार के कई उदाहरण रात-दिन आते हैं। इन सबसे यह निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्य की कोई भी आवश्यकता हो, कुछ समय तक उपभोग करने के पश्चात् वह आवश्यकता पूरी हो जाती है। इसी के आधार पर अर्थशास्त्र में एक नियम बनाया गया है जिसे सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम या उपयोगिताओं के क्रमशः घटने का नियम या उपयोगिता ह्रास नियम कहते हैं।*

परिभाषा—यह नियम यह बताता है कि जैसे-जैसे आप किसी वस्तु की विभिन्न इकाइयों का सेवन करते जायँगे, आपको उससे प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिता क्रमशः कम होती जायगी। अर्थात् वस्तु की पहली इकाई के उपभोग से आपको जितनी उपयोगिता मिलेगी, उतनी दूसरी इकाई के उपभोग से नहीं

*सबसे अच्छा यही होगा यदि इस नियम को 'सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम' या 'क्रमागति उपयोगिता ह्रास नियम' कहा जाय और 'उपयोगिता ह्रास नियम' न कहा जाय। यह इसलिये कि उपभोग करने पर सीमान्त उपयोगिता ही केवल घटती है, कुल-उपयोगिता नहीं घटती। अतः सीमान्त उपयोगिता को स्पष्ट करना आवश्यक है।

मिलेगी और जितनी दूसरी इकाई से मिलेगी उतनी तीसरी से नहीं मिलेगी। इसी प्रकार प्रति नई इकाई की उपयोगिता, पहली इकाई की उपयोगिता से कम होगी। इसी प्रवृत्ति को सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम कहते हैं। इसकी परिभाषा देते हुए यह कहा जा सकता है कि **'यदि अन्य बातें स्थिर रहें, तो प्रत्येक वस्तु की हर नई इकाई, पहली इकाई से कम उपयोगिता देगी।'** प्रोफेसर मार्शल ने इस नियम की परिभाषा निम्न प्रकार दी है, "मनुष्य के पास किसी वस्तु की मात्रा जैसे-जैसे बढ़ती जाती है उसको प्राप्त होने वाली उपयोगिता, घटती जाती है।"* सूक्ष्म में यह कहा जा सकता है कि **जो वस्तु जितनी अधिक मात्रा में आपके पास होगी, उसकी उपयोगिता उतनी ही कम होगी।** †

स्पष्टीकरण—प्रति नई इकाई के उपभोग के पश्चात् उपयोगिता कम हो जाने का कारण यह है कि जब हम किसी वस्तु की एक भी इकाई का सेवन कर लेते हैं तो हमारी आवश्यकता की तीव्रता पहले से कम हो जाती है। हमें किसी वस्तु के उपभोग से जो उपयोगिता मिलती है वह हमारी आवश्यकता की तीव्रता के अनुसार होती है। यदि आवश्यकता अधिक तीव्र है तो उपयोगिता अधिक मिलेगी और आवश्यकता कम तीव्र हो जाने पर मिलने वाली उपयोगिता भी कम हो जायगी। जब तक हम एक भी इकाई का सेवन नहीं करते, हमारी आवश्यकता सबसे तीव्र रहती है। एक इकाई का उपभोग करने के पश्चात् आवश्यकता पहले से कम तीव्र हो जाती है और दूसरी इकाई के उपभोग के बाद उससे भी कम। इसी प्रकार प्रति इकाई के उपभोग के पश्चात् आवश्यकता की तीव्रता कम होती जाती है और परिणामतः मिलने वाली उपयोगिता भी कम होती जाती है। यह क्रम चलता रहता है और अन्त में ऐसी स्थिति आती है कि आवश्यकता पूर्णतः सन्तुष्ट हो जाती है और उपभोग से मिलने वाली उपयोगिता शून्य हो जाती है। इसके पश्चात् उपभोग नहीं किया जाता।

उदाहरण

इस नियम को एक उदाहरण द्वारा समझाया जा सकता है। मान लीजिये

---

*"The additional benefit which a person derives from a given increase of a stock of a thing diminishes with every increase in the stock which he already has." देखिये प्रोफेसर मार्शल की पुस्तक, *Princples of Economics.* प्रोफेसर ब्रिग्स (Briggs) ने इस नियम की परिभाषा बड़े सुन्दर शब्दों में की है। उनका कहना है कि "एक ही प्रकार की वस्तु की सीमान्त उपयोगिता, वस्तु की इकाई बढ़ते ही घट जाती है।" ["The marginal utility of a stock of similar goods decreases with the, number of units in the stock"—M. Briggs, 'A Text-Book *of Economics*, p, 69.]

† More you have less valuable it becomes.

गर्मी के दिन हैं और एक व्यक्ति बहुत प्यासा है। प्यास के कारण उसका मुँह सूख गया है। ऐसी स्थिति में उसकी पानी पीने की आवश्यकता बहुत तीव्र होगी। पहला गिलास पानी उसकी बहुत बड़ी तीव्र आवश्यकता सन्तुष्ट करेगा और इस कारण उसे बहुत अधिक उपयोगिता मिलेगी। मान लीजिये वह ८० इकाई है। पहला गिलास पानी पी लेने के कारण अब उसकी प्यास पहले जितनी तीव्र नहीं रही है। इस कारण दूसरे गिलास पानी से उसे पहले गिलास से कम, मान लीजिये, ७० इकाई, उपयोगिता मिलती है। अब उसका गला और मुँह सूखे नहीं रहे हैं और उसकी प्यास भी काफी बुझ चुकी है। अतः, तीसरे गिलास से और भी कम, मान लीजिये ५० इकाई, उपयोगिता मिलेगी। चौथे गिलास पानी से उसे और भी कम, मान लीजिये २० इकाई, उपयोगिता मिलती है और पाँचवें गिलास से १० इकाई उपयोगिना मिलती है। अब मान लीजिए उसकी प्यास एक दम बुझ चुकी है और वह अधिक पानी नहीं पीना चाहता। अतः छठे गिलास से उसे शून्य (०) उपयोगिता मिलेगी। छै गिलास से अधिक पानी वह व्यक्ति नहीं पियेगा। परन्तु यदि उसे जबरदस्ती सातवाँ गिलास पानी पिलाया जाता है तो उसके पेट में दर्द हो जायगा और उसे उपयोगिता के स्थान पर अनुपयोगिता (Disutility) मिलेगी। मान लीजिये वह-१० है। यदि उसे सातवें गिलास से अधिक पानी पिलाया गया तो उसकी अनुपयोगिता और भी बढ़ जायगी।

तालिका

उपर्युक्त उदाहरण को एक तालिका द्वारा भी दिखलाया जा सकता है। यह तालिका नीचे दी गई है :

वस्तुओं की इकाई	प्राप्त सीमान्त उपयोगिता
१	८०
२	७०
३	५०
४	२०
५	१०
६	०
७	१०

रेखाचित्र:

सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम के उपर्युक्त उदाहरण को एक रेखाचित्र द्वारा भी दिखलाया जा सकता है। रेखाचित्र दो प्रकार के हो सकते हैं : (१) समकोण रेखाचित्र (Bar Diagram), तथा (२) वक्र-रेखाचित्र (Curve Diagram)

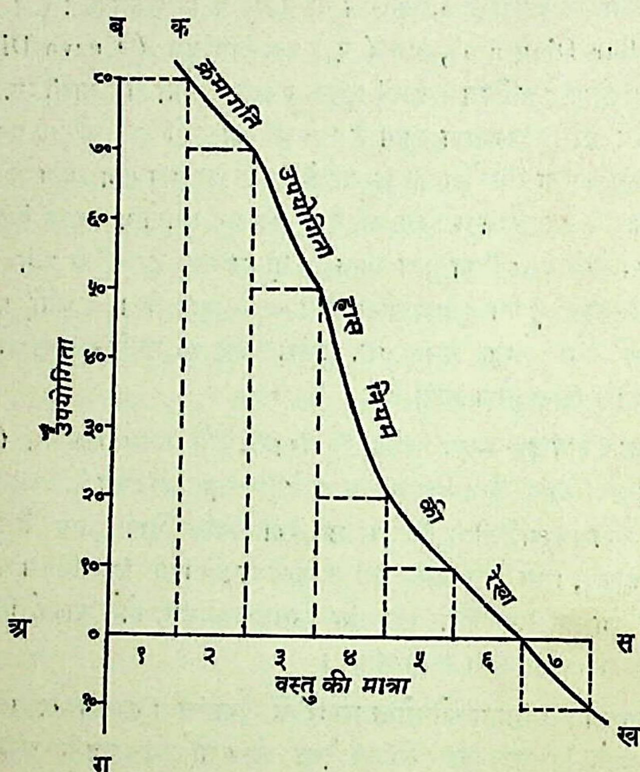
समकोण रेखाचित्र—इसमें प्रत्येक इकाई से प्राप्त होने वाली उपयोगिता को एक समकोण द्वारा दिखलाया जाता है। सभी समकोणों की चौड़ाई एक ही रखी जाती है। इस कारण समकोण की लम्बाई देखकर यह पता लग जाता है कि किस इकाई से कितनी उपयोगिता मिल रही है। सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम को जब समकोण रेखाचित्र द्वारा दिखलाया जाता है तो हर नई इकाई से प्राप्त उपयोगिता का जो समकोण बनता है वह छोटा होता चला जाता है। अर्थात् पहली इकाई का समकोण सबसे लम्बा बनता है, दूसरी इकाई का उससे कम लम्बा और इसी प्रकार समकोण छोटा होता जाता है।

वक्र रेखाचित्र—इस प्रकार के रेखाचित्र में नियम एक वक्र (Curve) द्वारा दिखलाया जाता है। वक्र का अर्थ टेढ़ी रेखा से होता है। चित्र में केवल एक रेखा दिखलाई गई होती है और उस रेखा का रूप देखा जाता है कि वह कहाँ से आरंभ होकर, किस ओर जाती है। सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम को दिखलाने वाला वक्र गिरता हुआ होगा। अर्थात् उसका आरंभ होने वाला किनारा सबसे ऊँचा होगा और अंत वाला सबसे नीचा।

वैसे तो इस नियम को दोनों प्रकार के रेखाचित्रों द्वारा दिखलाया जा सकता है, परन्तु यदि बिलकुल सही तरीका देखा जाय तो यह कहना पड़ेगा कि जिन वस्तुओं को एक निश्चित इकाई में ही उपभोग किया जा सके उनका समकोण रेखाचित्र बनाना चाहिये। उदाहरण के लिये टोपी, मेज, कुर्सी, कलम आदि को ले लीजिये। इनकी उपभोग की इकाई निश्चित है। आप एक टोपी या एक कुर्सी या एक मेज का ही उपभोग करेंगे, न तो आप आधी मेज का उपभोग कर सकते हैं और न तीन-चौथाई कुर्सी या एक चौथाई टोपी का। परन्तु गेहूँ, मिठाई, चावल आदि की उपभोग की इकाई निश्चित नहीं है। गेहूँ का कोई व्यक्ति सेरों में, कोई मनों में और कोई बोरों उपभोग करते हैं। यही बात चावल के बारे में भी है। इनकी उपभोग की इकाई निश्चित नहीं है। किसी भी इकाई में इनका उपभोग किया जा सकता है। अतः, ऐसी वस्तुओं का जब उदाहरण लिया जाय तो उसे वक्र रेखाचित्र द्वारा दिखलाना चाहिये।

ऊपर वाले उदाहरण को वक्र रेखाचित्र द्वारा नीचे दिखलाया गया है। इस रेखाचित्र में अ स रेखा पर वस्तु की इकाइयाँ मापी गई हैं। क्योंकि सात इकाइयों का उपभोग किया है, इस कारण बराबर-बराबर दूरी पर सात निशान

लगा दिये गये हैं और उनके बीच में १ से लेकर ७ तक गिनती लिखदी गई है। यह विभिन्न इकाइयों को बताता है।

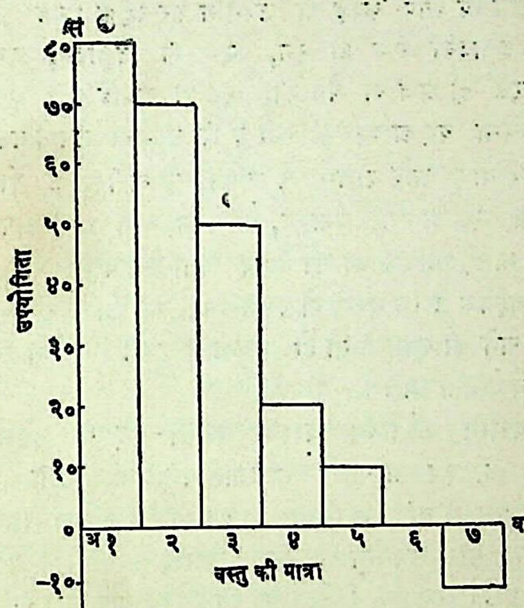


चित्र ४१—वक्र रेखाचित्र

अ ब रेखा पर उपयोगिता मापी गई है। अ से ब को ओर घनात्मक (Positive) उपयोगिता है और अ से ग की ओर ऋणात्मक उपयोगिता (Negative Utility) या अनुपयोगिता (Disutility) दिखलाई गई है। क ख वक्र सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम दिखलाता है। यह क से आरंभ होती है। क सबसे ऊँचा बिन्दु है और ख सबसे नीचा। इससे स्पष्ट है कि रेखा गिरती हुई है और उपयोगिता कम होती जा रही है।

समकोण रेखाचित्र बनाने के लिये हमें एक दूसरा उदाहरण लेना होगा। मान लीजिये एक मनुष्य को टोपी की इच्छा है। पहली टोपी से उसे ८०, दूसरी से ७०, तीसरी से ५०, चौथी से २०, पाँचवी से १०, छठी से शून्य और सातवीं से—१० उपयोगिता प्राप्त होती है। इसको दिखलाने के लिये रेखाचित्र निम्न प्रकार बनेगा :

इस रेखाचित्र में अ ब रेखा पर उपयोगिता मापी गई है और अ स पर वस्तु की इकाइयाँ। प्रत्येक इकाई के ऊपर जो समकोण बना है उसे देखकर स्पष्ट हो



चित्र ४२—समकोण रेखाचित्र

जाता है कि पहला समकोण सबसे लम्बा है और उसके बाद के सभी समकोण कम लम्बे हैं। सातवीं इकाई का समकोण अ स रेखा के नीचे है और अनुपयोगिता दिखलाता है।

२. अन्य बातें समान रहें

(Other Things Remaining the Same)

सीमान्त उपयोगिता ह्रास निमम की परिभाषा देते समय हमने 'यदि अन्य बातें समान रहें' शब्दों का प्रयोग किया था। कहने का आशय यह था कि यदि अन्य बातें समान रहीं तभी यह होगा कि सीमान्त उपयोगिता घटती जायगी अन्यथा नहीं। अन्य शब्दों में, इस नियम का लागू होना या न होना इस बात पर निर्भर है कि अन्य बातें स्थिर रहती हैं या नहीं। जब बात ऐसी है तो यह जानना बड़ा आवश्यक हो जाता है कि ये बातें कौनसी हैं जिनका स्थिर होना या समान रहना आवश्यक है। ये बातें निम्न हैं—

(१) वस्तु की सभी इकाइयाँ एकसी हों—सबसे पहली आवश्यकता इस बात की है कि जिस वस्तु का उपभोग किया जा रहा है उसकी सभी इकाइयाँ सब

प्रकार से एकसी होनी चाहिये। सब प्रकार से एकसी होने का तात्पर्य यह है कि रूप, गुण, बनावट, आकार, तथा वजन में सभी इकाइयाँ एकसी होनी चाहिये। मान लीजिये आप कपड़े का उपभोग कर रहे हैं। यह आवश्यक है कि कपड़े की सभी इकाइयाँ एक ही रंग, एक ही डिजाइन, एक ही बनावट (texture), एक ही अर्ज या पैने की, एक ही लम्बाई और एक ही वजन की होनी चाहिये। अन्यथा यह आवश्यक नहीं है कि सीमान्त उपयोगिता घटती चली जाय। इसी प्रकार यदि आप बाजार में जाकर जूते खरीदते हैं तो यह तभी ठीक उतरेगा जब आप एक ही रंग, बनावट, डिजायन, दाम तथा कम्पनी के बने जूते बार-बार खरीदें। मान लीजिये आपको भूख लगी है। पहली रोटी आप गेहूँ की खाते हैं। यह आवश्यक है कि दूसरी रोटी भी आप गेहूँ की ही खायँ। मान लीजिये आप दूसरी रोटी चने की खाते हैं तो हो सकता है दूसरी इकाई से पहले की अपेक्षा आपको अधिक उपयोगिता मिले।

(२) उपभोग की क्रिया बराबर चलती रहे या उपभोग लगातार होता रहे—दूसरी आवश्यकता यह है कि उपभोग की क्रिया बराबर और लगातार होती रहे, उसको बीच में बन्द न किया जाय। यदि ऐसा नहीं किया गया तो हो सकता है कि दूसरी बार उपभोग की क्रिया आरंभ करने पर पहले से अधिक उपयोगिता मिले। उदाहरण के लिये भूख लगने पर आप रोटी खाने की क्रिया ले लीजिये। यदि आप एक के बाद दूसरी और दूसरी के बाद तीसरी रोटी खाते चले जायँगे, तो हर नई इकाई से मिलने वाली आपकी उपयोगिता कम होती जायगी। परन्तु यदि आप चार रोटी खाने के बाद भोजन की क्रिया बन्द करदें और फिर पाँच-छैः घन्टे बाद उसे पुनः आरंभ करें तो यह बहुत संभव है कि दूसरी बार वाली पहली रोटी आपको प्रथम वार की चौथी रोटी से अधिक उपयोगिता दे। परन्तु ध्यान रखने की बात है कि कुछ समय के पश्चात् जब क्रिया पुनः आरंभ की जाती है तो उसे पुरानी क्रिया न कहकर नई क्रिया कहनी चाहिये। यह नियम तभी लागू होगा जब उपभोग लगातार होता रहे।

(३) उपभोक्ता की मानसिक अवस्था समान रहे—नियम के लागू होने के लिये तीसरी आवश्यकता यह है कि उपभोक्ता की मानसिक अवस्था में परिवर्तन न हो। अर्थात् उपभोग की क्रिया जब तक चल रही है उसके बीच में कोई ऐसी बात न हो जाय जिससे उसके मन की दशा में परिवर्तन हो जाय। उदाहरण के लिये मान लीजिये आप रसगुल्ला खा रहे हैं। आपकी आवश्यकता कम होती जा रही है और चौथा रसगुल्ला खाने के बाद आपकी आवश्यकता बिलकुल समाप्त हो जाती। परन्तु यदि उसी समय आपको तार मिल जाय कि आप परीक्षा में सर्व प्रथम आये हैं या आपने पचीस हजार रुपये की कोई प्रतियोगिता

जीत ली है तो आपको बहुत खुशी होगी, आपकी मानसिक दशा में परिवर्तन आ जायगा और आप खुशी में और भी कई रसगुल्ले खा जायँगे। इसी प्रकार यदि पाँच रोटियाँ खाने के बाद आप खाना बंद कर देते परन्तु उसी समय आप यदि किसी नशीली वस्तु का सेवन कर लें तो आपकी मानसिक दशा में परिवर्तन आ जायगा और नशे में आप और भी कई रोटियाँ खा जायँगे। परन्तु इसको सीमान्त-उपयोगिता-ह्रास नियम का अपवाद नहीं मानना चाहिये क्योंकि यह आशा की जाती है कि उपभोक्ता की मानसिक दशा में परिवर्तन नहीं होगा।

(४) उपभोक्ता की आमदनी, फैशन तथा आदतों में कोई परिवतन नहीं आना चाहिये—यदि बहुत समय तक चलने वाली टिकाऊ वस्तुओं का उपभोग किया जा रहा है जिसमें उपभोग की क्रिया कुछ महीनों या वर्षों तक चलती रहेगी, तो यह आवश्यक है कि उपभोक्ता की आमदनी, उसकी आदत तथा वस्तु की फैशन में कोई परिवर्तन न आये। उदाहरण के लिये मान लीजिये एक आदमी की माहवारी आमदनी १०० रु० है। गरीब होने के कारण वह अधिक महँगे जूते नहीं पहन सकता और केवल चार रुपये जोड़े के जूते पहन कर ही काम चलाता है। इससे अधिक महँगे जूतों की उसके लिये उपयोगिता कम है। परन्तु यदि उसकी आमदनी बढ़कर ३०० रु० माहवार हो जाती है तो वह चार रुपये जोड़ी के जूतों को नहीं पहनेगा और महँगे जूते पहनेगा। अतः, चार रुपये जोड़ी के जूतों की उसे उपयोगिता नहीं रहेगी और महँगे जूतों की उपयोगिता उसे बढ़ जायगी। स्पष्ट है कि आमदनी में परिवर्तन होने के कारण उसके लिये विभिन्न वस्तुओं की जो उपयोगिता थी उसमें भी परिवर्तन आ गया।

फैशन के परिवर्तन के कारण भी वस्तुओं की उपयोगिता में परिवर्तन आ जाता है। किसी समय टोपियाँ पहिनने का बड़ा फैशन था। टोपियों से व्यक्तियों को बड़ी उपयोगिता मिलती। परन्तु आजकल बहुत कम लोग टोपी पहिनते हैं। इस कारण टोपियों की उपयोगिता बहुत कम हो गई है। परन्तु यदि टोपियों का पहिनना पुनः फैशन में आ जाय तो इनकी उपयोगिता फिर बढ़ जायगी। एक दूसरा उदाहरण लीजिये। कुछ वर्ष पहले चौड़ी मोहरी की पतलून पहनने का फैशन था। युद्ध के समय कम मोहरी की पतलूनों का फैशन चल निकला। परिणामस्वरूप चौड़ी मोहरी की पतलूनों की उपयोगिता घट गई। परन्तु अब पुनः चौड़ी मोहरी की पतलूनों का फैशन हो निकला है और उनकी उपयोगिता बढ़ती जा रही है।

आदत बदल जाने के कारण भी वस्तुओं की उपयोगिता में परिवर्तन हो जाता है। मान लीजिये किसी को सिगरेट पीने की आदत नहीं है। उसके लिये सिगरेटों की उपयोगिता नहीं होगी। परन्तु यदि धूम्रपान की उसकी आदत पड़ जाय

तो सिगरेट से उसे उपयोगिता मिलने लगेगी। इस कारण आवश्यक है कि मनुष्य की आमदनी, आदत तथा फैशन में परिवर्तन न हो।

(५) वस्तु तथा उसके बदले में प्रयोग आने वाली वस्तुओं का मूल्य समान रहना चाहिये—किसी वस्तु के सस्ते हो जाने से या उसके बदले में प्रयोग आने वाली वस्तुओं या स्थानापन्न वस्तुओं (Substitutes) के महँगे हो जाने से, उस वस्तु की उपयोगिता पहले से अधिक बढ़ जाती है। उदाहरण के लिये यदि लिप्टन चाय के दाम वही रहें परन्तु ब्रुक बांड चाय के दाम बढ़ जायँ तो आप लिप्टन चाय के एक पैकिट के स्थान पर तीन-चार पैकिट खरीद लेंगे। इसी प्रकार यदि लिप्टन चाय सस्ती हो जाय और ब्रुक बांड के दाम वही रहें, तब भी आप ऐसा ही करेंगे। परन्तु यदि लिप्टन चाय के दाम बढ़ जायँ और ब्रुक बांड के वही रहें तो आप लिप्टन चाय खरीदना बन्द कर देंगे। सस्ती वस्तु को सभी खरीदना चाहते हैं क्योंकि उससे लोगों को अधिक उपयोगिता मिलती है।

(६) वस्तु की इकाई उपभोग की क्रिया के अनुसार उचित होनी चाहिये—यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है और इसे सदैव ध्यान में रखना चाहिये। सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम उसी समय लागू होगा जब वस्तु की इकाई का परिमाण उपभोग की क्रिया के अनुकूल हो, अन्यथा नहीं। उदाहरण के लिये नहाने की क्रिया ले लीजिये। यदि आप नहाना चाहते हैं तो आपको कम से कम एक बाल्टी पानी चाहिये। नहाने की क्रिया के लिये एक बाल्टी पानी उचित इकाई है। अतएव पहली बाल्टी पानी से आपको अधिकतम उपयोगिता मिलेगी और इसके बाद प्रत्येक नई बाल्टी पानी की उपयोगिता कम होती जायगी। परन्तु यदि आप एक बाल्टी पानी न लेकर केवल एक गिलास पानी लें, तो स्पष्ट है कि एक गिलास पानी से आपका काम नहीं चलेगा और इस कारण जब तक आपके पास एक बाल्टी पानी नहीं हो जाता, हर नये गिलास पानी से आपको अधिक उपयोगिता मिलेगी। अतएव **सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम तभी लागू होगा जब उपभोग की जाने वाली वस्तु की इकाई का परिमाण उपभोग की क्रिया के अनुसार उचित हो।**

ध्यान रखने की बात है कि वस्तु के प्रकार, उसके प्रयोग और समय के अनुसार वस्तु की उचित इकाई का परिमाण बदलता रहता है। उदाहरण के लिये गेहूँ का उचित परिमाण एक सेर है; मिर्च तथा धनिया आदि मसालों का १ छटाँक; हींग, पिपरमेन्ट आदि का एक तोला और पानी का एक गिलास, एक लोटा या एक बाल्टी। पीने के लिये पानी का उचित परिमाण एक गिलास, भोजन पकाने के लिये एक लोटा, और नहाने या कपड़ा धोने के लिये एक बाल्टी है। मालिश करने के लिये

तेल का उचित परिमाण एक प्याली है और सिर में डालने के लिये कुछ बूदें। एक गंजे मनुष्य के लिये चार-पाँच बूँद तेल सिर में डालने के लिये पर्याप्त होगा, कम बाल रखने वाले के लिये १०-२० बूँदें और अधिक बाल वालों के लिये ५०-६० बूँदें। अतः, उपभोग की क्रिया आरंभ होने के पहले यदि वस्तु की इकाई उचित परिमाण में ली जाती है तो यह निर्विवाद है कि सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम पूर्णतः लागू होगा। अन्यथा जब तक वस्तु का परिमाण उचित नहीं हो जाता, अधिक उपयोगिता प्राप्त होगी और इकाई का परिमाण उचित होते ही क्रमशः उपयोगिता घटने लगेगी।

३. नियम के तथाकथित अपवाद
(Alleged Exceptions of the Law)

कुछ लोगों का मत है कि सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम पूर्णतः सही नहीं है। इसके अनेक अपवाद (Exceptions) हैं। परन्तु यह मत ठीक नहीं है। यदि इन तथाकथित अपवादों पर गहराई से विचार किया जाय और उन कल्पनाओं (Assumptions) को भी ध्यान में रखा जाय जिन पर यह नियम आधारित है और जिनके बारे में यह मान लिया गया है कि वह समान हैं, तो इस नियम के कोई भी अपवाद नहीं रहते। जैसा कि प्रोफेसर बृजनरायन का कहना है "सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम के कोई भी वास्तविक (real) अपवाद नहीं हैं।" देखने में तो वह अपवाद लगते हैं, परन्तु वास्तव में वह अपवाद नहीं हैं। नीचे सभी तथाकथित अपवादों का एक-एक कर अध्ययन किया गया है और यह प्रमाणित किया गया है कि वह वास्तविक नहीं हैं।

(१) दिखावट की इच्छा, रुपये-पैसे का मोह तथा शक्ति पाने की आकांक्षायें कभी सन्तुष्ट नहीं होतीं—कुछ विद्वानों का मत है कि दिखावट की इच्छा रुपये-पैसे का मोह तथा शक्ति पाने की आकांक्षा आदि ऐसी इच्छायें हैं जो कभी सन्तुष्ट नहीं होतीं। जैसे-जैसे इनका उपभोग किया जाता है, वह बढ़ती जाती हैं और मनुष्य सन्तुष्ट होने के स्थान पर अधिक असन्तुष्ट हो जाता है। उदाहरण के लिये आप रुपये-पैसे की रक्षा को ले लीजिये। गरीब मनुष्य के पास जब एक

"The law of Diminishing Marginal Utility is true. with no real exceptions" Prof. Brij Narain—*Principles of Economics*, p. 33. Same is the opinion of Prof Taussig who says, "the tendency shows itself so widely and with so few exceptions that there is no significant. inaccuracy in speakin of it as universal." See his "*Principles of Economics*, Vol I [यह प्रवृति इतनी व्यापक हैं और इसके इतने कम अपवाद हैं कि इसे विश्वव्यापी कहना कोई विशेष त्रुटि न होगी।]

हजार रुपया हो जाता है तो वह दस हजार की इच्छा करता है, दस हजार होने पर ५० हजार की और ५० हजार होने पर एक लाख की इच्छा करता है। इस प्रकार वह कभी सन्तुष्ट नहीं होता। इसी प्रकार की इच्छा शक्ति पाने की इच्छा है। हिटलर तथा मुसोलिनी आदि कितने ही ऐसे व्यक्ति हो गये हैं जिनकी शक्ति बढ़ाने की इच्छा कभी पूरी नहीं हुई। अतएव कुछ विद्वानों का मत है कि ये इच्छायें कभी सन्तुष्ट नहीं होतीं।

परन्तु यह मत ठीक नहीं है। ये सब इच्छायें कुछ समय तक बढ़ती रहती हैं, परन्तु कुछ समय पश्चात् अवश्य सन्तुष्ट हो जाती हैं। कुछ समय तक मनुष्य धन बढ़ाने की फिक्र में रहता है, परन्तु यदि उसके चारों ओर सोना ही सोना हो जाय और सोने के सिवाय उसे कुछ दिखाई ही न पड़े तो वह घबड़ा उठेगा। इसी प्रकार का एक उदाहरण मिदास राजा की पुस्तकों में पढ़ने को मिलता है। वह धन के पीछे पागल रहा करता था। उसे यह बरदान मिल गया कि जिस चीज को वह छुएगा वही सोने की हो जायगी। पहले तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ। परन्तु बाद में उसने देखा कि न वह भोजन कर सकता है, न कपड़े पहन सकता है और न अपनी प्यारी बच्ची को ही प्यार से गोदी में ले सकता है। अंत में वह धन से परेशान हो गया। अतः, कहा जा सकता है कि सभी इच्छायें सन्तुष्ट अवश्य हो जाती हैं।

(२) गाना या कविता को जितनी बार सुना या पढ़ा जाय अधिक उपयोगिता मिलती है—प्रोफेसर टासिग (Professor Taussig) का कहना है कि किसी अच्छी कविता को दुबारा पढ़ा जाय या किसी अच्छे गाने को दो-तीन बार सुना जाय तो प्रथम बार से अधिक उपयोगिता मिलती है। परन्तु यह बात ठीक नहीं है। यदि एक ही गाना या कविता लगातार एक ही राग तथा स्वर में बार-बार सुनी जाय तो स्पष्ट है कि उपयोगिता कम होती जायगी। हाँ, यदि गाना कुछ समय के बाद बार-बार सुना जाय या वह विभिन्न व्यक्तियों द्वारा गाया गया हो या विभिन्न रागों में गाया गया हो तो हो सकता है उपयोगिता बढ़ जाय। परन्तु यदि एक ही व्यक्ति द्वारा, एक ही राग तथा गले में गाया गया गाना एक ही बैठक (sitting) में बार-बार सुना जाय तो उससे प्राप्त होने वाली उपयोगिता अवश्य कम हो जायगी।

(३) एक शराबी को शराब के हर नये प्याले से पहले से अधिक उपयोगिता मिलती है—कुछ लोगों का कहना है कि शराबी को शराब के हर नये प्याले से पहले से अधिक उपयोगिता मिलती है। परन्तु इसका कारण यह है कि शराब पीने के बाद मनुष्य की मानसिक अवस्था बदल जाती है। जैसा बताया जा चुका है, इस नियम की एक कल्पना यह भी है कि मनुष्य की मानसिक अवस्था

में परिवर्तन न हो। अतः, इस कल्पना के उल्लंघन के फलस्वरूप यदि नियम में कोई अपवाद दिखलाई देते हैं तो उन्हें अपवाद नहीं कहा जा सकता।

(४) किसी वस्तु को यदि अधिक व्यक्ति उपभोग करने लगें तो उसकी उपयोगिता बढ़ जाती है—यदि किसी वस्तु का उपभोग अधिक व्यक्ति करने लगें तो उसकी उपयोगिता पहले से बढ़ जाती है। उदाहरण के लिये टेलीफोन को ले लीजिये। यदि किसी शहर में टेलीफोन लगवाने वालों की संख्या एक हजार से बढ़कर दो हजार हो जाय तो स्पष्ट है उपभोक्ताओं को अधिक उपयोगिता मिलने लगेगी क्योंकि अब वह एक हजार के स्थान पर दो हजार व्यक्तियों से टेलीफोन पर बात कर सकेंगे।

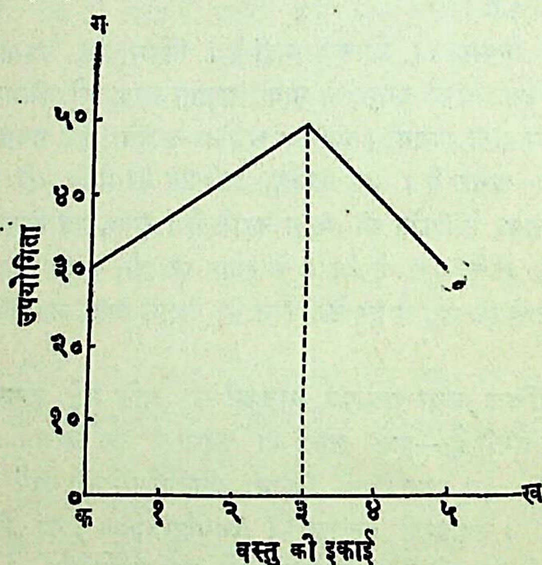
परन्तु यह नियम का अपवाद नहीं है। नियम यह कहता है कि यदि कोई एक व्यक्ति किसी एक वस्तु की मात्रा बढ़ाता जाय तो मिलने वाली उपयोगिता कमशः कम होती जायगी। व्यक्ति एक होना चाहिये। इस उदाहरण में व्यक्ति एक नहीं है, वरन् अनेक हैं। एक व्यक्ति टेलीफोन की मात्रा नहीं बढ़ाता, वरन् अनेक व्यक्ति मिलकर टेलीफोन की मात्रा बढ़ाते हैं। अतः, यह नियम का अपवाद नहीं है। यदि एक व्यक्ति एक टेलीफोन के स्थान पर दो, चार या दस टेलीफोन लगवा ले तो स्पष्ट है कि उसको हर टेलीफोन से मिलने वाली उपयोगिता कम होती जायगी।

(५) विचित्र तथा अप्राप्य वस्तुओं की प्रति नई इकाई से अधिक उपयोगिता प्राप्त होती है—कुछ लोगों का कहना है कि विचित्र (Curious) तथा अप्राप्य (Rare) वस्तुओं की जितनी इकाइयाँ मिलती जायँ उनकी उपयोगिता बढ़ती जायगी। उदाहरण हस्ताक्षरों (Autographs) का दिया जाता है। यह कहा जाता है कि हर नये हस्ताक्षर प्राप्त करने पर उपयोगिता बढ़ती जाती है। इसी प्रकार टिकिटों का उदाहरण देकर कहा जाता है कि हर दुर्लभ टिकिट के प्राप्त होने पर अधिक उपयोगिता मिलती है।

परन्तु यह उदाहरण उसी प्रकार का है जैसा टेलीफोन वाला। मान लीजिये किसी व्यक्ति को हस्ताक्षर इकट्ठा करने का शौक है। उसके पास पंडित जवाहरलाल नेहरू के हस्ताक्षर नहीं है। उनके हस्ताक्षर प्रथम बार मिलने पर उसे बहुत अधिक उपयोगिता प्राप्त होगी। परन्तु पंडित नेहरू के हस्ताक्षर दुबारा या तिबारा लेने की उसकी इच्छा नहीं होगी। हाँ वह अन्य लीडरों के हस्ताक्षर लेने का प्रयास करेगा। परन्तु उसी हस्ताक्षर को बार-बार लेना उसके लिये बेकार है। इसी प्रकार आप टिकिट इकट्ठा करने वालों को ले लीजिये। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने जो सबसे पहला टिकट निकाला था उसकी संसार भर में केवल तीन-चार प्रतियाँ हैं और उसका मूल्य कई हजार रुपये हैं। जिसके पास यह टिकिट नहीं है, उसको इस टिकिट की

पहली इकाई से बहुत अधिक उपयोगिता मिलेगी। परन्तु इस टिकिट की दूसरी इकाई वह लेना नहीं चाहेगा क्योंकि उसके लिये यह टिकिट दुर्लभ नहीं रह गया। अतः इस टिकिट की दूसरी इकाई की उपयोगिता उसके लिये बहुत कम होगी। हाँ वह अन्य दुर्लभ टिकिट प्राप्त करने का प्रयत्न करता रहेगा और उनसे उसे काफी अधिक उपयोगिता भी मिलेगी। परन्तु उसी वस्तु की दूसरी इकाई से पहली इकाई की अपेक्षा अधिक उपयोगिता नहीं मिल सकती।*

(६) यदि उपभोग की गई वस्तु की इकाई उचित नहीं है तो यह नियम लागू नहीं होगा—जब हम किसी वस्तु का उपभोग करते हैं और उस क्रिया



चित्र ४३—उपयोगिता बढ़ती हुई और बाद में घटती हुई

इस रेखाचित्र में क ख रेखा पर वस्तु की इकाई तथा क ग रेखा पर उपयोगिता मापी गई है। रेखाचित्र में दिखलाया गया है कि तीन इकाई तक उपयोगिता बढ़ती है और इसके पश्चात् वह कम होने लगती है।

के लिये इकाई का जो उचित परिमाण है उसे कम परिमाण में वस्तु लेकर उसका सेवन करते हैं तो कुछ समय तक वस्तु की हर नई इकाई से अधिक उपयोगिता

*कुछ लेखकों का मत है कि विचित्र तथा अप्राप्य वस्तुओं का संचय करने वाले व्यक्ति औसत या सामान्य नहीं हैं और उनका अध्ययन अर्थशास्त्र में नहीं किया जाता। इस कारण यह अपवाद नहीं है। परन्तु ऐसा कहना वास्तविक कारण को न बताना है। साथ ही यह बात गलत भी है क्योंकि हस्ताक्षर लेने वाले या टिकिट इकट्ठा करने वाले व्यक्ति हर प्रकार से सामान्य व्यक्ति है।

मिलेगी। प्रोफेसर चैपमैन (Chapman) का कहना है कि यदि कोई व्यक्ति चाय बनाने के लिये आधा छँटाक कोयला लेता है तो क्योंकि यह मात्रा आवश्यकता से कम है इस कारण दूसरे आधे छटाँक कोयले से उसे पहले से अधिक उपयोगिता मिलेगी। "हर अगली इकाई से मिलने वाली उपयोगिता बढ़ती जायगी, जब तक कि कोयले की मात्रा पर्याप्त नहीं हो जाती और इसके बाद उपयोगिता घटने लगेगी।"*

परन्तु इसे नियम का अपवाद नहीं माना जा सकता क्योंकि नियम की एक कल्पना यह भी है कि वस्तु की इकाई का परिमाण उचित हो। अतएव यह निसंकोच कहा जा सकता है कि इस नियम का कोई भी अपवाद नहीं है। जिन कल्पनाओं पर नियम आधारित है यदि उनका ठीक से पालन हो तो नियम सदैव ठीक उतरेगा।

परीक्षा प्रश्न

उत्तर प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—उपयोगिता का क्या अर्थ है? सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम को बताइये। "दूसरी वस्तुएँ तुल्य होने पर" इस वाक्यांश का क्या तात्पर्य है? दूसरी वस्तुएँ क्या हैं? (१९४९)

२—सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम की व्याख्या कीजिये और उसे चित्र सहित समझाइये। (१९४८, १९४६, १९४२)

३—सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम को यथाशक्ति स्पष्ट रीति से समझाइये। क्या इस नियम के कोई वास्तविक या कृत्रिम अपवाद हैं? (१९३९, १९३६, १९३५, १९२९)

उत्तर प्रदेश इन्टर कामर्स

४—सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम को समझाइये। 'अन्य बातें सम रहें' का क्या महत्व है? (१९५२)

५—सीमान्त-उपयोगिता-ह्रास-नियम का वर्णन और विवेचना कीजिये तथा उदाहरण देकर समझाइये। क्या इस नियम के वास्तविक या प्रकट (Apparent) कोई अपवाद हैं? (१९५०)

६—आवश्यकताओं की संतुष्टि का नियम स्पष्ट रूप से समझाइये। क्या आप इससे मनुष्यों के व्यय के संबंध में मार्ग दिखाने के लिये कोई नियम प्राप्त कर सकते हैं? उदाहरण देकर समझाइये। (१९४६)

७—सीमान्त उपयोगिता-ह्रास-नियम का वर्णन कीजिये। यदि नियम के कुछ अपवाद हों तो उन्हें भी लिखिये। (१९४०)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

८—सीमान्त उपयोगिता-ह्रास नियम को सविस्तार स्पष्ट कीजिये। अपवाद के कारणों का विश्लेषण कीजिये। इसकी सीमायें भी बताइये। (१९५२, १९५१, १९४९, १९४२, १९४०)

९—आवश्यकता स्थायित्व नियम (Law of Stability of Wants) की व्याख्या कीजिये। क्या आप इससे कोई नियम मनुष्य को अपना व्यय निर्धारित करने के लिए निकाल सकते हैं? उदाहरण सहित उत्तर लिखिये। (१९४९)

*देखिये Chapman की पुस्तक, *Outline of Economics*

१०—सीमान्त-उपयोगिता ह्रास-नियम को स्पष्ट कीजिये। इसके अपवाद के कारणों का भी विश्लेषण कीजिये। (१९४२)

११—"जितनी हमें किसी वस्तु की अधिक मात्रायें प्राप्त होती हैं, उतनी ही कम हम उस वस्तु की अधिक मात्रा चाहते हैं"। इस वाक्य का स्पष्टीकरण कीजिये। (१९३५)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर कामर्स

१२—सीमान्त-उपयोगिता ह्रास-नियम की सविस्तार विवेचना कीजिये। क्या नियम के कुछ अपवाद हैं? (१९५०)

१३—सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम को अच्छी प्रकार समझाइये। यह उपभोक्ताओं की बचत को किस प्रकार जन्म देता है? (१९४७)

पटना इन्टर आर्ट्स

१४—सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम समझाइये। इसकी क्या सीमायें हैं? (१९४९)

१५—सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम को सावधानी के साथ स्पष्ट कीजिये। क्या इसके कोई अपवाद भी हैं? (१९४५)

पटना इन्टर कामर्स

१६—सीमान्त-उपयोगिता--ह्रास नियम का वर्णन कीजिये। इसको समझाने के लिये चित्र भी दीजिये। (१९५२)

१७—सीमान्त-उपयोगिता-ह्रास-नियम को बताइये और समझाइये। (१९५१)

१८—सीमान्त उपयोगिता-ह्रास-नियम को स्पष्टतया बताइये। इसकी सीमायें भी बताइये। (१९४९)

सागर इन्टर आर्ट्स

१९—सीमान्त-उपयोगिता-ह्रास नियम को बताइये। वे क्या दशायें हैं जिन पर यह आधारित है? (१९५०)

२०—सीमान्त-उपयोगिता-ह्रास-नियम को बताइये। क्या यह नियम द्रव्य में भी लागू होता है? उदाहरण दीजिए। (१९४९)

सागर इन्टर कामर्स

२१—सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम को एक रेखाचित्र की सहायता से बताइए तथा समझाइये। क्या इसके कोई वास्तविक अपवाद हैं? (१९५१

२२—सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम को सूक्ष्म में समझाइये। सीमान्त उपयोगिता क्या है? (१९५०)

२३—सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम को बताइये, समझाइये और एक रेखाचित्र भी दीजिये। इसके अपवाद भी बताइये। (१९४९)

———

अठरहवाँ अध्याय

सम-सीमान्त उपयोगिता नियम

[Law of Equi-Marginal Utility]

१. नियम की व्याख्या

(Discussion of the Law)

यह पहले ही बताया जा चुका है कि मनुष्य की आवश्यकताओं का अन्त नहीं है। एक के बाद दूसरी और दूसरी के बाद तीसरी आवश्यकताएँ उठती रहती हैं। परन्तु मनुष्य के पास इन आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के साधन सीमित हैं। प्रयत्न करने पर भी वह अपनी सभी आवश्यकताओं को कभी भी सन्तुष्ट नहीं कर सकता। अतएव उसे यह सोचना पड़ता है कि वह अपनी विभिन्न आवश्यकताओं को किस क्रम में सन्तुष्ट करे जिससे उसे अधिकतम सन्तोष प्राप्त हो जाय। मनुष्य का उद्देश्य अपने व्यय से अधिकतम सन्तोष प्राप्त करना होता है। इस कारण वह सदैव प्रयत्नशील रहता है कि वह अपने धन को उचित रूप से व्यय करे। धन को उचित रूप से व्यय करने में, जिससे मनुष्य को अधिकतम सन्तोष प्राप्त हो सके, सहायता देने वाला आर्थिक नियम सम-सीमान्त उपयोगिता नियम (Law of Equi-Marginal Utility) है।

परिभाषा

यह नियम यह बताता है कि यदि कोई मनुष्य अधिकतम सन्तोष प्राप्त करना चाहता है तो उसे अपने धन की विभिन्न इकाइओं को विभिन्न वस्तुओं पर इस प्रकार व्यय करना चाहिये कि प्रत्येक वस्तु पर व्यय किये गये द्रव्य की अंतिम इकाई से प्राप्त होने वाली उपयोगिता समान हो। अन्य शब्दों में जब प्रत्येक वस्तु से प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिता बराबर होती है, तभी उनसे मिलने वाली कुल उपयोगिता अधिकतम होती है। प्रोफेसर मार्शल ने इस नियम की परिभाषा निम्न प्रकार की है : "यदि किसी मनुष्य के पास एक ऐसी वस्तु हो जिसे वह अनेक कामों में प्रयोग कर सकता है, तो वह उस वस्तु को उन कामों में इस प्रकार बाँटेगा कि प्रत्येक काम में उस वस्तु की सीमान्त उपयोगिता समान हो"।*

*देखिये प्रोफेसर मार्शल की पुस्तक, *Principles of Economics*, पृष्ठ ११९

स्पष्टीकरण

यह आप जानते हैं कि मनुष्य को पहली इकाई के उपभोग से सबसे अधिक और सीमान्त इकाई के उपभोग से सबसे कम उपयोगिता मिलती है। हम यह भी जानते हैं कि विभिन्न वस्तुओं के उपभोग से मनुष्य को भिन्न-भिन्न उपयोगिता मिलती है। जो वस्तु सबसे अधिक आवश्यक होती है उसके उपभोग से मनुष्य को सबसे अधिक उपयोगिता मिलती है और जो कम आवश्यक होती है उससे कम। अतएव जो मनुष्य अधिक से अधिक उपयोगिता प्राप्त करना चाहता है उसे चाहिये कि वह सबसे आवश्यक वस्तु का उपभोग सबसे पहले करे और कम आवश्यक वस्तु का बाद में। उसे विभिन्न वस्तुओं को आवश्यकता की तीव्रता के अनुसार छाँट लेना चाहिये और फिर उनका उसी क्रम में उपभोग करना चाहिये। ऐसा करने पर उससे अधिकतम उपयोगिता मिलेगी। ऐसी स्थिति में हम देखेंगे कि विभिन्न वस्तुओं के उपभोग से प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिता भी समान या लगभग समान होगी।

उदाहरण

एक उदाहरण लेकर भी इस नियम को समझाया जा सकता है। मान लीजिये किसी मनुष्य के पास एक रुपया है। उसे वह अमरूद, नीबू तथा केले पर व्यय करना चाहता है। मान लीजिये सभी वस्तुओं की एक इकाई का मूल्य एक आना है और उनकी विभिन्न इकाइयों से प्राप्त होंने वाली उपयोगिता निम्न प्रकार है :

वस्तुओं की इकाई	प्राप्त होने वाली उपयोगिता		
	अमरूद	नीबू	केला
पहली	२०	२६	२०
दूसरी	२५	२४	१८
तीसरी	२२	१८	१६
चौथी	२०	१५	१४
पाँचवीं	१०	१०	१२
छठी	८	६	१०
सातवीं	५	३	६

अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करने के लिये मनुष्य सबसे अधिक उपयोगिता देने वाली वस्तु पर पहली इकाई व्यय करेगा और उससे कम उपयोगिता देने वाली पर दूसरी। इसी प्रकार वह उपयोगिता के क्रमानुसार ही वस्तुओं पर धन की इकाइयाँ व्यय करेगा। उसके व्यय करने का क्रम निम्न प्रकार होगा :

इकन्नी की इकाइयाँ	वस्तु का नाम	प्राप्त उपयोगिता
पहली	अमरूद	३०
दूसरी	नीबू	२६
तीसरी	अमरूद	२५
चौथी	नीबू	२४
पाँचवी	अमरूद	२२
छठी	केला	२०
सातवीं	अमरूद	२०
आठवीं	नीबू	१८
नवीं	केला	१८
दसवीं	केला	१६
ग्यारहवीं	नीबू	१५
बारहवीं	केला	१४
तेरहवीं	केला	१२
चौदहवीं	अमरूद	१०
पन्द्रहवीं	नीबू	१०
सोलहवीं	केला	१०
कुल उपयोगिता		३००

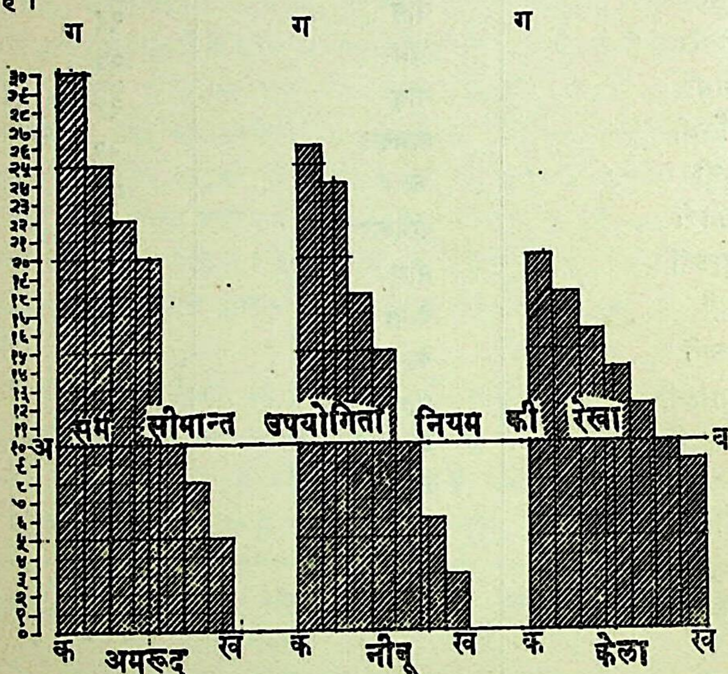
स्पष्ट है कि मनुष्य पाँच आने अमरूद पर, पाँच आने नीबू पर और छः आने केले पर व्यय करेगा। ऐसा करने पर उसे कुल ३०० इकाई उपयोगिता प्राप्त होगी। मान लीजिये वह इस क्रम से धन व्यय न कर के सात इकाई अमरूद पर, सात इकाई नीबू पर और दो इकाई केले पर व्यय करता है तो उसे कुल उपयोगिता केवल (३०+२५+२२+२०+१०+८+५+२६+२४+१८+१५+१०+६+३+२०+१८)=२७० की प्राप्त होगी। इस प्रकार आप कोई भी दूसरा क्रम ले लीजिये। आप देखेंगे कि ऊपर बताये गये तरीके के अतिरिक्त हर तरीके से कुल उपयोगिता कम ही प्राप्त होती है।

ऊपर के उदाहरण से स्पष्ट है कि मनुष्य को प्रति वस्तु की अंतिम इकाई

से समान उपयोगिता (जो इस उदाहरण में १० है) प्राप्त होती है। जब स्थिति ऐसी होगी तभी कुल उपयोगिता अधिकतम होगी।

रेखाचित्र

ऊपर दिये गये उदाहरण को एक रेखाचित्र द्वारा भी दिखलाया जा सकता है।



चित्र ४४—सम-सीमान्त उपयोगिता नियम की रेखा

इस चित्र में क ख रेखा पर वस्तुओं की इकाइयाँ मापी गई हैं और क ग रेखा पर प्राप्त होने वाली उपयोगिता। समकोणों के तीन समूह अलग-अलग दिखलाये गये हैं जो क्रमशः अमरूद, नीबू तथा केला से प्राप्त होने वाली उपयोगिताओं को दिखलाते हैं। अ/ब रेखा सम-सीमान्त उपयोगिता नियम की रेखा है।

ध्यान रखने योग्य बातें

इस नियम के संबंध में कुछ बातें विशेष रूप से ध्यान रखने योग्य हैं जिन्हें नीचे बताया गया है।

(१) यह देखने के लिये कि मनुष्य को किस वस्तु से अधिकतम उपयोगिता मिलती है, हमें उससे प्राप्त होने वाली उपयोगिता का ही केवल ध्यान नहीं रखना चाहिये वरन् उसके मूल्य को भी देखना चाहिये। मान लीजिये किसी वस्तु का मूल्य १०० रुपया है और उससे हमें ५० उपयोगिता मिलती है। दूसरी वस्तु का

मूल्य १० रुपया है और उससे हमें ४० उपयोगिता मिलती है। यदि केवल उपयोगिता पर ही ध्यान दिया जाय तो पहली वस्तु अधिक उपयोगी लगेगी। परन्तु यदि उपयोगिता तथा मूल्य दोनों पर ध्यान दिया जाय तो दूसरी वस्तु अधिक उपयोगी लगेगी क्योंकि उसका मूल्य १० रुपया है और उसकी उपयोगिता ३० इकाई है। वास्तव में हमें केवल उपयोगिता को न देखकर उपयोगिता तथा मूल्य के अनुपात को देखना चाहिये। पहले उदाहरण के हिसाब से हमें देखना चाहिये कि

$$\frac{\text{अमरूद की सीमान्त उपयोगिता}}{\text{अमरूद का मूल्य}} = \frac{\text{नीबू की सीमान्त उपयोगिता}}{\text{नीबू का मूल्य}} = \frac{\text{केले की सीमान्त उपयोगिता}}{\text{केले का मूल्य}}$$

ऊपर वाला उदाहरण देते समय हमने यह मान लिया था कि हर वस्तु की हर इकाई का मूल्य एक आना है। अतएव हमारे निष्कर्ष में कोई भेद नहीं आता। परन्तु यदि वस्तुओं का मूल्य विभिन्न हो, तो यह बात ध्यान में अवश्य रखनी चाहिये।

(२) हमें यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि यदि दो वस्तुओं से समान उपयोगिता प्राप्त हो, तो मनुष्य ऐसी वस्तु का पहले उपभोग करेगा जिसका अभी तक उसने उपभोग नहीं किया है। इसका कारण यह है कि मनुष्य की यह स्वाभाविक इच्छा होती है कि वह नई नई वस्तुओं का सेवन करे। हमने जो उदाहरण लिया है उसमें छठी इकाई व्यय करते समय उपभोक्ता के सामने यह समस्या है कि उसे अमरूद पर व्यय करे या केले पर। परन्तु वह छठी इकाई केले पर व्यय करता है क्योंकि इसके पहले उसने केले का उपभोग नहीं किया है और सातवीं इकाई अमरूद पर व्यय करता है। यही समस्या आठवीं इकाई व्यय करते समय उसके सामने आती है। आठवीं इकाई वह नीबू पर व्यय करेगा और केले पर नहीं, क्योंकि एक ही इकाई पहले वह केले का उपभोग कर चुका है और नीबू का उपभोग किये उसे काफी समय हो गया है। इसी कारण वह चौदहवीं इकाई अमरूद पर, पन्द्रहवीं नीबू पर तथा सोलहवीं केले पर व्यय करेगा।

२. नियम का क्षेत्र
(Scope of the Law)

इस नियम का क्षेत्र बहुत व्यापक है। उपभोग का तो यह नियम है ही, परन्तु यह उत्पादन, विनिमय, वितरण तथा राजस्व के क्षेत्र में भी प्रयोग में लाया जाता है। इसका क्षेत्र नीचे बताया जाता है।"

१. उपभोग—उपभोग में इस नियम का प्रयोग बहुतायत से होता है। (अ) जैसा बताया जा चुका है, अपने व्यय से अधिकतम उपयोगिता पाने के लिये उपभोक्ता इस नियम का प्रयोग करते हैं। (ब) यही नहीं, यदि कई

कामों में प्रयोग में लाई जा सकने वाली वस्तु है, तो यह तय करने के लिये कि उसे किन-किन कामों में प्रयोग में लाया जाय और किनमें नहीं, या उसे पहले किस काम में प्रयोग किया जाय और बाद में किसमें, भी इस नियम का अनुसरण किया जाता है। उदाहरण के लिये आप पानी ले लीजिये। यह पीने, कपड़ा धोने, नहाने, बरफ जमाने, सफाई करने आदि के काम आ सकता है। इसी प्रकार एक कपड़ा कमीज, कुर्ता, बनिआयन, पाजामा, ब्लाउज, टोपी आदि बनाने के काम आ सकता है। कितना कपड़ा किस काम में लाया जाय और पहले किस काम में प्रयोग किया जाय यह सम-सीमान्त उपयोगिता नियम द्वारा पता लग जाता है। नियम हमको यह बता देता है कि जिस क्रिया से सबसे अधिक उपयोगिता प्राप्त हो, कपड़ा सबसे पहले उसी काम में प्रयोग में लाया जाय। साथ ही कपड़े का प्रयोग इस प्रकार करना चाहिये कि कपड़े से जो अलग-अलग वस्तुएँ बनी हैं, उन सभी की अंतिम इकाई से प्राप्त होने वाली उपयोगिता बराबर हो। (स) वर्तमान तथा भावी उपभोग के निर्णय में भी यह नियम सहायता देता है। यदि हमें यह निश्चिय करना है कि अपनी आमदनी का कितना भाग हमें वर्तमान आवश्यकताओं पर व्यय करना चाहिये और कितना भविष्य की आवश्यकताओं पर तो यह नियम हमारी सहायता करता है। नियम यह बताता है कि मनुष्य को अपना धन वर्तमान तथा भविष्य की आवश्यकताओं पर इस प्रकार व्यय करना चाहिये कि दोनों की अंतिम इकाई से प्राप्त होने वाली उपयोगिता समान हो। इस प्रकार उपभोग की सभी प्रकार की क्रियाओं में इस नियम का प्रयोग किया जाता है।

२. उत्पादन—उत्पादन में भी इस नियम का प्रयोग होता है। एक उत्पादक यह चाहता है कि वह न्यूनतम व्यय पर उत्पादन करे। इसके लिये यह आवश्यक होता है कि वह उत्पादन के महँगे साधनों के स्थान पर सस्ते साधनों का प्रयोग करे। यदि उत्पादक यह देखता है कि भूमि के स्थान पर पूँजी सस्ती पड़ेगी तो वह पूँजी का प्रयोग बढ़ाकर भूमि का प्रयोग कम कर देता है। इसी प्रकार यदि वह देखता है कि मजदूर महँगे पड़ रहे हैं तो उनके स्थान पर वह मशीनों का प्रयोग करने लगता है। उत्पत्ति के किसी एक महँगे साधन के स्थान पर दूसरे सस्ते साधन को प्रयोग में लाने वाला नियम प्रतिस्थापन (Law of Substitution) कहलाता है। सम-सीमान्त उपयोगिता नियम जब उत्पादन में प्रयोग में लाया जाता है तो उसे प्रतिस्थापन नियम कहते हैं।

३. विनिमय—विनिमय करते समय व्यक्ति हमेशा इस नियम के आधार पर चलते हैं। वस्तु खरीदते समय प्रत्येक व्यक्ति की यह नीति रहती है कि उसे अधिक से अधिक उपयोगिता प्राप्त हो। अतएव समान मूल्य वाली वस्तुओं में से वह उसी को पहले खरीदता है जिससे उसे सबसे अधिक उपयोगिता मिले।

४. वितरण—वितरण में प्रत्येक साधन का पुरस्कार निर्धारित करना होता है। उत्पत्ति के साधन का पुरस्कार उसकी सीमान्त उत्पादकता द्वारा निश्चित होता है। अर्थात् जिस साधन की जितनी सीमान्त उत्पादकता (Marginal productivity) होती हैं, उसे उतना ही पुरस्कार मिलता है। साधनों को काम में लाते समय उत्पादक इस बात का प्रयास करते हैं कि प्रत्येक साधन की सीमान्त उपयोगिता या सीमान्त उत्पादकता बराबर हो। जब सभी साधनों की सीमान्त उत्पादकता बराबर होगी तो उनका पुरस्कार भी समान होगा। इस प्रकार सम-सीमान्त उपयोगिता नियम को प्राप्त करने पर उत्पत्ति के प्रत्येक साधन का पुरस्कार बराबर हो जाता है। समाजवादी जब धन की विषमता (Inequality of wealth) को दूर करने की बात कहते हैं तो उनका मत सम-सीमान्त उपयोगिता नियम पर ही आधारित होता है। वह कहते हैं कि उत्पत्ति के सभी साधनों को समान पुरस्कार मिलना चाहिये।

५. राजस्व—राजस्व के क्षेत्र में सम-सीमान्त उपयोगिता नियम का बराबर अनुसरण किया जाता है। सरकार रुपया व्यय करते समय इसी नियम पर चलती है जिससे व्यय के विभिन्न मदों से समान उपयोगिता प्राप्त हो। कर (Tax) वसूल करते समय भी वह इस नियम का ध्यान रखते हैं और यह देखते हैं कि विभिन्न वर्गों को कर देने के कारण जो कष्ट हुआ है वह समान हो। अन्य शब्दों में उनकी सीमान्त अनुपयोगिता (Marginal dis-utility) समान हो।

अतः, कहा जा सकता है कि सम-सीमान्त उपयोगिता नियम का क्षेत्र बड़ा व्यापक है और इसका बड़ा महत्व है।

नियम के प्रयोग लाने में कठिनाइयाँ

यद्यपि यह नियम बड़ा महत्वपूर्ण है और अर्थशास्त्र के सभी विभागों में इसका प्रयोग होता है और मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा है कि वह इस नियम का स्वतः पालन करता है, फिर भी अनेक ऐसे कारण हैं जिनके कारण व्यक्ति इस नियम का पालन नहीं कर पाते। यह कारण निम्न हैं :

(१) अज्ञानता—कुछ मनुष्य अपनी अज्ञानता के कारण यह नहीं जान पाते कि किस वस्तु की किन-किन इकाइयों से उन्हें कितनी-कितनी उपयोगिता मिल रही है। उनका मस्तिष्क इतना विकसित नहीं होता कि वह इस बात का सही-सही पता लगा सकें। फलतः वह नियम के अनुसार नहीं चल पाते।

(२) लापरवाही—कुछ मनुष्य इतने लापरवाह होते हैं कि वह यह जानने की चिन्ता ही नहीं करते कि उन्हें किन वस्तुओं से कितनी उपयोगिता मिल रही है। लापरवाही तथा सुस्ती के कारण वह इस नियम द्वारा लाभ नहीं उठा पाते।

(३) मूल्यों में परिवर्तन—विभिन्न वस्तुओं के मूल्यों में समय-समय पर परिवर्तन होते रहते हैं जिसके कारण पुराने सभी अनुमान बदल जाते हैं और

मनुष्य के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वह नये अनुमान लगाये। यह काम इतनी कठिनाई और परेशानी का है कि मनुष्य झंझट में नहीं पड़ते और नियम के अनुसार नहीं चलते।

(४) रीति-रिवाज तथा फैशन—सामाजिक रीति-रिवाज तथा फैशनों का मनुष्य के ऊपर इतना गहरा प्रभाव होता है कि वह आर्थिक नियम के पालन करने की परवाह न कर सामाजिक बन्धन पूरा करने में लग जाता है। उदाहरण के लिये अतिथि आने पर पान-सिगरेट आदि देने का रिवाज है। हो सकता है कि किसी व्यक्ति के लिये पान-सिगरेट पर धन व्यय करना इतना आवश्यक न हो, जितना गेहूँ खरीदने पर या बच्चों के कपड़े खरीदने पर। परन्तु सामाजिक बन्धन के कारण उसे पान-सिगरेट खरीदने ही पड़ेंगे। इसी प्रकार कई अवसरों पर दावत देने की प्रथा है। व्यक्तियों की आर्थिक दशा से इन पर व्यय करना इतना आवश्यक नहीं होता जितना अन्य वस्तुओं पर व्यय करना। परन्तु सामाजिक प्रथाओं के बंधन के कारण उसे आर्थिक नियम का पालन त्यागना पड़ता है। पढ़े-लिखे और शिक्षित व्यक्ति सामाजिक प्रथाओं तथा रूढ़ियों की इतनी फिक्र नहीं करते, परन्तु अशिक्षित लोग सामाजिक रूढ़ियों के गुलाम होते हैं।

परीक्षा प्रश्न

उत्तर-प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—आपके पास २ रुपये हैं और आपको उन्हें क ख और ग नामक तीन वस्तुओं पर व्यय करना है। यदि उनकी सीमान्त उपयोगितायें निम्नलिखित हों और प्रति वस्तु की प्रत्येक इकाई की लागत दो आने हों, तो आप उन पर अपना रुपया किस प्रकार व्यय करेंगे? अपने उत्तर के कारण भी दीजिये।

क	ख	ग
५०	४०	३८
४५	३८	३२
३६	३५	२७
३४	३१	२३
३०	२६	१६
२५	२०	१५
२१	१४	१०

(१९५२, १९४०)

२—आपको १६ रुपये तीन वस्तुओं क, ख, और ग पर जिनकी सीमान्त उपयोगिता नीचे दी गई है, व्यय करना है। वस्तुओं की प्रत्येक इकाई का मूल्य एक रुपया है। बतलाइये इन तीनों वस्तुओं पर आप किस प्रकार धन व्यय करेंगे?

(क) १००, ६०, ७८, ६८, ६०, ५०, ४२।
(ख) ८०, ७६, ७०, ६८, ५२, ४०, २८
(ग) ७६, ६४, ५४, ४६, ३८, ३०, २०

(१६५०)

३—सम सीमान्त-उपयोगिता नियम समझाइये। जीवन में रीति-रिवाज तथा फैशन के प्रभाव से उसमें क्या परिवर्तन होता है? (१६४६)

४—यह बताइये कि हमारी आय का खर्च सम-सीमान्त-उपयोगिता-नियम के द्वारा किस प्रकार शासित होता है? (१६४५)

५—आप अपनी बहन को घरेलू व्यय के संबन्ध में अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने की दृष्टि से क्या सलाह देंगे? (१६३८)

उत्तर-प्रदेश, इन्टर कामर्स

६—सम-सीमान्त-उपयोगिता नियम को समझाइये और उदाहरण द्वारा उसे स्पष्ट कीजिये। इसके महत्व की भी विवेचना कीजिये। (१६५३)

७—सम-सीमान्त-उपयोगिता नियम का व्याख्यामय वर्णन कीजिये तथा उदाहरण देकर समझाइये। इसके व्यावहारिक महत्व की विवेचना कीजिये। (१६५१)

८—प्रतिस्थापन के सिद्धान्त (Law of Substitution) पर एक टिप्पणी लिखिये।

(१६४६)

६—आवश्यकताओं की संतुष्टि का नियम साफ-साफ समझाइये। क्या आप इससे मनुष्यों के व्यय के संबंध में मार्ग दिखलाने के लिये कोई नियम प्राप्त कर सकते हैं? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिये। (१६४६)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

१०—सम-सीमान्त-उपयोगिता-नियम को स्पष्टतया समझाइये। यह मनुष्यों को दैनिक व्यय में किस प्रकार मार्ग दिखलाता है? (१६४४)

११—सम-सीमान्त-उपयोगिता-नियम की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिये। अपने उत्तर में या तो चित्रों का या अंकों का प्रयोग कीजिये। (१६५२, १६५०)

१२—प्रतिस्थापन नियम पर एक नोट लिखिये। (१६५१)

१३—उपयोगिता-सम-नियम को समझाइये। एक गृहस्वामिनी के पास १५ रु० हैं। इससे जो भी वस्तुएँ खरीदी जाती हैं, उनकी उसे आनों में उपयोगिता निम्नलिखित है।

रोटी से	२८, २६, २०, १६ आने
मांस से	२४, २०, १६, १० आने
चाय से	२२, १८, ६, २ आने
चीनी से	२०, १७, १६, ६ आने

यदि प्रत्येक इकाई की कीमत १) हो, तब वह विभिन्न मदों पर कितने रुपये व्यय करेगी? क्या वह कुछ रुपया बचायेगी भी? (१६४६)

१४—सम-सीमान्त-उपयोगिता-नियम को स्पष्टतया समझाइये यह नियम किस व्यक्ति के व्यय में किस प्रकार पथ प्रदर्शन करता है? (१६४८)

१५—उपभोग में लागू होने वाले प्रतिस्थापन के नियम को समझाइये और यह भी बताइये कि इसमें रीति-रिवाज तथा फैशन के प्रभाव से किस प्रकार संशोधन हो जाता है। भारतीय उदाहरण भी दीजिये। (१९४५)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर कामर्स

१६—सम-सीमान्त-उपयोगिता-नियम की व्याख्या कीजिये। रीति-रिवाज तथा फैशन के कारण यह व्यावहारिक जीवन में किस प्रकार परिवर्तित हो जाता है। (१९५१)

१७—सम-सीमान्त-उपयोगिता नियम पर एक नोट लिखिये। (१९४९)

१८—सम-सीमान्त उपयोगिता का नियम प्रतिपादित और स्पष्ट कीजिये। यह व्यक्तियों के प्रतिदिन के व्यय में किस प्रकार पथ-प्रदर्शन करता है? (१९४४)

पटना इन्टर आर्ट्स

१९—आय का व्यय करते समय लागू होने वाले प्रतिस्थापन नियम को समझाइये। (१९५०)

२०—सम-सीमान्त-उपयोगिता-नियम को उदाहरण सहित समझाइये। (१९४२)

पटना इन्टर कामर्स

२१—प्रतिस्थापन के सिद्धान्त को समझाइये। (१९५०)

२२—सम-सीमान्त-उपयोगिता-नियम को समझाइये। (१९४८)

२३—उत्पादन और उपभोग में लागू होने वाले प्रतिस्थापन्न के नियम को समझाइये। (१९४४)

२४—किसी व्यक्ति को अपनी आमदनी से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करने के लिये कौन सा नियम लागू करना चाहिए? फैशन तथा रीति रिवाज उस नियम के रास्ते में किस प्रकार खड़े होते हैं? (१९४२)

सागर इन्टर आर्ट्स

२५—"यदि अन्य बातें समान रहें तो गरीब आदमी की तुलना में रुपये से एक अमीर को कम सीमान्त उपयोगिता प्राप्त होती है" स्पष्ट कीजिये। (१९५०)

२६—सम-सीमान्त उपयोगिता-नियम को स्पष्टतया समझाइये। (१९५०)

सागर इन्टर कामर्स

२७—सम-सीमान्त-उपयोगिता-नियम पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। (१९५२)

२८—सम-सीमान्त-उपयोगिता-नियम को अच्छी प्रकार से समझाइये। (१९५१)

२९—सम-सीमान्त-उपयोगिता-नियम को स्पष्टतया समझाइये। (१९५०)

मध्य भारत इन्टर आर्ट्स

३०—सम-सीमान्त-उपयोगिता-नियम को समझाइये और स्पष्ट कीजिए। दिन प्रति-दिन के व्यय में यह किस प्रकार सहायता देता है? (१९५२)

उन्नीसवाँ अध्याय

उपभोक्ता का अतिरेक*

(Consumer's Surplus)

यह तो सभी जानते हैं कि मनुष्य को जिस वस्तु से जितनी उपयोगिता मिलेगी वह उसके लिये उतना ही धन देने को तैयार हो जायगा। उदाहरण के लिये यदि आपको किसी वस्तु से १०० रुपये के बराबर उपयोगिता मिलती है तो आप उसे पाने के लिये १०० रुपये देने को तैयार हो जायँगे। परन्तु यदि बाजार में वह वस्तु आपको ६० रुपये में ही मिल जाय तो आपको ४० रुपये की अतिरिक्त उपयोगिता प्राप्त हो जायगी। इस प्रकार से अतिरिक्त उपयोगिता मिल जाना कोई अद्भुत बात नहीं है। उपभोग की क्रियाओं में प्रायः अतिरिक्त उपयोगिता (surplus utility) मिलती रहती है। एक विद्यार्थी जो छात्रावास में बीमार पड़ गया है, अपने माता-पिता को अपनी बीमारी को खबर भेजने के लिये १०-२० रुपये व्यय करने को तैयार हो जायगा। परन्तु यदि उसका काम तीन पैसे के पोस्टकार्ड में ही चल जाय तो शेष का उसे अतिरिक्त लाभ हो जायगा। एक व्यापारी बम्बई के किसी व्यापारी से बहुत जरूरी बात करना चाहता है। यदि वह हवाई जहाज से जाय तो उसके २००-३०० रुपये खर्च होंगे। वह ट्रन्क-काल द्वारा टेलीफोन से बात कर लेता है। उसके केवल पाँच रुपये ही खर्च होते हैं और बाकी का उसे लाभ हो जाता है। इस प्रकार के सैकड़ों उदाहरण दिये जा सकते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रायः उपभोक्ताओं को अपने व्यय से कुछ 'अतिरिक्त' उपयोगिताएँ प्राप्त होती रहती हैं। इन्हीं अतिरिक्त उपयोगिताओं को अर्थशास्त्र में 'उपभोक्ता का अतिरेक' (Consumer's Surplus) कहते हैं।

---

*अधिकांश पुस्तकों में Consumer's Surplus का हिन्दी रूपान्तर 'उपभोक्ता की बचत' किया गया है। परन्तु यह हिन्दी रूपान्तर सही नहीं है। 'बचत' का पर्यायवाची आँग्ल भाषा का शब्द Savings है। Savings तथा Surplus शब्दों में बड़ा भेद है। Surplus शब्द का पर्यायवाची हिन्दी शब्द 'अतिरेक' ही हो सकता है। इस कारण Consumer's Surplus को 'उपभोक्ता का अतिरेक' कहना ही अधिक उपयुक्त है। धन का व्यय करते समय उपभोक्ता जो अतिरिक्त उपयोगिता प्राप्त करता है उसी को Consumer's Surplus कहते हैं। इसमें उपयोगिताओं की 'बचत' नहीं होती वरन् कुछ 'अतिरिक्त' उपयोगिताएँ प्राप्त होती हैं। इस कारण 'उपभोक्ता का अतिरेक' शब्द का प्रयोग ही सही है।

परिभाषा

उपभोक्ता को अपने व्यय से जो अतिरिक्त उपयोगिताएँ मिलती हैं उन्हीं को उपभोक्ता का अतिरेक कहा जाता है। अन्य शब्दों में यह कहिये कि किसी वस्तु के उपभोग के लिये मनुष्य जितना व्यय करने को तैयार है यदि उससे कम दाम पर उसे वह वस्तु मिल जाय, तो जो बचत होगी उसे उपभोक्ता का अतिरेक कहेंगे। अर्थात् जितना मनुष्य देने को तत्पर है और जितना वह वास्तव में देता है, इनके अंतर को उपभोक्ता का अतिरेक कहते हैं।

प्रो० पैन्सन का कहना है कि "हम जो देंगे और हमें जो देना पड़ता है उसके अन्तर को उपभोक्ता का अतिरेक कहते हैं।"*

प्रो० मार्शल का कहना है कि "वह लाभ जो मनुष्य को सस्ते दाम पर वस्तु खरीदने पर (जिस वस्तु के लिये वह ऊँचे दाम देने को तैयार हो जाता लेकिन उसका उपभोग न छोड़ता) प्राप्त होता है उपभोक्ता का अतिरेक कहलाता है।"†

प्रो० जे० के० मेहता के अनुसार "किसी वस्तु के उपभोग से मनुष्य जो उपभोक्ता का अतिरेक प्राप्त करता है, वह उस वस्तु से प्राप्त सन्तुष्टि तथा उस वस्तु को प्राप्त करने में खोई गई सन्तुष्टि का अन्तर है"। ‡

सूक्ष्म में यह कहा जा सकता है कि मनुष्य किसी वस्तु के उपभोग के लिये जितना मूल्य देने को तैयार है यदि उससे कम मूल्य पर वह मिल जाती है, तो इस अन्तर को उपभोक्ता का अतिरेक कहेंगे।

सिद्धान्त का स्पष्टीकरण

सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम हमें यह बताता है कि वस्तु की सबसे प्रथम इकाई से हमें सबसे अधिक उपयोगिता मिलती है और सबसे अंतिम या सीमान्त इकाई से सबसे कम। परन्तु वस्तु खरीदते समय हम जो मूल्य देते

* "The difference between what we would pay and what we have to pay is called consumer's surplus."—T. aH. penson, *The Economics of Everyday Life*, part II, p. 27.

† "The benefit, which a person gets from purchasing at a lower price things which he would rather pay a high price for than go without, has already been called consumer's surplus"—Marshall, *Elements of Economics*, Vol I, page 420, Appendix II

‡ "Consumer's surplus obtained by a person from a commodity is the difference between the satisfaction which he derives from it and which he foregoes in order to procure that commodity"—J. K. Mehta, *Groundwork of Economics*, p. 52.

हैं वह वस्तु से प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिता के बराबर होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि वस्तु की सीमान्त इकाई से हमें जितनी उपयोगिता मिलती है उसी के बराबर वस्तु का मूल्य होता है। अतः, सीमान्त इकाई से हमें न लाभ होता है और न हानि। परन्तु सीमान्त इकाई से पहले की जितनी भी इकाइयाँ हैं उनसे सीमान्त इकाई से प्राप्त होने वाली उपयोगिता से अधिक उपयोगिता मिलती है, परन्तु उन्हें प्राप्त करने के लिये मूल्य सीमान्त उपयोगिता के बराबर ही देना पड़ता है। इससे स्पष्ट है कि सीमान्त इकाई से पहले वाली सभी इकाइयों से उपभोक्ता को कुछ अतिरिक्त उपयोगिता प्राप्त होती है। इन्हीं के योग को उपभोक्ता का अतिरेक कहते हैं।

उपभोक्ता के अतिरेक को स्पष्ट करते हुए हमने जो ऊपर लिखा है उसे समझने के लिये तीन बातें ध्यान में रखनी चाहिये। (१) उपभोग के समय प्रथम इकाई से सबसे अधिक और अंतिम या सीमान्त इकाई से सबसे कम उपयोगिता मिलती है। (२) हम वस्तु की सभी इकाइयों के लिये एक ही मूल्य देते हैं और वह वस्तु से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता के बराबर होता है। (३) इससे स्पष्ट है कि सीमान्त इकाई से पहली वाली सभी इकाइयों से हमें कुछ बचत प्राप्त होती है जिसे उपभोक्ता का अतिरेक कहते हैं।

उदाहरण तथा तालिका

उपभोक्ता के अतिरेक को एक उदाहरण द्वारा समझाया जा सकता है। मान लीजिये एक विद्यार्थी परीक्षा देने जा रहा है और उसे पेन्सिल की बड़ी जरूरत है। इस समय वह पेन्सिल की पहली इकाई के लिये पाँच रुपया देने को तैयार हो जायगा। परन्तु एक पेन्सिल मिल जाने के बाद उसकी आवश्यकता इतनी अधिक तीव्र नहीं रहेगी और दूसरी पेन्सिल के लिये वह केवल एक रुपया ही देने को तैयार होगा। दूसरी पेन्सिल वह इसलिये खरीद लेगा कि संभव है एक पेन्सिल रास्ते में गिर जाय या यह टूट जाय या यह अधिक हल्की या कड़ी हो। परन्तु दूसरी पेन्सिल के बाद तीसरी पेन्सिल के लिये वह केवल आठ आने ही व्यय करने को तैयार होगा और चौथी के लिये केवल चार आने। इसके बाद वह पेन्सिलें नहीं खरीदेगा। परन्तु यदि बाजार में पेन्सिलों का मूल्य केवल चार आने प्रति पेन्सिल है तो उसे पहली, दूसरी तथा तीसरी पेन्सिलों से कुछ लाभ प्राप्त होगा। पहली पेन्सिल से उसे ४ रु० १२ आने, दूसरी से १२ आने और तीसरे से ४ आने का लाभ होगा। इनका योग ५ रु० १२ आने हुआ। यही पेन्सिलों से प्राप्त 'उपभोक्ता का अतिरेक' है।

इस उदाहरण को नीचे दी गई तालिका द्वारा भी दिखलाया जा सकता है :

पेन्सिलों की इकाई	प्राप्त उपयोगिता	उपभोक्ता का अतिरेक
१	५ रु०	५ रु० — ४ आने = ४ रु० १२ आने
२	१ रु०	१ रु० — ४ आने = १२ आने
३	८ आने	८ आ० — ४ आने = ४ आने
४	४ आने	४ आ० — ४ आने = ० आने
उपभोक्ता का अतिरेक		= ६ रु० १२ आ० — १ रु० = ५ रु० १२ आने

यह कोई आवश्यक नहीं है कि उदाहरण रुपयों में ही दिया जाय। इकाइयों में भी उपभोक्ता का अतिरेक पता लगाया जा सकता है। उदाहरण के लिये मान लीजिये कि राम बाजार में कुर्सियाँ खरीदता है। कुर्सियों से उसे क्रमशः १००, ७०, ५०, ४०, ३० तथा २० उपयोगिताएँ प्राप्त होती हैं। मान लीजिये प्रत्येक कुर्सी का मूल्य २० इकाई है। राम को कुर्सियों से निम्न उपभोक्ता का अतिरेक प्राप्त होगा।

कुर्सियों की मात्रा	कुर्सियों की उपयोगिता	उपभोक्ता का अतिरेक
१	१००	१०० — २० = ८०
२	७०	७० — २० = ५०
३	५०	५० — २० = ३०
४	४०	४० — २० = २०
५	३०	३० — २० = १०
६	२०	२० — २० = ०
उपभोक्ता का अतिरेक		= ३१० — १२० = १९०



C.S. = T.U. − (M.U. × Number)
T.U. − (P × Q)

उपभोक्ता के अतिरेक का गणितात्मक माप

उपभोक्ता के अतिरेक को गणितात्मक रूप (Mathematically) से भी मापा जा सकता है। गणितात्मक ढंग से पता लगाने का तरीका निम्न है :

उपभोक्ता का अतिरेक = कुल उपयोगिता — (सीमान्त उपयोगिता × वस्तु की मात्रा)
= कुल उपयोगिता — (वस्तु का मूल्य × वस्तु की मात्रा)
= कुल उपयोगिता — कुल मूल्य

ऊपर जो लिखा गया है उसे नीचे बताये गये गुर द्वारा भी समझाया जा सकता है :

उ० अ० = कु० उ० — (सी० उ० × मा०)
= कु० उ० — (मू० × मा०)
= कु० उ० — कु० मू०

ऊपर हमने जो उदाहरण लिये हैं उनका गणितात्मक ढंग से उपभोक्ता का अतिरेक नीचे निकाला गया है।

पैंसिल वाला उदाहरण

उ० अ० = ६ रु० १२ आने — (४ आने × ४)
= ६ रु० १२ आने — (१ रुपया)
= ५ रु० १२ आने

कुर्सियों वाला उदाहरण

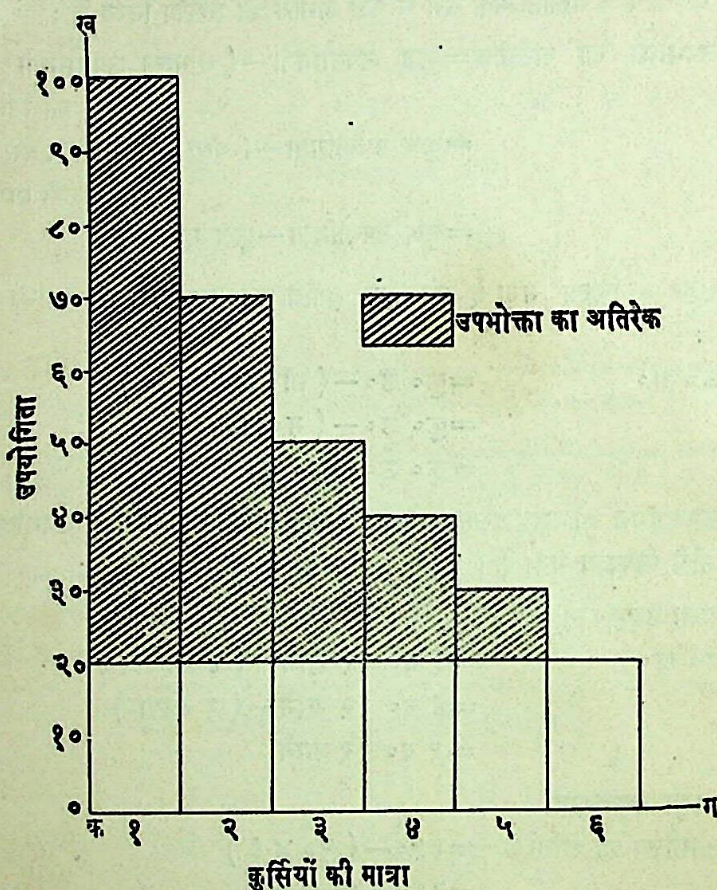
उपभोक्ता का अतिरेक = ३१० — (२० × ६)
= ३१० — १२०
= १६०

रेखाचित्र द्वारा निरूपण

उपभोक्ता के अतिरेक को रेखाचित्र द्वारा भी दिखलाया जा सकता है। रेखाचित्र दो प्रकार के हो सकते हैं (१) समकोण रेखाचित्र, तथा (२) वक्र रेखाचित्र। ऊपर दिये गये दो उदाहरणों में से कुर्सी वाले उदाहरण को समकोण रेखाचित्र द्वारा अगले पृष्ठ पर दिखलाया गया है।

इस रेखाचित्र में क ख रेखा पर उपयोगिता मापी गई है और क ग रेखा पर वस्तु की मात्रा। विभिन्न समकोण यह बताते हैं कि वस्तु की विभिन्न इकाइयों से कितनी उपयोगिता मिल रही है। वस्तु की सीमान्त इकाई से जो उपयोगिता

मिलती है वही वस्तु का मूल्य है । अतः समकोणों का जो भाग लाइनों से रंगा नहीं गया है वह यह बताता है कि वस्तु की सभी इकाइयों को पाने के लिये



चित्र ४५—उपभोक्ता का अतिरेक

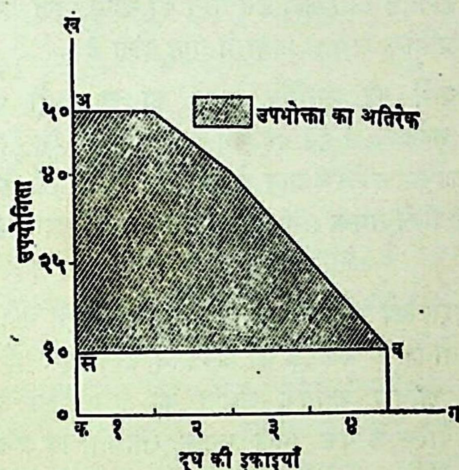
कुल कितना धन व्यय किया गया है। जो भाग लाइनों से भरा है वह उपभोक्ता के अतिरेक को बताता है।

यदि हमें उपभोक्ता के अतिरेक को वक्र रेखाचित्र द्वारा दिखलाना है तो हमें ऐसा उदाहरण लेना होगा जिसमें वस्तु की इकाई निश्चित नहीं है।* मान लीजिये गोपाल दूध पीता है। दूध की प्रथम इकाई से उसे ५०, दूसरी से ४०, तीसरी से २५, और चौथी से १० उपयोगिता प्राप्त होती है। यदि मान लीजिये दूध का मूल्य

* किस प्रकार की वस्तुओं के लिए समकोण रेखाचित्र बनाना चाहिये और किन के लिये वक्र रेखाचित्र, इसकी जानकारी के लिये 'सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम' वाला अध्याय देखिये।

भी १० इकाई है। इस उदाहरण को वक्र रेखाचित्र द्वारा निम्न प्रकार दिखलाया जा सकता है।

इस रेखाचित्र में क ख रेखा पर उपयोगिता दिखलाई गई है और क ग रेखा पर दूध की इकाइयाँ। त्रिकोण अ ब स (जो लाइनों द्वारा दिखलाया गया



चित्र ४६—उपभोक्ता का अतिरेक

है) उपभोक्ता का अतिरेक बतलाता है और समकोण स ब ग क, कुल मूल्य को जो दूध के लिये श्याम देता है।

४. उपभोक्ता के अतिरेक्त का महत्व

(Importance of the Concept of Consumer's Surplus)

उपभोक्ता के अतिरेक का सिद्धान्त अर्थशास्त्र में सबसे पहले प्रोफेसर मार्शल (Alfred Marshall) ने रखा। वही इस मत के प्रतिपादक हैं। उनके जीवन काल में ही इस मत के संबंध में अनेक तर्क-वितर्क चलने आरंभ हो गये और इसके महत्त्व के बारे में भी विद्वानों के मत में शंका होने लगी। परन्तु अब विद्वान् इस सिद्धान्त के महत्त्व को समझने लगे हैं और यह मानने लगे हैं कि इसका सैद्धान्तिक (Theoretical) तथा व्यावहारिक (Practical) दोनों ही प्रकार का महत्त्व है।

(१) सैद्धान्तिक लाभ

अचेतन उपयोगिता का ज्ञान—उपभोक्ता के अतिरेक का सबसे बड़ा सैद्धान्तिक लाभ यह है कि हमको अचेतन रूप से प्राप्त होने वाली उपयोगिता का भास हो जाता है। वस्तु का उपभोग करते समय हमें यह पता नहीं चलने पाता कि इससे हमें कितना अतिरिक्त लाभ (Surplus gain) प्राप्त हो रहा है। इस सिद्धान्त के अध्ययन के पश्चात् इस संबंध में हमारा ज्ञान स्पष्ट हो जाता है।

जिस वस्तु से अधिक उपभोक्ता का अतिरेक प्राप्त हो उसका उपभोग पहले करना चाहिये—इस मत के अध्ययन से हमें यह पता लग जाता है कि विभिन्न वस्तुओं के सेवन से हमें कितनी अतिरिक्त उपयोगिता मिल रही है। और यदि दो वस्तुओं के मूल्य एक हैं परन्तु एक से उपभोक्ता का अतिरेक अधिक और दूसरे से कम प्राप्त होता है तो हमको उस वस्तु का सेवन पहले करना चाहिये जिससे हमें उपभोक्ता का अतिरेक अधिक मात्रा में प्राप्त होता है।

विभिन्न वर्गों की आर्थिक दशा का ज्ञान हो जाता है—इस मत (Concept) के अध्ययन से हमें यह पता चल जाता है कि विभिन्न वर्गों के लोगों को कितना उपभोक्ता का अतिरेक प्राप्त हो रहा है। जिस वर्ग के लोगों को उपभोक्ता का अतिरेक अधिक मिले समझ लीजिये कि उस वर्ग की आर्थिक दशा दूसरे वर्ग से अच्छी है।

विभिन्न देशों की आर्थिक दशा का ज्ञान—यही नहीं, विभिन्न देशों में प्राप्त होने वाले उपभोक्ता के अतिरेक का अध्ययन करके हमें यह पता चल सकता है कि कौन से देश ने अधिक आर्थिक उन्नति की है। जिस देश के रहने वालों को उपभोक्ता का अतिरेक अधिक मिले समझ लीजिये कि उस देश ने अधिक आर्थिक उन्नति की है।

(२) व्यावहारिक लाभ

विभिन्न प्रकार के काम करने वाले व्यक्ति इस सिद्धान्त के अध्ययन से भिन्न-भिन्न प्रकार से लाभ उठा सकते हैं। उन्हें नीचे बताया गया है।

एकाधिकारी को लाभ—यदि कोई व्यक्ति एकाधिकारी* (Monopolist) है, और उसको यह पता लग जाता है कि उसकी वस्तु से उपभोक्ताओं को काफी उपभोक्ता का अतिरेक प्राप्त होता है, तो वह अपनी वस्तु का मूल्य बढ़ा कर अधिक लाभ उठा सकता है।

वित्त-मंत्री को लाभ—उपभोक्ता के अतिरेक का अध्ययन वित्त-मंत्री (Finance minister) के लिये भी बड़ा आवश्यक है। इसका कारण यह है कि किसी भी वस्तु पर अधिक से अधिक उतना ही कर (tax) लगाया जा सकता है जितना उससे उपभोक्ता का अतिरेक प्राप्त होता है। यदि वित्त-मंत्री यह देखता है कि किसी वस्तु के उपभोक्ताओं को अधिक उपभोक्ता का अतिरेक प्राप्त हो रहा है तो वह उस वस्तु पर अधिक कर लगा देगा।

---

* यदि किसी वस्तु का उत्पादन करने वाला केवल एक ही व्यक्ति हो और उस व्यक्ति को किसी दूसरे उत्पादक से प्रतिस्पर्धा (Competition) न करनी पड़े तो उसे एकाधिकारी कहते हैं।

३. उपभोक्ता के अतिरेक की आलोचना
(Criticism of Consumer's Surplus)

उपभोक्ता का अतिरेक एक ऐसा मत (Concept) है जिसके संबंध में अर्थशास्त्रियों में बड़ा मतभेद है। जैसा पहले कहा जा चुका है मार्शल इस मत के प्रतिपादक हैं। जो विद्वान् मार्शल के मत के अनुयायी हैं वे इस मत की बड़ी प्रशंसा करते हैं। परन्तु कुछ अन्य अर्थशास्त्रियों ने इसकी कटु निन्दा की है और इसको 'व्यर्थ का बकवास' कहने में भी नहीं चूके हैं। नीचे हम विभिन्न आलोचनाओं के बारे में आपको बताकर यह अध्ययन करेंगे कि यह आलोचनाएँ कहाँ तक उचित हैं।

१. यह सिद्धान्त पूर्णतः कपोल-कल्पित तथा भ्रमात्मक है—प्रोफेसर निकलसन (Nicholson), जो मार्शल के सम-सामयिक थे, का कहना है कि यह सिद्धान्त पूर्णतः कपोल-काल्पित है और यदि इसका प्रयोग व्यवहारिक बातों में किया गया तो इससे काफी भ्रम फैलेगा। अपनी बात को समझाते हुए उन्होंने कहा कि मान लीजिये एक व्यक्ति अपने भोजन से ६० पौंड, अपने मकान से २०० पौंड, कपड़ों से ८० पौंड और अन्य वस्तुओं के उपभोग से इसी प्रकार अतिरिक्त उपयोगिता (Surplus utility) पाता रहता है तो "यह कहने से क्या लाभ कि १०० पौंड की वार्षिक आय की उपयोगिता १,००० पौंड वार्षिक आय के बराबर है।" *

मार्शल ने स्वयं इस आलोचना का उत्तर दिया। उनका कहना है कि इस सिद्धान्त का महत्व उस समय समझ में आता है जब "इंगलैंड के जीवन की मध्य अफ्रीका के जीवन से तुलना की जाय। चाहे मध्य अफ्रीका में वस्तुएँ उतनी ही सस्ती हों जितनी कि इंगलैंड में, फिर भी बहुत सी ऐसी वस्तुएँ हैं जो मध्य अफ्रीका में नहीं खरीदी जा सकतीं और १,००० पौंड वार्षिक आय वाला व्यक्ति मध्य अफ्रीका में इतनी अच्छी तरह नहीं रह सकेगा जितना ३००-४०० पौंड आय वाला इंगलैंड में।"† मार्शल का कहना है कि एक उन्नतशील देश में जीवन की अनेक

*"Of what avail it is to say that utility of an income of (say) £ 100 is worth (say) £ 1,000 a year". quoted by Marshall in his book, *Elements of Economics, of Industry*, p. 422.

†"But there might be use, when comparing life in Central Africa with life in England in saying that, though the things which money will buy in Central Africa may on the average be as cheap there as here, yet there may be so many things which cannot be bought there at all, that a person with a thonsand a year there is not so well off as a person with three or four hundred a year here".—Alfrd Marshall, *Economics of Industry*, p. 422.

सुविधायें प्राप्त रहती हैं जैसे हवाई जहाज, टेलीफन, रेडियो, टेलीविजन आदि और इनके सेवन से काफी अधिक उपभोक्ता का अतिरेक प्राप्त होता है। इनसे जीवन भी अधिक सुखमय हो जाता है। मध्य अफ्रीका जैसे कम उन्नतशील देश में ये सुविधायें प्राप्त नहीं रहतीं और इस कारण अधिक आमदनी होने पर भी वहाँ जीवन अधिक सुखमय नहीं हो सकता। उपभोक्ता के अतिरेक का सिद्धान्त हमारा ध्यान इस महत्वपूर्ण बात की ओर आकर्षित करता है।

२. उपभोक्ता के अतिरेक को ठीक से मापा नहीं जा सकता—कुछ अर्थशास्त्रियों का कहना है कि उपभोक्ता के अतिरेक को ठीक से मापा नहीं जा सकता। इन अर्थशास्त्रियों में पेटिन (Patten) का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उनका कहना है कि उपभोक्ता जब आवश्यक आवश्यकता की किसी वस्तु की प्रथम इकाई का उपभोग करता है तब उसे इतनी अधिक उपयोगिता प्राप्त होती है कि उसे मापा नहीं जा सकता। जब प्रथम इकाई से प्राप्त होने वाली उपयोगिता को ही नहीं मापा जा सकता तो उपभोक्ता के अतिरेक का मापना असंभव ही है।

इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि आजकल बहुत से अर्थशास्त्री इस बात से सहमत नहीं हैं कि आवश्यक आवश्यकता की प्रथम इकाई से प्राप्त होने वाली उपयोगिता को मापा नहीं जा सकता। और यदि मान भी लिया जाय कि यह बात ठीक है, तो उपभोक्ता के अतिरेक के सिद्धान्त का यह दोष नहीं है। यह दोष उपयोगिता के माप का है और इस कारण उपभोक्ता के अतिरेक के सिद्धान्त को गलत नहीं बतलाया जा सकता है।

३. माँग की सारणी बनाने का ढंग गलत है—कुछ विद्वानों का कहना है कि माँग की सारणी बनाकर हम जिस प्रकार उपभोक्ता के अतिरेक को मापते हैं वह ढंग ठीक नहीं है। जब हम किसी वस्तु की विभिन्न इकाइयों का उपभोग करते जाते हैं तो पहले वाली इकाइयों से मिलने वाली उपयोगिता कम होती जाती है। इसका कारण यह है कि वस्तु की मात्रा बढ़ जाने से उपयोगिता घट जाती है और द्रव्य की मात्रा घट जाने से उसकी उपयोगिता बढ़ जाती है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि हर नई इकाई के उपभोग के बाद, माँग की सारणी को पुनः तैयार किया जाय।

मार्शल ने स्वयं इस आलोचना का उत्तर दिया है। उनका कहना है कि यह आलोचना करते समय इस बात का ध्यान नहीं रखा गया है कि माँग की सारणी किस प्रकार बनाई जाती है। * माँग की सारिणी बनाते समय यह मान लिया जाता

*"This misconceives the plan on which the list of price is made out".—Dr. Marshall, *Economics of Industries*, p. 422

है कि जब तक उपभोग की क्रिया चलती रहती है, रुपये की उपयोगिता समान रहती है। पुनः, यदि हम थोड़ी देर के लिये यह मान भी लें कि माँग की सारणी ठीक से नहीं बनाई जा सकती, तो इसके कारण हम उपभोक्ता के अतिरेक के सिद्धान्त को गलत नहीं बतला सकते।

४. बाजारी उपभोक्ता के अतिरेक को नहीं मापा जा सकता—कुछ विद्वानों का कहना है कि हम व्यक्तिगत (Individual) उपभोक्ता के अतिरेक को भले ही माप लें परन्तु सामूहिक या बाजारी (Market) उपभोक्ता के अतिरेक को नहीं माप सकते। बाजार में विभिन्न वर्ग के तथा विभिन्न आय वाले व्यक्ति रहते हैं। रुपये की इकाई की उपयोगिता इनके लिए, एक नहीं होती। उदाहरण के लिये एक करोड़पति के लिये एक रुपये की उपयोगिता यदि २ इकाई है, तो एक ३० रुपया माहवार मिलने वाले क्लर्क के लिये एक रुपये की उपयोगिता ५० इकाई होगी। अतएव इन सब प्रकार के लोगों को मिलने वाले उपभोक्ता के अतिरेक को मिलाकर मापा नहीं जा सकता।

इस आलोचना में जो कुछ कहा गया है वह ठीक है। समाज में विभिन्न वर्ग के लोग रहते हैं इस कारण सामूहिक या बाजारी उपभोक्ता के अतिरेक को नहीं मापा जा सकता। परन्तु केवल इस कारण हम उपभोक्ता के अतिरेक के सिद्धान्त को गलत नहीं कह सकते। हाँ, उसका माप पूर्णतः ठीक नहीं है। परन्तु इसका कारण यह है कि अर्थशास्त्र में हम उपयोगिता को ठीक से नहीं माप सकते। यह उपभोक्ता के अतिरेक के सिद्धान्त की गलती नहीं, वरन् अर्थशास्त्र की ही कमी है।

ऊपर बताई गई आलोचनाओं तथा उनके प्रत्युत्तरों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उपभोक्ता के अतिरेक का सिद्धान्त पूर्णतः सही है। रही इसके माप की बात। सो यदि इसको मापना कठिन या असंभव है तो इसका कारण यह है कि उपयोगिता को मापना ही कठिन या असंभव है।

परीक्षा प्रश्न

उत्तर-प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—उपभोक्ता के अतिरेक पर टिप्पणी लिखिये। (१९५३, १९५१, १९४७, १९३९)

२—'उपभोक्ता के अतिरेक' से क्या आशय है? उसको समझाइये। इसके अध्ययन से क्या क्या लाभ है? (१९५०)

उत्तर-प्रदेश इन्टर कामर्स

३—'उपभोक्ता के अतिरेक' की विवेचना कीजिये और उसका महत्व समझाइये। (१९५२)

४—'उपभोक्ता के अतिरेक' का क्या अर्थ है ? यह कैसे प्राप्त होता है और इसको कैसे मापा जाता है ? (१९४६)

५—'उपभोक्ता के अतिरेक' की विवेचना कीजिये और उसका महत्व बताइये । (१९४३)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

६—उपभोक्ता के अतिरेक को एक रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट कीजिये । इसकी मुख्य सीमायें भी बताइये । (१९५३, १९५२, १९४८)

७—उपभोक्ता के अतिरेक को एक रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट कीजिए । उत्पत्ति तथा उपभोग से इसके संबंध को भी बताइये । (१९४८)

८—उदाहरण सहित 'उपभोक्ता के अतिरेक' पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये । (१९५१, १९४९, १९४३)

९—उपभोक्ता का अतिरेक किसे कहते हैं ? यह कैसे मापा जाता है ? इसका उदय क्यों होता है ? (१९४१, १९३६)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर कामर्स

१०—उपभोक्ता के अतिरेक पर एक नोट लिखिये । (१९५३, १९४५)

११—उपभोक्ता का अतिरेक किसे कहते हैं ? इसका उदय किस प्रकार होता है और इसे किस प्रकार मापा जा सकता है ? दैनिक जीवन से उदाहरण दीजिये और एक रेखा चित्र भी बनाइये । (१९५१)

पटना इन्टर आर्ट्स

१२—उपभोक्ता के अतिरेक पर अपने विचार प्रगट कीजिये । क्या आप इसको माप सकते हैं ? (१९४८, १९४६)

पटना इन्टर कामर्स

१३—उपभोक्ता के अतिरेक पर अपने विचार प्रगट कीजिये । (१९४९)

सागर इन्टर आर्ट्स

१४—उपभोक्ता का अतिरेक क्या है ? बताइये कि इसका उदय किस प्रकार होता है ? (१९४६)

१५—उपभोक्ता का अतिरेक क्या है और इसका किस प्रकार से उदय होता है ? (१९५१)

१६—उपभोक्ता के अतिरेक पर संक्षिप्त नोट लिखिये । (१९५०)

१७—उपभोक्ता का अतिरेक क्या है ? इसको आप किस प्रकार माप सकते हैं ? (१९४९)

सागर इन्टर कामर्स

१८—उपभोक्ता के अतिरेक को अच्छी प्रकार से समझाइये । क्यों इसका उदय होता है और यह किस प्रकार से मापा जा सकता है ? (१९५२)

१९—'उपभोक्ता के अतिरेक' पर संक्षिप्त नोट लिखिए । (१९५१)

२०—उपभोक्ता के अतिरेक को एक रेखाचित्र द्वारा पूर्ण रूप से समझाइये । (१९५०)

२१—उपभोक्ता के अतिरेक के सिद्धान्त को स्पष्टतया समझाइये । (१९४९)

मध्य भारत इन्टर आर्ट्स

२२—उपभोक्ता के अतिरेक पर एक सूक्ष्म नोट लिखिये। (१९५२)

२३—उपभोक्ता का अतिरेक क्या है? यह कैसे उत्पन्न होता है? यह कैसे मापा जाता है? अपना उत्तर एक रेखाचित्र द्वारा दीजिए। (१९५३)

मध्य भारत इन्टर कामर्स

२४—उपभोक्ता के अतिरेक को स्पष्ट रूप से समझाइये। (१९५२)

बीसवाँ अध्याय

रहन-सहन का स्तर

(Standard of Living)

१. प्रारंभिक

(Introductory)

यह तो सभी जानते हैं कि मनुष्य अपनी आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने में बराबर लगे रहते हैं। परन्तु सभी मनुष्यों की आवश्यकताएँ एकसी नहीं होतीं। किसी को कुछ वस्तु अच्छी लगती है तो किसी दूसरे को कोई अन्य। कुछ लोग अपनी आमदनी का काफी भाग बचाकर रख लेते हैं और कुछ अपनी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि पर आमदनी का अधिकांश भाग व्यय कर देते हैं। कुछ अपने बच्चों की पढ़ाई आदि पर अधिक धन व्यय करते हैं, तो कुछ सिनेमा, शराब आदि पर। मनुष्य किस मात्रा में किन-किन वस्तुओं का सेवन करता है इसी पर उसका रहन-सहन का स्तर निर्भर रहता है।

रहन-सहन के स्तर की परिभाषा

जब मनुष्य कुछ वस्तुओं का बहुत समय तक सेवन करता रहता है तो उनके उपभोग की उसे आदत पड़ जाती है। वे वस्तुएँ यदि उसे न मिलें तो उसे बहुत बुरा लगेगा या उसे बड़ा असन्तोष होगा। वस्तुएँ चाहे आवश्यक आवश्यकता की हों, और चाहे आराम संबंधी या विलासिता संबंधी, यदि उनके उपभोग की मनुष्य को आदत पड़ गई है और उनके उपभोग के बिना उसे बड़ा दुःख होता है, तो यह कहा जायगा कि वे वस्तुएँ उसके रहन-सहन का दर्जा हैं। सूक्ष्म में हम यह कह सकते हैं कि रहन-सहन के स्तर से हमारा आशय उन आवश्यकताओं से है जिनके उपभोग की मनुष्य को आदत पड़ गई है और जिनके उपभोग के बिना उसे बड़ा दुःख होता है।

उदाहरण के लिये मान लीजिये श्याम को चाय पीने की आदत पड़ गई है। यदि उसे चाय न मिले तो उसे बड़ा दुःख होगा। हम कहेंगे कि चाय श्याम के जीवन-स्तर का एक भाग है। इसी प्रकार यदि किसी को सिगरेट पीने की आदत पड़ गई है तो सिगरेट उसके जीवन-स्तर में आ जाती है। वस्तु चाहे अच्छी हो या बुरी, यदि उनके उपभोग की मनुष्य की आदत पड़ जाय तो उसे रहन-सहन का स्तर कहेंगे।

रहन-सहन के स्तर के प्रकार

रहन-सहन का स्तर दो प्रकार का होता है—(१) ऊँचा तथा नीचा। ऊँचा जीवन-स्तर वह स्तर है जिसमें मनुष्य अच्छा तथा पुष्टकर भोजन करता है, हवादार तथा साफ मकान में रहता है, साफ कपड़े पहनता है, बालकों की पढ़ाई-लिखाई और उनके स्वास्थ्य का उचित ध्यान रखता है और बीमारी के समय डाक्टर का प्रबन्ध करता है। इसके विपरीत नीचा जीवन-स्तर वह है जिसमें मनुष्य अपने तथा अपने घरवालों के स्वास्थ्य तथा उनकी समृद्धि की ओर ध्यान न देकर विलासिता की वस्तुओं पर अधिकांश धन व्यय कर देता है।

ऊपर की परिभाषाओं से स्पष्ट है कि ऊँचा तथा नीचा जीवन-स्तर इस बात पर निर्भर नहीं रहता कि मनुष्य की आय कितनी अधिक या कितनी कम है और वह कितना रुपया व्यय कर रहा है और कितना बचाता है। एक हजार रुपया माहवार आय वाले मनुष्य का जीवन-स्तर पाँच सौ रुपया कमाने वाले मनुष्य से नीचा हो सकता है या ५०० रुपया माहवार व्यय करने वाले मनुष्य का रहन-सहन का स्तर २०० रु० माहवार व्यय करने वाले मनुष्य से नीचा हो सकता है। देखने की बात यह है कि मनुष्य विवेकपूर्ण ढंग से रुपया व्यय कर रहा है या नहीं और उसे उपभोग की क्रिया से कितनी उपयोगिता मिलती है।

रहन-सहन के स्तर की निर्भरता

जैसा ऊपर बताया जा चुका है रहन-सहन का स्तर दो बातों पर निर्भर रहता है—(१) धन कितना व्यय किया जा रहा है, और (२) किस प्रकार व्यय किया जा रहा है। अन्य शब्दों में रहन-सहन का स्तर धन की मात्रा तथा विवेकपूर्ण व्यय पर निर्भर रहता है। इनके बारे में नीचे विस्तार से बताया गया है।

धन की मात्रा—जीवन-स्तर का ऊँचा तथा नीचा होना इस बात पर निभर रहता है कि मनुष्य के पास खर्च करने के लिये कितना धन है। यदि यह मान लिया जाय कि सभी मनुष्य विवेकपूर्ण ढंग से धन व्यय करते हैं तो यह निसंकोच कहा जा सकता है कि जो मनुष्य अधिक मात्रा में धन व्यय करते हैं और अपनी आवश्यकताओं को अधिक मात्रा में संतुष्ट कर लेते हैं उन व्यक्तियों का जीवन स्तर ऊँचा होगा। स्पष्ट है कि राजा-महाराजाओं का जीवन-स्तर, किसानों या मजदूरों से कहीं अधिक ऊँचा होता है। इसका कारण यही है कि उनके पास अधिक पैसा होता है और वह अपनी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिये काफी अधिक धन व्यय करते हैं।

२. विवेकपूर्ण व्यय—परन्तु अधिक धन व्यय करने मात्र से ही जीवन-स्तर ऊँचा नहीं हो जाता। आवश्यकता इस बात की है कि धन विवेकपूर्ण ढंग से

व्यय किया जाय। विवेकपूर्ण ढंग से व्यय करने का अर्थ यह है कि आवश्यकताओं को उनकी तीव्रता के अनुसार सन्तुष्ट किया जाय। अर्थात् जो आवश्यकता सबसे तीव्र है उसे सबसे पहले सन्तुष्ट किया जाय और जो कम तीव्र है उसे बाद में सन्तुष्ट किया जाय। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि आवश्यक आवश्यकताओं को सबसे पहले सन्तुष्ट किया और विलासिताओं पर सबसे कम और सबसे बाद में धन व्यय किया जाय।

ऊँचे रहन-सहन के स्तर से लाभ

रहन-सहन का स्तर ऊँचा होने से सबसे बड़ा लाभ यह है कि इससे मनुष्य का जीवन अधिक सुखमय हो जाता है, उसका स्वास्थ्य अच्छा रहता है और उसकी निपुणता भी बढ़ जाती है। आप एक मजदूर का उदाहरण लीजिये। यदि उसका जीवन-स्तर बढ़ जाय तो उसे अच्छा भोजन मिलने लगेगा। इससे उसका स्वास्थ्य अच्छा होगा। स्वास्थ्य अच्छा होने से उसकी कार्यकुशलता बढ़ जायगी। कार्यकुशलता बढ़ जाने से वह अधिक उत्पादन करने लगेगा। जब वह अधिक उत्पादन करने लगेगा तो उसकी आय बढ़ जावेगी और इस बढ़ी हुई आय को व्यय कर वह अपना जीवन-स्तर और अधिक ऊँचा कर सकेगा। इस प्रकार जीवन-स्तर एक बार ऊँचा हो जाने पर यदि बढ़ी हुई आय को विवेकपूर्ण ढंग से व्यय किया जाय तो मनुष्य की उत्पादन शक्ति बढ़ती रहती है और उसका जीवन-स्तर भी ऊँचा होता रहता है।

२. जीवन-स्तर ऊँचा किया जाय या नहीं

(Should Standard of Living be Raised)

यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है कि मनुष्य को अपना जीवन-स्तर ऊँचा करने के लिये प्रयास करना चाहिये या नहीं। यह तो आप जानते ही हैं कि भारतीय परंपरा इसके विरुद्ध है। भारतीय धर्मशास्त्र हमेशा से 'सादा जीवन, उच्च विचार' (plain living and high thinking) के मत का समर्थन करते रहे हैं। मनुष्य यदि अपना कल्याण चाहता है और अपनी आत्मा को शान्ति देना चाहता है तो उसके लिये यह आवश्यक है कि वह अपने जीवन-स्तर को ऊँचा बढ़ाने का प्रयास न करे। जीवन-स्तर जितना ऊँचा होता है, आवश्यकताएँ उतनी ही अधिक होती हैं और उन्हें सन्तुष्ट करने के लिये मनुष्य को उतना ही अधिक प्रयास करना पड़ता है और उसे उतना ही अधिक असन्तोष रहता है। उसे न मानसिक शान्ति मिलती है और न हृदय की प्रसन्नता। बड़े-बड़े सेठ और उद्योगपति अपने व्यापार के बारे में ही दिन-रात सोचते रहते हैं। उन्हें न रात में चैन रहता है और न दिन में। घर में उन्हें चोर और लुटेरों का डर लगा रहता है। परन्तु एक गरीब को न व्यापार की बेचैनी है और न धन लुट जाने की

आशंका। जहाँ चाहता है वह सो जाता है और सुबह होते ही उसे जहाँ तबियत होती है चला जाता है। उसके मन में शान्ति रहती है, चिन्ता नहीं रहती। इस कारण जिनका उद्देश्य शान्ति पाना है उन्हें अपना जीवन-स्तर ऊँचा न कर 'सादा जीवन, उच्च विचार' के अनुसार चलना चाहिये।

परन्तु जो पाश्चात्य विचारों से सहमत हैं और जिनका उद्देश्य शान-शौकत से रहना और ठाठ से जीवन व्यतीत करना है, उन्हें भारतीय परम्परा की बात पसन्द नहीं आवेगी। उनके विचार से जीवन-स्तर ऊँचा न उठाने से देश आर्थिक प्रगति न कर सकेगा, देश के रहने वालों की दशा नहीं सुधरेगी और देश में गरीबी बढ़ जायगी। वास्तव में मनुष्य को किस नीति का अनुसरण करना चाहिये—उसे अपना जीवन-स्तर ऊँचा करना चाहिये या नहीं—यह इस बात पर निर्भर रहना चाहिये कि वह भारतीय परंपरा को ठीक मानता है या पाश्चात्य को। भारतीय परंपरा में विश्वास करने वाले को अपना जीवन-स्तर बढ़ाने का प्रयास नहीं करना चाहिये और इसके विपरीत पाश्चात्य विचार धारा को उचित मानने वाले को अपना रहन-सहन का स्तर ऊँचा करने के लिये निरंतर प्रयत्नशील रहना चाहिये।

३· भारतीयों का जीवन-स्तर

(Standard of Living of the Indians)

भारतीयों का जीवन-स्तर नीचा है

यह सभी जानते हैं कि अधिकांश भारतीयों का जीवन-स्तर बहुत नीचा है। किसानों और मजदूरों की दशा इतनी गिरी हुई है कि न तो उन्हें दोनों समय भर पेट भोजन मिलता है और न पहनने को कपड़े ही। अपनी आवश्यक आवश्यकताओं को भी वे सन्तुष्ट नहीं कर पाते। इस कारण उनका तथा उनके बालकों का स्वास्थ्य बहुत गिर गया है और उनकी कार्यशीलता भी कम हो गई है। अन्य देशों की तुलना में भी भारत का स्थान बहुत नीचा है। यूरुप और अमरीका में कोई भी ऐसा देश नहीं है जहाँ के रहने वालों का जीवन-स्तर इतना नीचा हो जितना कि भारतवासियों का है।

भारतीयों की आय का अनुमान

भारतीयों के जीवन-स्तर का अनुमान हम देश की राष्ट्रीय आय (National Income) को देखकर या प्रति व्यक्ति औसतन आय (Per capita-Income) का अनुमान लगाकर कर सकते हैं। यह आपको बताया जा चुका है कि रहन-सहन का स्तर आमदनी पर भी निर्भर रहता है। अतः जब भारतीयों की आमदनी ही कम है तो उनका जीवन-स्तर भला ऊँचा कैसे हो सकता है!

भारत की राष्ट्रीय आय—भारत की राष्ट्रीय आय के संबंध में समय-समय पर कई अनुमान लगाये जा चुके हैं। सबसे अंतिम और सबसे सही अनुमान भारत सरकार द्वारा सन् १९४९ में नियुक्त राष्ट्रीय-आय-कमिटी (National Income Committee) का है। इस कमिटी ने सन् १९५१ में अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की और भारत की सन् १९४८-४९ की राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाया। निम्न तालिका में विभिन्न समयों पर लगाये गये कुछ अनुमानों को बताया गया है :

अनुमान लगाने वाले का नाम	जिस वर्ष अनुमान लगाया गया	प्रति व्यक्ति औसतन आय (रुपयों में)
दादा भाई नौरोजी	१८६८	२०
लार्ड कर्जन	१८९७-९८	३०
विलियम डिग्बी	१८९८	१८
फिंडले शिराज	१९११	४९
वाडिया तथा जोशी	१९१३-१४	४४·५
वकील तथा मुरंजन	१९१३-१४	५८·५
शाह तथा खम्बाटा	१९२१	७४
केन्द्रीय बैंकिंग जाँच समिति	१९२८	४२
साइमन कमीशन	१९२९	११६
फिंडले शिराज	१९३१	६३
वी० के० आर० वी० राउ	१९३१-३२	६२
वी० के० आर० वी० राउ	१९४२-४३	१४२
ईस्टर्न इकनामिस्ट	१९४८-४९	१९५
ईस्टर्न इकनामिस्ट	१९४९-५०	२०५
ईस्टर्न इकनामिस्ट	१९५०-५१	२१६
ईस्टर्न इकनामिस्ट	१९५१-५२	२१०
राष्ट्रीय आय समिति	१९४८-४९	२५५

विभिन्न अनुमानों में विभिन्नता का कारण यही है कि अनुमान लगाने वालों ने विभिन्न तरीकों का प्रयोग किया है। अतः निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि कौनसा अनुमान पूर्णतः सही है। फिर भी हमें राष्ट्रीय-आय समिति द्वारा दिये गये अनुमान को ही सबसे अधिक उचित मानना होगा।

हमारे देश के लोग कितने गरीब हैं इसका सही-सही अनुमान तभी हो सकता है जब हम भारत की राष्ट्रीय आय की तुलना अन्य देशों की राष्ट्रीय आय से करें। यह नीचे की तालिका में की गई है :

कुल राष्ट्रीय आय (करोड़ रुपयों में)

देश	राष्ट्रीय आय
संयुक्त राष्ट्र अमरीका	१०, ८४, १५
रूस	२, ६७, ५०
संयुक्त राज्य	१, ६४, ६१
फ्रान्स	६६, २८
भारत	६७, ८६
जर्मनी	७६, ५०
कनाडा	५८, ६८
इटली	५४, ००
जापान	४१, ३०
आस्ट्रेलिया	२६, ८७
डेनमार्क	१४, ५४

ध्यान रखने की बात है कि भारत की जनसंख्या अधिक होने के कारण कुल राष्ट्रीय आय में भारत का स्थान ऊँचा आ जाता है। वास्तविक स्थिति का पता प्रति-व्यक्ति औसतन आय से चलता है। इसमें भारत का स्थान बहुत नीचे आता है जैसा निम्न तालिका से स्पष्ट है :

प्रति-व्यक्ति औसतन आय (रुपयों में)

देश	औसतन आय
संयुक्त राष्ट्र अमरीका	७२६५
कनाडा	४३५०
न्यूजीलैंड	४२८०
संयुक्त राज्य	३८६५
डेनमार्क	३४४५
आस्ट्रेलिया	३३९५
फ्रान्स	२४१०
जर्मनी	१६००
रूस	१५४०
जापान	५००
भारत	२५५

राष्ट्रीय आय का वितरण—प्रति व्यक्ति औसतन आय से भी हमें यह ठीक-ठीक पता नहीं चलता कि अधिकांश भारतीयों की आर्थिक दशा कैसी है। यदि हम यह देखें कि भारत की जो राष्ट्रीय आय है उसका अधिकांश रुपया कितने व्यक्तियों के पास रह जाता है और शेष को कितना मिलता है तो हमें यह पता लग जायगा कि भारतीयों की दशा कैसी है। देश की एक तिहाई राष्ट्रीय आय केवल पाँच प्रतिशत व्यक्तियों के पास है। स्पष्ट है कि धन का वितरण ठीक प्रकार से न होने के कारण अधिकांश व्यक्तियों को भर पेट भोजन ही नहीं मिल पाता। निम्न तालिका से यह पता चल जाता है :

परिवारों की संख्या	औसतन वार्षिक आय (रुपयों में)
६,०००	१ लाख रुपया
१,७०,०००	पाँच हजार
२,५०,०००	दो हजार
३,५०,०००	एक हजार
शेष को	पचास रुपया

स्पष्ट है कि भारत में ६,००० परिवारों को छोड़कर जिनकी आमदनी एक लाख रुपया वार्षिक या उससे अधिक है और एक लाख सत्तर हजार परिवारों को जितनी आमदनी पाँच हजार रुपया वार्षिक है, शेष की आमदनी औसत से कम है। इसका अर्थ यह हुआ कि देश में केवल २—२½ लाख परिवार अच्छी तरह खाते-पीते हैं और शेष की दशा बड़ी खराब है। कुछ की आमदनी तो ५० रु० वार्षिक अर्थात् चार रुपया माहवार है!

जीवन-स्तर नीचा होने के कारण

प्रश्न स्वाभाविक है कि भारतवासियों का जीवन-स्तर इतना नीचा क्यों है? क्यों हमारे देश के लोग इतने गरीब हैं? इसके कई कारण हैं जिन्हें नीचे बताया गया है :

(१) निर्धनता—भारतवासियों के गिरे हुए रहन-सहन के स्तर का एक मुख्य कारण यहाँ के रहने वालों की निर्धनता है। जैसा ऊपर दी गई तालिकाओं में बताया गया है, यहाँ के अधिकांश व्यक्तियों की औसतन वार्षिक आय ५० रुपया वार्षिक है। ऐसी स्थिति में किसी का भी जीवन-स्तर भला क्या ऊँचा हो सकता है?

(२) अशिक्षा—देश में केवल १४ प्रतिशत व्यक्ति ही पढ़े-लिखे हैं और इनमें वे लोग भी आ जाते हैं जो केवल अपना नाम भर लिख सकते हैं। अशिक्षा के कई बुरे परिणाम हुए हैं। एक तो लोगों में प्रगति या उन्नति की भावना नहीं रही है। वे अपनी स्थिति से सन्तुष्ट रहने लगे हैं और इस कारण जीवन-स्तर ऊँचा करने के लिये प्रयास नहीं करते। दूसरे उनको इतना ज्ञान नहीं होता और उनकी बुद्धि इतनी विकसित नहीं होती कि वे यह समझ सकें कि उन्हें विभिन्न वस्तुओं की विभिन्न इकाइयों से कितनी उपयोगिता मिल रही है। परिणाम यह होता है कि वे यह नहीं समझ पाते कि किस वस्तु पर वह कितना रुपया व्यय करें।

(३) कम उत्पादन—हमारे देश में उत्पादन बहुत कम है। देश की अधिक आर्थिक प्रगति नहीं हो पाई है और इस कारण अधिक उत्पादन नहीं हो पाता। अधिक तथा नई-नई मशीनों के प्रयोग के कारण इंगलैंड-अमरीका आदि देशों में एक श्रमिक भारतीय श्रमिक की तुलना में दुगना-तिगुना उत्पादन करता है। अधिक उत्पादन करने के कारण उसे अधिक वेतन भी मिलता है और फलतः उसका जीवन-स्तर भी ऊँचा होता है।

(४) यातायात के साधनों का कम उन्नतशील होना—हमारे देश के यातायात के साधन अधिक उन्नतशील दशा में नहीं हैं। अधिकांश व्यक्ति गाँवों में रहते हैं और वहाँ सड़क या रेलों की सुविधायें नहीं हैं। परिणामतः वे अधिक वस्तुओं का सेवन नहीं कर पाते। जो वस्तुएँ वहाँ मिलती हैं उन्हीं का वे उपभोग करते हैं और परिणामतः उनका जीवन-स्तर ऊँचा नहीं होता।

(५) **धार्मिक तथा सामाजिक परम्पराएँ**—हमारे देश की सदैव से यह धार्मिक परंपरा रही है और सामाजिक प्रथाओं ने भी इसी बात को प्रोत्साहित किया है कि सादा जीवन बिताना ही अच्छा है। आवश्यकताओं को कम से कम रखने वाले व्यक्ति श्रद्धा की दृष्टि से देखे जाते हैं। गाँव-गाँव तक में ये विचार फैले हैं कि जो कुछ भाग्य में लिखा है वही होता है और मनुष्य के प्रयत्न भाग्य को नहीं बदल सकते। इन विचारों के कारण लोग भाग्यवादी हो गये हैं और अपनी उन्नति की ओर लालायित नहीं रहते।

(६) **भौतिक कारण**—हमारे देश में कुछ ऐसे भौतिक कारण भी हैं जिनसे मनुष्य ऊँचा जीवन-स्तर बिताने के लिये लालायित नहीं रहते। देश की आबहवा गर्म होने के कारण मनुष्यों का कम कपड़ों में काम चल जाता है। बिना मकान के वे खुले में भी सोकर काम चला सकते हैं। भोजन भी उन्हें अधिक मात्रा में खाने की आवश्यकता नहीं रहती। इस कारण ऊँचा जीवन-स्तर बिताने की उन्हें आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती।

रहन-सहन का स्तर ऊँचे करने के उपाय

रहन-सहन का स्तर ऊँचा करने के लिये सबसे पहली आवश्यकता इस बात की है कि भारतवासियों की आमदनी बढ़ाई जाय और उनकी निर्धनता दूर की जाय। इसके लिये दो बातें आवश्यक हैं। एक तो देश में उत्पादन बढ़ाया जाय और दूसरे आय की वितरण संबंधी विषमता दूर की जाय। उत्पादन बढ़ाने के लिये आवश्यक है कि श्रमिकों को अधिक कार्यशील बनाया जाय, अधिक तथा नई-नई मशीनों का प्रयोग किया जाय और उद्योगों को ठीक प्रकार से संगठित किया जाय। यह भी आवश्यक है कि देश से गरीबी दूर की जाय और लोगों को शिक्षित बनाया जाय परन्तु इन सबके बाद आवश्यकता इस बात की है कि लोगों को यह बताया जाय कि जीवन-स्तर ऊँचा करना एक अच्छी बात है और इसके लिये वे प्रयत्नशील हों। अन्यथा यदि वह जीवन-स्तर ऊँचा करने के लिये प्रयास ही नहीं करेंगे तो बाकी सब प्रयत्न विफल रहेंगे।

क्या भारतीयों का जीवन-स्तर ऊँचा हो रहा है ?

भारतीयों के रहन-सहन का स्तर ऊँचा हो रहा है या नहीं इस प्रश्न को लेकर किसी समय बड़ा वाद-विवाद होता था। जब तक भारत में अंग्रेज रहे यह प्रश्न बड़ा महत्व रखता था। इसका कारण यह था कि इसी आधार पर अंग्रेजी शासन की प्रशंसा या निन्दा की जाती थी। अंग्रेजी शासन के पक्ष वाले कहते थे कि जब से अंग्रेज आये हैं भारतवासियों का जीवन-स्तर ऊँचा हो गया है। इसके विपरीत अनेक भारतीय अर्थशास्त्री इस मत से सहमत नहीं थे और वे यही कहते थे कि भारतीयों का जीवन-स्तर गिरता जा रहा है।

अंग्रेजी शासन के पक्ष वाले कहते थे कि देश में (१) मोटर, जहाज, रेल, रेडियो, बिजली, पंखा आदि विलासिता की वस्तुओं का सेवन बढ़ता जा रहा है। इन वस्तुओं का बढ़ता हुआ उपभोग इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि देश के व्यक्तियों की आमदनी बढ़ रही है और इसी कारण वे इन वस्तुओं पर अधिक धन व्यय कर पाते हैं। (२) अपने मत के पक्ष में दूसरी बात वे यह कहते थे कि भारत में आयात की जाने वाली वस्तुओं की मात्रा बढ़ती जा रही है। इन आयात होने वाली वस्तुओं में क्रीम, पाउडर, तेल, आदि विलासिता की वस्तुओं की मात्रा बढ़ती जा रही है। इनका सेवन बढ़ना इस बात का प्रमाण है कि देश के रहने वालों का जीवन-स्तर बढ़ रहा है। (३) सिनेमा, नाचघर, घुड़दौड़ आदि स्थानों में जाने वाले व्यक्तियों की संख्या बढ़ती जा रही है। इन स्थानों में पहले से अधिक भीड़ होती है। यह इस बात का प्रमाण है कि व्यक्ति इन बातों पर धन व्यय करने की क्षमता रखते हैं। और इन बातों पर व्यक्ति तभी धन व्यय करते हैं जब वे अपनी आवश्यक आवश्यकताओं को सन्तुष्ट कर लेते हैं।

परन्तु जो इस मत से सहमत नहीं थे उनका कहना था कि भारत के कुछ परिवार ही कार, रेडियो आदि का सेवन करते हैं और क्रीम, पाउडर आदि विलासिता की वस्तुओं का अधिक उपभोग करते हैं। अतः इनका उपभोग देखकर यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि भारतीय पहले से अधिक धनवान हो गये हैं। पहले यही व्यक्ति अन्य विलासिता की वस्तुओं का सेवन करते थे। अब फैशन बदल जाने से तथा पाश्चात्य सभ्यता के अधिक प्रसार के कारण ये मोटर, रेडियो आदि का प्रयोग करने लगे हैं। यदि यह मान भी लिया जाय कि मध्यवर्ग तथा गरीब लोग भी सस्ती विलासिता की वस्तुओं का अधिक सेवन करने लगे हैं तो इससे हम यह कैसे कह सकते हैं कि उनका जीवन-स्तर बढ़ रहा है? संभव है फैशन के प्रभाव में आकर वह अपने रुपये का उचित उपयोग नहीं कर रहे। वास्तव में बात है भी यही। हमारे देश की गरीब जनता के लिये फैशन की सस्ती वस्तुएँ खरीदना आवश्यक हो गया है और इस कारण उनका कुछ रुपया इन सब वस्तुओं पर भी व्यय हो जाता है। इस कारण उनका जीवन-स्तर ऊँचा होने के स्थान पर उल्टा घटा ही है। भारत में विलासिता की वस्तुओं का आयात बढ़ा अवश्य है, परन्तु इससे हम यह परिणाम नहीं निकाल सकते कि भारतीयों का जीवन-स्तर ऊँचा हो रहा है। हाँ, यदि भारतीयों के पारिवारिक बजटों (Family Budgets) का अध्ययन करने के पश्चात् यह कहा जाता कि अन्य आवश्यक वस्तुओं पर उनका व्यय कम नहीं हुआ है परन्तु साथ ही विलासिताओं पर बढ़ गया है, तो यह निष्कर्ष निकाला जा सकता था कि भारतीयों का जीवन-स्तर बढ़ रहा है। परन्तु इस प्रकार

की कोई भी खोज देश में नहीं हुई है। इस कारण हम नहीं कह सकते कि भारतीयों का जीवन-स्तर ऊँचा हुआ है।

द्वितीय युद्ध तथा उसके उपरांत रहन-सहन का स्तर

युद्ध का प्रभाव व्यक्तियों के रहन-सहन के स्तर पर भिन्न-भिन्न पड़ता है। (१) जिन लोगों की आय निश्चित होती है, जैसे नौकरी पेशा वाले व्यक्ति, उनका जीवन-स्तर घट जाता है क्योंकि वस्तुओं के मूल्य कई गुने बढ़ जाते हैं परन्तु उनकी आय नहीं बढ़ती। (२) ठेकेदार, उद्योगपति तथा व्यापारियों के रहन-सहन का स्तर ऊँचा हो जाता है क्योंकि उनकी आमदनी पहले से काफी अधिक बढ़ जाती है क्योंकि उन्हें अधिक मुनाफा होने लगती है। (३) मध्यवर्ग के लोगों की आर्थिक स्थिति प्रायः गिर जाती है, और मजदूरों की आर्थिक स्थिति अपेक्षाकृत सुधर जाती है। (४) युद्ध के समय उत्पादन बढ़ता है, नौकरी भी अधिक मिलने लगती है और बेकारी कम हो जाती है। इस कारण जो व्यक्ति पहले बेकार होते हैं उनका जीवन-स्तर ऊँचा हो जाता है। युद्ध के समय भारत में भी यही हुआ।

युद्ध के बाद भारत में स्थिति सुधरी नहीं है। युद्ध के बाद कुछ समय तक तो उद्योग उसी तेजी से चलते रहे और स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। परन्तु अब दशा यह है कि बेकारी बढ़ती जा रहा है, व्यापार में भी मंदी आ गई है और भारतवासियों की दशा सुधरी नहीं है। निम्न तालिका से यह बात स्पष्ट हो जाती है :

	१९३९-४०	१९४६-४७	१९४७-४८
१. प्रति व्यक्ति अन्न का उपभोग	३८८ पौंड	३५८ पौंड	३५७ पौंड
२. प्रति व्यक्ति कपड़े का उपभोग	१६ गज	१२ गज	११ गज
३. जीवन निर्वाह व्यय के निर्देशांक (Index numbers)	१००	२४२	२५८

परीक्षा प्रश्न

उत्तर प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—भारत एक निर्धन देश है। इस निर्धनता के क्या आर्थिक कारण हैं? इस निर्धनता को दूर करने के कुछ उपाय बताइये। (१९४४)

२—रहन-सहन के स्तर पर संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९४०)

उत्तर प्रदेश इन्टर कामर्स

३—रहन-सहन के स्तर पर एक नोट लिखिये। (१९९२, १९५१)

४—सामाजिक रीति-रिवाजों ने भारतवासियों की आर्थिक अवस्था पर क्या प्रभाव डाला है? कुछ भयानक खराबियों को दूर करने का उपचार बताइये। (१९४८)

५—जलवायु तथा रीति-रिवाजों का रहन-सहन के स्तर पर क्या प्रभाव पड़ता है? सावधानी से स्पष्ट कीजिये। (१९३३)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर कामर्स

६—किसी व्यक्ति के रहन-सहन के स्तर को निर्धारित करने वाली कौन कौन सी बातें है? क्या आप भी 'सादा जीवन उच्च विचार' वाले कथन में विश्वास रखते हैं? क्या ऊँचे जीवन-स्तर का फल सदा अधिक कार्य-क्षमता होती है? कारण सहित उत्तर दीजिये। (१९५३)

७—'रहन-सहन' के क्या अर्थ है? एक भारतीय कृषक या श्रमिक के जीवन-स्तर को ऊँचा करने के लिये आप क्या सुझाव रखते हैं? (१९५२)

८—रहन-सहन के स्तर पर संक्षिप्त नोट लिखिये।

(१९५१, १९४३, १९४०, १९४६)

९—रहन-सहन के स्तर की एक परिभाषा दीजिये। इसका उपभोग तथा उत्पत्ति से क्या संबन्ध है? (१९४६)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

१०—जीवन-स्तर पर एक नोट लिखिये। (१९५०, १९५३)

१२—रहन-सहन के स्तर का मजदूरी पर क्या प्रभाव पड़ता है? क्या आप रहन-सहन का स्तर ऊँचा कर अधिक मजदूरी प्राप्त कर सकते हैं? (१९४६)

सागर इन्टर आर्ट्स

१३—रहन-सहन के स्तर से आप क्या समझते हैं? यह किन किन बातों पर निर्भर है? भारत में जीवन स्तर को ऊँचा करना कहाँ तक महत्वपूर्ण है? (१९५०)

१४—रहन-सहन के स्तर से आप क्या समझते हैं? इस देश के जीवन-स्तर के बारे में आप क्या जानते हैं? (१९४९)

सागर इन्टर कामर्स

१५—जीवन-स्तर पर एक नोट लिखिये। (१९५२-१९५०)

मध्य भारत इन्टर आर्ट्स

१६—जीवन-स्तर पर एक सूक्ष्म नोट लिखिये। (१९५२)

मध्य भारत इन्टर कामर्स

१७—जीवन-स्तर पर एक सूक्ष्म नोट लिखिये। (१९५२)

———

इक्कीसवाँ अध्याय

पारिवारिक बजट

(Family Budgets)

१. प्रारंभिक

(Introductory)

यदि मनुष्य अपने व्यय से अधिकतम सन्तोष पाना चाहता है तो उसके लिये यह आवश्यक है कि वह सम-सीमान्त-उपयोगिता नियम का पालन करे। इस नियम के अनुसार चलने में उसे तभी सुविधा रहेगी जब वह अपने परिवार के आय-व्यय का लेखा ठीक-ठीक प्रकार रखे और इस बात का प्रयास करता रहे कि आवश्यकताएँ तीव्रता के अनुसार सन्तुष्ट हों। पारिवारिक बजट क्या हैं और इनसे क्या लाभ हैं यह इस अध्याय में बताया जायगा।

पारिवारिक बजट का अर्थ

पारिवारिक बजट में किसी एक परिवार के सभी व्यक्तियों की एक निश्चित अवधि में होने वाली आय और व्यय का व्यौरा रहता है। एक परिवार में जितने मनुष्य होते हैं उनकी जितनी भी आय है तथा उनके ऊपर जितना भी व्यय किया जाता है उसका विस्तृत व्यौरा इसमें रहता है। यह व्यौरा एक निश्चित समय के लिये—एक माह, छैः माह या एक वर्ष—के लिये होता है।

पारिवारिक बजट में क्या-क्या रहता है ?

१. सदस्यों की संख्या—पारिवारिक बजट में सबसे पहले परिवार के सदस्यों की संख्या दी जाती है। इसमें यह भी दिखलाया जाता है कि इन सदस्यों में कितने मनुष्य, कितनी स्त्रियाँ तथा कितने बच्चे हैं। घर का जो कर्ता या प्रधान होता है उसका नाम भी लिखा जाता है।

२. सदस्यों की आय—इसके पश्चात् यह लिखा जाता है कि इस परिवार के सभी सदस्यों की सम्मिलित आय कितनी है। परिवार में यदि कई सदस्य कमाते हैं तो उन सबकी मिलाकर जितनी आय होती है उसे लिखा जाता है। हर सदस्य की आय अलग-अलग नहीं लिखी जाती। आय के जितने भी साधन होते हैं और उनसे जो भी आय होती है सबको जोड़कर एक साथ दिखलाया जाता है।

३. बजट की अवधि—इसके बाद यह भी लिखा जाता है कि बजट की अवधि कितनी है। अर्थात् बजट एक माह का है या छैः माह का या एक वर्ष का। जब तक यह पता न चल जाय कि बजट में कितने समय का लेखा-जोखा है तब तक बजट से आप लाभ ही क्या उठा सकते हैं।

४. व्यय के विभिन्न मद—परिवार द्वारा किये गये व्यय को मोटे रूप से कई विभागों में बाँट दिया जाता है। वे विभाग हैं—(१) भोजन, (२) कपड़ा, (३) घर, (४) रोशनी तथा ईंधन, (५) पढ़ाई, (६) स्वास्थ्य तथा सफाई, (७) आराम तथा प्रमोद, (८) अन्य, तथा (९) बचत या ऋण। प्रत्येक विभाग के कई उप-विभाग भी होते हैं और प्रत्येक उप-विभाग के भी कई मद होते हैं। उदाहरण के लिये भोजन के अनाज, तरकारी, फल, तेल आदि उप-विभाग हैं। अनाज के कई मद हैं जैसे गेहूँ, चावल, जौ, बाजरा आदि। इसी प्रकार तरकारी के कई मद हैं जैसे आलू, मटर, गोभी, सेंम, लौकी आदि।

५. उपभोग की मात्रा—विभिन्न मद्दों को दिखलाने के साथ-साथ यह भी दिखलाया जाता है कि विभिन्न वस्तुएँ कितनी मात्रा में व्यय की गई हैं। उदाहरण के लिये गेहूँ, चावल आदि कितने मन व्यय किये गये हैं; आलू आदि कितने सेर उपभोग किये गये हैं; कपड़े कितने गज खरीदे गये हैं आदि।

६. व्यय किया गया धन—इसके साथ ही यह भी दिखलाना पड़ता है कि विभिन्न वस्तुएँ किस दर से खरीदी गई हैं और प्रत्येक पर कितना धन व्यय हुआ है। प्रत्येक मद पर व्यय हुई धन की मात्रा अलग-अलग दिखलानी पड़ती है।

७. प्रति-शत व्यय—सबसे अंत में यह भी दिखलाना पड़ता है कि विभिन्न विभागों पर कितने प्रतिशत धन व्यय हुआ है। प्रायः भोजन पर अधिक प्रतिशत धन व्यय होता है। इसके पश्चात् वस्त्रों का स्थान है। घर, रोशनी, शिक्षा, आमोद-प्रमोद, सफाई आदि इसके बाद आते हैं।

अगले अध्याय में दिये गये पारिवारिक बजट के एक सादे खाके से आप समझ जायँगे कि बजट में क्या-क्या दिखलाया जाता है।

२. डाक्टर एँजिल का नियम

(Dr. Engel's Law)

डाक्टर एँजिल जर्मनी के सेक्सोनी (Saxsoni) प्रान्त के रहने वाले थे। आपने सेक्सोनी प्रान्त के रहने वाले विभिन्न श्रेणी के व्यक्तियों के पारिवारिक बजटों का अध्ययन किया और इसके पश्चात् एक महत्वपूर्ण नियम निकाला जो उन्हीं के नाम से 'एँजिल नियम' कहलाता है।

डाक्टर ऐंजिल ने परिवारों को तीन भागों में बाँटा : (१) मजदूर परिवार जिनकी आमदनी ४५ से ६० लीरा* थी; (२) मध्यम वर्ग का परिवार जिनकी आमदनी ६० से १२० लीरा थी, और (३) सम्पन्न या धनी परिवार जिनकी आमदनी १५० से २०० लीरा थी। इस प्रकार आमदनी के अनुसार उन्होंने परिवारों को मजदूर, मध्यम तथा अमीर परिवारों में बाँटा।

इसके पश्चात् इन्होंने इन वर्ग के लोगों का व्यय आठ विभागों में बाँटा। ये विभाग हैं : (१) भोजन, (२) कपड़ा, (३) घर, (४) रोशनी तथा ईंधन, (५) शिक्षा, (६) कानूनी संरक्षण, (७) स्वास्थ्य, तथा (८) आमोद-प्रमोद। विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों का इन आठ मदों पर होने वाले प्रतिशत व्यय का अध्ययन कर उन्होंने पता लगाया कि ये लोग निम्न प्रकार से धन व्यय करते हैं।

ऐंजिल का नियम†

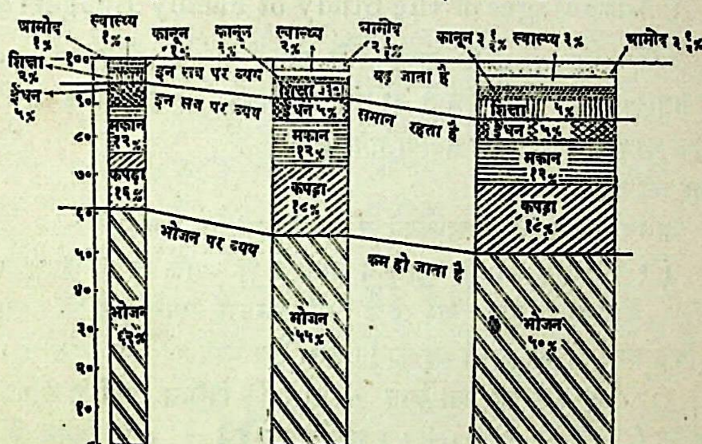
व्यय की मदें	प्रतिशत व्यय					
	मजदूर परिवार		मध्यम परिवार		सम्पन्न परिवार	
१. भोजन	६२	९५%	५५	९०%	५०	८५%
२. कपड़ा	१६		१८		१८	
३. मकान	१२		१२		१२	
४. ईंधन तथा रोशनी	५		५		५	
५. शिक्षा, पूजा आदि	२	५%	३½	१०%	५	१५%
६. कानूनी संरक्षण	१		२		३½	
७. स्वास्थ्य	१		२		३	
८. आमोद-प्रमोद	१		२½		३½	
कुल	१००%		१००%		१००%	

यह सब अध्ययन कर लेने के पश्चात् डाक्टर ऐंजिल ने एक नियम प्रति-

* लीरा (Lira) जर्मनी का सिक्का था जिस प्रकार भारत का सिक्का रुपया (Rupee), और अमरीका का डालर (Dollar) है।

† डाक्टर ऐली (Dr. Richard T. Ely) की पुस्तक, *Outline of Economics* के आधार पर। देखिये उनकी पुस्तक, पृष्ठ संख्या १९८.

पादित किया जो ऐंजिल-नियम कहलाता है। यह नियम यह कहता है कि जैसे-जैसे आय बढ़ती जाती है (१) भोजन पर किया जाने वाला प्रतिशत व्यय कम होता जाता है, (२) वस्त्र, घर और ईंधन तथा रोशनी पर होने वाला प्रतिशत व्यय लगभग समान रहता है, परन्तु (३) शिक्षा, स्वास्थ्य और आमोद-प्रमोद पर होने वाला प्रतिशत व्यय बढ़ जाता है।†



चित्र ४७—डाक्टर ऐंजिल का नियम

ऐंजिल के नियम में सबसे महत्वपूर्ण बात जो ध्यान रखने की है वह यह कि डाक्टर ऐंजिल प्रतिशत व्यय की बात कहते हैं, कुल व्यय की नहीं। आमदनी बढ़ जाने पर बहुत संभव है भोजन पर पहले से अधिक रुपया व्यय हो, परन्तु कुल आय का प्रतिशत भाग वह कम ही होगा। उदाहरण के लिये सौ रुपया माहवार आमदनी वाला भोजन पर ६२ रुपया व्यय करेगा और ५०० रुपया माहवार आमदनी वाला २७५ रुपया। २७५ रुपया ६२ रुपये से कहीं अधिक हैं। परन्तु प्रतिशत व्यय

†Dr. Ernst Engel deduced the following four propositions :—

"First—That greater the income, the smaller the percentage of outlay for subsistence.

Second—That the percentage of out lay for clothing is approximately the same, whatever the income.

Third—That the percentage of outlay for lodging or rent, and for fuel and light, is invariably the same, whatever the income.

Forth—That as the income increases in amount the percentage of outlay for studies becomes greater." *vide*, Dr Richards T. Ely, *Outline of Economics* p. 117

के हिसाब से १०० रुपया माहवार आमदनी वाला भोजन पर ६२ प्रतिशत व्यय कर रहा है और ५०० रुपया आमदनी वाला केवल ५५ प्रतिशत। यह बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिये।

३. पारिवारिक बजटों के अध्ययन से लाभ

(Advantages of the Study of Family Budgets)

पारिवारिक बजटों के अध्ययन से अनेक लाभ हैं। देश की सरकार को, समाज-सुधारकों को, अर्थशास्त्रियों को तथा गृह-स्वामियों आदि को इनके अध्ययन से अनेक लाभ हैं। इन्हें नीचे बताया गया है।

सरकार को लाभ

पारिवारिक बजटों के अध्ययन से सरकार को निम्न लाभ हैं :—

(१) सरकार को यह पता लग जाता है कि व्यक्ति अपनी आय का कितना भाग किन वस्तुओं पर व्यय कर रहे हैं। यदि सरकार समझती है कि विलासिताओं पर अधिक व्यय हो रहा है तो वह कानून द्वारा उस व्यय को रोक सकती है।

(२) सरकार यह पता लगा सकती है कि विभिन्न वर्गों के लोगों की कर-भार-शक्ति (Taxable Capacity) अर्थात् कर देने की शक्ति कितनी है। इसका पता लगाकर सरकार यह निश्चित कर सकती है कि किस वर्ग के लोगों से कितना कर वसूल किया जाय।

(३) इनके द्वारा सरकार यह पता लगा सकती है कि देश में कितनी बचत हो रही है और वह बचत किस प्रकार व्यय की जा रही है। ध्यान रहे कि बचत से ही पूँजी का निर्माण होता है और पूँजी से ही बड़े-बड़े उद्योग चलते हैं।

गृह-स्वामियों को लाभ

(१) पारिवारिक बजटों के अध्ययन से गृह-स्वामी यह पता लगा सकते हैं कि वह अपना धन ठीक से व्यय कर रहे हैं अथवा नहीं। यदि किसी भी अनावश्यक वस्तु पर उन्होंने धन व्यय कर दिया है या किसी वस्तु पर आवश्यकता से अधिक धन व्यय कर दिया है तो वह तुरन्त सुधार कर सकते हैं। बजट न रखने पर तो गृह-स्वामियों को पता ही नहीं रहता कि उन्होंने किस वस्तु पर कितना धन व्यय किया है। परन्तु बजटों का अध्ययन कर वह किसी भी समय अपनी गलती का पता लगा सकते हैं।

(२) इनका अध्ययन कर गृह-स्वामी यह पता लगा सकते हैं कि वह व्यय सम-सीमान्त उपयोगिता नियम के अनुसार कर रहे हैं या नहीं। इस नियम के अनुसार व्यय कर वह अपने धन से अधिकतम सन्तोष प्राप्त कर सकते हैं। यही नहीं, वह यह भी निश्चित कर लेते हैं कि उन्हें कितना धन बचाकर रखना चाहिये

जिससे वह उसे भविष्य की आवश्यकताओं पर व्यय कर सकें और कितना धन वर्तमान आवश्यकताओं पर व्यय करना चाहिये। इस प्रकार वर्तमान तथा भविष्य की आवश्यकताओं पर उचित अनुपात में वह धन व्यय करना सीख जाते हैं।

अर्थशास्त्रियों को लाभ

अर्थशास्त्रियों को बजटों का अध्ययन विशेष महत्व रखता है। इससे उन्हें निम्न लाभ हैं।

(१) परिवारिक बजटों को देखकर उन्हें देश के व्यक्तियों की आर्थिक दशा का उचित ज्ञान हो जाता है। वह पता लगा लेते हैं कि विभिन्न वर्गों के लोग किस-किस वस्तु पर अपनी आय का कितना भाग व्यय कर रहे हैं, किस वस्तु पर वह अधिक व्यय कर रहे हैं और किस पर कम, कौन सा व्यय उचित है और कौन सा अनुचित आदि। इस प्रकार के अध्ययन से उन्हें मनुष्यों के जीवन-स्तर का अच्छा ज्ञान हो जाता है।

(२) अर्थशास्त्री पारिवारिक बजटों के द्वारा विभिन्न देशों की आर्थिक स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन कर सकते हैं। एक देश के मजदूरों के पारिवारिक बजटों की तुलना दूसरे देश के मजदूरों के पारिवारिक बजटों से कर वह यह पता लगा लेते हैं कि किस देश के मजदूरों की आर्थिक दशा अधिक अच्छी है और कितनी अधिक अच्छी है।

(३) इनके अध्ययन द्वारा अर्थशास्त्री यह पता लगा लेते हैं कि विभिन्न वर्गों के मनुष्यों की कर-देय शक्ति कितनी है और उन पर कितना कर लगाया जा सकता है।

(४) पारिवारिक बजटों के अध्ययन द्वारा अर्थशास्त्री यह पता लगा लेते हैं कि व्यक्ति सम-सीमान्त-उपयोगिता नियम के अनुसार अपना धन विवेकपूर्ण ढंग से व्यय कर रहे हैं या नहीं। और यदि नहीं, तो किस प्रकार व्यय में परिवर्तन तथा सुधार कर वह अपने धन से अधिकतम उपयोगिता प्राप्त कर सकते हैं।

(५) पारिवारिक बजटों के अध्ययन से अर्थशास्त्री अनेक नियमों का पता लगा सकते हैं। उदाहरण के लिये डाक्टर ऐंजिल द्वारा पता लगाया गया ऐंजिल-नियम ले लीजिये। इसी प्रकार के अन्य नियम भी इनका अध्ययन कर पता लगाये जा सकते हैं।

(६) इनका अध्ययन कर तथा इनके द्वारा प्राप्त आंकड़ों का संकलन कर अर्थशास्त्री अनेक प्रकार के सूचनांक (Index numbers) तैयार कर लेते हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण रहन-सहन की लागत के सूचनांक (Cost of Living Index Numbers) हैं। इनको देखकर यह पता लग जाता है कि मजदूरों या अन्य

वर्ग के लोगों का जीवन-स्तर ऊँचा हो रहा है या नीचा तथा कीमतों के बढ़ने या घटने का उनके रहन-सहन के स्तर पर क्या प्रभाव पड़ा है।

समाज-सुधारकों को लाभ

समाज-सुधारक पारिवारिक बजटों का अध्ययन कर निम्न लाभ उठा सकते हैं।

(१) वे पता लगा सकते हैं कि देश के कितने व्यक्ति किस वर्ग में आते हैं, विभिन्न वर्गों की कितनी-कितनी आय है, कितने व्यक्ति निर्धन हैं और कितने धनी और कितने ऐसे हैं जो अपना पेट भी नहीं भर पाते। इसका ज्ञान प्राप्त कर वे सामाजिक विषमता को दूर करने का प्रयास कर सकते हैं।

(२) वे पता लगा सकते हैं कि व्यक्ति किन-किन हानिकारक वस्तुओं का सेवन करते हैं, शराब, सिगरेट, सिनेमा आदि पर व्यक्ति कितना धन बर्बाद करते हैं आदि फिर कानून या समाज सुधार द्वारा इस बर्बादी को रोकने का प्रयास कर सकते हैं।

४. भारत में पारिवारिक बजटों का अध्ययन
(Study of Family Budgets in India)

प्रायः सभी देशों में समय-समय पर पारिवारिक बजटों का अध्ययन होता रहा है क्योंकि इनका भारी आर्थिक महत्व है। हमारे देश में भी इनका अध्ययन हुआ है। यों तो सबसे पहले मेजर जैक (Major Jack) ने बंगाल के फरीदकोट जिले के निवासियों के पारिवारिक बजटों का अध्ययन किया, परन्तु प्रथम युद्ध के बाद से इस संबंध में अधिक जाँचें होने लगी हैं। विभिन्न राज्यों के सरकारी श्रम-कार्यालयों (Labour Offices) ने इस संबंध में अच्छा कार्य किया है। श्रम-समितियों (Labour Committees) ने भी इस संबंध में अच्छा काम कर दिखलाया है। पंजाब की आर्थिक अनुसंधान समिति (Board of Economic Enquiry) ने भी किसानों के पारिवारिक बजटों का अध्ययन कर अच्छी सामग्री प्रस्तुत की है। इन सब अध्ययनों के फल-स्वरूप जो निष्कर्ष निकले हैं उन्हें नीचे बताया गया है।

मेजर जैक द्वारा अध्ययन

मेजर जैक (Major Jack) ने बंगाल राज्य के फरीदकोट जिले के किसान परिवारों के पारिवारिक बजटों का अध्ययन कर यह सिद्ध कर दिया कि डाक्टर ऐंजिल का नियम पूर्णतः ठीक है। उनके अध्ययन के फलस्वरूप यह सिद्ध हो गया कि गरीब किसान अपनी आय का ६० प्रतिशत भाग भोजन पर व्यय करते हैं और आराम से रहने वाले किसान अपनी आय का केवल ५८ प्रतिशत भाग ही भोजन पर व्यय करते हैं।

फिंडले शिराज द्वारा अध्ययन

सन् १९२१-२२ में फिंडले शिराज (Findley Shirras) ने, जो

उस समय बम्बई राज्य के श्रम-विभाग में काम कर रहे थे, बम्बई शहर के २४७६ श्रमिक परिवार तथा ६०३ अकेले पुरुषों के पारिवारिक बजटों का संकलन किया। वह इस परिणाम पर पहुँचे कि जिन श्रमिकों की आय २० रु० माहवार से कम होती है वह अपनी आय का ६३ प्रतिशत भाग भोजन पर व्यय करते हैं। परन्तु जब आय बढ़कर ६० रुपये माहवार तक पहुँच जाती है तो भोजन पर व्यय घटकर ५३ प्रतिशत रह जाता है।

पंजाब आर्थिक अनुसंधान समिति द्वारा अध्ययन

पंजाब राज्य की आर्थिक अनुसंधान समिति (Board of Economic Survey) ने पंजाब राज्य के कुछ किसानों के पारिवारिक बजटों का अध्ययन कर इस बात की पुष्टि की कि डाक्टर ऐंजिल का नियम पूर्णतः सही है। इस अनुसंधान समिति के अनुसार रसूलपुर गाँव के सम्पन्न किसान परिवारों ने अपनी आय का केवल ३८ प्रतिशत भाग भोजन पर व्यय किया, जब कि काँगड़ा के दरिद्र किसान परिवारों ने अपनी आय का ६७% भाग भोजन पर व्यय किया।

राजकीय सरकारों द्वारा अध्ययन

सन् १९१९ में प्रथम महासमर के बाद से प्रान्तीय सरकारों का ध्यान श्रमिकों के पारिवारिक बजटों के संकलन की ओर गया। महायुद्ध समाप्त होते ही देश में हड़तालों की बाढ़-सी आ गई और प्रान्तीय सरकारों ने हड़ताल संबंधी झगड़े दूर करने के लिये यह आवश्यक समझा कि श्रमिकों के जीवन निर्वाह निर्देशांक (Cost of Living Index Numbers) तैयार किये जायँ। इस प्रकार के निर्देशांक तैयार करने के लिये पारिवारिक बजटों का संकलन आवश्यक था। इसी कारण पारिवारिक बजटों का संकलन तथा अध्ययन विभिन्न राज्यों में आरंभ हुआ और अब भी हो रहा है। बम्बई राज्य के श्रम-विभाग (Labour Department) ने सन् १९२१-२२ में शोलापुर तथा अहमदाबाद के मिल-मजदूरों के पारिवारिक बजट संकलन करने का कार्य आरंभ किया। १९२३ में बिहार सरकार ने यही काम झरिया और जमशेदपुर में आरंभ किया। मध्य प्रदेश की सरकार ने इस संबंध में कुछ कार्य सन् १९२६ में आरंभ किया। १९३० से उत्तर प्रदेश, मद्रास तथा दिल्ली राज्यों में भी श्रमिकों के पारिवारिक बजट इकट्ठे किये जाने लगे।

द्वितीय महासमर के समय से केन्द्रीय सरकार के श्रम-विभाग ने इस संबंध में सराहनीय कार्य किया है। इस विभाग ने श्रमिकों के पारिवारिक बजट अखिल भारतीय पैमाने पर संकलन करने का आयोजन किया और फलतः २८ विभिन्न केन्द्रों में लगभग १७,००० पारिवारिक बजटों का संकलन किया गया। इसके फलस्वरूप जो निष्कर्ष निकला उसे नीचे बताया गया है। उदाहरण के लिये केवल पाँच महत्वपूर्ण केन्द्रों को ही लिया गया है।

केन्द्रों के नाम	परिवार के सदस्यों की संख्या	परिवार की कुल औसत आय			भोजन पर प्रतिशत व्यय	ईंधन तथा रोशनी पर प्रतिशत व्यय	घर के साधारण सामान पर प्रतिशत व्यय	अन्य व्यय (प्रतिशत)
		रु०	आ०	पा०				
१—कलकत्ता	४·०६	७०	८	४	६५·६६%	७·२८%	०·०६%	१२·५५%
२—जमशेदपुर	४·४२	५२	०	०	६५·७६%	५·४३%	०·३६%	१३·६६%
३—जबलपुर	४·०६	१२	१३	३	७७·७०%	०·४७%	०·६३%	१४·६४%
४—दिल्ली	३·८०	६४	१०	६	५८·२४%	७·२२%	१·७६%	१८·४६%
५—झरिया	३·६२	६६	४	११	६०·९८%	८·८४%	३·२७%	११·४३%

परीक्षा प्रश्न

उत्तर प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—डाक्टर ऐंजिल के उपभोग के नियम को बताइये और समझाइये। भारतीय परिस्थितियों में यह किस सीमा तक लागू होता है? (१९५१)

२—पारिवारिक बजट क्या है? किसी किसान अथवा कारखाने के श्रमजीवी का कल्पित मासिक बजट तैयार कीजिये। (१९५०)

३—"कुटुम्ब के बजट क्या होते हैं?" उनका (अ) गृहस्थ (ब) अर्थशास्त्र के विद्यार्थी और (स) समाज सुधारक क्या उपयोग करते हैं? (१९४९, १९३८, १९२८)

४—पारिवारिक बजट क्या होते हैं? उनको क्यों बनाया जाता है? गृहस्वामी, अर्थशास्त्री और राजनीतिज्ञ के लिये उनकी उपयोगिता की विवेचना कीजिये। (१९४७)

५—पारिवारिक बजट पर संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९४६)

६—पारिवारिक बजट क्या हैं? ये क्यों बनाये जाते हैं? क्या अधिक और कम आय के बजट के व्यय किसी नियम से प्रभावित होते हैं? (१९४४)

उत्तर प्रदेश इन्टर कामर्स

७—"आय जितनी अधिक होती है, आवश्यक आवश्यकताओं की खरीद पर उतना ही कम प्रतिशत व्यय किया जाता है।" इस कथन की पुष्टि कीजिये। (१९४५)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

८—पारिवारिक बजट किसे कहते हैं? इनके बनाने व अध्ययन से (क) परिवार वालों को, (ख) राजनीतिज्ञों, तथा (ग) समाज सुधारकों को क्या लाभ होते हैं? (१९५३)

९—ऐंजिल के उपभोग के नियम पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

(१९५२, १९४८, १९४३)

१०—एक व्यक्ति की जितनी अधिक आमदनी होती है। उतना ही वह अनिवार्यताओं (विशेषकर भोजन) पर कम प्रतिशत व्यय करता है। यह कथन कहाँ तक न्यायोचित है?

(१९५०)

११—पारिवारिक बजट पर संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९५०, १९४०)

१२—उपभोग शब्द की पूर्ण व्याख्या कीजिये। आप अपने स्थान के रहने वाले किसी कृषक की उपभोग करने की विधि में सुधार के सुझाव रखिये। (१९४९)

१३—पारिवारिक बजट किसे कहते हैं? उनके विभिन्न मदों को समझाइये। क्या भारतीय श्रमिकों के पारिवारिक बजट ऐंजिल के नियम के अनुकूल हैं? (१९४२)

१४—ऐंजिल का उपभोग का नियम लिखिये। इसकी पुष्टि करने के लिये ३०० रुपया मासिक पाने वाले एक अध्यापक का और दूसरा ३० रु० महीना पाने वाले एक बढ़ई का पारिवारिक बजट बनाइये। (१९३२)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर कामर्स

१५—पारिवारिक बजट पर एक संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९५२, १९४९)

१६—ऐंजिल का उपभोग का क्या नियम है? इसके निष्कर्ष भारतीय परिस्थितियों पर कहाँ तक लागू होते हैं? (१९५०)

१७—पारिवारिक बजट का क्या अर्थ है ? इसमें व्यय के क्या-क्या मुख्य भेद हैं ? आपने जिस किसी बजट का अध्ययन किया हो उसकी व्याख्या कीजिये। (१९४९, १९४५)

सागर इन्टर आर्ट्स

१८—ऐंजिल के नियम पर संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९५२, १९४८)

१९—पारिवारिक बजट क्या है ? एक बजट बनाइए और ऐंजिल के नियम को स्पष्ट कीजिए। (१९५०)

२०—आप पारिवारिक बजट से क्या समझते हैं ? ऐंजिल के उपभोग के नियम को पूर्णतया समझाइये। (१९४९)

सागर इन्टर कामर्स

२१—पारिवारिक बजट पर संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९५१, १९५०)

मध्य भारत इन्टर आर्ट्स

२२—पारिवारिक बजट पर सूक्ष्म टिप्पणी लिखिये। (१९५२)

बाइसवाँ अध्याय

पारिवारिक बजटों का संकलन

(Collection of Family Budgets)

पिछले अध्याय में आपको पारिवारिक बजटों के महत्व के बारे में बताया जा चुका है। उससे आप समझ गये होंगे कि इनका संकलन कितना महत्व रखता है। परन्तु पारिवारिक बजटों का संकलन आसान नहीं है। विशेषतः भारत जैसे देश में जहाँ अधिकांश जनता अशिक्षित है और जो किसी भी प्रकार की सूचना देना उचित नहीं समझती, इनका संकलन और भी कठिन हो जाता है। पारिवारिक बजटों का किस प्रकार संकलन करना चाहिये और किन-किन बातों को विशेष रूप से ध्यान में रखना चाहिये इन्हें इस अध्याय में बताया जायगा।

पारिवारिक बजट संबंधी बातों को जानने का तरीका

पारिवारिक बजट संबंधी सूचनाओं को एकत्रित करने के लिये सबसे आवश्यक बात यह है कि जिनसे आप सूचनाएँ प्राप्त करना चाहते हैं उनका आप पर पूरी तरह विश्वास हो। जब तक वह आप पर विश्वास नहीं करेंगे वह आपको किसी भी प्रकार की सूचना देने को तैयार नहीं होंगे। उनका विश्वासपात्र बनने के लिये सबसे आवश्यक बात यह है कि जिस वर्ग के व्यक्तियों के बजट आप संकलन करना चाहते हैं उनके पास आप उनके बराबर के बन कर जाइये। उनकी वेश-भूषा पहनकर आप उनकी बोल-चाल की भाषा में उनसे बात करिये। उनसे भाई-चारे और बराबरी का व्यवहार करिये। उनको यह शंका भी न होने पाये कि शहर के लड़के शरारत करने या ऊधम मचाने आये हैं। ऐसा संदेह होते ही वे आपको किसी भी प्रकार की खबर नहीं देंगे। साथ ही उन्हें यह भी विश्वास हो जाना चाहिये कि जो खबर आप माँग रहे हैं उसको बता देने से उनकी किसी भी प्रकार की हानि नहीं होगी। इतना हो जाने पर ही आप सूचनाएँ प्राप्त करने पावेंगे अन्यथा नहीं। और विश्वासपात्र बनने में काफी समय लग जायगा।

जो बात आप पूछना चाहते हैं उसके लिये आप शीघ्रता न कीजिये। धीरे-धीरे करके और थोड़ा-थोड़ा करके कई बार में आप उस खबर को पाने का प्रयास कीजिये। शीघ्रता करने से या विशेष कौतूहल दिखलाने से इस बात का भय है कि कहीं आपको सही-सही बात का पता न चलने पाये। जब आप किसी से उसकी सही आय जानना चाहते हैं तो आप विशेष सावधानी और धीरज से काम

लीजिये क्योंकि कोई भी व्यक्ति अपनी सही आय बताने को सुगमता से तैयार नहीं होगा। इस प्रकार की खबर संकलन करते समय जहाँ तक हो सके प्रश्न सीधा न पूछकर, परोक्ष ढंग से पूछिये। जैसे किसान से यह पूछने की अपेक्षा कि रबी की फसल से आपको कितनी आमदनी हुई, यह पूछिये कि रबी की फसल के समय खेत में कितनी उपज हुई। फिर बाजार भाव का पता लगा कर आप उसकी आमदनी का पता लगा सकते हैं।

जब आपको किसी प्रश्न के उत्तर से सन्तोष न हो और आपको यह सन्देह हो कि आपको सही उत्तर नहीं मिला है तो कुछ समय बाद उसी व्यक्ति से वही प्रश्न दुबारा करिये। संभव है उसके मुख से सही बात निकल आये। यदि संभव हो तो किसी दूसरे व्यक्ति से वही समाचार जानने का प्रयास करिये। यदि दोनों के उत्तर एक हों तो समझ जाइये कि उत्तर ठीक है।

जब आप किसी प्रश्न का उत्तर पा जायँ तो उसे उसी समय कागज पर कभी न लिखिये। उस समय उसे याद कर लीजिये और जब आप अकेले हों उसे कागज पर उतार लीजिये। व्यक्ति के सामने ही कागज पर प्रश्न लिखने से उसके मन में संदेह उठ सकता है और फिर वह आगे कोई भी उत्तर नहीं देगा।

सूक्ष्म में आपकी सफलता की कुंजी इसी में है कि आप व्यक्तियों के विश्वासपात्र बन जायँ और वह व्यक्ति समझ जायँ कि सूचना देने के कारण उनको किसी प्रकार से हानि नहीं पहुँचेगी। तभी आप सही-सही सूचना प्राप्त कर सकते हैं, अन्यथा नहीं।

१. पारिवारिक बजट के संकलन के समय सावधानियाँ

(Care during Collection of Family Budgets)

पारिवारिक बजट संकलन करते समय निम्न बातों को ध्यान में रखना अत्यन्त आवश्यक है :

१. जाँच का उद्देश्य—सबसे पहले हमें इस बात का उचित ज्ञान होना चाहिये कि पारिवारिक बजटों का संकलन किस उद्देश्य से किया जा रहा है। अर्थात् जो सामग्री एकत्रित की जा रही है उसका उपयोग किस कार्य के लिये किया जायगा। क्या पारिवारिक बजट इसलिये एकत्रित किये जा रहे हैं कि हमें लोगों के रहन-सहन के स्तर का पता लग जाय, या इसलिये कि हमें यह पता लग जाय कि वह किस मद (Item) पर कितना धन व्यय करते हैं। दूसरी अवस्था में हमें बड़ी सावधानी से हर एक वस्तु पर किये गये व्यय की राशि का ध्यान रखना होगा जबकि पहली अवस्था में पाँच-छैः मोटे-मोटे मदों पर होने वाले व्यय से हम काम चला सकते हैं।

२. जाँच की इकाई—दूसरी बात हमें यह ध्यान में रखनी चाहिये कि हम किस वर्ग के व्यक्तियों के पारिवारिक बजटों का संकलन कर रहे हैं। यदि हम श्रमिकों के पारिवारिक बजटों का अध्ययन कर रहे हैं तो हमें यह स्पष्ट रूप से जान लेना चाहिये कि 'श्रमिक' से हमारा क्या आशय है। किस स्थान पर काम करने वाले को हम श्रमिक कहेंगे और किसको नहीं। जो व्यक्ति कुछ महीने मिलों में काम करते हैं और शेष महीने खेती करते हैं उन्हें श्रमिक कहा जाय या नहीं। जो लोग क्लर्की का काम करते हैं उन्हें श्रमिक कहा जाय या नहीं ? इन सब बातों का सही-सही ज्ञान हो जाने पर ही आप उचित व्यक्तियों के पारिवारिक बजटों का अध्ययन कर सकेंगे।

(३) प्रश्नों की सूची—यह आवश्यक है कि जो कुछ सूचना हमें एकत्रित करनी है उससे संबंधित प्रश्न पारिवारिक बजटों का संकलन आरंभ करने के पहले ही हम तैयार कर लें। प्रश्न सीधे सादे होने चाहिये और ऐसे होने चाहिये कि उनका उत्तर सूक्ष्म में दिया जा सके। प्रश्न व्यक्तिगत न हों और न ऐसे हों कि उनका उत्तर देने में व्यक्ति को संकोच हो। प्रश्न जितने कम हों उतना ही अच्छा है।

पारिवारिक बजट का सादा खाका
(Outlines of a Family Budget)

नीचे पारिवारिक बजट का एक सादा खाका (Blank form) दिया गया है। उसे देखकर आप यह समझ जायँगे कि एक पारिवारिक बजट में क्या-क्या सूचनायें एकत्रित करनी होती हैं। पिछले अध्याय में यह बताया जा चुका है कि पारिवारिक बजट में क्या-क्या सूचना रहती है। उसको ध्यान में रखने पर इस सादा खाके की सभी बातें स्पष्ट हो जायँगी।

एक सादा खाका

घर के कर्ता का नाम..................................

पता..................................

पेशा..................................

परिवार के सदस्यों की कुल संख्या..........................

आदमी......उम्र......

स्त्रियाँ ......उम्र......

बालक ......उम्र......

परिवार के सदस्यों की कुल आय......रु०...आ०...पा०...

बजट का समय..........................

वस्तुयें	वस्तु की मात्रा	वस्तु की दर	कुल व्यय	विशेष विवरण
१. भोजन				
(अ) अनाज				
गेहूँ				
चना				
बाजरा				
ज्वार				
मकई				
(ब) दाल				
मूँग				
उर्द				
अरहर				
मसूड़				
(स) चावल				
चावल महीन				
चावल मोटा				
(द) तरकारी				
आलू				
अरबी				
गोभी				
टमाटर				
लौकी				
काशीफल				
बैंगन आदि				
(क) फल				
अमरूद				
सेव				
संतरा				
केला				
नाशपाती				
अंगूर				
(ख) मसाला				
नमक				
मिर्च				
धनिया				
जीरा				
हल्दी				
गरम मसाला				
लौंग				

वस्तुयें	वस्तुओं की मात्रा	वस्तुओं की दर	कुल व्यय	विशेष विवरण
(ग) अन्य				
घी				
तेल				
गुड़				
चीनी				
चाय				
दूध				
अन्य/पदार्थ				
योग				
२. कपड़े				
कमीज				
कुर्ता				
नेकर				
पाजामा				
धोती				
कोट				
पतलून				
लंगोट				
लहँगा				
जनानी धोती				
ब्लाउज				
चादर				
तौलिया				
बनिआयन				
फ्राक				
जूते				
चप्पल				
सेंडिल				
योग				
३. घर तथा फर्नीचर				
किराया				
मरम्मत				
सफेदी				
चारपाई				
मेज				
कुर्सी				
अन्य				
योग				

वस्तुएँ	वस्तुओं की मात्रा	वस्तुओं की दर	कुल व्यय	विशेष विवरण
४. रोशनी तथा ईंधन				
बल्ब				
बिजली				
मिट्टी का तेल				
लालटेन				
बत्ती				
लकड़ी				
कोयला				
दियासलाई				
योग				
५. पढ़ाई				
फीस				
पुस्तकें				
कापियाँ				
पेन्सिल				
कलम				
स्लेट				
बत्ती				
अखबार				
योग				
६. स्वास्थ्य तथा सफाई				
भंगी				
झाड़ू				
फिनायल				
दवा				
डाक्टर				
योग				

वस्तुएँ	वस्तुओं की मात्रा	वस्तुओं की दर	कुल व्यय	विशेष विवरण
७. आराम तथा प्रमोद				
सिनेमा				
खेल				
रेल किराया				
रिक्शा भाड़ा				
तांगा भाड़ा				
मोटर की मरम्मत				
पेट्रोल				
योग				
८. अन्य				
धोबी				
नाई				
नौकर				
चिट्ठी-पत्री				
मुकद्दमा				
पूजा				
चन्दा				
पान-सुपाड़ी				
सिगरेट				
अन्य				
योग				
६. बचत तथा विनियोग				
बैंक में जमा				
साहूकार के पास जमा				
सूद				
दूकान में लगाया				
योग				

प्रधान मदों पर व्यय की गई रकम का विवरण

व्यय के मद	व्यय की गई रकम	कुल व्यय का प्रतिशत
१. भोजन		
२. कपड़ा		
३. घर तथा फर्नीचर		
४. रोशनी तथा ईंधन		
५. पढ़ाई		
६. स्वास्थ्य तथा सफाई		
७. आराम तथा प्रमोद		
८. अन्य		
९. बचत तथा विनियोग		
कुल योग		१००%

पारिवारिक बजट के सादे खाके से आप समझ गये होंगे कि पारिवारिक बजट बनाते समय क्या-क्या सूचना प्राप्त करनी होती है। नीचे एक मिल मजदूर, एक कृषक और एक अध्यापक के परिवारिक बजटों को दिया गया है। इन्हें देखकर आप भी इसी प्रकार से अन्य बजट तैयार कर सकते हैं।

एक मिल मजदूर का पारिवारिक बजट

घर के कर्ता का नाम.........राम खिलावन

पता............... पुरानी मंडी, फीरोजाबाद (जिला आगरा)

पेशा...............चूड़ी के कारखाने में मजदूरी

परिवार के सदस्यों की कुल संख्या......५

आदमी...१...उम्र...४० वर्ष

स्त्री...... १ उम्र...३५ वर्ष

बालक... ३ उम्र...१०, ६ तथा ३ वर्ष

परिवार की आय......५५ रु० माहवार

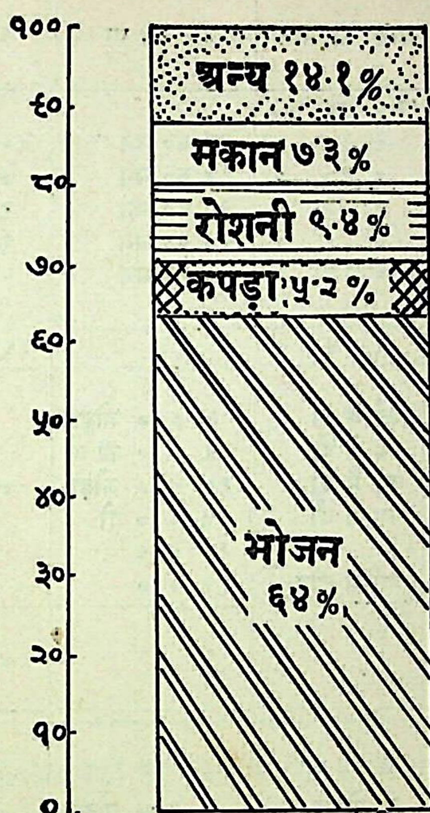
बजट का समय ....एक माह—१ जनवरी १९५३ से ३१ जनवरी १९५३ तक

वस्तुएँ	वस्तुओं की मात्रा	वस्तुओं की दर	कुल व्यय	विशेष विवरण
१. भोजन	म० से० छं०		रु० आ० पा०	
(अ) अनाज				
गेहूँ का आटा	० २३ ४	१ रु० का २½ सेर	६ ५ ०	कन्ट्रोल दर
बाजरा	० ३१ ०	१ रु० का २¼ सेर	१४ ० ०	पर राशन
जवा (जौ)	० १५ ०	२ रु० का ३½ सेर	४ ८ ०	खरीदा
चावल	० ७ १२	१ रु० का २ सेर	३ १४ ०	
(ब) दाल व तरकारी				
दाल उर्द	० २ ०	१ रु० की २ सेर	१ ० ०	
आलू	० १२ ०	१ रु० के ६ सेर	२ ० ०	
(स) मसाला				
नमक	० १ ०	१ रु० का ८ सेर	० २ ०	
मिर्च			० ३ ०	
अन्य मसाला			० ३ ०	
योग	२—११—१२		३५—३—०	
२. वस्त्र		रु० आ० पा०		
कमीज	वर्ष में एक	२ ० ० की एक		वर्ष भर का
कुरता	वर्ष में एक	२ ० ० का एक	२—१४—०	व्यय ३४ रु०
धोती जनानी	वर्ष में दो	१५ ० ० की दो		८ आ० था।
पाजामा	वर्ष में दो	४ ० ० में दो		इस कारण
जम्फर	वर्ष में दो	१ ८ ० में एक		एक माह का
बच्चों के कपड़े	वर्ष भर के लिये	१० ० ० में		२ १४ ० हुआ
योग			२—१४—०	
३. रोशनी तथा ईंधन				
लकड़ी	२ मन ०	२ ४ ० मन	४ ८ ०	
मिट्टी का तेल	३ बोतल	० ३ ० बोतल	० ६ ०	
दियासलाई	२ डिब्बी	० १ ० डिब्बी	० २ ०	
योग			५—३—०	

वस्तु	वस्तु की मात्रा	वस्तु की दर	व्यय	विशेष विवरण
४. मकान				
किराया		४ रु० माहवार	४ ० ०	कोठरी का किराया जिसमें रहता है
योग			४—०—०	
५. अन्य				
बीड़ी		२ आना प्रतिदिन	३ १२ ०	
दवा			२ ० ०	प्रति माह का औसत व्यय वर्ष भर के आधार पर निकाला गया है
पढ़ाई			२ ० ०	वर्ष भर के व्यय के हिसाब से प्रति माह का व्यय
योग			७—१२—०	

मुख्य मदों पर व्यय हुई रकम

वस्तुओं के मद	व्यय की गई रकम	प्रतिशत व्यय
१. भोजन	३५ ३ ०	६४·०%
२. वस्त्र	२ १४ ०	५·२%
३. रोशनी तथा ईंधन	५ ३ ०	६ ४%
४. मकान	४ ० ०	७·३%
५. अन्य	७ १२ ०	१४·१%
कुल व्यय	५५—०—०	१००%



चित्र ५०—मजदूर का पारिवारिक बजट

एक किसान का पारिवारिक बजट

नाम .... झगड़ू

पता .... मंझनपुर तहसील, डाकखाना तारागाँव, जिला इलाहाबाद

परिवार के सदस्य—४

पुरुष ...... १ ...... उम्र ५० वर्ष
स्त्री ...... १ ...... उम्र ४५ वर्ष
बालक ... २ ...... उम्र १५ तथा १० वर्ष

परिवार की आय ...... ६०० रु० वार्षिक। एक माह की ५० रुपया

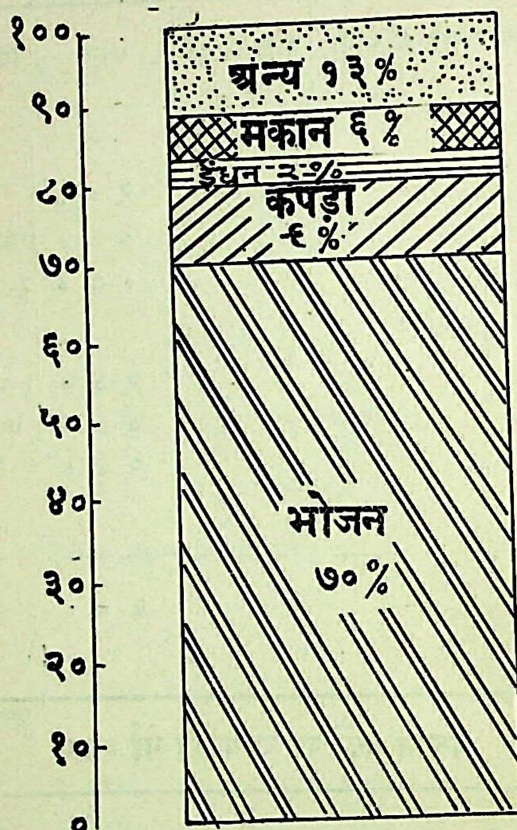
पारिवारिक बजट का समय ...... एक माह (१ अक्टूबर, १९५२ से ३१ अक्टूबर १९५२ तक)

वस्तु का नाम	वस्तु की मात्रा	वस्तु की दर	व्यय	विशेष विवरण
१. भोजन	म० सं० छं०			
गेहूँ	१ १० ०	१६ रु० मन	२० ० ०	
चना	० २० ०	१५ रु० मन	७ ८ ०	
चावल	० ५ ०	२० रु० मन	२ ८ ०	
दाल उर्द	० ५ ०	२० रु० मन	२ ८ ०	
दाल अरहर	० ५ ०	२० रु० मन	२ ८ ०	
योग	२ ५ ०		३५ ० ०	
२. वस्त्र				
धोती मर्दानी	वर्ष में दो	६ ० ० जोड़ा		वर्ष में कुल ५४ रु० व्यय होता है। एक माह का व्यय ४-८ रु० हुआ
मिरजई	वर्ष में दो	५ ० ० की दो		
धोती जनानी	वर्ष में दो	१० ० ० जोड़ा	४ ८ ०	
जनानी कमीज	वर्ष में दो	५ ० ० दो		
बच्चों के कपड़े		१० ० ०		
जूते	वर्ष में तीन	१५ ० ०		
योग			४-८-०	
३. ईंधन तथा रोशनी				कुछ व्यय नहीं होता। जलाने के लिये बीन ली जाती है।
लकड़ी				
मिट्टी का तेल	३ बोतल	० ३ ० बोतल	० ६ ०	
दियासलाई	२ डिब्बी	० १ ० डिब्बी	० २ ०	
लालटेन	१ लालटेन	२ ४ ० की एक	० ३ ०	
अन्य			० २ ०	एक वर्ष में २-४-० व्यय होता है।
योग			१ ० ०	
४. मकान				
छप्पर की मरम्मत			१ ० ०	वर्ष भर का व्यय १२ रु०
मकान की मरम्मत तथा लिपाई			२ ० ०	वर्ष भर का व्यय २४ रु०
योग			३ ० ०	

वस्तुओं का नाम	वस्तु की मात्रा	वस्तु की दर	व्यय	विशेष-विवरण
५. अन्य				
फीस			२ ० ०	
किताबें			० ८ ०	एक माह का औसत
अन्य			० ८ ०	एक माह का औसत
दवा			२ ० ०	१ माह का औसत
कथा			० ४ ०	वर्ष भर में ३ रु०
तम्बाकू			२ ४ ०	प्रतिमाह
योग			६ ८ ०	

प्रधान मदों पर व्यय की गई रकम

व्यय की मद	व्यय की रकम	प्रतिशत व्यय
१. भोजन	३५ ० ०	७०%
२. वस्त्र	४ ८ ०	६%
३. ईंधन तथा रोशनी	१ ० ०	२%
४. मकान	३ ० ०	६%
५. अन्य	६ ८ ०	१३%
कुल योग	५० ० ०	१००%



चित्र ५१—झगड़ू किसान का पारिवारिक बजट

एक अध्यापक का पारिवारिक बजट

नाम··· ·····हीरासिंह, एम० काम०

पता··· ······सूटरगंज, कानपुर

परिवार के सदस्य······४

पुरुष···१···उम्र ३० वर्ष

स्त्री···१···उम्र २६ वर्ष

बालक···२···उम्र ६ तथा ३ वर्ष

परिवार की आय······३०० रु० माहवार

पारिवारिक बजट का समय·········१ माह (१ नवम्बर, १९५३ से ३० नवम्बर १९५३ तक)

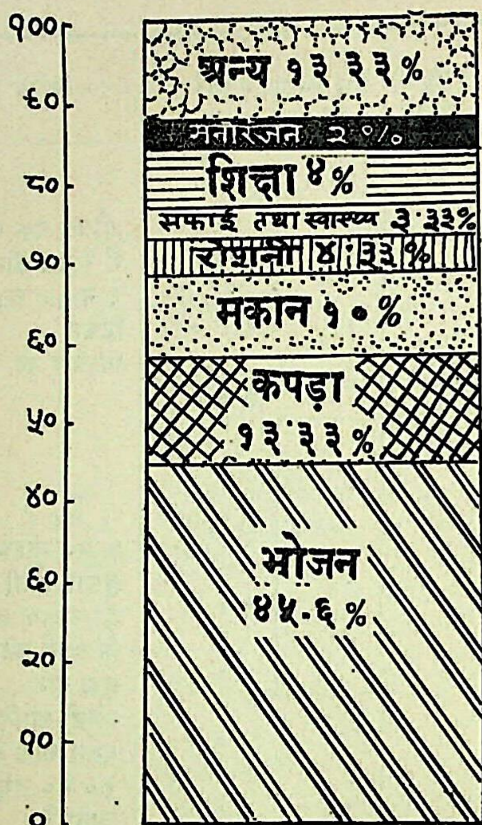
वस्तु का नाम	वस्तु की मात्रा	वस्तु की दर	व्यय	विशेष विवरण
१. भोजन	म० से० छ०			
(अ) अनाज				
गेहूँ	० ३० ०	२० रु० मन	१५ ० ०	
चावल	० २० ०	२८ रु० मन	१४ ० ०	
चना	० ५ ०	२½ सेर फी रु०	२ ० ०	
(ब) दाल				
दाल मूँग	० २¼ ०	१½ सेर फी रु०	१ ८ ०	
दाल अरहर	० २¼ ०	१½ सेर फी रु०	१ ८ ०	
दाल उर्द	० १ १०	१ सेर १० छ० फी रु०	१ ० ०	
(स) तरकारी तथा फल				
आलू	० २० ०	८ आने सेर	१० ० ०	
गोभी			६ ० ०	
मटर			२ ० ०	
हरा साग			२ ० ०	
फल			१५ ० ०	८ आने प्रतिदिन के हिसाब से
(द) अन्य				
दूध	१ १२½ ०	१ सेर १२ छ० प्रति रु०	३० ० ०	१ रु० प्रति दिन
चीनी	० ५ ०	१ सेर १ रु० का	५ ० ०	
घी	० ५ ०	१ सेर ५ रु० का	२५ ० ०	
तेल	० २ ०	१ सेर २ रु० का	४ ० ०	
मसाले			२ ० ०	औसत व्यय
चाय			१ ० ०	दो पैकेट ¼ पौंड के
योग			१३७ ० ०	
२. वस्त्र			५ ० ०	वर्ष भर का जो
कमीज			८ ० ०	व्यय पड़ता है उसके
पतलून			१० ० ०	हिसाब से एक
धोती जनानी			१० ० ०	महीने का औसत
बच्चों के कपड़े			१ ० ०	निकाला गया है।
बनिआयन			१ ० ०	
तौलिया			३ ० ०	
जूते तथा चप्पल			१ ८ ०	
			० ८ ०	
ब्लाउज				
अन्य				
योग			४० ०	

वस्तु का नाम	वस्तु की मात्रा	वस्तु की दर	व्यय			विशेष विवरण
३. मकान किराया			३०	०	०	३० रु० माहवार किराये का मकान है
योग			३०	०	०	
४. रोशनी तथा ईंधन						
बिजली			५	०	०	५ रु० माहवार बिजली का खर्चा है
कोयला	३ मन	२ रु० ४ आ० मन	६	१२	०	
मिट्टी का तेल	३ बोतल	३ आना फी बोतल	०	९	०	
दियासलाई	३ डिब्बी	१ आ० फी डिब्बी	०	३	०	
अन्य			०	८	०	
योग			१३	०	०	
५. सफाई तथा स्वास्थ्य						
भंगी			३	०	०	३ रु० माहवार दिया जाता है
फिनयल			२	०	०	औसत व्यय २ रु० माहवार पड़ता है
डाक्टर तथा दवा			५	०	०	औसत व्यय ५ रु० माहवार है
योग			१०	०	०	
६. शिक्षा						
फीस			६	१२	०	दोनों बालकों की स्कूल की फीस
किताब तथा स्टेशनरी			३	८	०	दोनों बालकों के लिये औसत व्यय
अखबार			३	१२	०	दो आना प्रति-दिन के हिसाब से
किताबें			१०	०	०	मास्टर साहब अपने लिये किताबें खरीदते हैं
योग			२४	०	०	

वस्तु का नाम	वस्तु की मात्रा	वस्तु की दर	व्यय	विशेष विवरण
७. आमोद तथा मनोरंजन				
सिनेमा			३ १५ ०	औसत एक बार माहवार में। कुल तीन टिकट हुए। १ रु० ५ आने का एक टिकट
रिक्शा आदि सवारी पर			२ १ ०	माहवार का औसत व्यय
योग			६ ० ०	
८. अन्य				
धोबी			५ ० ०	५ रु० माहवार की औसत धुलाई होती है
नाई			१ ० ०	दो बालक तथा एक पुरुष के बाल कटाई महीने में एक बार
दाढ़ी बनवाई			१ ० ०	ब्लेडों आदि पर व्यय
कहारिन			७ ० ०	बर्तन साफ करती है
नौकर			१० ० ०	१० रु० तथा खाना दिया जाता है
दवा आदि			६ ० ०	औसत माहवारी व्यय
चिट्ठी-पत्री			२ ० ०	औसत व्यय
पान-सुपाड़ी			३ ० ०	
अन्य			२ ० ०	
योग			४० ० ०	

प्रमुख मदों पर व्यय हुई रकम

व्यय के मद	व्यय हुई रकम	कुल व्यय का प्रतिशत
१. भोजन	१३७	४५.६७%
२. वस्त्र	४०	१३.३३%
३. मकान	३०	१०%
४. रोशनी तथा ईंधन	१३	४.३३%
५. सफाई तथा स्वास्थ्य	१०	३.३३%
६. शिक्षा	२४	८%
७. आमोद तथा मनोरंजन	६	२%
८. अन्य	४०	१३ ३३%
कुल योग	३००	१००%



चित्र नं० ५२—अध्यापक का पारिवारिक बजट

परीक्षा प्रश्न

उत्तर प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—किसी किसान या कारखाने के मजदूर का एक काल्पनिक मासिक पारिवारिक बजट तैयार कीजिये। (१९५०)

२—कानपुर के एक मोची का, जिसकी वार्षिक आय ३०० रु० है एक पारिवारिक बजट बनाइये। स्पष्ट रूप से बताइये कि यदि उसकी वार्षिक आय बढ़कर ३००० रु० हो जाय तो इसका बजट के विभिन्न मदों पर क्या प्रभाव पड़ेगा? (१९४४)

३—पारिवारिक बजट क्या होते हैं? एक क्लर्क का, जिसकी आय ४० रु० माहवार है एक काल्पनिक बजट, जिसमें व्यय के प्रमुख मद दिये हों, बनाइये। इसे चित्र द्वारा भी चित्रित कीजिये। (१९४२, १९३१)

४—एक कारीगर का व्यय आप किन सामान्य शीर्षकों में विभक्त करेंगे। एक पारिवारिक बजट बनाइये और उसे एक चित्र द्वारा स्पष्ट कीजिए। (१९३९, १९३४)

५—किसी गाँव के एक किसान की वार्षिक आय ६०० रु० है। शहर के एक क्लर्क को भी उतना ही वेतन मिलता है। उनके व्यय की तुलना निम्नलिखित मदों के अन्तर्गत कीजिये :—

(i) खाद्य तथा पेय पदार्थ, (ii) ईंधन तथा प्रकाश (iii) शिक्षा सफाई तथा स्वास्थ्य (iv) व्यक्तिगत सेवायें (v) मुकदमे बाजी व सामाजिक उत्सव (vi) फर्नीचर (vii) मनोरंजन (viii) यात्रा और पत्र-व्यवहार (ix) बचत। ग्राफ पेपर पर चित्र भी बनाइये। (१९३६)

६—एक मजदूर का व्यय इस प्रकार है :—

	रु०	आ०	पा०			रु०	आ०	पा०	
आटा	०	३	०	प्रतिदिन	मेहतर	०	४	०	प्रति मास
पान	०	०	३	प्रतिदिन	सिनेमा	०	६	०	प्रति मास
ईंधन	२	०	०	प्रति मास	चारपाई	१	२	०	प्रति वर्ष
तेल व घी	२	०	०	प्रति मास	मिट्टी का तेल	०	२	७	प्रति सप्ताह
चावल	०	०	७	प्रति दिन	धोती	२	०	०	प्रति वर्ष
जूते का जोड़ा	१	८	०	प्रति वर्ष	नमक	०	२	०	प्रति सप्ताह
तम्बाकू	०	३	०	प्रति सप्ताह	अन्य कपड़े	३	१२	०	प्रति वर्ष
घर का किराया	३	०	०	प्रति मास	देशी मद्य	२	०	०	प्रति मास
मिठाई	०	८	०	प्रति मास	धार्मिक व सामाजिक उत्सव	६	०	०	प्रति वर्ष
तरकारी	०	०	६	प्रतिदिन	ऋण का भुगतान	२	०	०	प्रति मास
म्यूनिसपल टैक्स	१	१४	०	छः माही					

उक्त सब मदों पर किये गये व्यय की गणना मासिक आधार पर कीजिये और सामान्य शीर्षकों के अन्तर्गत इन मदों को विभाजित कीजिए। अपना वर्गीकरण चित्र द्वारा स्पष्ट कीजिये। (१९३२)

राजपूताना इन्टर आर्ट्स

७—पारिवारिक बजट क्या होते हैं? एक भारतीय कारीगर का एक काल्पनिक बजट (एक माह का) तैयार कीजिए। (१९३२)

८—ऐंजिल का उपभोग का नियम बताइये और उसकी पुष्टि करने के लिए दो पारिवारिक बजट बनाइये—एक ३०० रुपया माहवार पाने वाले अध्यापक का और दूसरा ३० रुपया मासिक पाने वाले बढ़ई का। (१९३२)

सागर इन्टर आर्ट्स

९—पारिवारिक बजट क्या है? एक बजट बनाइये और ऐंजिल के नियम को बताइये। (१९५०)

सागर इन्टर कामर्स

१०—डाक्टर ऐंजिल के उपभोग के नियम को बताइये और इसे दो पारिवारिक बजट बनाकर समझाइये—एक सरकारी अफसर का जिसकी आय ३०० रु० माहवार है और दूसरे एक चपरासी का जिसे ३० रु० माहवार मिलते हैं। (१९४९)

मध्य भारत इन्टर आर्ट्स

११—पारिवारिक बजट क्या है? एक किसान और एक अध्यापक का पारिवारिक बजट बनाइये। व्यय के विभिन्न मदों के हिसाब से इन दोनों की तुलना कीजिए तथा भेद बताइये। (१९५२)

तेईसवाँ अध्याय
आय और व्यय
(Income and Expenditure)

आवश्यकता तथा सन्तोष

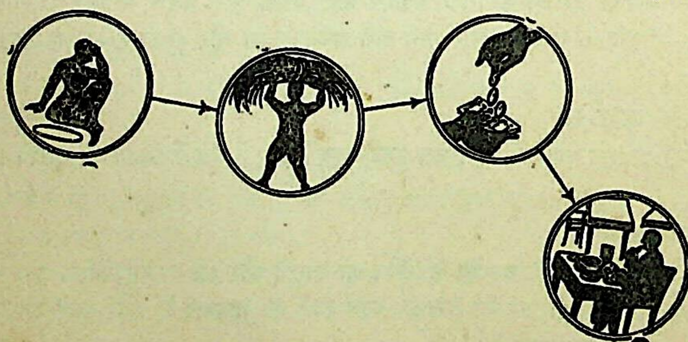
यह तो आप जानते ही हैं कि सभ्यता के आरम्भ के दिनों में मनुष्य की आवश्यकताएँ बहुत सीमित थीं। भोजन की या पेट भरने की आवश्यकता ही उसकी प्रधान आवश्यकता थी और उसे वह सुगमता से सन्तुष्ट कर लेता था। भूख लगने पर वह स्वयं फल तोड़कर या जानवरों को मारकर अपनी भूख मिटा लेता था। आवश्यकता, प्रयत्न तथा सन्तुष्टि का संबंध सीधा था। आवश्यकता हुई, उसके लिये प्रयत्न किया और सन्तुष्टि प्राप्त कर ली।



आवश्यकता प्रयत्न सन्तोष

चित्र ५३—आवश्यकताओं का सीधा संबंध

परन्तु अब यह स्थिति बदल गई है। आवश्यकता और सन्तोष का संबंध सीधा न रहकर अप्रत्यक्ष हो गया है। प्रत्येक लेन-देन अब द्रव्य में होने लगा है।



आवश्यकता प्रयत्न आय सन्तोष

चित्र ५४—आवश्यकताओं का परोक्ष संबंध

इस कारण प्रयत्न करके पहले द्रव्य प्राप्त किया जाता है और फिर उसे व्यय करके ही सन्तोष प्राप्त किया जाता है।

१. आय

(Income)

आजकल के समय में द्रव्य (Money) का बड़ा महत्व है क्योंकि सभी लेन-देन द्रव्य में ही होते हैं। मनुष्य जो प्रयत्न करता है उसका भुगतान द्रव्य में ही होता है और जब मनुष्य किसी वस्तु को पाना चाहता है तो उसके बदले में उसे द्रव्य ही देना पड़ता है।

आय का अर्थ

अपने प्रयत्नों के बदले में मनुष्य को द्रव्य में जो भुगतान मिलता है उसे आय कहते हैं। एक मजदूर दिन भर गारा-चूना ढोने के बाद शाम को जो द्रव्य पाता है वह उसकी आय है। एक क्लर्क महीने भर कुर्सी पर बैठकर जो लिखा-पढ़ी करता है उसके बदले में महीने के अंत में जो उसे भुगतान मिलता है, वह उसकी आय है। एक व्यापारी को वर्ष में चिट्ठा (Balance-sheet) तैयार करने के बाद जो मुनाफा मिलता है वह उसकी आय है।

आय दैनिक, साप्ताहिक, मासिक या वार्षिक हो सकती है। प्रायः कम मजदूरी पाने वालों को (जैसे मजदूर या श्रमिक) मजदूरी प्रतिदिन दी जाती है। मिल मजदूरों को सप्ताह में एक बार पैसे मिल जाते हैं। बँधी नौकरी करने वालों को प्रति महीना वेतन मिलता है। व्यापारी साल के बाद पता लगाते हैं कि उनकी कितनी आय हुई है।

२. व्यय

(Spending)

व्यय के प्रकार

व्यय चार प्रकार का होता है। नीचे इनके बारे में बताया गया है।

(१) **अनिवार्य व्यय**—मनुष्य अपनी आय को कई प्रकार से व्यय करता है। कुछ तो ऐसे व्यय हैं जो उसे अनिवार्य रूप से करने पड़ते हैं। जब तक वह समाज में रहता है उसे वह व्यय करने ही पड़ेंगे। उदाहरण के लिये सरकार द्वारा वसूल किये जाने वाले करों को ले लीजिये। सरकार जो कर लगाती है, हमें वह अनिवार्यतः देने ही पड़ते हैं भले ही हम उन्हें देना न चाहें। संसार में शायद ही कोई ऐसा आदमी हो जो अपनी स्वतंत्र इच्छा से सरकार को कर देता हो। परन्तु जब तक हम समाज में रहते हैं, हमें कर देना ही होगा अन्यथा सरकार का खर्चा नहीं चल पावेगा। इस प्रकार जो हमें व्यय करना होता है उसे अनिवार्य व्यय कहते हैं।

(२) **तात्कालिक उपभोग व्यय**—जो अनिवार्य व्यय हैं उन्हें करने के बाद मनुष्य अपनी विभिन्न आवश्यकताओं के उपभोग पर धन व्यय करता है। वैसे तो मनुष्य की आवश्यकताओं का कभी अंत नहीं होता, फिर भी मनुष्य को यह सोचना पड़ता है कि कौन सी आवश्यकताएँ अत्यन्त तीव्र हैं और उन्हीं पर वह पहले धन व्यय करता है। जो आवश्यकताएँ अधिक तीव्र नहीं होतीं, उनका उपभोग वह नहीं करता। इस प्रकार के व्यय को तात्कालिक उपभोग-व्यय (Immediate Consumption Expenditure) कहते हैं।

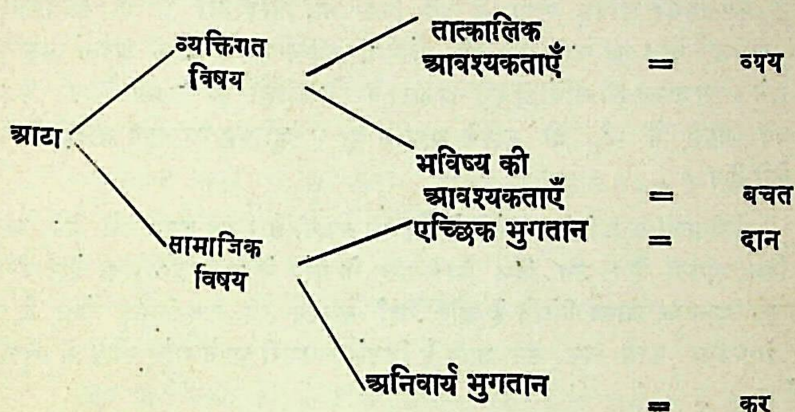
३. **ऐच्छिक व्यय**—मनुष्य का तीसरे प्रकार का व्यय ऐच्छिक व्यय (Voluntary Expenditure) है। इस व्यय की विशेषता यह है कि मनुष्य इसे अपनी स्वेच्छा से करता है। दूसरी इनकी विशेषता यह है कि यह सामाजिक हैं, व्यक्तिगत नहीं। अर्थात् यह समाज की भलाई की दृष्टि से किये जाते हैं, अपने स्वयं की आर्थिक भलाई के लिये नहीं। इस प्रकार के व्यय में दान, पुण्य, कथा आदि पर किया गया व्यय आता है। जो आप दान देते हैं वह व्यय पूर्णतः आपकी इच्छा पर निर्भर है। दूसरे वह सामाजिक भलाई के लिये है।

४. **बचत**—अपनी आय को विभिन्न मदों पर व्यय करते समय मनुष्य को यह सोचना पड़ता है कि वह अपनी आय का कितना भाग बचाये और कितना व्यय करदे। मनुष्य जो धन बचाता है उसे वह भविष्य में उत्पन्न होने वाली आवश्यकताओं के ऊपर व्यय करता है। भविष्य अनिश्चित है। वह नहीं जानता कि आज उसके पास जो धन है वह कल रहेगा या नहीं। उसकी जितनी आमदनी आज है वह कल रहेगी या नहीं। अतः सम-सीमान्त उपयोगिता नियम के अनुसार वह वर्तमान तथा भविष्य पर होने वाले व्ययों की पारस्परिक उपयोगिताएँ देखकर यह पता लगाता है कि वह कितना धन अभी व्यय करे और कितना बचाये।

इस प्रकार मनुष्य के व्यय को चार भागों में बाँटा जा सकता है (१) अनिवार्य व्यय, (२) ऐच्छिक व्यय, (३) तात्कालिक उपभोग व्यय, तथा (४) बचत। इनमें से प्रथम दो सामाजिक व्यय हैं और बाद के दो व्यक्तिगत व्यय। मनुष्य अपनी आय किस प्रकार व्यय करता है यह निम्न चित्र से स्पष्ट हो जाता है।*

---

*प्रो० पेन्सन की पुस्तक *Economics of Everyday Life* vol II, पृष्ठ ४८ पर दिये वर्गीकरण के आधार पर चित्र बनाया गया है।





चित्र ५५—व्यय के प्रकार

व्यय के स्थान

आजकल के समय में व्यय का अर्थ होता है सामान खरीदना। सामान चाहे आप फेरीवालों से खरीद सकते हैं और चाहे दुकानदारों से। चाहे आप बाजार में

जाकर सामान खरीदें और चाहे मेला, पैंठ या प्रदर्शनियों में। सामान बेचने तथा खरीदने के आज-कल अनेक स्थान हैं। प्राचीन समय में जब बड़े-बड़े शहर नहीं थे और क्रय-विक्रय अधिक मात्रा में नहीं होता था, फेरीवालों से ही अधिकतर काम चलता था। यह फेरी वाले गाँव-गाँव या मुहल्ले-मुहल्ले जाकर अपना सामान बेचते थे। आजकल भी गाँवों में इस प्रकार के फेरीवालों का चलन काफी है। बड़े-बड़े शहरों में भी, जो मुहल्ले शहर से दूर हैं वहाँ यह फेरीवाले अच्छी बिक्री कर लेते हैं।

फेरीवालों के अतिरिक्त गाँवों में पैंठ भी लगती है। यह सप्ताह में एक या दो दिन लगती है। उस दिन आस-पास के गाँव के खरीददार तथा क्रेता एक निश्चित स्थान पर आकर मिलते हैं और वहाँ सामान का क्रय-विक्रय होता है। पैंठ अधिकतर शाम तक उठ जाती है जिससे व्यापारी अपने गाँव समय से पहुँच जायँ।

पैंठ के अतिरिक्त गाँवों में समय-समय पर मेले भी लगते हैं। मेले वर्ष में प्रायः एक बार लगते हैं और कई दिनों के लिये होते हैं। कुल मेले एक सप्ताह तक लगते हैं और कुछ एक माह तक। यह इस बात पर निर्भर रहता है कि मेले का कितना नाम है और कितने-कितने दूर के व्यापारी वहाँ आते हैं।

शहरों में तथा नगरों में बाजार होते हैं जहाँ दुकानें स्थाई रूप से बनी हुई होती हैं। इन दुकानों पर दुकानदार अपना सामान रखकर बेचते हैं। आजकल बिक्री विज्ञापन पर निर्भर रहती है। इस कारण सभी दुकानदार अपनी दुकानों के सामने बड़े-बड़े साइनबोर्ड लगाते हैं और अपनी दुकान को अनेक प्रकार से सजाते हैं। आजकल यह प्रथा चल निकली है कि एक प्रकार की दुकानें एक स्थान पर हों, उदाहरण के लिये एक स्थान पर सभी सब्जी वालों की दुकानें हों, एक स्थान पर सब कपड़े वालों की और दूसरे स्थान पर सब सोना-चाँदी वालों की। इससे लाभ यह होता है कि क्रेताओं को सामान खरीदने में बड़ी सुविधा रहती है।

शहरों में समय-समय पर प्रदर्शनियाँ भी होती रहती हैं। प्रदर्शनियों में अन्य शहरों से बड़ी-बड़ी तथा प्रसिद्ध दुकानें आती हैं। अतएव इन बाहर की दुकानों से क्रेताओं को सामान खरीदने का अवसर मिल जाता है। यह प्रदर्शनियाँ प्रायः दो-तीन सप्ताह तक लगती हैं।

३. व्यय के सिद्धान्त

(Principles of Spending)

प्रत्येक मनुष्य यह चाहता है कि वह अपने व्यय से अधिकतम सन्तोष प्राप्त

करें। यही उसका उद्देश्य होता है और अर्थशास्त्र यही हम सबको सिखाता भी है। व्यय से कितना सन्तोष हमें मिलेगा यह दो बातों पर निर्भर रहता है।*

(१) व्यय का ढंग

(२) वस्तुओं तथा सेवाओं के मूल्य

इनके बारे में नीचे विस्तार से बताया जायगा।

१) व्यय करने का ढंग

धन व्यय करने पर अधिकतम सन्तोष तभी मिल सकता है जब व्यय करने का ढंग उचित हो। हममें से बहुत से व्यक्ति यह नहीं जानते कि धन को किस प्रकार व्यय किया जाना चाहिये। वास्तव में धन का व्यय करना धन के संचय करने से भी अधिक कठिन है। रुपयों को व्यय करते समय निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिये :—

(क) आवश्यकताओं का उचित ज्ञान—सबसे पहली बात यह है कि मनुष्य को इसका सही-सही ज्ञान होना चाहिये कि उसे कौन-कौन सी वस्तुओं की आवश्यकता है। मनुष्य का मन बड़ा चलायमान है और उसकी आवश्यकताओं का अन्त नहीं होता। अतएव उससे ठीक से समझना चाहिये कि उसे कौनसी वस्तु की अधिक तीव्र आवश्यकता है और किस वस्तु की आवश्यकता नहीं है। तभी वह अपने धन को उचित ढंग से व्यय कर सकेगा।

(ख) माल की किस्म की पहचान—साथ ही मनुष्य को इतनी समझ होनी चाहिये कि वह वस्तुओं की किस्म ठीक से समझ ले। आज कल विभिन्न उत्पादकों की बनी वस्तुएँ बाजार में बिकती हैं। उन सभी की किस्म में थोड़ा-बहुत अंतर होता है। उदाहरण के लिये आप दांत का मंजन ले लीजिये। बाजार में अनेक प्रकार के मंजन तथा पेस्ट बिकते हैं। सभी यह कहते हैं कि उनका मंजन सबसे अच्छा है और दाँत की सभी बीमारियों को इससे लाभ होता है। यदि मनुष्य यह नहीं जानता कि इन मंजनों में कौनसा सबसे अच्छा है तो वह अपने धन से अधिकतम लाभ नहीं उठा सकेगा।

(ग) वस्तुओं के मूल्यों का ज्ञान—यह बड़ा आवश्यक है कि मनुष्य को विभिन्न वस्तुओं के मूल्य का पता हो। ऐसी सभी वस्तुओं का जिनका एक के स्थान पर दूसरी का उपभोग किया जा सकता है, मूल्य जानना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि तभी आप समान उपयोगिता प्रदान करने वाली वरन् सस्ती वस्तु

---

*"The amount of satisfaction which is actually obtained through the spending of income depends for the most part on two things : (1) the method of spending, and (2) the prices of goods and services." Penson, *Economics, of Every-day Life* Vol. II, p. 39

का उपभोग कर सकते हैं। उदाहरण के लिये आप वनस्पति घी ले लीजिये। बाजार में अनेक कम्पनियों का बना वनस्पति घी बिकता है। यदि आप उनकी किस्म देखकर यह पता लगा लेते हैं कि अमुक दो कम्पनियों के बने घी एक ही किस्म के हैं, परन्तु एक का मूल्य दूसरे से सस्ता है तो आपको चाहिये कि आप सस्ता घी खरीदें क्योंकि तभी आप अपने व्यय से अधिकतम सन्तोष प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु ऐसा करने में आप तभी सफल होंगे जब आपको सभी कम्पनियों के बने घी के दाम मालूम हों।

(घ) वस्तु मिलने के उचित स्थानों का ज्ञान—आवश्यकता इस बात की भी है कि मनुष्य को यह मालूम हो कि कौन सी वस्तु किस बाजार में सस्ती मिलेगी। जिन बाजारों में थोक भाव पर वस्तुएँ बिकती हैं वहाँ भाव सबसे सस्ते होते हैं। परन्तु वहाँ वस्तुएँ अधिक मात्रा में खरीदनी पड़ती हैं। अतएव यदि किसी को अधिक मात्रा में वस्तु खरीदनी हो तो उसे थोक बाजार से खरीदनी चाहिये। इसी प्रकार यदि किसी को पुरानी वस्तु खरीदनी हो तो कबाड़ियों के यहाँ से खरीदनी चाहिये। प्रत्येक बाजार में भी सस्ते तथा महँगे भावों पर बेचने वाले दुकानदार होते हैं। अतः उन्हीं दुकानदारों के पास जाना चाहिये जो सस्ते दामों पर सामान बेचे।

(ङ) मोल-भाव करने की समझ—इसके साथ आवश्यकता इस बात की भी है कि मनुष्य को मोल-तोल करने की समझ हो। बाजार में सभी प्रकार के दुकानदार होते हैं। कुछ ऐसे भी होते हैं जो ग्राहक को सीधा समझ कर उससे अधिक दाम वसूल कर लेते हैं। कुछ ऐसे दुकानदार अवश्य होते हैं जिनसे मोल-तोल करने की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि वह सभी से एक ही दाम लेते हैं, परन्तु बाकी दुकानदारों के यहाँ मोल-भाव करना पड़ता है। प्रायः बड़ी-बड़ी दुकानों पर मोल-भाव नहीं होता, लेकिन छोटे दुकानदार तथा फेरीवाले मोल-भाव करने पर प्रायः दाम कम कर देते हैं।*

*Prof. T. H. Penson ने इस संबन्ध में अपने विचार निम्न भाषा में रखे हैं

"कुछ मनुष्य...दूसरों की अपेक्षा अपने धन से बहुत अधिक उपयोगिता प्राप्त करते हैं...... इसके कई कारण हैं, परन्तु उनमें पाँच प्रमुख हैं...(१) वे जानते हैं कि उन्हें किस वस्तु की आवश्यकता है,......(२) वस्तुओं की किस्म की उन्हें अच्छी पहचान है...(३) वे जानते हैं कि किस स्थान पर सस्ती तथा अच्छी वस्तुएँ मिलेंगी......(४) वे मोल-तोल करने में बड़े चतुर होते हैं......(५) वे आवश्यकताओं की तीव्रता की उचित रूप से तुलना करने की क्षमता रखते हैं।"

["Some people...get so much more for their money than others.... Many reasons might be put forward, but there are five principal ones... (1) they know exactly what they want......(2)they are good judges of quality......(3) they know where things are to be had best and cheapest... (4) they may be what is called "good hands at a bargain"......and(5) they are able to make sound comparison between the claims of various competing wants." *Vide*, his *Economics of Every-day Life* vol. II, pp. 39-40.]

(च) वस्तुओं की आवश्यकता की तीव्रता का ज्ञान—वस्तुओं के ज्ञान के साथ-साथ आवश्यकता इस बात की भी है कि मनुष्यों को वस्तुओं की आवश्यकता की तीव्रता का ज्ञान हो। कुछ वस्तुओं की आवश्यकता अधिक तीव्र होती है और कुछ की कम। जिन वस्तुओं की आवश्यकता अधिक तीव्र होती है उनसे अधिक उपयोगिता मिलती है और जिन वस्तुओं की आवश्यकता कम तीव्र होती है उनसे कम उपयोगिता मिलती है। अतएव आदमी को यह चाहिये कि अपनी विभिन्न आवश्यकताओं को उनकी तीव्रता के अनुसार उपभोग करे। ऐसा करने से उससे अधिकतम सन्तोष प्राप्त होगा।

(२) वस्तुओं तथा सेवाओं का मूल्य

अपने व्यय से अधिकतम सन्तोष प्राप्त करने के लिये मनुष्य को यह भी देखना चाहिये कि विभिन्न वस्तुओं का मूल्य क्या है और कितना है। अर्थात् उस समय वस्तुओं का सामान्य मूल्य या सामान्य मूल्य-स्तर (general price-level) ऊँचा है या नीचा। यदि सामान्य मूल्य स्तर नीचा है तो वस्तुओं के मूल्य साधारणतः कम होंगे और व्यक्ति उतने ही रुपये से अधिक वस्तुओं का उपभोग कर सकेगा। इसके विपरीत मूल्य स्तर ऊँचा होने पर अधिक वस्तुओं का उपभोग नहीं होने पावेगा। उदाहरण के लिये युद्ध के समय की भारत की दशा ले लीजिये। युद्ध के कारण वस्तुओं के मूल्य काफी बढ़ गये थे। अतएव परिणाम यह हुआ था कि जिन मनुष्यों की आय निश्चित थी उनको वस्तुओं का उपभोग कम करना पड़ा था। यदि पहले वे दो सेर दूध रोज लेते थे तो उसे घटाकर उन्हें आधा सेर करना पड़ा। इसी प्रकार अनेक वस्तुओं का उपभोग कम करने के लिये उन्हें वाध्य होना पड़ा। इस प्रकार वस्तुओं के सामान्य मूल्य-स्तर द्वारा यह निर्धारित होता है कि मनुष्य कितनी वस्तुओं का सेवन कर सकेंगे।

४· व्यय का सामाजिक पहलू

(Social aspect of Spending)

सरकारी हस्तक्षेप की आवश्यकता

प्रायः यह समझा जाता है कि व्यय एक व्यक्तिगत समस्या है। मनुष्य का उद्देश्य अधिकतम सन्तोष पाना है और इसी उद्देश्य से उसे धन व्यय करना चाहिये। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि मनुष्य को शराब पीने से अधिक सन्तोष मिलता है तो उसे शराब पीनी चाहिये और यदि उसे दूसरों को तकलीफ पहुँचाने में अधिक उपयोगिता मिलती है तो उसे ऐसा ही करना चाहिये। परन्तु यह विचार ठीक नहीं है। उन्नीसवीं शताब्दी तक, जब संसार में व्यक्तिवाद (Individualism) का जोर था, इस मत के कई अनुयायी थे। वे सोचते

थे कि व्यक्ति को अपने ऊपर छोड़ देने से उसका उचित विकास होता है। परन्तु अब (बीसवीं शताब्दी में) यह मत ठीक नहीं माना जाता। अब यह माना जाने लगा है कि व्यक्ति के विकास के लिये सरकारी हस्तक्षेप आवश्यक है। जिस प्रकार एक बालक की उन्नति के लिये यह आवश्यक है कि उसके माता-पिता उसकी उचित रूप से देख-भाल करें, ठीक इसी प्रकार यह भी आवश्यक है कि समाज या सरकार व्यक्तियों को यह बतावे कि उन्हें किन किन वस्तुओं पर व्यय करना चाहिये और किन पर व्यय नहीं करना चाहिये। सभी लोगों में इतनी समझ नहीं होती कि वे समझ जायँ कि उनके हित में क्या उचित है और क्या अनुचित। उन्हें इसका ज्ञान कराने की आवश्यकता है और सरकार ही उन्हें यह सब बता सकती है।

सरकार का कार्य अधिकतम सामाजिक समृद्धि है—इस बात को दूसरे ढंग से भी सोचिये। आजकल सरकार का यह कर्त्तव्य माना जाता है कि देश के व्यक्तियों की आर्थिक दशा अच्छी हो, उन्हें खाने-पीने की सभी वस्तुएँ प्राप्त हों और देश में बेकारी न हो। जब यह सब कार्य सरकार को दे दिये गये हैं तो सरकार के ऊपर इसकी जिम्मेदारी भी छोड़ देनी चाहिये कि वह व्यक्तियों को बताये कि उन्हें किस काम को किस प्रकार करना चाहिये।

मनुष्य एक दूसरे की नकल करते हैं—पुनः, मनुष्य जिस प्रकार धन व्यय करते हैं उसका प्रभाव अन्य लोगों पर भी पड़ता है। आपने देखा होगा कि पहले रईस तथा पढ़े-लिखे लोग बड़े बाल रखते थे और उन्हें काढ़ते थे। उनको देखकर आजकल सभी लोग बड़े बाल रखने लगे हैं और टोपियों का रिवाज उठ गया है। घड़ी का प्रयोग इतना व्यापक हो जाने का कारण भी यही है। इसी प्रकार आप देखते हैं कि गाँव के लोग शहर के लोगों की नकल करते हैं, और निम्न तथा मध्यवर्ग के लोग उच्च वर्ग के लोगों की। अंग्रेज बहुत शराब पीते थे। उनकी देखा-देखी उनके नौकरों की भी आदत शराब पीने की पड़ गई और आजकल भी वेही लोग अधिक मात्रा में शराब पीते हैं। क्योंकि एक को देखकर अन्य लोग भी गन्दी आदतें सीखते हैं, इस कारण यह आवश्यक है कि सरकार हस्तक्षेप करे और लोगों को बुरी बातों पर रुपया व्यय करने से रोके।

उत्पादक उसी वस्तु को तैयार करते हैं जिसकी अधिक माँग हो—उत्पादक यही देखते हैं कि किस वस्तु की अच्छी बिक्री होगी। जो वस्तु अधिक बिकती है उसी को वह तैयार करते हैं और यह ठीक भी है क्योंकि उनका उद्देश्य अधिक माल बेचकर अधिक लाभ कमाना है। यदि देश में किसी बुरी वस्तु का उपभोग अधिक चल निकला है तो उत्पादक उसी को अधिक मात्रा में उत्पन्न करेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि देश के उत्पत्ति के साधनों का विभिन्न व्यवसायों पर

उचित रूप से वितरण नहीं होगा। उत्पत्ति के साधन आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन न करके अनावश्यक या हानिकारक वस्तुओं के उत्पादन में लगे रहेंगे। इससे देश की उचित आर्थिक प्रगति नहीं हो सकेगी और देश की हानि होगी।

श्रमिकों की कार्यशीलता उनके उपभोग पर निर्भर रहती है—श्रमिक जिस प्रकार का उपभोग करेंगे (अर्थात् जो खावेंगे या पीवेंगे) उसी के अनुसार उनका स्वास्थ्य भी बनेगा। हानिकारक वस्तुओं के सेवन से उनका स्वास्थ्य खराब हो जायगा और वह अच्छे श्रमिक नहीं रहेंगे। यदि उनकी उत्पादन-शक्ति कम हो गई तो उनकी तो हानि तो होगी ही क्योंकि उनका वेतन कम हो जायगा, परन्तु देश की भी भारी हानि होगी क्योंकि देश की आर्थिक प्रगति में रुकावट आ जायगी।

इन्हीं सब कारणों से व्यय में सरकारी हस्तक्षेप आजकल उचित समझा जाने लगा है।

सरकारी हस्तक्षेप के तरीके

सरकार के पास किसी वस्तु का उपभोग कम करने या बढ़ाने के कई तरीके हैं। उनको नीचे बताया गया है।

(१) **अति-व्यय रोक नियम**—सरकार नियम बनाकर—जिन्हें अति-व्यय रोक नियम (Sumptuary Law) कहते हैं—किन्हीं वस्तुओं के उपभोग पर रोक लगा सकती है। उदाहरण के लिये इंगलैंड में चार्ल्स द्वितीय के समय यह नियम पास किया गया कि सभी मृतकों को ऊनी शाल में दफनाया (गाड़ा) जाय। इसका कारण यह था कि उस समय तक मृतकों को रेशम में गाड़ा जाता था। यह रेशम भारत से आयात किया जाता था। इंगलैंड की सरकार चाहती थी कि रेशम का आयात कम हो जाय और ऊन का उत्पादन बढ़ जाय। भारत में अनेक राज्यीय सरकारों ने मद्य निषेध संबन्धी जो नियम पास किये हैं वह इसी प्रकार के हैं।

(२) **मूल्य-नियंत्रण**—वस्तुओं के मूल्य नियंत्रित करके भी सरकार व्यय निर्धारित कर सकती है। जो वस्तु सस्ती होगी उसी को मनुष्य खरीदेंगे और जो महँगी होगी उसका उपभोग कम कर देंगे। अतएव जिन वस्तुओं का सरकार उपभोग कम करना चाहती है उनके मूल्य बढ़ा देती है और जिनका उपभोग बढ़ाना चाहती है उनके मूल्य सस्ते निर्धारित करती है।

(३) **कर लगाकर**—सरकार कर लगाकर वस्तुओं का उपभोग घटा-बढ़ा सकती है। सरकार जिस वस्तु का उपभोग कम करना चाहती है उस पर अधिक कर लगा देती है। वह वस्तु बाजार में महँगी पड़ने लगती है और लोग उसे नहीं

खरीदते। कर वस्तु के उत्पादन के समय लग सकता है या उसकी विक्री के समय या दोनों समय।

हस्तक्षेप कितना होना चाहिए ?

प्रश्न यह उठता है कि सरकारी हस्तक्षेप कितना होना चाहिये। एक ओर तो हमारे सामने सोवियत रूस का उदाहरण है जहाँ सरकारी हस्तक्षेप सबसे अधिक है। वहाँ उपभोग की लगभग सभी वस्तुएँ सरकार द्वारा निश्चित होती हैं। दूसरी ओर हमारे सामने अमरीका का उदाहरण है जहाँ हस्तक्षेप कम-से-कम है। अब हमें यह निश्चय करना है कि इन दोनों में से कौन सी दशा अच्छी है। उत्तर में यह कहा जा सकता कि किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिये कम से कम हस्तक्षेप सबसे अच्छा होता है। उदाहरण के लिये मान लीजिये आप चाहते हैं कि देश के व्यक्ति शराब न पियें। इस कार्य की पूर्ति के लिये जितना कम से कम हस्तक्षेप आवश्यक हो उतना ही हस्तक्षेप करना चाहिये। यदि सरकार के कहने से ही व्यक्ति मान जायँ तो किसी भी प्रकार का नियम बनाने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु यदि ऐसा नहीं है तो उचित नियम बनाना बुरा नहीं है।

परीक्षा प्रश्न

उत्तर-प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—बचत तथा व्यय पर संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९४८, १९४६)

२—व्यय का बचत से क्या संबंध है ? क्या इस बात का समाज पर कोई प्रभाव पड़ता है कि एक व्यक्ति अपनी आमदनी को किस प्रकार खर्च करता है ? क्या समाज को किसी मनुष्य की व्यय करने की स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप करना चाहिए ? (१९३७, १९३४)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

३—बचत, व्यय और धन के गाड़ने में क्या भेद है ? बिना किसी सोच विचार के व्यय करने का क्या सामाजिक प्रभाव है ? पूर्णतया स्पष्ट कीजिये। (१९५१)

४—आय पर एक संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९४८)

पटना इन्टर आर्ट्स

५—प्रतिस्थापन के नियम को (I) आमदनी के खर्च करने में (II) और काम के प्रबन्ध करने में समझाइये। (१९४५)

पटना इन्टर कामर्स

६—आय पर एक संक्षिप्त नोट लिखो। (१९४९)

———

चौबीसवाँ अध्याय

बचत

(Savings)

१· प्रारम्भिक

(Introductory)

पिछले अध्याय में आपको बताया जा चुका है कि मनुष्य आय का कुछ भाग अपनी तात्कालिक आवश्यकताओं पर व्यय करता है और कुछ भाग भविष्य की आवश्यकताओं के लिये रख लेता है। भविष्य के लिये रखे गये भाग को 'बचत' कहा जाता है।

बचत की परिभाषा

'बचत' शब्द की परिभाषा में दो बातें ध्यान रखने की हैं :—(१) यह आय का वह भाग है जो भविष्य की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिये रख लिया जाता है, और (२) इसका प्रयोग धन कमाने के लिये किया जाता है। आय का जो भी भाग भविष्य के लिये बचाकर रखा जाय उसे 'बचत' कहना प्रयुक्त न होगा। लेकिन आय का वह भाग जो भविष्य के लिये रख दिया गया है और जिसका प्रयोग धनोपार्जन के लिये किया जाता है, 'बचत' कहलाता है।

धन (Wealth) को जब धनोपार्जन के लिये काम में लाया जाता है तो उसे पूँजी (Capital) कहते हैं।* 'बचत' द्वारा धन को पूँजी में परिणत किया जाता है। कारण स्पष्ट है। 'बचत' का अर्थ है धन को उत्पादन कार्य या धनोपार्जन कार्य में लगाना। जो धन धनोपार्जन कार्य में लग जाता है, वह पूँजी हो ही जाता है। अतः यह कहना कि "बचत का अर्थ धन को पूँजी में परिणत करना है" पूर्णतः सही है।†

---

* यही विचार डाक्टर रिचर्ड का है। वह कहते हैं कि "पूँजी मनुष्य की संपत्ति का वह भाग है जो धनोपार्जन के काम लाई जाती है। ["Capital is that part of a man's stock from which he expects to derive an income"—Dr. R. D. Richards, *Groundwork of Economics*, p. 48]

† प्रो० पेन्सन ने भी यही बात कही है। उनका कहना है कि बचत का अर्थ धन को पूँजी में परिणत करना है; उसे उत्पादन कार्य में लगाकर। ["Savings means turning wealth into capital by deliberately applying it to productive purposes"—T. H. Penson, *Economics of Everyday Life*, vol. II, p. 49]

बचत तथा संचय (Hoarding) में भेद

'बचत' का अर्थ सही रूप से समझने के लिये उसका भेद 'संचय' (Hoarding) से करना अत्यन्त आवश्यक है। 'बचत' (Savings) तथा 'संचय' (Hoarding) दोनों में ही आय का भाग तात्कालिक उपभोग पर व्यय न कर भविष्य के लिये रख लिया जाता है। परन्तु दोनों में भेद यह है कि 'संचय' में धन को व्यय नहीं किया जाता (उसे तिजोरी में ही रखा रहने दिया जाता है या उसे जमीन में ही गड़ा रहने दिया जाता है) और 'बचत' में धन उत्पादन कार्य पर व्यय कर दिया जाता है।*

एक उदाहरण से दोनों का भेद स्पष्ट हो जायगा। मान लीजिये रामकिशोर की आमदनी एक हजार रुपया है। इसमें से ६०० रुपया वह अपने तात्कालिक उपभोग पर व्यय कर देता है। बाकी के ४०० रु० में से ३०० रु० वह बैंक में जमा कर देता है और १०० रुपया जमीन में गाड़ देता है। इस उदाहरण में ३०० रुपयों को 'बचत' कहा जायगा और १०० रुपयों को 'संचय'। एक दूसरा उदाहरण लीजिये। सेठ रामदयाल अपनी आमदनी में से १ लाख रुपया बचाते हैं। इसमें से वे २० हजार अपनी तिजोरी में बंद कर रख देते हैं और उसे व्यय नहीं करते। परन्तु बाकी के ८० हजार रुपयों को अपने व्यापार में लगा देते हैं। इस उदाहरण में २० हजार रुपये 'संचय' कहलावेंगे और ८० हजार 'बचत'।

बचत या संचय में कौन अच्छा है

संचय से बचत बहुत अच्छी है। रुपया संचय करके रखने से देश को बड़ी हानि होती है। जितना रुपया संचय कर रखा जाता है, वह रुपया देश के काम नहीं आता। न तो उससे कोई वस्तु ही खरीदी जाती है और न उसे उत्पादन कार्य में ही लगाया जाता है। परिणाम यह होता है कि देश उतने रुपये से कंगाल हो जाता है। देश में रुपये की मात्रा कम हो जाती है जिसके कारण उत्पादन गिर जाता है और देश की आर्थिक उन्नति में भी बाधा आती है। इस कारण रुपये को गाड़ कर कभी नहीं रखना चाहिये। कुछ लोग चोरों के डर के कारण या बैंकों के फेल़ हो जाने के डर के कारण ऐसा करते हैं। परन्तु ऐसा करना भारी भूल है क्योंकि इससे देश की बड़ी हानि होती है।

---

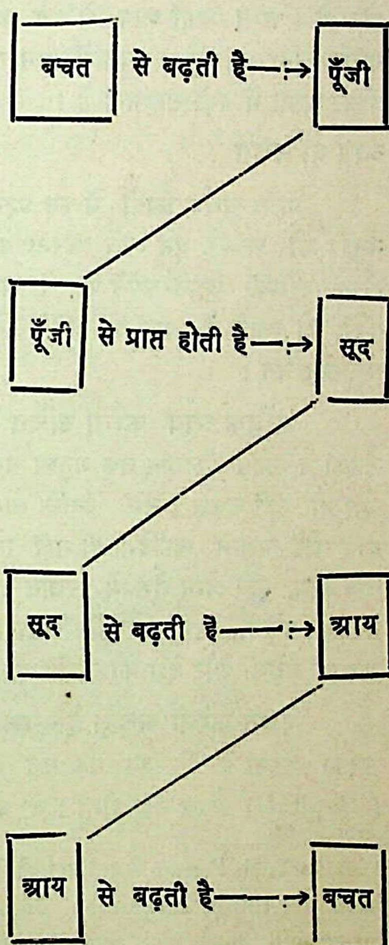
* डाक्टर रिचर्ड (Richards) ने बचत तथा संचय का भेद करते हुए कहा है, "संचय करने वाला धन को चलन से बाहर निकाल लेता है और इस कारण धन किसी भी अन्य कार्य के लिये प्राप्त नहीं होता। इसकी कोई उपयोगिता नहीं होती और आर्थिक दृष्टि से वह बेकार है। बचत करने वाला भी जब बैंक में रुपया जमा करता है वह धन को चलन से बाहर कर लेता है। परन्तु यह रुपया बेकार नहीं पड़ा रहता क्योंकि बैंक इसे ग्राहकों को उधार देने के काम लाते हैं।" देखिये उनकी पुस्तक *Groundwork of Economics*, पृष्ठ १३०

बचत का महत्व

(१) पूँजी तथा आय का बढ़ना—बचत का बड़ा भारी आर्थिक महत्व है। बचत से देश की पूँजी बढ़ती है, पूँजी से सूद प्राप्त होती है, सूद से आय होती है और आय से बचत होती है। इस प्रकार बचत करने से दो लाभ है—इससे पूँजी की वृद्धि होती है और आमदनी भी बढ़ती है।

(२) देश की आर्थिक प्रगति—जब देश में पूँजी तथा आय बढ़ती है तो उत्पादन भी अधिक होता है और उपभोग भी। पूँजी की मात्रा बढ़ जाने से लोग अधिक मात्रा में उत्पादन करते हैं। आय अधिक हो जाने के कारण लोग अधिक मात्रा में वस्तुओं का उपभोग भी करते हैं। इस तरह देश की आर्थिक उन्नति होती रहती है।

(३) बुरे समय में मदद—रुपया बचाने से आदमी को बुरे समय में बड़ी मदद मिलती है। भविष्य बड़ा अनिश्चित है। पता नहीं कल रुपया पास रहे या नहीं। इस कारण आमदनी का कुछ न कुछ भाग अवश्य बचाकर रखना चाहिये। बुढ़ापे में या जब आमदनी कम हो जाती है बचत बड़ी काम आती है।



चित्र ५५—बचत का महत्व

बचत के कारण

मनुष्य रुपया क्यों बचाये ? या मनुष्य जो रुपया बचाते हैं वह क्यों ? किन कारणों से प्रेरित होकर वह धन बचाने की बात सोचते हैं ?

धन बचाने के कई कारण हैं जैसे (१) बच्चों या परिवार का स्नेह, (२) भविष्य की आशंका, (३) समाज में आदर पाने की भावना, (४) ब्याज का लालच, तथा (५) व्यापार में सफलता प्राप्त करना। परन्तु मनुष्य कितना धन वास्तव में बचा पाता है यह उसकी आमदनी तथा उसके व्यय पर निर्भर रहता है।

आमदनी अधिक तथा खर्च कम होने पर ही मनुष्य धन कमा सकता है, अन्यथा नहीं।

२. बचत तथा व्यय
(Savings and Spending)

बचत तथा व्यय दोनों में ही धन का विनिमय वस्तुओं तथा सेवाओं के लिये होता है। परन्तु जहाँ व्यय में धन आवश्यकताओं की सन्तुष्टि पर प्रत्यक्ष रूप से खर्च किया जाता है, बचत में धन का प्रयोग अप्रत्यक्ष रूप से होता है।* इस प्रकार दोनों में बड़ी समानता है।

व्यय या बचत

प्रायः अर्थशास्त्रियों में इस प्रश्न को लेकर बड़ा वाद-विवाद चलता है कि मनुष्य को अधिक धन व्यय करना चाहिये या अधिक धन बचाना चाहिये। दोनों ही मतावलम्बी अपने-अपने पक्ष में अनेक तर्क प्रस्तुत करते हैं। हम दोनों पक्षों के तर्कों को बताने के बाद यह देखेंगे कि यह विवाद कहाँ तक उचित है और कहाँ तक अनुचित।

अधिक व्यय करना उचित है—जो व्यक्ति अधिक व्यय के पक्ष में हैं उनका कहना है कि जब तक मनुष्य धन व्यय नहीं करते, देश में व्यापार या उद्योग चल ही नहीं सकते। सभी व्यक्ति सामान बेचने के लिये ही उत्पादन करते हैं। यदि कोई सामान खरीदेगा ही नहीं तो उत्पादन करके होगा क्या ? इस कारण जब तक व्यय नहीं होगा देश में उद्योग नहीं पनपेंगें। इसके विपरीत अधिक व्यय करने से बिक्री बढ़ेगी, उद्योग बढ़ेगें, बेकारी दूर होकर लोगों को अधिक काम मिलेगा, मजदूरी बढ़ेगी और देश की समृद्धि होगी।

बचत करना अच्छा है—इसके विपरीत जो व्यक्ति बचत के पक्ष में हैं उनका कहना है कि जब तक धन बचाया नहीं जायगा, तब तक देश में पूँजी (Capital) उत्पन्न नहीं होगी। जो धन बचाकर उत्पादन के कार्य में लाया जाता

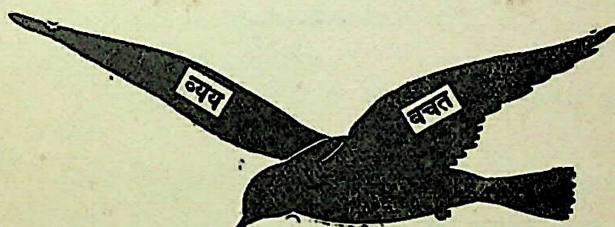
* T. S. Penson ने इसी बात को निम्न शब्दों में कहा है: "Spending and saving have one thing in common. In both cases wealth is given in exchange for certain goods and services, but the difference is that the goods and services are not put to the same use. In the case of spending, the goods and services are applied directly to the satisfaction of wants; in the case of savings, the goods and services are applied to the production of other wealth, and so they bring satisfaction of wants indirectly instead of directly." Vide, his '*Eonomics of Everyday Life* Vol II, p. 51

है उसी को पूँजी कहते हैं। इस कारण बचत के फलस्वरूप ही पूँजी का निर्माण होता है। पूँजी से ही बड़े-बड़े कारखाने और उद्योग खुलते हैं और उत्पादन होता है। बिना पूँजी के कोई भी उद्योग, चाहे वह छोटा हो या बड़ा, चल नहीं सकता। अतः यदि उत्पादन करना है तो बचत आवश्यक है। आपके पास भले ही रुपया व्यय करने को हो, परन्तु जब तक उत्पादन नहीं होता, तब तक आप उपभोग करेंगे किस वस्तु का। अतः स्पष्ट है कि बचत के बिना व्यय संभव नहीं है।

दोनों ही मत एक-पक्षी हैं—परन्तु ये दोनों ही मत पूर्णतः ठीक नहीं हैं। यदि मान लीजिये व्यक्ति अपनी सम्पूर्ण आय उपभोग पर व्यय करदे तो देश में पूँजी का निर्माण ही नहीं होगा। फलतः उत्पादन गिर जायगा और वस्तुओं के मूल्य बढ़ जायँगे। अतः स्पष्ट है कि पूरी की पूरी आमदनी का उपभोग पर व्यय करना उचित नीति नहीं है।

इसी प्रकार जो बचत के पक्ष में हैं उनसे पूछा जाय कि यदि सभी व्यक्ति पूरी की पूरी आय बचावें और उसे उपभोग पर व्यय न करें तो फिर कौन व्यक्ति सामान खरीदेगा। बाजार में उत्पादन होकर सामान रखा रहेगा परन्तु कोई भी उस सामान को खरीदेगा नहीं। स्पष्ट है यह स्थिति भी उतनी ही बुरी है जितनी कि पहली।

बचत और व्यय दोनों आवश्यक हैं—स्पष्ट है कि न अकेली बचत से काम चल सकता है और न केवल व्यय से। देश के लिये दोनों ही आवश्यक हैं। जिस प्रकार किसी एक पक्षी को उड़ने के लिए दोनों पर आवश्यक हैं, उसी प्रकार



चित्र ५६—व्यय और बचत का संबंध

देश के आर्थिक ढाँचे के लिये व्यय तथा बचत दोनों ही आवश्यक हैं। आचार्य मार्शल द्वारा एक अन्य स्थान पर दिया गया कैंची के दो फलों (Blades) वाला उदाहरण यहाँ दिया जा सकता है। व्यय तथा बचत कैंची के दो फलों के समान हैं और इन दोनों की आवश्यकता कैंची से काम लेते समय होती है।

यहाँ प्रश्न यह उठ सकता है कि किसी देश को अधिक धन व्यय करना चाहिये या अधिक बचाकर रखना चाहिये। इसका उत्तर उस देश की आर्थिक स्थिति पर निर्भर है। यदि देश की दशा ऐसी है कि वहाँ उत्पादन बहुत है परन्तु

बिक्री कम, तो देश के लोगों को अधिक धन व्यय करना चाहिये। परन्तु यदि स्थिति ऐसी है कि देश में नये-नये उद्योग खुल नहीं रहे हैं, वस्तुओं की कमी है और उनके मूल्य बढ़ रहे हैं, तो लोगों को अधिक रुपया बचाना चाहिये। स्पष्ट है कि देश की आर्थिक स्थिति के अनुसार ही यह निश्चित करना पड़ता है कि अधिक व्यय करना अच्छा है या अधिक बचत करना।

परीक्षा प्रश्न

उत्तर-प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—बचत और संचय (धन गाड़ने) पर संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९४९)

२—बचत का क्या उद्देश्य होता है ? एक मनुष्य यह कैसे निश्चित करता है कि आय की कितनी मात्रा व्यय की जाय और कितनी मात्रा बचाई जाय ? (१९४३)

उत्तर-प्रदेश इन्टर कामर्स

३—बचत का क्या अर्थ है ? बचाना "व्यक्तिगत तथा सामाजिक कर्त्तव्य है।" इस कथन की सचाई सिद्ध कीजिये। (१९४४)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

४—"सामाजिक दृष्टिकोण से बचाना खर्च करने से अच्छा है।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं ? स्पष्ट कीजिये। (१९५४)

सागर इन्टर आर्ट्स

५—बचतों को किस प्रकार से प्रोत्साहित किया जाता है ? बचत का आर्थिक प्रभाव क्या है ? (१९५१)

———

पचीसवाँ अध्याय

विलासिताएँ तथा अपव्यय

(Luxuries and Waste)

१· विलासिताएँ

(Luxuries)

आपको बताया जा चुका है कि विलासिता "बेकार के उपभोग" को कहते हैं। इनके उपभोग से हमारी निपुणता में कोई वृद्धि नहीं होती, वरन् उसके उल्टे कम हो जाने का भय रहता है। इससे हमारी शक्ति या दिखावट की भावना (desire of show or power) को भले ही प्रोत्साहन मिल जाय, परन्तु हमें अन्य कोई फल नहीं मिलता। जब बात ऐसी है तो यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि हमें विलासिताओं का उपभोग करना चाहिये अथवा नहीं। व्यक्तिगत दृष्टि से तो विलासिताओं का उपभोग अवांछनीय है क्योंकि यह व्यक्ति की निपुणता नहीं बढ़ाते। परन्तु क्या सामाजिक दृष्टि से भी इनका उपभोग ठीक नहीं है ? विलासिता के इस सामाजिक पहलू का हम इस अध्याय में अध्ययन करेंगे।

विलासिता के उपभोग से सामाजिक लाभ

सामाजिक दृष्टिकोण से विलासिता के उपभोग से जो लाभ हैं उन्हें नीचे बताया गया है।

(१) प्रगति का सूचक है—विलासिताओं का उपभोग प्रगति का सूचक है। किसी देश की उन्नति या प्रगति का अनुमान हम यह देखकर लगा सकते हैं कि उस देश के व्यक्ति कितनी मात्रा में महँगी वस्तुओं का उपभोग करते हैं। जिस देश के अधिकांश व्यक्ति महँगे फर्नीचर, अच्छे अच्छे कपड़े तथा कीमती जेवरात का प्रयोग करते हैं, स्पष्ट ही वह देश उस देश से कहीं अधिक उन्नतिशील हैं जहाँ के व्यक्ति गरीबी में अपना जीवन काटते हैं। इसी कारण विलासिताओं का उपभोग प्रगति का सूचक माना जाता है।

(२) मनुष्य को महत्वाकांक्षी बना देता है—विलासिता की वस्तुएँ प्रायः महँगी होती हैं। इस कारण जो व्यक्ति विलासिताओं का अधिक मात्रा में सेवन करना चाहते हैं उन्हें अपनी आय बढ़ाने की फिक्र बनी रहती है। आय बढ़ाने के लिये मनुष्य अधिक मेहनत से काम करता है, विशिष्टता (Specializatian)

प्राप्त करने का प्रयास करता है और अन्य सभी प्रकार से अपनी उन्नति करता है। इस प्रकार से मनुष्य महत्वाकांक्षी हो जाता है और उसकी आर्थिक उन्नति अधिक शीघ्रता से होने लगती है।

(३) कला-कौशल को प्रोत्साहन मिलता है—विलासिता की वस्तुओं के उपभोग से कला-कौशल की उन्नति होती है। लकड़ी पर नक्काशी का काम, हाथी दाँत का काम, सुन्दर सुन्दर तस्वीरें तथा कला की अन्य वस्तुएँ प्रायः विलासिताएँ गिनी जाती हैं। इनका उपभोग बढ़ने से इनके कारीगरों को प्रोत्साहन मिलता है और देश में भी कला-कौशल की उन्नति होती है। हमारे देश के राजा-महाराजा कला-कौशल के बड़े प्रेमी थे। अतः उनके समय कला की बड़ी उन्नति हुई। परन्तु अब भारत में इस प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन बहुत कम होता जा रहा है क्योंकि इनके खरीदने वालों की कमी हो गई है।

(४) धन के संचय का सुलभ साधन है—विलासिता की वस्तुओं को ख़रीदकर धन का संचय सुगमता से किया जा सकता है। सोना, चाँदी या आभूषणों में रुपया व्यय करना धन के संचय का बड़ा सुगम तरीका है। पुराने समय में प्रत्येक स्त्री अधिक से अधिक आभूषण अपने पास रखती थी। इसका एकमात्र कारण यही था कि उस समय बैंक आदि का चलन अधिक न होने के कारण धन के संचय का यही एक तरीका था।

(५) धन हस्तांतरित हो जाता है—विलासिता की वस्तुओं का सेवन प्रायः अमीर लोग ही बहुतायत से करते हैं और गरीब या श्रमिक इस प्रकार की वस्तुओं को बनाते हैं। इस कारण विलासिता की वस्तुओं के उपभोग से अमीरों का धन श्रमिकों के पास आ जाता है। अन्य शब्दों में अमीरों के पास से गरीबों के पास धन हस्तांतरित हो जाता है। यह बड़ी अच्छी बात है क्योंकि इससे आर्थिक समृद्धि (economic welfare) बढ़ती है।

(६) जीवन सुखमय हो जाता है—विलासिता की वस्तुओं के उपभोग से मनुष्य का जीवन अधिक सुखमय हो जाता है। उसके जीवन की नीरसता दूर हो जाती है और उसमें विभिन्नता आ जाने से जीवन अधिक आनन्दपूर्ण हो जाता है।

विलासिताओं के उपभाग से सामाजिक हानियाँ

विलासिताओं के उपभोग में निम्न लिखित सामाजिक हानियाँ हैं

(१) इनका उपभोग कुछ ही व्यक्ति करते हैं—विलासिताओं का उपभोग कुछ गिने चुने अमीर ही करते हैं। बाकी जितने व्यक्ति हैं वे इनके उपभोग से सर्वथा बंचित रह जाते हैं। इसका बुरा परिणाम यह होता है कि देश के कुछ

लोग इनके उपभोग से आनन्द उठाते है और बाकी लोग खड़े खड़े मुँह ताकते हैं। इससे वर्ग-विषमता (Class conflict) बढ़ती है और सामाजिक जीवन सुचारु रूप से नहीं चल पाता। सभी वर्ग के लोगों में मेल-मिलाप नहीं रहने पाता। बात यहाँ तक बढ़ जाती है कि उच्च वर्ग के लोग गरीबों के साथ मिलकर नहीं रहना चाहते और वे केवल अपने ही वर्ग के लोगों से मेल-मिलाप रखते हैं।

(२) निर्धनों को इनसे भारी कष्ट होता है—अमीरों को विलासिता की वस्तुओं का सेवन करते देखकर निर्धनों का भी मन उनके उपभोग के लिये चलने लगता है। परन्तु इसका परिणाम बड़ा भयंकर होता है। अपनी थोड़ी कमाई विलासिताओं पर व्यय कर निर्धन अपने परिवार के लिये आवश्यक आवश्यकताओं को भी नहीं जुटाने पाते। इससे उनका स्वास्थ्य गिर जाता है और वह कुशल श्रमिक नहीं रहने पाते।

(३) उत्पादन नहीं बढ़ता—यह कहना कि विलासिताओं के उपभोग से उत्पादन बढ़ता है ठीक नहीं है। वैसे तो आप जो भी वस्तु अधिक मात्रा में खरीदें उसका उत्पादन तो बढ़ेगा ही। परन्तु जितना रुपया विलासिता की वस्तुओं को खरीदने पर व्यय किया जाता है यदि उतना रुपया आवश्यक आवश्यकता की वस्तुओं को खरीदने पर व्यय किया जाय तो उत्पादन कई गुना अधिक बढ़ जायगा। इसका कारण यह है कि आवश्यक आवश्यकता की वस्तुएँ विलासिताओं से कहीं अधिक सस्ती होती हैं। अतएव विलासिताओं का उपभोग बढ़ जाने से उत्पादन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।

(४) यह आवश्यक नहीं कि कला-कौशल की वृद्धि हो—यह कहना कि विलासिताओं के उपभोग से कला-कौशल को प्रोत्साहन मिलता है ठीक नहीं है। विलासिताओं के उपभोग से कला-कौशल को प्रोत्साहन मिलेगा या नहीं, यह इस बात पर निर्भर रहता कि मनुष्य किस प्रकार की विलासिताओं का उपभोग अधिक कर रहे हैं। आज कल के समय में मशीनों की बनी हजारों ऐसी वस्तुएँ हैं जिनको विलासिता की वस्तु कहा जायगा। ऐसी वस्तुओं के उपभोग से कला-कौशल में कोई भी उन्नति नहीं होती। अतः, यह कहना कि विलासिताओं के उपभोग से कला-कौशल की अवश्य उन्नति होती है ठीक नहीं है।

(५) धन का हस्तांतरण स्थाई नहीं होता—यह कहना कि विलासिताओं के उपभोग से धन का हस्तान्तरण हो जाता है पूर्णतः ठीक नहीं है। इस संबन्ध में हमें दो बातें ध्यान में रखनी चाहिये। पहली तो यह कि केवल अमीर लोग ही विलासिता की वस्तुओं का उपभोग नहीं करते। यदि गरीब लोग भी विलासिता की वस्तुओं का उपभोग करते हैं तो यह बात ठीक नहीं उतरती। दूसरे, गरीब श्रमिकों को

विलासिता की वस्तुएँ बनाते समय अनेक कीमती औजारों को खरीदना पड़ता है। साथ ही बहुत सी कीमती वस्तुओं को भी खरीदकर वस्तु में लगाना पड़ता है। इस प्रकार उनका काफी धन इस प्रकार व्यय हो जाता है और उनके पास केवल मजदूरी भर बचती है जो किसी भी दशा में अधिक नहीं होती। इस मजदूरी को उन्हें अपनी आवश्यकताओं पर व्यय करना होता है। इस प्रकार उनके पास अधिक पैसा नहीं बचता। अतएव यह कहना ठीक नहीं है कि विलासिताओं के उपभोग से धन का हस्तान्तरण स्थाई होता है।

निष्कर्ष

विलासिता के दोनों पहलू देखने के उपरान्त यह कहा जा सकता है कि इसके उपभोग को सामाजिक लाभ भी हैं और कुछ हानियाँ भी। अधिक मात्रा में इनका उपभोग किसी भी समय उचित नहीं है। परन्तु जब देश में उत्पादन बढ़ाना हो और देश में बेकारी कम करनी हो, उस समय इस प्रकार की वस्तुओं का उपभोग बढ़ाना बुरा नहीं है। प्रो० पेन्सन का कहना है कि "विलासिता स्वयं में बुरी नहीं है, भले ही इसके कई प्रकार व्यक्तिगत या सामाजिक रूप से अवांछनीय हों।"*

२. अपव्यय

(Waste)

अपव्यय का अर्थ

बोल-चाल की भाषा में हम अनावश्यक या बेकार के कार्यों को अपव्यय कहते हैं। उदाहरण के लिये यदि आपका छोटा भाई आपकी दवात फैला दे तो हम कहेंगे कि उसने स्याही का अपव्यय कर दिया। या यदि कोई व्यक्ति लाटरी पर हजारों रुपया व्यय करदे तो हम कहेंगे कि वह रुपये का अपव्यय कर रहा है। परन्तु अर्थशास्त्र में इसका एक विशेष अर्थ है। जब धन व्यय करने पर हमें उसके बराबर उपयोगिता न मिले तो उसे अपव्यय कहेंगे। उदाहरण के लिये १०० रु० व्यय करने पर यदि आपको उससे ७० रु० के बराबर ही उपयोगिता मिले तो हम कहेंगे कि आपने रुपये का अपव्यय किया है। यह आवश्यक नहीं कि जब अधिक रुपया व्यय किया जाय तभी उसे अपव्यय कहा जाय। भले ही आप एक ही रुपये का व्यय करें, परन्तु यदि आपको उससे एक रुपये के बराबर उपयोगिता नहीं मिलती तो उसे अपव्यय कहा जायगा।

---

*"To sum up, luxury is not in itself necessarily an evil though many forms of it may be personally injurious and socially undesirable."—T. H. Penson, *Economics of Evryday Life*, Vol II, p. 62

अपव्यय तथा विलासिता में भेद

अपव्यय और विलासिता में व्यक्तिगत दृष्टिकोण से भेद है, सामाजिक दृष्टिकोण से नहीं। जब कोई व्यक्ति विलासिताओं पर धन व्यय करता है तो उसे कुछ उपयोगिता अवश्य मिलती है और वह उपयोगिता व्यय की गई धन की मात्रा से कम नहीं होती। परन्तु सामाजिक रूप से विलासिता से प्राप्त उपयोगिता उस पर व्यय किये गये धन से कम ही होती है। इस प्रकार विलासिता व्यक्तिगत रूप से अपव्यय नहीं है, परन्तु सामाजिक दृष्टिकोण से वह अपव्यय है।

अपव्यय तथा उपभोग में भेद

अपव्यय तथा उपभोग में बड़ा अन्तर है। अपव्यय की यह विशेषता है कि व्यय की गई रकम से कम उपयोगिता हमें उस क्रिया से प्राप्त होती है। परन्तु उपभोग की क्रिया में यह बात नहीं है। उपभोग से हमें जो उपयोगिता प्राप्त होती है वह व्यय की गई राशि के बराबर या उससे अधिक होती है।

अपव्यय तथा उपभोग का अन्तर एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिये एक मकान में अचानक आग लग जाती है। ध्यान रहे कि किसी भी व्यक्ति ने जान-बूझकर घर में आग नहीं लगाई है, आग स्वयं लगी है। आग के कारण मकान जलकर राख हो जाता है और इस कारण मकान-मालिक को भारी हानि होती है। इसको अपव्यय या बर्बादी कहा जायगा। परन्तु यदि दुश्मनी या बैर के कारण कोई व्यक्ति किसी घर में आग लगा देता है तो इस क्रिया को उपभोग कहा जायगा क्योंकि आग लगाने वाले को इस क्रिया से उपयोगिता या सन्तुष्टि मिली है।

क्या अपव्यय से रोजगार मिलता है ?

कुछ विद्वानों का मत है कि वस्तुओं की बर्बादी या अपव्यय बुरा नहीं है क्योंकि इससे रोजगारी (employment) बढ़ती है। जब कोई वस्तु नष्ट हो जाती है तो मनुष्य उसी प्रकार की दूसरी वस्तु खरीदता है। उदाहरण के लिये दवात की स्याही फैल जाने पर मनुष्य बाजार से स्याही की दूसरी बोतल खरीद लाता है। पेन्सिल खो जाने पर वह दूसरी पेन्सिल खरीद लाता है। किताब फट जाने पर वह दूसरी किताब खरीदता है, आदि। इस प्रकार किसी वस्तु की एक इकाई नष्ट हो जाने पर दूसरी इकाई खरीदने का परिणाम यह होता है कि उस वस्तु की माँग बढ़ जाती है और उस वस्तु के बनाने वालों को अधिक रोजगार मिल जाता है। प्रो० बेस्टियट (Bastiat) ने एक उदाहरण देते हुए बताया है कि एक लड़का इसी प्रकार की भावनाओं से प्रभावित होकर शहर की दुकानों में लगे शीशों को रात में तोड़ा करता था। उसका विचार था कि ऐसा करने से काँच बनाने वाले श्रमिकों को अधिक काम मिलेगा।

परन्तु ध्यान में रखने की बात है कि यह विचार पूर्णतः गलत है। सभी मनुष्यों के पास सीमित आय ही होती है। इस कारण यदि उसे किसी वस्तु पर अधिक व्यय करना पड़ जाता है तो किसी अन्य पर वह व्यय नही कर पाता। उदाहरण के लिये यदि किसी दुकानदार को अपनी आय में से कुछ रुपये दुकान में शीशे लगवाने में व्यय करने पड़ें तो संभव है वह अपने बच्चों के कपड़े न बनवा सके या किसी अन्य वस्तु पर धन व्यय न कर सके। जब आय निश्चित है तो किसी एक वस्तु पर अधिक व्यय करने का परिणाम यही होगा कि किसी दूसरी वस्तु पर व्यय कम हो जायगा। अतः, अपव्यय से या तोड़-फोड़ से यह भले ही हो जाय कि किसी एक विशेष प्रकार के काम करने वालों को अधिक रोजगारी मिलने लगे, परन्तु किसी दूसरे काम में लगे श्रमिक अधिक मात्रा में बेकार हो जायँगे। इस प्रकार कुल रोजगारी (Total Employment) में किसी भी प्रकार की वृद्धि नहीं होगी। इस कारण अपव्यय या बर्बादी किसी भी दशा में वांछनीय नहीं है।

परीक्षा प्रश्न

उत्तर प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—विलासिताओं पर संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९४९)

२—आर्थिक बर्बादी पर संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९४७, १९४४)

३—विलासिताओं का क्या अर्थ है ? कुछ व्यक्ति इसके पक्ष में नहीं हैं। क्या इनका मत ठीक है ? समाज में विलासिताओं के लाभ हानि बतलाइये। (१९४३)

४—आर्थिक और सामाजिक बर्बादी की विवेचना कीजिये। (१९३८)

५—एक धनी व्यक्ति अपने धन के प्रयोग से समाज के अन्य सदस्यों को किस प्रकार प्रभावित कर सकता है ? स्पष्टीकरण कीजिये। (१९३६)

उत्तर प्रदेश इन्टर कामर्स

६—"विनाश रोजगार सृजित करता है; अतः संपत्ति का नाश करना अभीष्ट है।" इस कथन पर अपना विचार प्रगट कीजिये। (१९४७)

७—बर्बादी और उपभोग का अन्तर उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिये। क्या दोनों का उत्पत्ति पर एक सा प्रभाव होता है ? (१९४४)

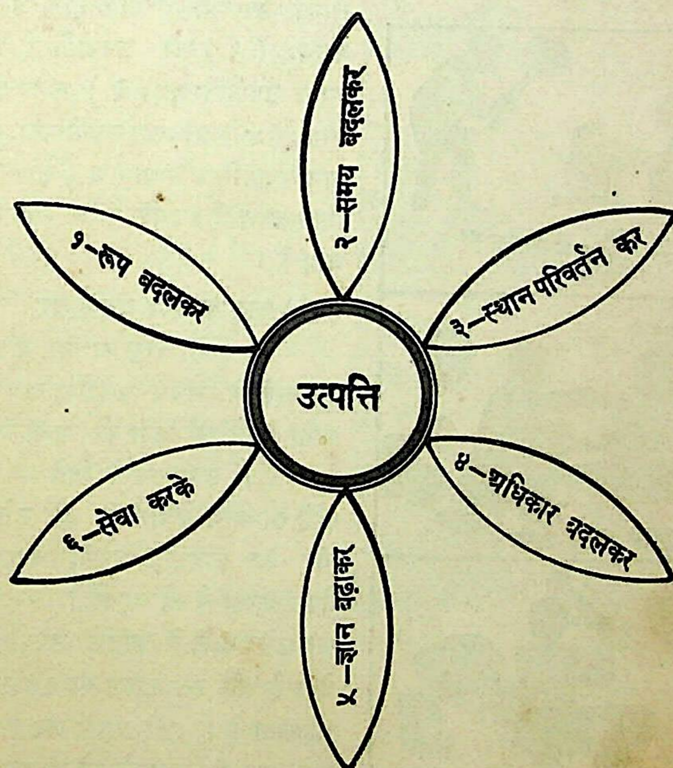
राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

८—उदाहरण सहित उपभोग और बर्बादी के भेद को स्पष्ट कीजिये। क्या ये दोनों उत्पत्ति पर समान रूप से प्रभाव डालते हैं ? (१९५०)

२· उत्पादन के तरीके

(Methods of Production)

यह बताया जा चुका है कि उत्पादन एक ऐसी क्रिया है जिसके फलस्वरूप उपयोगिता की वृद्धि होती है। उपयोगिता की वृद्धि चाहे किसी भी प्रकार से क्यों न हो, अर्थशास्त्र में यही कहा जावेगा कि वस्तु का उत्पादन हुआ है। यह आवश्यक नहीं है कि जब कोई नई वस्तु तैयार की जाय तभी यह कहा जाय कि वस्तु का उत्पादन हुआ है। परन्तु यदि कोई दूकानदार बम्बई जाकर वहाँ से कपड़ा ले आवे और फिर इसे इलाहाबाद में, जहाँ कपड़े की अधिक माँग है, लाकर बेच दे, तो इस क्रिया को भी अर्थशास्त्र में उत्पादन कहा जायगा। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति फसल के समय सस्ता अनाज खरीद कर और फिर कुछ समय तक रखने के बाद मँहगाई के



चित्र ५७—उत्पादन के तरीके

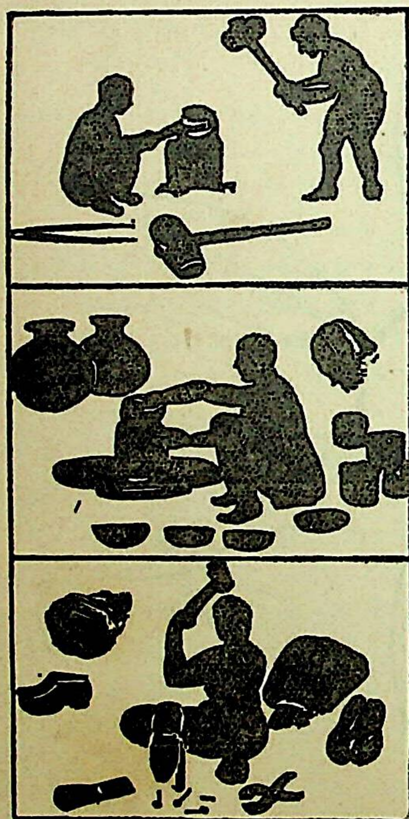
समय उसे बेच दे तो वह व्यक्ति उत्पादक कहलावेगा और उसकी क्रिया उत्पादन की क्रिया कहलावेगी। अर्थशास्त्र में जहाँ बढ़ई, सुनार, लुहार, किसान, मिल-मजदूर

आदि उत्पादक माने जाते हैं वहाँ अध्यापक, दूकानदार, विधान सभा के सदस्य, अभिनेता, वकील, डाक्टर, जज आदि भी उत्पादक कहलाते हैं।

ऊपर के कथन से स्पष्ट है कि उत्पादन कई प्रकार से किया जा सकता है। उत्पादन के निम्न तरीके हैं :—

(१) वस्तु का रूप बदल कर
(२) वस्तु का स्थान परिवर्तन कर
(३) वस्तु को कुछ समय तक रख कर
(४) वस्तु का विक्रय कर
(५) वस्तुओं का ज्ञान बढ़ाकर
(६) सेवा करके

उत्पादन के फलस्वरूप उपयोगिताओं का सृजन होता है। इन विभिन्न तरीकों से जो उपयोगिताएँ प्राप्त होती हैं उन्हें क्रमशः (१) रूप उपयोगिता, (२) स्थान उपयोगिता, (३) समय-उपयोगिता, (४) अधिकार उपयोगिता, (५) ज्ञान उपयोगिता तथा (६) सेवा-उपयोगिता कहते हैं। इनके बारे में नीचे बताया गया है।



चित्र ५८—रूप बदल कर उत्पादन करना

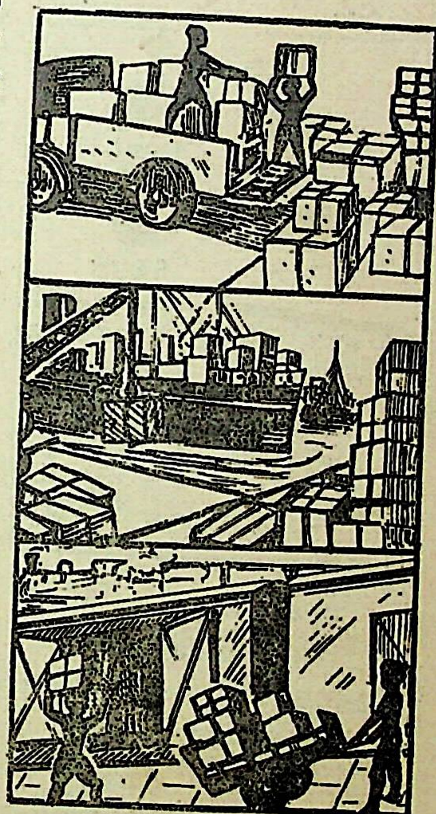
(१) वस्तु का रूप बदल कर

जब किसी वस्तु का रूप बदल कर उसे पहले से अधिक उपयोगी बना दिया जाता है तो इस क्रिया को उत्पादन कहा जाता है। उदाहरण के लिये जब लुहार लोहे को आग में गर्म कर और उसे पीट-पीट कर फावड़ा, खुरपी, चाकू आदि तैयार करता है तो वह लोहे का रूप बदल कर उसे पहले से अधिक उपयोगी बना देता है और इस कारण वह एक उत्पादक कहलाता है। इसी प्रकार जब एक बढ़ई एक लकड़ी के तख्ते को छीलकर उससे मेज, कुर्सी आदि तैयार करता है तो वह भी रूप-उपयोगिता (Form Utility) का सृजन करता है। जब एक हलवाई

मिठाई तैयार करता है तो वह भी मैदा, खोआ, घी आदि को मिलाकर उन्हें एक नया रूप दे देता है और इस कारण वह भी रूप-उपयोगिता का सृजन करता है। खेतों में अनाज पैदा करना, मिलों में सामान उत्पन्न करना, खानों में से खनिज पदार्थ निकालना, जूते बनाना, बर्तन बनाना आदि सभी वस्तु का रूप बदल कर उत्पादन करने के तरीके हैं।

(२) वस्तु का स्थान बदल कर

वस्तु को उस स्थान से जहाँ उसकी माँग कम है, एक ऐसे स्थान पर ले जाना जहाँ उसकी माँग अपेक्षाकृत अधिक है, उत्पादन का एक तरीका है। उदाहरण के लिये बम्बई, अहमदाबाद, शोलापुर आदि स्थानों में सूती कपड़ा अधिक तैयार किया जाता है। यदि इन स्थानों से कपड़ा लाकर उत्तर-प्रदेश या बिहार के शहरों में बेचा जाय तो इस क्रिया को उत्पादन कहा जायगा। इसी प्रकार उत्तर-प्रदेश तथा बिहार में चीनी अधिक पैदा होती है। यहाँ से यदि चीनी ले जाकर बम्बई, मद्रास, दिल्ली, आदि शहरों में बेची जाय तो इस क्रिया को उत्पादन कहा जायगा। इसी प्रकार विदेशों से सामान आयात करना भी वस्तु का स्थान-परिवर्तन कर उत्पादन करने का एक उदाहरण है। इस प्रकार की क्रिया से जिस उपयोगिता का सृजन होता है उसे स्थान-उपयोगिता (Place-Utility) कहा जाता है।



चित्र ५६—स्थान बदल कर उत्पादन करना

(३) वस्तु को कुछ समय तक रखकर

कुछ वस्तुएँ ऐसी हैं जिन्हें कुछ समय तक रखकर उनकी उपयोगिता बढ़ाई जा सकती है। उदाहरण के लिये चावल जितना पुराना होता है उतना ही वह अच्छा माना जाता है और इस कारण मँहगा बिकता है। शराब के बारे में भी यह बात है। पुराना गुड़ भी अधिक उपयोगी माना जाता है। अतः इन सब वस्तुओं को कुछ समय तक रख कर इनकी उपयोगिता बढ़ाना, उत्पादन का एक तरीका है। अनाज को फसल के समय खरीदकर कुछ

महीने बाद (जब उसके दाम अधिक हों) बेचना भी उत्पादन का एक तरीका है। इस प्रकार की क्रिया से जिस उपयोगिता का सृजन होता है उसे समय-उपयोगिता (Time utility) कहा जाता है।



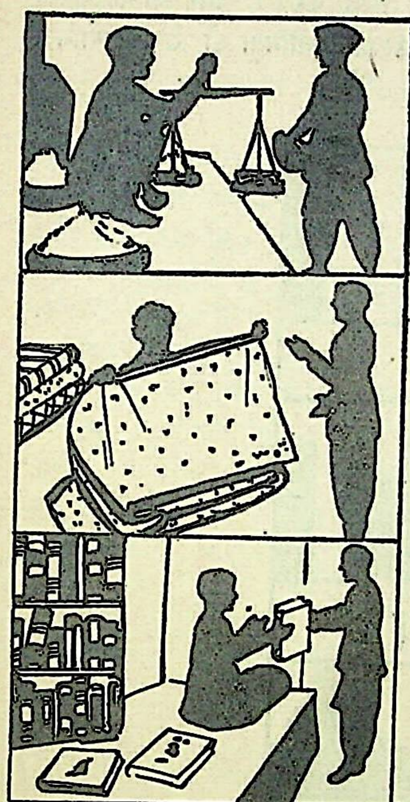
चित्र ६०—वस्तु को कुछ समय रखकर उपयोगिता बढ़ाना

(४) वस्तुओं का विक्रय कर

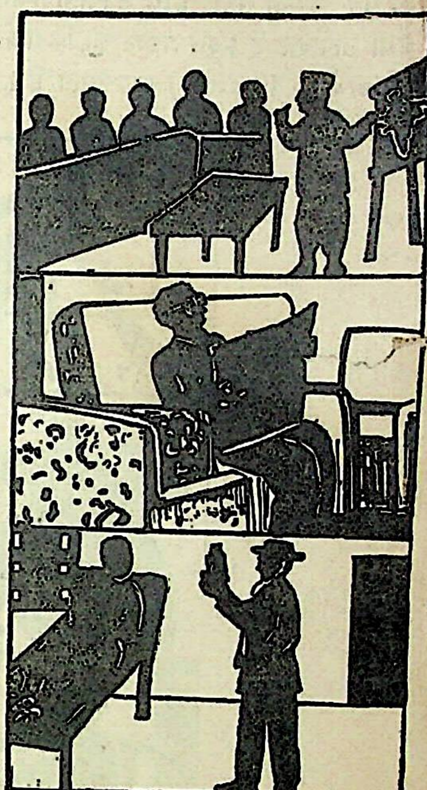
वस्तुओं का विक्रय करना भी उत्पादन का एक तरीका है। विक्रय से तात्पर्य अधिकार-परिवर्तन से है। दूकानदार को अपनी वस्तु से इतनी अधिक उपयोगिता नहीं मिलती जितनी कि उस ग्राहक को जो वस्तु को खरीदता है। उदाहरण के लिये मोजे बेचने वाले दूकानदार को अपने सामान से इतनी उपयोगिता नहीं मिलेगी जितनी कि उस व्यक्ति को जो मोजा खरीदकर उसे पहनेगा। जब आप किसी पुस्तक-विक्रेता के यहाँ जाकर उससे कोई आवश्यक पुस्तक ले आते हैं तो उस दूकानदार की अपेक्षा आपको उस पुस्तक से अधिक उपयोगिता मिलती है। इस प्रकार की क्रिया से जिस उपयोगिता का सृजन होता है उसे अधिकार-उपयोगिता (Possession Utility) कहते हैं। आप कह सकते हैं कि सभी दूकानदार अधिकार उपयोगिता का सृजन करते हैं और इस कारण वह सब उत्पादक हैं।

(५) वस्तुओं का ज्ञान बढ़ाकर

वस्तुओं के बारे में व्यक्तियों का ज्ञान बढ़ाकर भी उपयोगिता का सृजन किया जा सकता है। उदाहरण के लिये मान लीजिये कि आप जर्मन भाषा नहीं जानते ऐसी दशा में जर्मन भाषा में लिखी किसी भी पुस्तक की आपको कोई उपयोगिता नहीं होगी। परन्तु यदि आपको जर्मन भाषा का ज्ञान हो जाय तो वही पुस्तक आपको अधिक उपयोगिता देने लगेगी। इससे स्पष्ट है कि ज्ञान से उपयोगिता का सृजन होता है। एक दूसरा उदाहरण लीजिये। मान लीजिये मलेरिया बीमारी की कोई नई दवा निकली है। मान लीजिये आपको उसका ज्ञान नहीं है। अतएव आपको उस दवा से कुछ भी उपयोगिता नहीं मिलेगी। परन्तु



चित्र ६१—वस्तुओं के विक्रय द्वारा उत्पादन करना



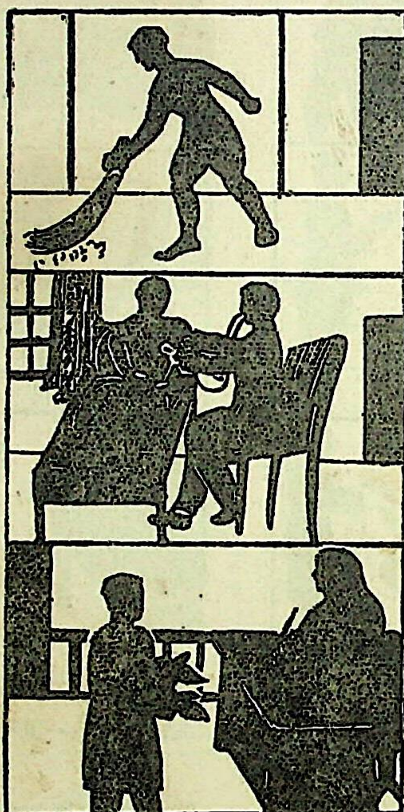
चित्र ६२—ज्ञान बढ़ाकर उत्पादन करना

यदि किसी विज्ञापन द्वारा आप उस दवा को जान जायँ या कोई डाक्टर यदि आपको उसके गुण बता दे तो आप को उस दवा से उपयोगिता मिलने लगेगी। अतः ज्ञान से भी उपयोगिता बढ़ती है। इस प्रकार जिस उपयोगिता का सृजन होता है उसे ज्ञान-उपयोगिता (Knowledge Utility) कहते हैं। कालेज के विद्यार्थी अध्ययन से अपना ज्ञान बढ़ाते हैं जिससे अनेक वस्तुएँ उन्हें पहले से अधिक उपयोगी हो जाती हैं। अतएव उन्हें भी उत्पादक कहा जा सकता है।

(६) सेवा करके

सेवाएँ करके भी उपयोगिता का सृजन किया जा सकता है। घर में जो नौकर काम करता है, महराज जो खाना पकाता है, जमादार जो झाड़ू लगाता है, अध्यापक जो स्कूलों में पढ़ाते हैं, डाक्टर जो बीमारों को देखते हैं, नर्स जो बालक की देख-भाल करती हैं, वकील जो अदालत में बहस करते

हैं, सब अपनी सेवा द्वारा उपयोगिताओं का सृजन करते हैं और इस कारण वह सभी उत्पादक हैं। इस प्रकार की क्रियाओं से उत्पन्न उपयोगिता को सेवा-उपयोगिता (Service Utility) कहा जाता है।



चित्र ६३—सेवा द्वारा उत्पादन करना

ऊपर बताये गये किसी भी प्रकार से मनुष्य कार्य करे वह एक उत्पादक कहलावेगा और उसकी क्रिया उत्पादन की क्रिया कहलावेगी। संसार के जितने भी पेशे हैं वह सब ऊपर बताए गये किसी एक तरीके द्वारा ही उपयोगिता बढ़ाते हैं।

परीक्षा प्रश्न

उत्तर प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—'उत्पादन' का अर्थ आप समझाकर लिखिये। क्या नीचे लिखे हुए मनुष्यों को आप उत्पादक कहेंगे? (क) आपके अर्थशास्त्र ज्ञान का परीक्षक (ख) किसान (कृषक) (ग) घरेलू नौकर (घ) व्यापारी। (१९५१)

२—उत्पादन का अर्थ बताइये। रूप, स्थान और समय उपयोगिताओं को स्पष्ट कीजिये। (१९४६)

३—"समय उपयोगिता" पर नोट लिखिये। (१९[illegible])

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

४—उत्पादन से आप क्या अर्थ समझते हैं ? क्या निम्न लिखित उत्पादन के अन्तर्गत आते हैं—(अ) कृषिक (आ) व्यापारी (इ) घरेलू सेवक (ई) कालेज का विद्यार्थी। कारण भी दीजिये।

(१९४०)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर कामर्स

५—'उत्पादन' पर एक संक्षिप्त नोट लिखिये।

(१९४८)

पटना इन्टर आर्ट्स

६—अर्थशास्त्र में आप 'उत्पादन' से क्या अर्थ समझते हैं ? आजकल के समाज में उत्पादन के फल को बाँटना क्यों कठिन है ?

(Supp. १९४८)

मध्य भारत इन्टर आर्ट्स

७—उत्पादन से आप क्या समझते हैं ? बताइए कि निम्न उत्पादक हैं या नहीं (१) कालेज का विद्यार्थी, (२) प्रोफेसर, तथा (३) माता-पिता।

(१९५२)

———

सत्ताइसवाँ अध्याय

उत्पादन के साधन

(Factors of Production)

उत्पादन के साधन का अर्थ

मनुष्य जब उत्पादन करता है तो उसे अनेक वस्तुओं का सहयोग प्राप्त करना होता है। एक किसान को खेती करते समय भूमि, बीज, हल, खुरपी, पानी आदि की आवश्यकता पड़ती है। साथ ही उसे अपनी तथा अपने घर वालों की मेहनत भी लगानी पड़ती है। एक बढ़ई को काम करने के लिए स्थान और कुछ औजारों की जरूरत पड़ती है और फिर अपनी मेहनत द्वारा वह सामान तैयार करता है। इस प्रकार आप उत्पादन की कोई भी क्रिया ले लीजिये आप देखेंगे कि कुछ वस्तुओं का सहयोग प्राप्त किये बिना मनुष्य उत्पादन कर ही नहीं सकता। जो भी साधन उत्पादन कार्य में मनुष्य का योग देते हैं वह उत्पादन के साधन कहलाते हैं। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि जिन साधनों की सहायता से मनुष्य उत्पादन करता है उन्हें उत्पादन के साधन कहा जाता है।

१· उत्पादन के साधनों की संख्या

(Numbers of the Factors of Production)

भूमि तथा श्रम

उत्पादन करते समय मनुष्य को अनेक वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है। परन्तु फिर भी उनमें दो साधन प्रमुख हैं—(१) भूमि या प्रकृति द्वारा दी गई वस्तुएँ, और (२) मनुष्य का परिश्रम। जे० एस० मिल (J. S. Mill) ने इन साधनों को "प्राथमिक तथा उत्पादन के लिये सर्वमान्य"* साधन कहा है। और वास्तव में यह ठीक भी है। इन साधनों के सहयोग के बिना न तो उत्पादन कभी हुआ है और न उसका होना संभव ही है। जब मनुष्य ने अधिक उन्नति नहीं की थी और वह जंगली जीवन व्यतीत करता था उस समय भी उसे इन दोनों साधनों की आवश्यकता प्रतीत होती थी। जंगली पेड़ों से फल तोड़ने के लिये भी उसे (१) पेड़ या प्रकृति की, और फल तोड़ने के लिये अपनी (२) मेहनत की

*According to J. S. Mill these two are "Primary and universal requisites of production".

जरूरत पड़ती थी। इस प्रकार भूमि तथा श्रम उत्पादन के अत्यन्त आवश्यक तथा प्राथमिक साधन हैं। सर् सिडनी चैपमेन ने इन्हें "अत्यन्त आवश्यक तथा अत्याज्य" साधन कह कर पुकारा है।*

पूँजी नामक साधन का उदय

जैसे-जैसे मनुष्य ने उन्नति की ओर उसकी आवश्यकताएँ बढ़ने लगीं, उसे यह प्रतीत होने लगा कि वह अपनी आवश्यकताओं को उसी समय अच्छी तरह पूरा कर सकता है जब उसके पास कुछ हथियार हों। जानवरों तथा पक्षियों को मारने के लिये उसे तीर-कमान तथा अन्य औजारों की आवश्यकता पड़ने लगी और इनका प्रयोग वह करने लगा। इसी समय से पूँजी नामक उत्पत्ति के साधन का उदय हुआ।† मनुष्य के विकास के साथ-साथ पूँजी का रूप भी अधिक जटिल होता गया और वर्तमान समय में जो भीमकाय मशीनें हमें देखने को मिलती हैं वह पूँजी के ही अन्तर्गत आती हैं।

संगठन तथा साहसोद्यम नामक साधनों का उदय

जैसे-जैसे मनुष्य उन्नत्ति करता गया और उत्पत्ति की समस्या जटिल होती गई, उत्पत्ति के दो और नये साधनों की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। यह आवश्यक हो गया कि उत्पादन करने के पहले मनुष्य यह विचार करले कि उसे क्या उत्पन्न करना है, कितनी मात्रा में उत्पन्न करना है, किस किस्म की वस्तु उत्पन्न करनी है, किस स्थान पर तथा कितनी लागत पर उत्पन्न करनी है आदि। बाजार में प्रतिस्पर्धा (Competition) और अनेक उत्पादकों की उपस्थिति के कारण इन सब बातों पर उचित रूप से विचार तथा निर्णय आवश्यक हो गया। क्योंकि उत्पादन बड़े पैमाने पर होने लगा, इस कारण यह भी आवश्यक हो गया कि उचित संख्या में ही मजदूरों को काम पर लगाया जाय और प्रत्येक मजदूर से ठीक काम लिया जाय। इन सब बातों की देख-भाल करने वाला और उन पर उचित

---

*"The absolutely indispensable agents of production are Labour and Land"—Sir Sydney Chapman, *Outline of Political Economy*.

† प्रोफेसर पैन्सन (Penson) भूमि, श्रम तथा पूँजी के स्थान पर साधनों को क्रमशः प्राकृतिक, व्यक्तिगत तथा कृत्रिम नामक भागों में विभक्त करते हैं। उनके अनुसार उत्पादन के तीन साधन हैं।

(१) प्राकृतिक (Natural)—प्रकृति के उपहार

(२) व्यक्तिगत (Personal)—मनुष्य की शक्ति तथा चतुराई

(३) कृत्रिम (Artificial)—वह जिसे मनुष्य ने अपने कार्य में सहायता के लिये बनाया है

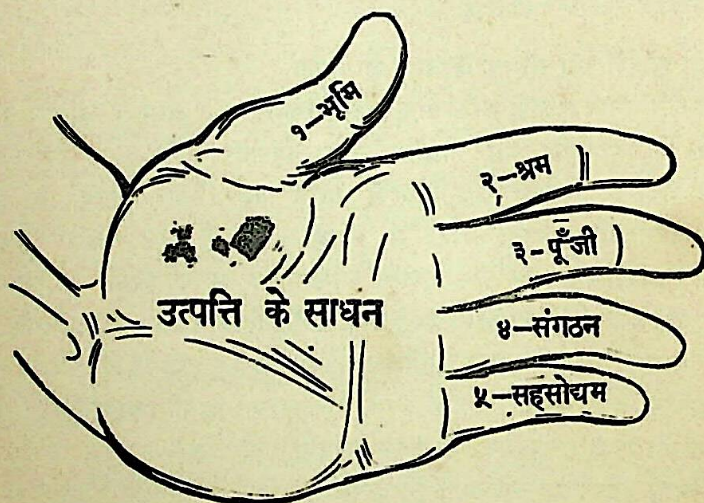
देखिये प्रो० T. H. Penson, *Economics of Everyday Life*, p. 32

निर्णय लेने वाला साधन, 'संगठन' (Organisation), उत्पादन के लिए एक आवश्यक साधन हो गया।

जब उत्पादन बड़े पैमाने पर होने लगा और उद्योगपति स्थानीय नहीं वरन् अन्तर्राष्ट्रीय बाजार के लिये भी उत्पादन करने लगे तो उत्पादन में जोखिम (risk) बहुत बढ़ गया। हानि का अंदेशा काफी अधिक हो गया और यह उचित समझा जाने लगा कि कोई एक व्यक्ति या अनेक व्यक्ति सम्मिलित रूप से जोखिम उठायें जिससे उत्पादन के अन्य साधनों को उनका नियत प्रतिफल मिलता रहे। फलतः साहसोद्यम (Enterprise) नामक उत्पत्ति के एक नये साधन का उदय हुआ।

उत्पत्ति के पाँच साधन

इस प्रकार आजकल उत्पत्ति के साधन पाँच माने जाते हैं। वे निम्न हैं

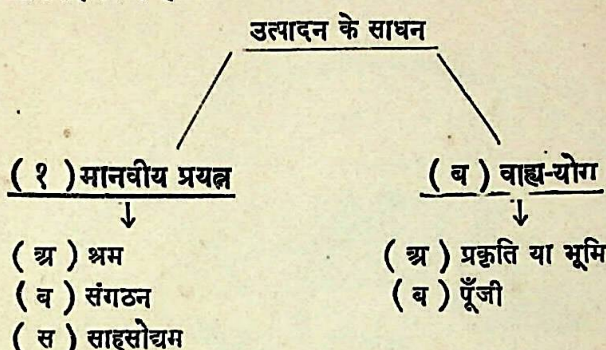


चित्र ६४—उत्पत्ति के पाँच साधन

१. भूमि (Land)
२. श्रम (Labour)
३. पूँजी (Capital)
४. संगठन (Organisation)
५. साहसोद्यम (Enterprise)

प्रो० पेन्सन (Penson) ने साधनों को मुख्य दो भागों में बाँटा है—(१) मानवीय प्रयत्न तथा (२) वाह्य योग। इसके पश्चात् उन्होंने मानवीय प्रयत्न के तीन उप-विभाग किये हैं : (१) श्रम, (२) संगठन तथा (३) साहसोद्यम।

वाह्य योग के उन्होंने दो उप-विभाग किये हैं : (१) प्रकृति तथा (२) पूँजी। उनका वर्गीकरण निम्न है :*



(१) भूमि—अर्थशास्त्र में भूमि से हमारा आशय प्रकृति की देन (Gift of Nature) से है। प्रकृति ने मनुष्य को जो कुछ भी दिया है वह सब भूमि के अन्तर्गत आ जाता है। उदाहरण के लिये नदी, समुद्र, जंगल, जमीन की सतह, खानें, जलवायु, वर्षा आदि सभी वस्तुएँ जो जमीन के ऊपर, उसके नीचे और उसकी सतह पर पाई जाती हैं भूमि कहलाती हैं।

(२) श्रम—श्रम से तात्पर्य मानवीय परिश्रम या मेहनत से है। जो भी शारीरिक परिश्रम मनुष्य धन कमाने के लिये करता है उसे श्रम कहते हैं।

(३) पूँजी—किसी भी प्रकार की संपत्ति जिसे मनुष्य उत्पादन करने के लिये प्रयोग में लाता है पूँजी कहलाती है। विशालकाय मशीनों से लेकर खुरपी, फावड़ा आदि सभी वस्तुएँ जिनकी सहायता से मनुष्य उत्पादन करता है, पूँजी कहलाती हैं।

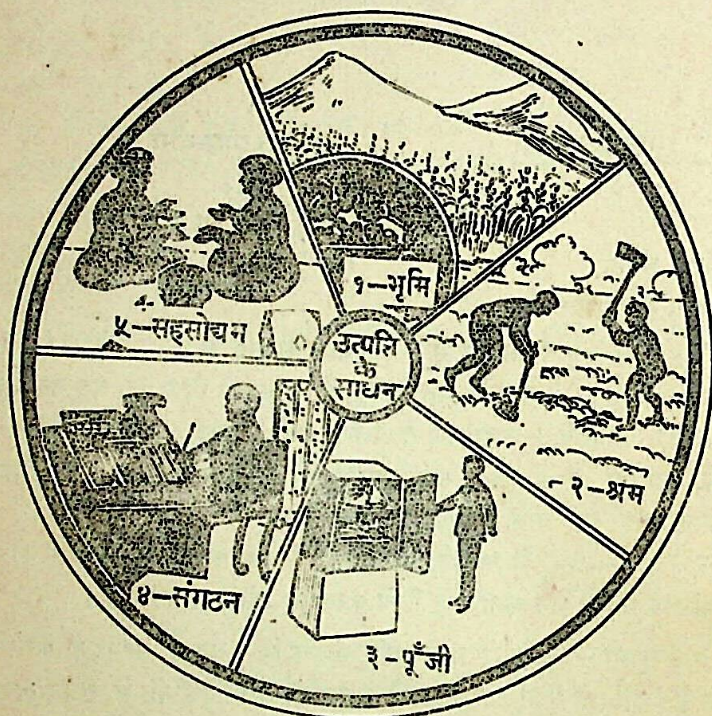
(४) संगठन—मनुष्य के मानसिक परिश्रम को संगठन कहा जाता है। एक संगठनकर्ता का काम निर्णय करना और नीति निर्धारित करना है, जो कि एक मानसिक कार्य है। इस कारण मनुष्य के मानसिक श्रम को 'संगठन' कहा जाता है।

(५) साहसोद्यम—उत्पादन में जोखिम उठाने वाले को साहसोद्यमी कहा जाता है। बड़े पैमाने पर जब उत्पादन किया जाता है तो इस बात की संभावना बनी रहती है कि कहीं हानि न हो जाय। इसी 'संभावना' के लिये तैयार रहना ही साहसोद्यमी का कार्य है।

कुछ समय पहले तक उत्पादन के केवल चार साधन माने जाते थे। साहसोद्यम को उत्पादन का साधन नहीं माना जाता था। परन्तु जब से सम्मिलित पूँजी-

* देखिये T. H. Penson *Economics of Evryday Life* p. 33

वाली कंपनियों (Joint-Stock Companies) का आरंभ हुआ, साहसोद्यम को एक अलग साधन माना जाने लगा। इसका कारण यह था कि उसी समय



चित्र ६५—उत्पादन के साधन

व्यक्तियों की समझ में आया कि संगठन और साहसी अलग-अलग साधन हो सकते हैं और इनके कार्यों को अलग किया जा सकता है।

२. साधनों का तुलनात्मक महत्त्व

(Relative Importence of the Factors)

अर्थशास्त्रियों में इस प्रश्न पर बड़े वाद-विवाद है कि उत्पादन के इन पाँचों साधनों में से कौन-सा अधिक महत्वपूर्ण है और कौन-सा कम। जे० एस० मिल ने भूमि तथा श्रम को "प्राथमिक तथा सर्वमान्य" साधन कहा है। कुछ अर्थशास्त्री भूमि को प्रथम स्थान देते हैं, और कुछ मानवीय श्रम को। कुछ अर्थशास्त्री श्रम, संगठन तथा साहस को मानवीय परिश्रम के रूप ही मानते हैं और इस कारण वह श्रम को सबसे अधिक महत्व देते हैं। कुछ अर्थशास्त्री इस समस्या पर ऐतिहासिक ढंग से विचार करते हैं और कहते हैं कि क्योंकि आरंभ में 'प्रकृति' ही सबसे महत्व-

पूर्ण थी यहाँ तक कि मनुष्य भी प्रकृति का दास था, इस कारण प्रकृति ही उत्पत्ति का सबसे महत्वपूर्ण साधन है।

वाद-विवाद निरर्थक है

परन्तु यदि इस समस्या पर गहराई से विचार किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा कि इस प्रश्न पर इतना सब वाद-विवाद निरर्थक है। वर्तमान समय में उत्पादन के सभी साधन सामान रूप से आवश्यक हैं और किसी के भी विना मनुष्य का काम नहीं चल सकता। जिस प्रकार से हाथ की पाँच उँगलियों में से कोई छोटी होती है और कोई बड़ी, परन्तु प्रत्येक का अपना-अपना महत्त्व है ठीक उसी प्रकार से उत्पत्ति के पाँचों साधनों का अपना-अपना महत्त्व है। यह ठीक है कि किसी साधन की आवश्यकता आरंभ में ही पड़ गई और कुछ की उस समय पड़ी जब उत्पादन बड़ी मात्रा में होने से उत्पादन-प्रणाली बड़ी जटिल हो गई। परन्तु फिर भी सभी का महत्त्व समान है क्योंकि उत्पादन की क्रिया एक ऐसी क्रिया है जिसमें सभी साधन एक साथ मिलकर काम करते हैं और सभी का सहयोग समान रूप से आवश्यक होता है। अतएव किसी भी साधन को छोटा या कम महत्त्वपूर्ण नहीं कहा जा सकता।

३. उत्पादन के साधक

(Agents of Production)

उत्पादन के साधनों के बारे में आपको बताया जा चुका है। परन्तु जो व्यक्ति इन साधनों को देते हैं उन्हें उत्पादन का साधक (Agents of Production) कहा जाता है। उदाहरण के लिये भूमि उत्पादन का साधन (Factors) है। परन्तु यदि आप भूमि के मालिक हैं और आप उसे उत्पादन कार्य के लिए देते हैं तो आपको उत्पादन का एक साधक, 'भूमिपति' माना जायगा। इसी प्रकार पूँजी को देने वाला, 'पूँजीपति' भी उत्पादन का एक साधक है।

जिस प्रकार उत्पादन के पाँच साधन होते हैं उसी प्रकार उसके पाँच साधक भी होते हैं। भूमि, पूँजी, श्रम, संगठन तथा साहसोद्यम नामक साधनों के क्रमशः भूमिपति, पूँजीपति, श्रमिक, संगठनकर्ता तथा साहसोद्यमी नामक पाँच साधक हैं।

उत्पत्ति के साधन	उत्पत्ति के साधक
१—भूमि	भूमिपति
२—पूँजी	पूँजीपति
३—श्रम	श्रमिक
४—संगठन	संगठनकर्ता
५—साहसोद्यम	साहसोद्यमी

परीक्षा प्रश्न

उत्तर-प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—"उत्पादन का प्रमुख साधन" पर नोट लिखिये। (१९४४)

२—उत्पादन के किसी साधन की कार्य-क्षमता से क्या तात्पर्य है? भूमि तथा पूँजी की कार्य-क्षमता किस बात पर निर्भर है? (१९४०)

३—ग्रामीण उद्योगों और कल कारखानों में उत्पादन के साधनों की सापेक्षिक तुलना कीजिये। (१९३८)

४—(अ) गाँव के जुलाहे या कुम्हार के काम में, (आ) बनारस या मुरादाबाद के बर्तन के उद्योग में और (ई) सूत की मिल में उत्पादन के साधन किस प्रकार संयुक्त होते हैं? इनकी विवेचना और मुकाबिला कीजिये। (१९२७)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर कामर्स

५—वे कौन-कौन से साधन हैं जिनका कृषि योग्य भूमि की उत्पत्ति पर प्रभाव पड़ता है? भारतीय उदाहरण दीजिये। (१९४७)

पटना इन्टर आर्ट्स

६—इस कथन की व्याख्या कीजिये कि अन्ततः उत्पादन के साधन प्रकृति तथा श्रम हैं। पूँजी तथा प्रबन्ध को उत्पादन के अन्य साधन मानने का क्या कारण है? (१९५२)

पटना इन्टर कामर्स

७—उत्पादन के कौन-कौन से साधन हैं? प्रत्येक साधन की विशेषताओं को बताइये। (१९४९)

सागर इन्टर कामर्स

८—श्रम और पूँजी की क्या विशेषतायें हैं? इनमें से कौनसा साधन अधिक महत्वपूर्ण है? (१९५१)

———

अट्ठाइसवाँ अध्याय

उत्पादन की कार्य-क्षमता

(Efficiency of Production)

उत्पादन करते समय सभी व्यक्तियों की यह स्वाभाविक इच्छा होती है कि जो वस्तु तैयार हो, वह दूसरे व्यक्तियों द्वारा तैयार की गई वस्तु से किस्म (Quality) में अच्छी हो और साथ ही वस्तु की उत्पादन लागत भी कम से कम हो। जो भी उत्पादक किस्म में अच्छी वस्तु को सस्ते मूल्य पर बेचेगा, स्पष्ट है उसकी बिक्री अधिक होगी और फलतः उसको लाभ भी अधिक होगा। इसी उद्देश्य से प्रभावित होकर उत्पादक इस बात का भरसक प्रयत्न करते हैं कि उनकी क्षमता (efficiency) सबसे अधिक हो।

कार्य-क्षमता का अर्थ

किसी एक निश्चित समय के भीतर श्रेष्ठतर माल या मात्रा में अधिक माल या अधिक मात्रा में श्रेष्ठतर माल बनाने की शक्ति को कार्य-क्षमता कहते हैं। कहने का अर्थ यह है कि किसी भी एक निश्चित अवधि के भीतर (चाहे वह अवधि एक दिन हो या एक सप्ताह या एक माह) यदि कोई एक व्यक्ति किसी दूसरे की अपेक्षा (१) अच्छे किस्म की परन्तु मात्रा में उतनी ही वस्तु तैयार कर लेता है, या (२) किस्म एकसी हो परन्तु मात्रा में अधिक वस्तु तैयार कर लेता है तो उस व्यक्ति को दूसरे की अपेक्षा अधिक कार्यकुशल समझा जायगा। और यदि वह व्यक्ति किस्म में अच्छी और मात्रा में भी अधिक वस्तु तैयार कर लेता है तब तो उसे और भी अधिक कार्यशील माना जायगा।

जो बात एक व्यक्ति के बारे में है वही फर्मों या मिलों के बारे में भी। यदि फर्मों में से एक फर्म अच्छे किस्म की या मात्रा में अधिक वस्तु तैयार कर पाती है तो वह दूसरे की अपेक्षा अधिक कार्यशील मानी जायगी।

कार्य-क्षमता की निर्भरता

किसी फर्म या उत्पादन-इकाई की कार्य-क्षमता दो बातों पर निर्भर रहती है : (१) आंतरिक दशाएँ (Internal Conditions), और (२) वाह्य दशाएँ (External Conditions)। आंतरिक दशाओं से तात्पर्य उन दशाओं से है जिनका संबन्ध फर्म के संगठन तथा कार्य-विधि से होता है। वाह्य दशाओं से तात्पर्य उन दशाओं से है जिनका प्रभाव फर्म पर बाहर से पड़ता है और किसी एक स्थान पर जितनी भी फर्म केन्द्रित होती हैं वे सभी उनसे समान रूप से लाभ उठा सकती हैं।

वाह्य दशाओं में यातायात के साधनों की सुविधा, बैंकिंग की सुविधा सरकारी नीति, उत्पादकों के प्रतिस्पर्धा आदि बातें आती हैं।

आंतरिक दशायें

आंतरिक दशाओं में दो बातें विशेष महत्व की हैं: (१) उत्पादन के प्रत्येक साधन की कार्य-क्षमता, तथा (२) उत्पादन के साधनों को मिलाने का अनुपात। इनके बारे में नीचे बताया गया है।

१. उत्पादन के साधनों की कार्यक्षमता—एक फर्म किस किस्म की और कितनी वस्तु तैयार कर सकती है इस बात पर निर्भर है कि उत्पादन के साधन कितने कार्य-शील (efficient) हैं। उत्पादन के पाँच साधन हैं और उत्पादन के लिये सभी का सहयोग आवश्यक है। यदि यह सभी साधन कार्यशील हैं तो कोई कारण नहीं कि फर्म की कार्य-क्षमता भी अधिक न हो। परन्तु यदि दशा विपरीत है तो फर्म कार्यशील नहीं होगी।

२. साधनों के एकत्रित करने का अनुपात—उत्पादन उसी समय अधिक तथा अच्छा होगा जब उत्पादन के विभिन्न साधन उचित अनुपात में एकत्रित किये जायँ। उत्पादन का एक नियम है जिसे प्रतिस्थापन नियम (Law of Substitution) कहते हैं और जो यह बताता है कि विभिन्न साधनों को इस अनुपात में मिलाया जाना चाहिये कि प्रत्येक साधन की अंतिम इकाई से उत्पादन समान हो। ऐसा होने पर ही फर्म कार्यशील बन सकेगी और साधनों का उचित अनुपात में मेल होगा।

वाह्य दशाएँ

वाह्य दशाओं में ऐसी अनेक बातें आती हैं जिनका प्रभाव फर्म की कार्य-क्षमता पर पड़ता है। उदाहरण के लिये फर्म किस स्थान पर केन्द्रित है, स्थानीय-करण के सिद्धांत के अनुसार वह स्थान उचित है या नहीं, वहाँ पर वस्तु की माँग कितनी है, वहाँ यातायात की कितनी सुविधायें हैं, बैंक, तथा बीमा कम्पनियों ने वहाँ कितनी प्रगति की है, सरकार की आर्थिक नीति अच्छी है या नहीं आदि। इन सभी बातों का प्रभाव उत्पादन की कार्य-क्षमता पर पड़ता है।

भूमि, श्रम, पूँजी, संगठन तथा साहसोद्यमी की कार्यक्षमता किन-किन बातों पर निर्भर है यह आगे के अध्यायों में बताया गया है जहाँ इन साधनों के बारे में अलग-अलग अध्ययन किया गया है।

परीक्षा-प्रश्न

उत्तर-प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—उत्पत्ति के किसी साधन की कार्यक्षमता से क्या तात्पर्य है? भूमि तथा पूँजी की कार्य-क्षमता किन-किन बातों पर निर्भर है? (१६४०)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर कामर्स

२—वह कौन-कौन सी बातें हैं जिनका कृषि-योग भूमि की उत्पादन-क्षमता पर प्रभाव पड़ता है? भारतीय उदाहरण दीजिये। (१६४७)

उनतीसवाँ अध्याय

भूमि

(Land)

१. परिभाषा

(Definition)

भूमि का अर्थ

साधारण बोलचाल की भाषा में भूमि शब्द का प्रयोग जिस अर्थ में किया जाता है, अर्थशास्त्र में उसका प्रयोग एक भिन्न अर्थ में किया जाता है। साधारणतया भूमि से तात्पर्य भूमि की सतह से होता है जिस पर हम चलते-फिरते हैं या जिस पर मकान आदि खड़े किये जाते हैं। परन्तु अर्थशास्त्र में इस शब्द का प्रयोग अधिक विस्तृत अर्थ में किया जाता है। आचार्य मार्शल के अनुसार "भूमि का अर्थ केवल जमीन की ऊपरी सतह से ही नहीं है, वरन् उन सभी पदार्थों और शक्तियों से है जो प्रकृति ने भूमि, जल, वायु, प्रकाश तथा गर्मी के रूप में मनुष्य की सहायता के लिये निर्मूल्य प्रदान की हैं।"* मार्शल की इस परिभाषा के अनुसार 'भूमि' में निम्नलिखित वस्तुएँ जो मनुष्य को निःशुल्क मिली हैं, सम्मिलित की जाती हैं :—

(१) जमीन की सतह जिस पर हम चलते-फिरते हैं—

(२) जमीन की सतह पर पाये जाने वाला जल, जैसे समुद्र, नदियाँ, नाले आदि।

(३) जमीन के अन्दर पाये जाने वाले विभिन्न खनिज पदार्थ,

(४) वायु,

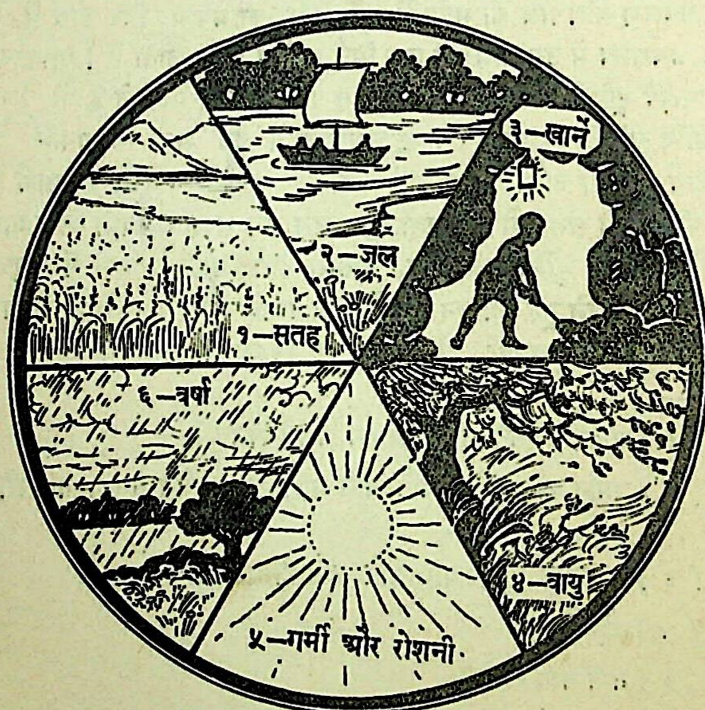
(५) गर्मी तथा रोशनी,

(६) वर्षा का पानी,

भूमि प्रकृति की निःशुल्क देन है—वर्तमान अर्थशास्त्री भूमि की एक नई परिभाषा देते हैं। उनका कहना कि भूमि का अर्थ "प्रकृति की निःशुल्क देन"

* "By land is meant not merely land in the strict sense of the word, but whole of the materials and forces which nature gives freely for man's aid in land and water, in air, light and heat"—Marshall, *Economics of Industry*, p. 85.

है।* कुछ अर्थशास्त्री भूमि के स्थान पर 'प्राकृतिक शक्ति', या 'प्राकृतिक साधन' या 'प्रकृति' शब्दों का प्रयोग करते हैं।† परन्तु आधुनिक समय में भूमि की सर्वमान्य परिभाषा यही है कि भूमि प्रकृति की निःशुल्क देन है। अर्थात् जो भी वस्तु मनुष्य को बिना मेहनत या त्याग किये मिल जाय वह वस्तु उस मनुष्य के लिये भूमि है। यदि मान लीजिये हमें एक पेन्सिल मिल जाती है और उसके लिये हमें कोई प्रयास, मेहनत तथा त्याग नहीं करना होता, तो वह पेन्सिल हमारे लिये भूमि है। हो सकता है किसी अन्य व्यक्ति या समाज के लिये वह भूमि न हो। परन्तु जिस व्यक्ति को वह निःशुल्क मिली है उसके लिये वह भूमि है। अतएव व्यक्तिगत दृष्टिकोण से कोई एक वस्तु किसी को भूमि होगी और किसी दूसरे को नहीं।



चित्र ६६—भूमि के अंग

* "Land is whatever forces nature supplies as a free gift"—Prof. S. K. Rudra, *Fundamentals of Economics*: p. 125.

† 'Under the term 'land' the economist includes not only the soil, but also water, sunshine and all the gifts of nature. It would thus be better to refer to the first agent of production as natural power, natural resources, or even nature"—Dr. Richards, *Groundwork of Economics* p. 40.

भूमि तथा पूँजी का भेद

भूमि की परिभाषा देने के उपरान्त भूमि तथा पूँजी (Capital) का भेद स्पष्ट कर देना भी अत्यन्त आवश्यक है। जो वस्तु मनुष्य को बिना मेहनत, त्याग या व्यय किये मिल जाय वह भूमि है। परन्तु जब किसी वस्तु को मनुष्य अपनी मेहनत से तैयार करे या जब किसी प्रकृतिदत्त वस्तु में मनुष्य अपना श्रम लगा दे तो वह वस्तु पूँजी हो जाती है। उदाहरण के लिये प्रकृति ने मनुष्य को जंगल मुफ्त प्रदान किये हैं इस कारण वे भूमि हैं। परन्तु मनुष्य ने अपनी मेहनत और अपने प्रयास से जंगलों तक जाने के रास्ते तैयार किये हैं और जंगलों की सफाई की है। अतएव अब ये जंगल भूमि न रह कर पूँजी हो गये हैं। भूमि पर जब मनुष्य अपनी मेहनत लगा देता है तो वह पूँजी बन जाती है।

२. भूमि के लक्षण

(Characteristics of land)

भूमि के निम्न महत्वपूर्ण लक्षण हैं :—

(१) भूमि मात्रा में स्थिर है—भूमि की मात्रा पूर्व निश्चित है और उसे न कोई घटा सकता है और न कोई बढ़ा ही सकता है। भूमि का क्षेत्रफल, उसकी जलवायु, उसके अन्दर पाये जाने वाले खनिज-पदार्थ, प्राकृतिक साधन तथा प्राकृतिक शक्तियाँ आदि किसी में भी परिवर्तन नहीं किया जा सकता। कुछ लोगों का मत है कि आज के विज्ञान के युग में मनुष्य में इतनी शक्ति है कि वह पृथ्वी का क्षेत्रफल बढ़ा सकता है। समुद्र आदि को सुखाकर वह जमीन का क्षेत्रफल बढ़ा सकता है। परन्तु यह विचार उचित नहीं है क्योंकि इस प्रकार जो जमीन बढ़ेगी वह 'भूमि' न होकर 'पूँजी' होगी। भूमि तो प्रकृति की निःशुल्क देन है और इस कारण मनुष्य उसे नहीं बढ़ा सकता।

(२) भूमि निःशुल्क देन है—भूमि की परिभाषा देते समय हम कह आये हैं कि भूमि प्रकृति की निःशुल्क (Free) देन है। इसके लिये मनुष्य का कुछ भी व्यय नहीं हुआ है। अन्य शब्दों में भूमि की उत्पादन-लागत कुछ भी नहीं है।

(३) भूमि में विभिन्नता पाई जाती है—सभी स्थान की जमीन एक सी नहीं होती। किसी स्थान की जमीन खेती के लिये अधिक उपजाऊ होती है और कोई बंजर होती है। कहीं अधिक वर्षा होती है और कहीं कम। कहीं खनिज-पदार्थ पाये जाते हैं और कहीं नदी-नाले। कोई स्थान मकान बनवाने के लिये उपयुक्त होता है तो कोई चारागाह के लिये। इस प्रकार भूमि एकसी नहीं होती।

(४) भूमि उत्पत्ति का निश्चेष्ट (Passive) साधन है—भूमि उत्पत्ति का एक ऐसा साधन है कि वह स्वयं उत्पादन-कार्य नहीं कर सकता, वरन्

अन्य साधन उसे व्यवहार में लाकर उत्पादन करते हैं। यह ठीक है कि भूमि के बिना उत्पादन नहीं हो सकता। परन्तु भूमि स्वयं उत्पादन नहीं कर सकती, अन्य साधन इसके द्वारा उत्पादन करते हैं। किसान जमीन पर खेती करता है, जमीन स्वयं खेती नहीं करती।

(५) भूमि का मूल्य उसकी स्थिति पर भी निर्भर रहता है—भूमि का मूल्य उसकी स्थिति (Location) पर भी निर्भर रहता है। यदि भूमि ऐसी जगह स्थित है जहाँ चारों ओर बड़े-बड़े बाजार हैं तथा जहाँ अनेक रास्ते आकर मिलते हैं तो उस स्थान का मूल्य बहुत अधिक होगा। इसके विपरीत बाजार से दूर स्थित स्थानों का मूल्य बहुत कम होगा।

(६) भूमि अचल है—भूमि को एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं हटाया जा सकता। जहाँ पर जो भूमि स्थित है वहीं पर वह रहेगी। मनुष्य एक स्थान से दूसरे स्थान तक आ-जा सकता है। परन्तु भूमि अचल (Immobile) है। आप चाहें कि बम्बई शहर को उठाकर कानपुर के पास खड़ा कर दें तो यह असंभव है।

३. भूमि का महत्त्व
(Importance of Land)

उत्पादन में भूमि का भारी महत्व है। उत्पादन चाहे छोटे पैमाने पर हो और चाहे बड़े पैमाने पर, बिना भूमि की सहायता के उत्पादन हो ही नहीं सकता। सभ्यता के उदय के प्रारंभिक काल में मनुष्य भूमि या प्रकृति पर पूर्णतः निर्भर था। आज-कल भी उसकी प्रकृति पर निर्भरता कम नहीं हुई है। भेद केवल इतना हो गया है कि प्रकृति से प्राप्त वस्तुओं को वह उनके प्राकृतिक रूप में उपभोग नहीं करता। अपनी मेहनत लगाकर वह उन्हें अधिक उपयोगी बना लेता है और इसीको वह प्रकृति पर अपनी विजय मानता है।

आजकल भी हम रहने तथा चलने-फिरने के लिये भूमि को आवश्यक समझते हैं। भूमि पर ही हम रहते हैं, इसी पर हमारे मकान आदि बनते हैं, इसीके ऊपर मिलों का निर्माण होता है और इसी पर बैठ कर दुकानदार सामान बेचते हैं। वह सब खाद्य-पदार्थ जिन पर हमारा जीवन निर्भर है और जिनके बिना हम जीवित नहीं रह सकते हमें भूमि से ही प्राप्त होते हैं। पानी, हवा, गर्मी, धूप, वर्षा, धरातल आदि सभी खाद्यान्न उत्पन्न करने के लिए आवश्यक हैं और यह सभी भूमि के अन्तर्गत आ जाते हैं। यही नहीं, सभी खनिज पदार्थ भी हमें पृथ्वी के गर्भ से ही प्राप्त होते हैं। इन्हीं खनिज पदार्थों की सहायता से उद्योग-धन्धे चलते हैं। वर्तमान समय में जो कुछ औद्योगिक और व्यापारिक उन्नति हो सकी है वह सब खनिज-

पदार्थों के उचित शोषण के ही कारण। वह शक्ति के स्रोत जिनके द्वारा कारखाने चलते हैं भूमि से ही हमें प्राप्त हुए हैं। अतः, यह कहा जा सकता है कि बिना भूमि की सहायता के मनुष्य किसी भी प्रकार से आर्थिक उन्नति नहीं कर सकता।

४. भूमि की कार्य-क्षमता
(Efficiency of Land)

उत्पादन के साधनों की कार्य-कुशलता के बारे में आपको बताया जा चुका है। कुशलता इस बात पर निर्भर है कि एक निश्चित समय में, अन्य बातें समान रहने पर, कोई मात्रा में अधिक या किस्म में अच्छी वस्तु तैयार कर सके। भूमि की कार्य-कुशलता का भी यही अर्थ है। अन्य बातें समान रहने पर, भूमि के जिस टुकड़े पर दूसरे की अपेक्षा मात्रा में अधिक या किस्म में अच्छी पैदावार होगी उसे अधिक कार्य-कुशल माना जायगा।

भूमि की कार्य-कुशलता निम्न बातों पर निर्भर है :

(१) भूमि की प्राकृतिक दशा—कोई भूमि अधिक उपजाऊ होती है और कोई कम, कोई पथरीली होती है और कोई रेगिस्तानी, कहीं जलवर्षा पर्याप्त होती है तो कहीं अधिक, कहीं बाढ़ आती है तो कहीं सूखा पड़ता है, कहीं की जमीन समतल होती है तो कहीं की उबड़-खाबड़ आदि। इन सब प्राकृतिक दशाओं पर भूमि की कार्य-शीलता निर्भर रहती है। जो भूमि खेती के उपयुक्त होगी वहाँ पर अच्छी खेती हो सकेगी और जहाँ पर कृषि की सुविधायें प्राप्त नहीं होगी वहाँ पर खेती अच्छी नहीं होगी। इस प्रकार जमीन की प्राकृतिक दशा पर उसकी कार्यशीलता निर्भर रहती है।

(२) वाह्य परिस्थितियाँ—भूमि की कार्यशीलता वाह्य परिस्थितियों पर भी निर्भर रहती है। जो भूमि बाजार के पास होती है या जहाँ यातायात के साधन पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं, वह भूमि अधिक उपयोगी मानी जाती है। अतः भूमि का ऐसा टुकड़ा जहाँ यातायात आदि की सभी सुविधायें प्राप्त हैं उस टुकड़े से अधिक कार्यशील माना जायगा जहाँ ये सुविधायें प्राप्त नहीं हैं।

(३) भूमि का उचित प्रयोग—भूमि की कार्यशीलता इस बात पर भी निर्भर है कि जो भूमि जिस काम के योग्य है उसे उसी काम में लाया जा रहा है या नहीं। उदाहरण के लिये भूमि के जिस टुकड़े के भीतर कोयले की खानें हैं, उस पर यदि खेती की जाय तो वहाँ खेती नहीं होगी। इसी प्रकार जो भूमि गेहूँ उगाने के योग्य है उस पर ईख की खेती ठीक नहीं होगी। इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि जमीन का प्रयोग उचित होना चाहिये।

(४) उचित संगठन—भूमि की कार्यशीलता इस बात पर भी निर्भर है कि जमीन पर उचित रूप से उत्पादन किया जाय। उत्पादन करते समय साधनों

का संगठन उचित रूप से होना चाहिये और जिस परिमाण में जिन साधनों की आवश्यकता है उतने ही परिमाण में उन्हें प्रयोग में लाना चाहिये।

५. विस्तृत तथा गहरी खेती

(Extensive and Intensive Cultivation)

यदि हम कृषि से अधिक पैदावार प्राप्त करना चाहते हैं तो इसके लिये हमारे पास केवल दो उपाय हैं—(१) या तो हम अधिक तथा नई जमीन को कृषि के काम में लायें, या (२) उसी जमीन पर अधिक खाद डालें और श्रम तथा पूँजी की मात्रा बढ़ायें। दोनों ही उपायों से खेत से पैदावार अधिक होगी। पहले तरीके को विस्तृत खेती (Extensive Cultivation) तथा दूसरे को गहरी खेती (Intensive Cultivation) कहते हैं।

विस्तृत खेती—जैसा ऊपर बताया जा चुका है, विस्तृत खेती में नए-नए खेतों को खेती के काम में लाया जाता है और इस प्रकार कृषि-योग्य भूमि का क्षेत्रफल बढ़ जाता है। स्वभाव से ही मनुष्य सबसे अधिक उपजाऊ भूमि पर पहले खेती करता है और बाद में कम उपजाऊ भूमि पर। अतएव विस्तृत खेती में जमीन कम उपजाऊ होती जाती है।

गहरी खेती—गहरी खेती में भूमि का क्षेत्रफल नहीं बढ़ाया जाता। उसी खेत पर अधिक खाद का प्रयोग किया जाता है, अच्छे-अच्छे बीज बोये जाते हैं, नये प्रकार के हलों से खेतों को जोता जाता है, सिंचाई की सुविधाओं को बढ़ाया जाता है और इस प्रकार खेती की उपज बढ़ाने का प्रयास किया जाता है। सूक्ष्म में भूमि की मात्रा वही रहती है, परन्तु पूँजी तथा श्रम की मात्रा बढ़ा दी जाती है।

विस्तृत और गहरी खेती में कौनसी प्रकार की खेती अच्छी है और कौनसी बुरी, इस संबंध में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। वास्तव में यह तो उस देश की दशा पर निर्भर है। यदि कोई देश नया है और वहाँ कृषि-योग्य भूमि सुगमता से उपलब्ध हो जाती है तो वहाँ पर विस्तृत खेती होगी और ऐसा करना उचित ही है। परन्तु जिस देश में भूमि की कमी होती है वहाँ पर गहरी खेती की जाती है।

वास्तव में किसान गहरी तथा विस्तृत खेती में से उसी को अपनावेगा जो उसके लिये आर्थिक दृष्टि से अधिक लाभदायक हो। यदि किसान यह देखता है कि विस्तृत खेती कर वह गहरी खेती की अपेक्षा कम लागत पर उत्पादन कर सकेगा तो वह ऐसा ही करेगा और स्थिति विपरीत होने पर वह गहरी खेती को अपनावेगा।

संसार के सभी देशों में आरंभ में किसानों ने विस्तृत खेती का ही सहारा लिया था। उस समय भूमि मात्रा में प्रचुर थी और इस कारण जब एक खेत का

उपजाऊपन कम हो जाता था, वे उस खेत को छोड़कर दूसरे खेत को जोतने लगते थे। परन्तु जब भूमि मात्रा में कम होने लगी उस समय उन्होंने गहरी खेती को अपनाया। इस प्रकार आरंभ में सभी देश विस्तृत खेती वाले होते हैं और बाद में वह गहरी खेती वाले हो जाते हैं। भारत में अब भूमि की कमी है। इस कारण उपज बढ़ाने के लिए गहरी खेती को अपनाना अत्यन्त आवश्यक है।

परीक्षा प्रश्न

उत्तर-प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—अर्थशास्त्र में भूमि शब्द का क्या अर्थ लिया जाता है? यह उत्पादन के अन्य साधनों से किस प्रकार भिन्न है? (१९४२)

२—भूमि किस प्रकार उत्पादन के अन्य साधनों से भिन्न है? उत्पादन के अन्तर्गत यह पूर्ति के नियम को किस प्रकार प्रभावित करती है? (१९३९)

३—भूमि पर सूक्ष्म नोट लिखिये। (१९३८)

उत्तर-प्रदेश, इन्टर कामर्स

४—अर्थशास्त्र में भूमि से क्या तात्पर्य है? उत्पादन के अन्य साधनों का इससे क्या मौलिक भेद है? (१९५०)

५—भूमि की वह कौन-कौन सी विशेषतायें हैं जो उत्पादन को प्रभावित करती हैं? उनका वर्णन तथा व्याख्या कीजिये। (१९४५)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

६—भूमि की उर्वरा शक्ति पर प्रभाव डालने वाली कौन-कौन सी बातें हैं? उन साधनों का भी वर्णन कीजिये जिन्हें भारतीय कृषिक-लाभप्रद तरीकों से अपना सकते हैं? (१९४२)

७—गहरी तथा विस्तृत खेती पर सूक्ष्म नोट लिखिये। (१९५१)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर कामर्स

८—भूमि की उत्पादन शक्ति पर प्रभाव डालने वाली बातों को बताइये। (१९५३)

९—भूमि की परिभाषा दीजिये। उत्पादन में इसके सहयोग को स्पष्ट कीजिये। (१९४१)

१०—भूमि की परिभाषा दीजिये। उत्पादन के साधनों में भूमि का क्या महत्व है? (१९५०)

११—कृषि-योग्य भूमि के उत्पादकता पर किन साधनों का प्रभाव पड़ता है? भारतीय उदाहरण दीजिये। (११४७)

१२—भूमि की परिभाषा दीजिये। कृषि योग्य भूमि की उत्पादकता को प्रभावित करने वाले कौन-कौन से साधन हैं? (१९४९)

सागर इन्टर आर्ट्स

१३—भूमि तथा श्रम की क्या विशेषतायें हैं ? उनमें से कौन सा साधन अधिक महत्वपूर्ण है ? (१९५१)

१४—भूमि के विशेषताओं पर सक सूक्ष्म नोट लिखिये। (१९५०)

सागर इन्टर कामर्स

१५—उत्पादन तथा भूमि की परिभाषा दीजिये। भूमि उत्पादन में जो कार्य करती है उन्हें बताइये। (१९४८)

तीसवाँ अध्याय

भारत की प्राकृतिक दशा

(Natural Condition of India)

किसी भी देश की आर्थिक प्रगति के लिये यह आवश्यक है कि उस देश के प्राकृतिक साधनों का हमें उचित ज्ञान हो। साथ में यह भी आवश्यक है कि उस देश की भौगोलिक परिस्थिति, प्राकृतिक बनावट तथा जलवर्षा आदि के विषय में भी उचित ज्ञान हो। इस अध्याय में इन्हीं बातों को बताया जायगा।

१. क्षेत्रफल तथा स्थिति

(Area and Location)

भारत का क्षेत्रफल तथा उसका आकार

भारत एक बड़ा महाद्वीप है जो ८° उत्तरी अक्षांश से लेकर ३७° उत्तर तक और ६६·२° देशान्तर से ९७° देशान्तर तक फैला है। इसकी लम्बाई २००० मील और चौड़ाई १५०० मील है। इसका कुल क्षेत्रफल १२,६९,६४० वर्गमील है, जो कि संसार भर का पन्द्रहवाँ भाग है।

भौगोलिक स्थिति

भारत उत्तर में ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों से घिरा हुआ है, जिनको पार करना आसान नहीं है। इसके दक्षिण, पूर्व और पश्चिम में समुद्र है—दक्षिण में हिन्द महासागर है, पश्चिम में अरब सागर तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी। इसकी सीमा पश्चिमी पाकिस्तान, तुर्किस्तान, तिब्बत, चीन, बर्मा तथा पूर्वी पाकिस्तान आदि देशों से मिली हुई है। इसका समुद्री तट ३५०० मील लम्बा है।

भारत की प्राकृतिक बनावट

दक्षिणी पठार भारत का सबसे पुराना भाग है। वह स्थान जो आजकल सतलज-गंगा का मैदान कहलाता है। किसी समय समुद्र के भीतर था। अति प्राचीन समय में पृथ्वी के भीतर भयंकर परिवर्तन उठे जिनके कारण दक्षिणी पठार के उत्तर में पाये जाने वाले समुद्र का उत्तरी भाग ऊपर उठने लगा और धीरे-धीरे करके वह इतना ऊँचा उठा कि एक पहाड़ बन गया। यही पर्वत हिमालय के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

अब स्थिति यह थी कि उत्तर में हिमालय पर्वत श्रेणियाँ थीं और दक्षिण में दक्षिणी पठार। इन दोनों के बीच के भाग में समुद्र था। धीरे-धीरे करके यह समुद्र

पट गया और वहाँ एक समतल मैदान हो गया जिसे आजकल सिन्ध-गंगा का मैदान कहते हैं।

२. भारत के प्राकृतिक भाग

(Natural Divisions of India)

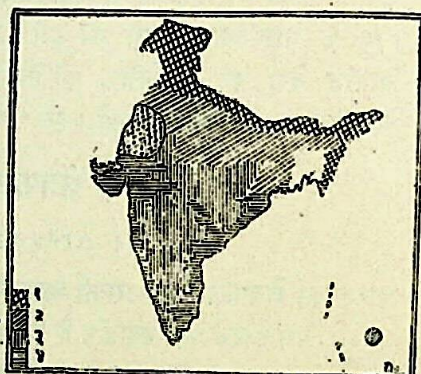
भूपटल की बनावट को ध्यान में रखते हुए भारत को चार प्राकृतिक भागों में बाँटा जा सकता है।

(१) उत्तर में स्थित हिमालय पर्वत श्रेणी

(२) सतलज-गंगा का मैदान

(३) दक्षिणी पठार

(४) समुद्र तट के मैदान जो कि दक्षिणी पठार के पूर्व तथा पश्चिम में पाये जाते हैं।



चित्र ६७—भारत के प्राकृतिक भाग

(१) हिमालय पर्वत श्रेणियाँ—यह पर्वत श्रेणियाँ संसार के नवीनतम पर्वतों में से हैं। यह पूर्व में आसाम से लेकर पश्चिम में काश्मीर तक फैली हुई हैं। यह १२५० मील लम्बी और १८० से २०० मील चौड़ी हैं।

हिमालय पर्वत तीन समानान्तर पर्वत श्रेणियों को मिलाकर बने हैं। ये श्रेणियाँ उत्तर से क्रमशः बड़ा हिमालय, छोटा हिमालय तथा बाहरी हिमालय के नाम से प्रसिद्ध हैं। 'बड़ा हिमालय' पर्वत श्रेणी की औसतन ऊँचाई २०००० फीट है। अधिक ऊँची होने के कारण यह सदैव बर्फ से ढकी रहती है। इसके दक्षिण में 'छोटा हिमालय' पर्वत श्रेणी है, जिसकी औसतन ऊँचाई ६००० से १२००० फीट है। यह ५० और ६० मील के करीब चौड़ी भी है। इसके दक्षिण में 'बाहरी हिमालय' है जिसे 'शिवालिक' भी कहते हैं। इसकी औसतन ऊँचाई २००० से ३००० फीट है और यह बालू, मिट्टी तथा बड़े-बड़े कंकड़ों से मिलाकर बनी है।

हिमालय का आर्थिक महत्त्व—इन पर्वत श्रेणियों का हमारे देश के लिये भारी आर्थिक महत्त्व है, क्योंकि इनसे अनेक लाभ प्राप्त हैं। इन पर्वत श्रेणियों से मानसून हवाएँ टकराती हैं जिससे गंगा-यमुना के मैदान में वर्षा होती है। साथ ही मध्य एशिया से आने वाली ठंडी हवाओं को ये रोक लेती हैं जिससे हमारा देश जाड़े के दिनों में अधिक ठंडा नहीं होने पाता। इन्होंने गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र तथा उनकी सहायक नदियों को जन्म दिया है। छोटे तथा बाहरी हिमालय पर्वत

श्रेणियों पर तरह-तरह के जंगल पाये जाते हैं। बाहरी हिमालय पर आसाम राज्य में चाय के बाग पाये जाते हैं जहाँ से देश की ६०% चाय आती है। इन पर्वतों में कहीं-कहीं छोटे मैदान भी पाये जाते हैं, जैसे काश्मीर और नैपाल। इन मैदानों को देखने हजारों मनुष्य प्रतिवर्ष आते हैं, क्योंकि यहाँ के प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त रमणीक होते हैं।

(२) सतलज-गंगा का मैदान—यह मैदान बहुत समतल है और इसकी ऊँचाई कहीं भी ६०० फी० से अधिक नहीं है। यह मैदान १५०० मील लम्बा और २०० मील चौड़ा है और उत्तर में शिवालिक पर्वतों से लेकर दक्षिण में विंध्याचल पर्वत तक तथा पश्चिम में सतलज और व्यास नदियों से लेकर पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदियों तक है। इस मैदान की भूमि अत्यन्त उर्वर है और अनेक नदियों के कारण सिंचाई की भी पर्याप्त सुविधा रहती है। फलतः यहाँ गेहूँ, चावल, चना, ज्वार, बाजरा, दाल आदि अनेक फसलें उगाई जाती हैं।

(३) दक्षिणी पठार—विंध्याचल पर्वत के दक्षिण में दक्षिणी पठार स्थित है। यह भारत का प्राचीनतम भाग है और अनुमान है कि इसकी रचना लगभग १,००० लाख वर्ष पहले हुई थी। इसका आकार त्रिभुजाकार (Triangular) है। इसका आधार (Base) विंध्य पर्वत और भुजायें पूर्वी तथा पश्चिमी घाट हैं। कुमारी अन्तरीप इसका शीर्ष (Apex) है। इसकी औसतन ऊँचाई २००० फीट है। इस पठार में बहुमूल्य खनिज पदार्थ पाये जाते हैं जैसे सोना, अभ्रक, अलमूनियम आदि। गोंड़वाना चट्टानों में कोयला पाया जाता है। इस प्रदेश में पाये जाने वाली मिट्टियों में काली मिट्टी विशेष उल्लेखनीय है, क्योंकि यह मिट्टी कपास की खेती के लिये अत्यन्त प्रसिद्ध है। पठार में बहुत से जंगल, नारियल के पेड़, ताड़ तथा अन्य उपयोगी वृक्ष पाये जाते हैं। कपास के अतिरिक्त यहाँ गन्ना, तिलहन, तम्बाकू, चाय, कहवा तथा मोटे अनाज की खेती होती है।

४) तटीय मैदान—दक्षिणी पठार के पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिण में समुद्र तट के मैदान हैं। पश्चिम में पश्चिमी मैदान और पूर्व और दक्षिण में पूर्वी मैदान हैं।

पूर्वी मैदान को दो भागों में बाँटा जाता है। नीचे का भाग कारोमंडल तट कहलाता है और उत्तर का भाग गोल कुंडा। पूर्वी तट के मैदान अधिक चौड़े हैं और बंगाल की खाड़ी में गिरने वाली नदियों के डेल्टे भी यहाँ पाये जाते हैं। पश्चिमी तट नारियल, कपास और कालीमिर्च, इलायची आदि मसालों के लिये

प्रसिद्ध है। प्रसिद्ध भड़ौच की रुई इसी प्रदेश से प्राप्त होती है। पूर्वी तट में चावल, कपास तथा ईख की खेती होती है।

३. भारत की जलवायु

(Climate of India)

वैसे तो जलवायु का प्रभाव मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं पर अत्यन्त गहरा पड़ता है फिर भी भारत में यह बात विशेष रूप से लागू होती है, क्योंकि यहाँ के अधिकांश व्यक्तियों का मुख्य उद्योग कृषि है और कृषि जलवर्षा, तापक्रम आदि पर बहुत अधिक निर्भर रहती है।

भारत का जलवायु मानसूनी जलवायु है और यहाँ पर ६० प्रतिशत वर्षा मानसूनी हवाओं से होती है।

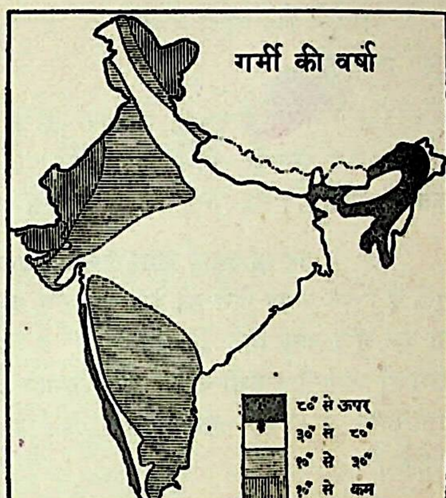
गर्मी की जलवायु—फरवरी के महीने में सूर्य मकर रेखा से चलकर भूमध्य रेखा के निकट आ जाता है और भारत पर उसकी किरणें कुछ-कुछ सीधी पड़ने लगती हैं। इस कारण तापमान बढ़ने लगता है। मई भारत का सबसे गरम महीना है। इस समय भारत के बड़े भाग में तापमान ६५° से भी अधिक बढ़ जाता है। परिणामतः लघु भार क्षेत्र बढ़ने लगता है। ज्यों-ज्यों गरमी बढ़ती जाती है यह लघुभार क्षेत्र भी बढ़ता जाता है। जब भारत में लघु भार क्षेत्र होता है, मकर रेखा के दक्षिण में प्रशान्त महासागर में वृहद् भार क्षेत्र स्थापित हो जाता है। हवायें हमेशा वृहद् भार क्षेत्र से लघु भार क्षेत्र की ओर से आती हैं और क्योंकि ये हवायें समुद्र से आती हैं इसलिये पानी से लदी होती हैं।

ये हवायें सबसे पहिले पश्चिमी घाट से आकर टकराती हैं और यहाँ घोर वर्षा करती हैं। पश्चिमी घाट में लगभग १००″ वर्षा होती है। पश्चिमी घाट से टकराकर ये हवायें ऊपर चढ़ती हैं। ऊपर चढ़ने से उनका बहुत सा पानी गिर जाता है, यहाँ तक कि जब ये पश्चिमी घाट के पहाड़ों को पारकर पूर्व की ओर आती हैं तो इनका पानी बहुत कम हो जाता है। इसी कारण मद्रास में केवल २०″ वर्षा होती है।

इस शाखा की कुछ हवायें नर्वदा तथा ताप्ती नदियों की तलेटियों से होकर छोटे नागपुर में ६०″ वर्षा करती हैं। कुछ हवायें काठियावाड़ से होकर उत्तर की ओर बढ़ती हैं। परन्तु मार्ग में रुकावट न होने के कारण राजस्थान सूखा रह जाता है।

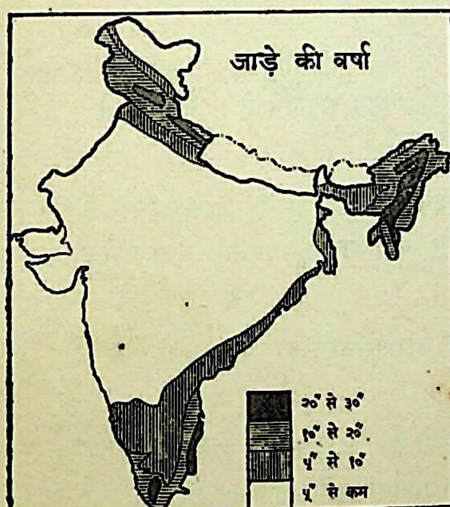
इन हवाओं की दूसरी शाखा बंगाल की खाड़ी की ओर जाती है। कुछ

हवायें तो वर्मा की ओर चली जाती हैं और कुछ गारो, खासी तथा जयन्तिया के पहाड़ों से टकरा कर चेरापूँजी में ६००″ तक वर्षा करती हैं। उसके पश्चात् ये हवायें हिमालय पर्वत के मैदान में वर्षा करती हैं। परन्तु ज्यों-ज्यों हवायें उत्तर की ओर बढ़ती हैं उनका पानी कम होता जाता है और इस कारण जलवृष्टि भी कम होती जाती है।



चित्र ६८—गर्मी की वर्षा

जाड़े की जलवायु—भारत में मानसून हवायें जून से सितम्बर तक चलती हैं। अगस्त आते आते तापमान में काफी कमी आ जाती है और इस कारण लघु भार क्षेत्र समाप्त होने लगता है। फलतः दक्षिणी पश्चिमी मानसून हवायें वापिस जाने लगती हैं। यह दशा सितम्बर से लेकर नवम्बर के अन्त तक या दिसम्बर के उपरान्त तक रहती है।



चित्र ६९—जाड़े की वर्षा

दिसम्बर तक भारत का तापमान बहुत गिर जाता है। जनवरी भारत का सबसे ठंडा महीना है। परिणामतः भारत के उत्तर पश्चिम भाग में एक वृहद् भार क्षेत्र स्थापित हो जाता है और भारत के दक्षिण में समुद्र पर लघुभार क्षेत्र स्थापित हो जाता है। अब हवायें भारत से समुद्र की ओर चलती हैं और उनकी दिशा उत्तरी पूर्वी होती है। ये हवायें वगाल की खाड़ी को पार करते समय कुछ पानी ले लेती हैं। इस कारण मद्रास में जलवृष्टि हो जाती है।

जाड़े के दिनों में भारत के उत्तरी पश्चिमी भाग में कुछ चक्रवात (Cyclones) भी आते हैं। इनसे उस भाग में कुछ जलवृष्टि हो जाती है।

भारत में जलवृष्टि की कुछ विशेषतायें और उनका आर्थिक महत्व

भारत में होने वाली जलवृष्टि की निम्न विशेषतायें ध्यान में अवश्य रखनी चाहिये :—

(१) भारत में ६०% जलवर्षा दक्षिणी पश्चिमी मानसून हवाओं से होती है जो लघु भार क्षेत्र पर निर्भर रहती हैं। यदि लघु भार क्षेत्र काफी विस्तृत और ताकतवर हुआ तब तो इन हवाओं से अधिक वर्षा होगी, अन्यथा नहीं।

(२) मानसून हवायें कभी जल्दी चलने लगती हैं और कभी काफी देर से चलती हैं। दस पन्द्रह दिन की देरी साधारण सी बात है। कभी जुलाई का महीना बिना एक बूँद पानी गिरे निकल जाता है और कभी जुलाई के प्रारम्भ से वर्षा प्रारम्भ हो जाती है। कभी वर्षा जल्दी समाप्त हो जाती है और कभी अक्टूबर तक चलती रहती है। इस अनिश्चितता के कारण फसलों को भारी नुकसान हो जाता है।

(३) क्योंकि अधिकांश जलवृष्टि गर्मी के दिनों में होती है और अन्य महीने सूखे ही रहते हैं, इसलिये यह आवश्यक होता है कि सिंचाई के लिये पानी इकट्ठा कर रक्खा जाय।

(४) भारत के अधिकांश भाग में औसतन वार्षिक जलवृष्टि ४०" से कम होती है। भारत जैसे गर्म देश के लिये यह बहुत अपर्याप्त है। अतएव खेती के लिये सिंचाई की सुविधा आवश्यक है।

(५) भारत में जलवृष्टि की अनिश्चितता के कारण यह आवश्यक है कि सिंचाई के साधनों की पर्याप्त मात्रा में उन्नति की जाय। जब तक ऐसा नहीं होता भारत से दुर्भिक्ष का डर नहीं हटेगा।

(६) जलवृष्टि की अनिश्चितता के कारण भारत का कृषि उद्योग भी बड़ा अनिश्चित हो गया है।

इसी कारण यह कहावत चल निकली है कि भारतीय कृषि जलवृष्टि का जुआ है (Indian agriculture is a gamble in rains)। इस कारण सरकार की करों (Taxes) द्वारा जो आमदनी होती है वह भी अनिश्चित हो गई है। यदि यह कहा जाय कि जलवृष्टि की अनिश्चितता के कारण हमारी सम्पूर्ण आर्थिक प्रणाली में अनिश्चितता आ गई है तो अतिशयोक्ति न होगी। अपनी आर्थिक प्रणाली को सुदृढ़ तथा निश्चित बनाने के लिये हमारे देश में सिंचाई के साधनों की उचित रूप से तथा पर्याप्त मात्रा में उन्नति की आवश्यकता है।

४ भारत की मिट्टी

(Soils of India)

किसी भी देश की आर्थिक प्रगति वहाँ पाई जाने वाली मिट्टी पर बहुत अधिक मात्रा में निर्भर रहती है, क्योंकि मिट्टी की किस्म और उपजाऊपन पर ही खाद्य तथा व्यवसायिक फसलों की मात्रा निर्भर है। भारत जैसे देश के लिये मिट्टी का महत्व तो बहुत ही अधिक है।

भारत में मोटे रूप से पाँच प्रकार की मिट्टी पाई जाती है।

(१) काली या रेगर मिट्टी
(२) लाल या पीली मिट्टी
(३) गंगवार मिट्टी
(४) लैटराइट मिट्टी या रवादार मिट्टी
(५) बालू—जो रेगिस्तान में पाई जाती है।

(१) काली या रेगर मिट्टी

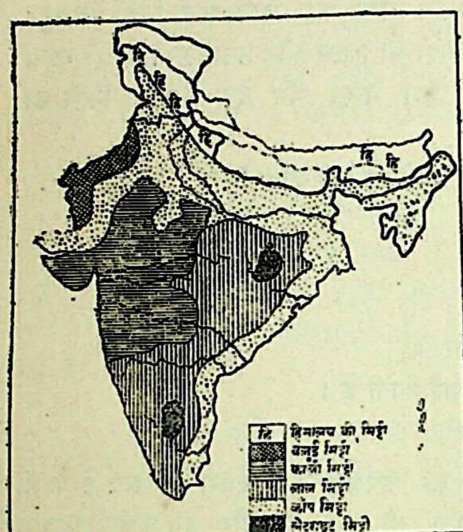
रेगर तेलगू भाषा शब्द 'रेगरा' का अपभ्रंश है। रेगरा का अर्थ है काली मिट्टी। यह मिट्टी पुरानी जमी हुई लावा की बनी है और इस कारण अत्यन्त उपजाऊ है। इसका रंग काला इसलिये होता है क्योंकि इसमें लोहा मिला रहता है। साथ ही इसमें चूना तथा मैगनेसियम कार्बोनेट आदि रासायनिक पदार्थ भी मिले रहते हैं। यह बहुधा गीली तथा चिकनी होती है। बरसात में यह अधिक पानी सोख लेती है जो गर्मी के दिनों में सुगमता से उड़ने नहीं पाता। इसी कारण यह कपास की खेती के लिये अत्यन्त उपयोगी है।

यह मिट्टी पश्चिम में बम्बई से लेकर पूर्व में अमरकंटक तक और उत्तर में गूना से लेकर दक्षिण में तेलगाँव तक पाई जाती है। इस प्रकार इसके अन्तर्गत बम्बई प्रदेश, बरार, हैदराबाद का कुछ भाग तथा मध्य प्रान्त और मद्रास राज्यों के कुछ जिले आ जाते हैं।

(२) लाल या पीली मिट्टी

लाल या पीली मिट्टी उन चट्टानों के टूटने से बनी है जिनमें लोहे की मात्रा काफी अधिक होती है। सूर्य की गर्मी के कारण चट्टानों में पाया जाने वाला लोहा टूटकर मिट्टी में मिल जाता है और इसी कारण मिट्टी का रंग लाल या पीला हो जाता है। इस प्रकार की मिट्टी में पोटास और चूना भी पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। परन्तु इसमें नोषजन (नाइट्रोजन) तथा स्फुरित अम्ल (फासफोरिक एसिड) की कमी रहती है।

भारत में यह मिट्टी अधिकतर ताप्ती नदी के दक्षिण में ही पाई जाती है। यह मिट्टी मद्रास राज्य, मैसूर, हैदराबाद के पूर्वी भाग, उड़ीसा तथा नागपुर में ही अधिक पाई जाती है।



चित्र ७०—भारत की मिट्टी

यह मिट्टी समान रूप से सभी जगह उपजाऊ नहीं है। इसका उपजाऊपन मिट्टी की गहराई पर निर्भर रहता है। जिस स्थान पर मिट्टी अधिक गहरी होती है वहाँ यह अधिक उपजाऊ होती है।

(३) गंगवार मिट्टी

कृषि की दृष्टि से भारत में यह मिट्टी बड़ी महत्व की है। गंगा-सतलज के मैदान में यह पूरी तरह फैली है। पंजाब, उत्तर-प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल तथा आधे आसाम में यह मिट्टी पाई जाती है। पूर्वी घाट में नदियों के डेल्टाओं में भी यही मिट्टी पाई जाती है।

यह मिट्टी नदियों द्वारा लाई गई है। इसी कारण गंगा-सतलज के मैदान के मध्य भाग में यह अधिक गहरी है और आगे चलकर यह कम गहरी हो गई है।

इस मिट्टी में चूना तथा पोटास पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है और नोषजन, ह्यूमस तथा स्फुरिक अम्ल की कमी रहती है। यह मिट्टी तीन प्रकार की होती है—चीका, बलुई तथा दोमट। इनमें दोमट सबसे अच्छी होती है क्योंकि इसमें चीका तथा बालू दोनों मिट्टियों के गुण विद्यमान रहते हैं।

(४) लैटराइट या रवादार मिट्टी

यह मिट्टी बिलकुल उपजाऊ नहीं होती। जहाँ पर यह पाई जाती है वहाँ कुछ भी पैदा नहीं होता। इसका रंग लाल होता है और यह मोटी होती है। साथ ही इसमें पत्थरों के टुकड़ों की भरमार रहती है। इसके अनुपजाऊपन का कारण यह है कि इसमें मिला वनस्पति भाग पानी के साथ बह जाता है। यह मिट्टी दक्षिण भारत के पठार, मध्य भारत, मध्य प्रदेश, राजमहल, दक्षिण बम्बई, मालाबार तथा आसाम के कुछ भाग में पाई जाती है।

(५) बालू

यह वहाँ पाई जाती है जहाँ वर्षा नहीं होती या जो स्थान रेगिस्तान हैं। गर्मी के कारण इसके कण अलग-अलग हो जाते हैं और इस मिट्टी में कुछ भी पैदा नहीं होने पाता। यह मिट्टी राजपूताना में पाई जाती है।

मिट्टी की थकावट (Exhaustion) तथा खाद की आवश्यकता

मिट्टी की उर्वरा शक्ति इस बात पर निर्भर रहती है कि उसमें किस प्रकार की तथा कौनसी खाद कितनी मात्रा में डाली जाती है। भारत के किसान वर्षों से खेती करते चले आये हैं। परन्तु वह अपने खेतों में पर्याप्त मात्रा में खाद नहीं देते। इसका परिणाम यह हुआ है कि भूमि की उत्पादन शक्ति कम हो गई है और देश की उपज कम हो गई है। अतएव इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि खेतों में उपयुक्त खाद पर्याप्त मात्रा में डाली जाय।

खाद कई प्रकार की होती है। परन्तु निम्नलिखित प्रकार की खादें विशेषतः उल्लेखनीय हैं

(१) गोबर, गोमूत्र तथा मल की खाद
(२) हड्डी की खाद
(३) हरी खाद
(४) रासायनिक खाद

गोबर, गोमूत्र तथा मल आदि की खाद बनाई जाती है। परन्तु हमारे देश के किसान गोबर की उपली बनाकर उसे जला डालते हैं और खाद देने के काम में नहीं लाते। गोमूत्र का भी प्रयोग इस काम में नहीं किया जाता और जानवरों का मूत्र बेकार चला जाता है। यदि जानवरों के पेशाब को इकट्ठा कर उसे खेत में डाला जाय तो बड़ा लाभ होगा। हिसाब लगाकर देखा गया है कि केवल उत्तर प्रदेश में ही गोमूत्र से १३२ करोड़ मन खाद तैयार की जा सकती है। जहाँ तक मल का प्रश्न है हमारे देश के किसान उसे छूना पसन्द ही नहीं करते। इसमें जाति आदि से निकाल देने का प्रश्न उठ सकता है।

हड्डी को यदि बारीक पीस कर उसे खेतों में डाला जाय तो उपज काफी अधिक बढ़ सकती है। परन्तु दुर्भाग्य से ऊँची जाति के मनुष्य हड्डी छूना पसन्द ही नहीं करते। दूसरे हड्डियों को भारी मात्रा में विदेशों को निर्यात कर दिया जाता है।

देश में हरी खाद का प्रयोग बहुत ही कम होता है। कुछ किसान सनई का प्रयोग इस काम के लिये करते हैं। परन्तु प्रयोग अधिक व्यापक नहीं हो पाया है।

रासायनिक खादों का प्रभाव खेत पर शीघ्र ही पड़ता है। परन्तु एक तो यह बहुत महँगी होती हैं दूसरे इनका गलत प्रयोग खेत को भारी हानि पहुँचाता है। अतएव इनका प्रयोग बड़ी सावधानी से करना चाहिये।

भूमि का क्षरण (Soil Erosion)

यह तो सभी जानते हैं कि पृथ्वी के धरातल के ऊपर मिट्टी की एक तह होती है जिस पर पेड़ पौधों का जीवन निर्भर है। इसी मिट्टी की उर्वरा शक्ति पर कृषि की मात्रा निर्भर रहती है। मेह या हवा द्वारा जब इस मिट्टी के गुणकारी तत्त्व बह जाते हैं तो इसे भूमि-क्षरण (Soil Erosion) कहते हैं।

इस क्रिया के प्रायः दो रूप होते हैं। (१) सतह का क्षरण (Sheet-Erosion) जबकि भूमि के मुलायम तथा बारीक कण पानी के साथ बह जाते हैं या हवा के साथ उड़ जाते हैं। (२) गहरा कटाव (Gully Erosion) जबकि अधिक मात्रा में भूमि का क्षरण होता है और गहरे खड्ड बन जाते हैं।

वैसे तो यह समस्या सभी देशों में पाई जाती है परन्तु भारत में यह बहुत ही विकट रूप में पाई जाती है। यमुना तथा चम्बल नदियों के किनारे तथा मध्य प्रदेश, मध्य भारत और ग्वालियर में बहने वाली सभी नदियों के किनारे किनारे यह क्षति बड़े भयंकर रूप से हो रही है। अनुमान है कि उत्तर प्रदेश में कृषि योग्य ६८० लाख एकड़ भूमि में से ८० लाख एकड़ भूमि-क्षरण के कारण बेकार हो गई है।

डा० गौरी (Gorrie) का अनुमान है कि पंजाब राज्य में ८०२ टन भूमि प्रति एकड़ के हिसाब से प्रति वर्ष कट कर बह जाती है। यदि भूमि का क्षरण इसी गति से होता रहा तो शीघ्र ही भारत की उपजाऊ भूमि बंजर हो जायगी।

भूमि-क्षरण रोकने के उपाय

भूमि-क्षरण रोकने का उपाय यही है कि पानी के बहाव के वेग को कम कर दिया जाय। जब पानी के बहाव का वेग कम हो जायगा तो मिट्टी भी कम कटेगी और परिणामतः क्षरण भी कम होगा। इसके लिये निम्न उपाय आवश्यक है।

(१) जंगल लगाना—जंगलों से पानी का बहाव कम हो जाता है। अतएव जितने पेड़ लगाये जायेंगे उतना ही लाभ होगा।

(२) चरागाहों को स्वतन्त्र छोड़ने की प्रथा बन्द करना—चरागाह चरते समय घास को जड़ से उखाड़ लेते हैं। इससे बड़ी हानि होती है। यदि घास की जड़ें उगी रहेंगी तो पानी भूमि में समा जायगा और पानी का बहाव कम हो जायगा।

(३) वर्षा के समय खेत में किसी फसल का होना—इससे मिट्टी पेड़ों की जड़ों से लिपटी रहेगी और साथ ही पेड़ पौधों के कारण पानी का बहाव कम हो जायगा।

(४) खेतों का ढ़ाल कम करना—ढाल कम हो जाने से पानी के बहाव में कमी आ जायगी।

(५) सीढ़ी दार खेती (Terrace Farming)—यदि जमीन अधिक ढालू हो तो सीढ़ियाँ बनाकर उसपर खेती करनी चाहिये। आसाम के चाय के बागों में इसी प्रकार की खेती बड़ी लाभदायक होगी।

(६) बाँध बाँधना—खेतों के चारों ओर बीच में भी बाँध लगाने चाहिये जिससे पानी के बहाव की गति कम हो जाती है।

विदेशों में इस समस्या को सुलझाने के लिये सरकारें बहुत रुपया दिया करती हैं। आस्ट्रेलिया तथा अमरीका में भूमि-क्षरण रोकने के लिये भूमि रक्षक समितियाँ (Soil Conservation Boards) स्थापित की गई हैं जो अच्छा कार्य कर रही हैं। हमारे देश में भी इस प्रकार की समितियों की बड़ी आवश्यकता है।

परीक्षा प्रश्न

उत्तर-प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—प्रकृति ने भारत को किस सीमा तक औद्योगिक प्रगति के लिये उचित बनाया है? इस दृष्टिकोण से भारत के प्राकृतिक स्रोतों का वर्णन कीजिये। (१९३८, १९३१)

२—भारत की जलवायु तथा मिट्टियों का वर्णन कीजिये और देश की आर्थिक व्यवस्था पर उनके प्रभाव को बतलाइये। (१९३३)

३—उत्तर-प्रदेश की मुख्य मिट्टियों तथा जलवायु का वर्णन कीजिये। इनका राज्य की आर्थिक व्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ा है? (१९२९)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

४—राजस्थान की मिट्टी तथा जलवायु की विशेषताओं का वर्णन कीजिये। इनसे राज्य की आर्थिक व्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ा है? (१९५३)

५—भारत की मिट्टी तथा जलवायु का वर्णन कीजिये और यह भी बताइये कि इनका भारत की अर्थ-व्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ा है? (१९४९)

६—भारत में मानसूनों का देश के व्यक्तियों की आर्थिक स्थित पर क्या प्रभाव पड़ा है? अच्छी तरह समझाइये। (१९४१, १९३७)

७—मानसून किसे कहते हैं? यह कैसे उत्पन्न होती हैं? भारत में मानसूनों के आर्थिक प्रभाव को बताइये। (१९३५)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर कामर्स

८—किसी देश के आर्थिक विकास पर वहाँ की जलवायु तथा प्राकृतिक दशाओं के पड़ने वाले प्रभावों की व्याख्या कीजिये। (१९५०)

सागर इन्टर आर्ट्स

९—भारत की मिट्टी पर एक सूक्ष्म नोट लिखिये। (१९५१)

दिल्ली हायर सेकेन्ड्री

१०—हिमालय पर्वत मालायें भारत के आर्थिक जीवन को किस प्रकार से प्रभावित करती हैं? (१९५०)

११—भारत के क्या प्राकृतिक साधन हैं? क्या आप यह समझते हैं कि इनके कारण भारत संसार का एक अत्यन्त धनाढ्य देश है? (१९४९)

१२—भारत में मानसून की गति को सूक्ष्म में बताइये। (१९४९)

इक्तीसवाँ अध्याय

भारत के बन

(Forests of India)

जब भारत की आबादी अधिक नहीं थी उस समय हमारे देश में बहुत अधिक जंगल पाये जाते थे। हिमालय की ऊँची पर्वत शिखाओं तथा राजपूताने के रेगिस्तान को छोड़कर बाकी सभी स्थानों पर घने जंगल थे। परन्तु ज्यों-ज्यों आबादी बढ़ती गई और मनुष्य अधिक संख्या में मैदानों में बसने लगे, जंगल साफ होने लगे और धीरे-धीरे काफी जंगल कट गये। यों तो सभी देशों में ऐसा ही हुआ है परन्तु हमारे देश में यह बरबादी काफी दिनों तक चलती रही। ब्रिटिश राज्य के समय जंगलों की रक्षा की तरफ ध्यान दिया गया और तभी इनका नष्ट होना बन्द हुआ।

भारत में कई प्रकार की जलवायु पाई जाती है और इस कारण यहाँ कई प्रकार के जंगल भी हैं। मोटे तौर पर यहाँ पाँच प्रकार के जंगल पाये जाते हैं— (१) पहाड़ी वन (२) सदाबहार बन (३) पतझड़ वाले बन (४) काँटेदार बन तथा (५) ज्वार प्रान्तीय बन।

(१) पहाड़ी बन—हमारे देश के पहाड़ जंगलों से ढँके हुए हैं। परन्तु वर्षा तथा ऊँचाई के अनुसार उसका स्वभाव बदल जाता है। इन पहाड़ों पर समुद्र तल से ४०००-५००० फुट की ऊँचाई तक उष्ण प्रदेश के जंगल मिलते हैं। ५००० फुट से ६००० फुट की ऊँचाई तक सदाबहार के बन मिलते हैं। यह हमेशा हरे रहते हैं। ६००० फुट से १२००० फुट की ऊँचाई तक नोकदार जंगल मिलते हैं। इनमें पेड़ों के पत्ते नोकदार होते हैं जिससे बर्फ गिरते ही खिसक जाय तथा पत्तों पर जमी न रहे। १२,००० फुट से अधिक ऊँचाई पर आल्प्स प्रदेश के बन या उच्च पर्वतीय बन मिलते हैं। पूर्वी हिमालय तथा आसाम में ३००० से ७००० फु० की ऊँचाई तक ओक, मगोलिया तथा पाइन के जंगल पाये जाते हैं। उत्तरी पश्चिमी हिमालय पहाड़ पर देवदार के जंगल पाये जाते हैं जो ६००० से ८००० फु० की ऊँचाई तक मिलते हैं। ८००० फुट से भी अधिक ऊँचाई पर फर तथा चीड़ के पेड़ पाये जाते हैं।

(२) सदा बहार बन—यह बन उन स्थानों पर पाये जाते हैं जहाँ वर्षा अधिक होनी हैं तथा जहाँ जाड़े में भी तापमान कम नहीं होता है। ऐसे बन पश्चिमी तट पर उत्तरी किनारे से दक्षिणी किनारे तक तथा उप-हिमालय प्रदेश में पाये जाते हैं। यह हमेशा हरे-भरे रहते हैं तथा इनके पेड़ों की पत्तियाँ कभी नहीं गिरतीं। इनके पेड़ बहुत लम्बे चले जाते हैं और घने भी होते हैं। इन बनों के मुख्य पेड़, बाँस, ताड़ तथा फर्न हैं। ये बन इतने ही घने हैं जितने भूमध्य रेखा के आसपास के बन।

(३) पतझड़ वाले बन—यह बन उन स्थानों पर पाये जाते हैं जहाँ वर्षा अधिक नहीं होती। वर्षा की कमी के कारण पेड़ों की पत्तियाँ गर्मियों में गिर जाती हैं। यह जंगल दक्षिणी पठार के कुछ भाग में, मध्य प्रदेश तथा गंगा के मैदान में अधिक पाये जाते हैं। इनके प्रमुख पेड़ साल तथा टीक हैं।



चित्र ७१—भारत के बन

(४) काँटेदार बन—यह बन उन स्थानों पर पाये जाते है जहाँ वार्षिक औसतन वर्षा २० इञ्च से ४० इंच तक ही होती है। वास्तव में इनको जंगल कहना ठीक नहीं है। यह झाड़ियाँ मात्र ही हैं। यह राजपूताना तथा पंजाब में पाये जाते हैं। कीकर तथा बबूल इनके प्रमुख पेड़ हैं। इन पेड़ों में काँटे होते हैं इसी कारण यह काँटेदार बन कहलाते हैं।

(५) ज्वार प्रान्तिक बन—यह बन उन स्थानों पर पाये जाते हैं जहाँ समुद्र का पानी ज्वार के साथ जमीन पर बढ़ आता है। इसी कारण यह जंगल नदियों के डेल्टाओं में पाये जाते हैं जहाँ समुद्र पास होता है। भारत में ऐसे जंगल बंगाल में स्थित सुन्दर बन में ही पाये जाते हैं जहाँ का सुन्दरी पेड़ प्रसिद्ध है। पूर्वी किनारे पर यह कहीं-कहीं पाये जाते हैं। इन जंगलों में जहरीले साँप तथा हिंसक जन्तु भी पाये जाते हैं।

साधारण तौर पर भारत की आबादी का ⅕ भाग जंगलों से घिरा हुआ है। निम्न तालिका से यह बात स्पष्ट हो जायगी :—

१९४९-५०

राज्य		कुल क्षेत्रफल (हजार वर्ग मील में)	जंगलों से घिरा हुआ क्षेत्र (हजार वर्ग मील में)	जंगलों का क्षेत्रफल कुल क्षेत्रफल का प्रतिशत
पूर्वी भाग				
आसाम		५४,४०८	१३,३३९	२४·५२
बिहार		४५,०११	९,०४३	२०·०९
उड़ीसा		३८,४८७	२,९१३	७·५७
प० बंगाल		१९,६९६	४,०६२	२०·६२
मनीपुर		५,५१८	१,४४०	२६·१०
त्रिपुरा		२,५५०	२,२१३	८५·७८
अंडमान और निकोबार		२,०५८	१,६००	७७·६३
	योग	१६७,७५८	३४,६१०	२०·६२
पश्चिमी भाग				
पंजाब		२३,९२२	२,९४३	१२·३०
उत्तर प्रदेश		७२,५९७	४,११५	११·१८
जम्मू और काश्मीर		५९,३७९	७,०७७	११·९२
पेपसू		७,४३१	१८२	२·८३
राजस्थान		८३,३२७	८,१८०	९·८२
सौराष्ट्र		१३,८५५	५९२	४·३३
अजमेर		१५,४७	३८०	२४·५६
बिलासपुर		२९०	१२८	४४·१४
दिल्ली		३७०	१२७	१·१७
कच्छ		१०,८६४	२,१५०	३२·१३
हिमाचल प्रदेश		६,६९२	२९,८७४	१०·७०
	योग	२७९,०७४	२६,१८१	३१·४०
मध्य भाग				
मध्य प्रदेश		८३,३७५	७,१३८	२३·९७
मध्य भारत		२९,७८५	१,४३६	३२·६२
भोपाल		४,४०२	४,९३७	३२·६९
विंध्य प्रदेश		१५,१०४	३९,६९२	२९·९२
	योग	१३२,६६६	१३,०९७	१८·३९
दक्षिणी भाग				
बम्बई		७१,२१३	२१,८४४	२२·५५
मद्रास		८१,७८६	६,२८७	११·५५
हैदराबाद		५२,५७२	३,०१०	१५·३९
मैसूर		१८,८७३	१,९५३	३३·३७
ट्रावनकोर कोचीन		५,८५२	७४०	७२·९१
कुर्ग		१,०१५		
	योग	३३१,३११	४३,५२९	१८·९१
भारतीय संघ		८१०,८०९	१४७,७०५	१८·२२

दूसरे देशों से तुलना

यदि हम भारत के बन प्रदेशीय भाग की तुलना अन्य देशों के बन-प्रदेशीय भाग से करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत में अधिक मात्रा में बन नहीं पाये जाते। यह निम्न तालिका से स्पष्ट है—

देश	बनों से घिरी हुई भूमि का प्रतिशत
फिनलैंड	७४
स्वीडन	५५
जापान	५२
रूस	४४
आस्ट्रेलिया	३८
जेकोस्लोवाकिया	३४
स्विटजरलैंड	३३
कनाडा	३२·२
नार्वे	२६
संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	२४·७
रूमानिया	२४

इन देशों की तुलना में भारत का केवल १६% भाग जंगलों से घिरा हुआ है। यह मात्रा में बहुत कम है और इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि जंगलों की मात्रा बढ़ाई जाय। इसके लिये सरकार तथा व्यक्तियों को मिलकर काम करना चाहिये।

जंगलों से लाभ

जंगलों से अनेक लाभ हैं। इस कारण इसका भारी आर्थिक महत्त्व है। वनों से होने वाले लाभों को दो भागों में बाँटा जा सकता है :—(१) प्रत्यक्ष लाभ (२) अप्रत्यक्ष लाभ।

प्रत्यक्ष लाभ—जंगलों से निम्न प्रत्यक्ष लाभ हैं :—

(१) जंगलों से लकड़ी प्राप्त होती है जो फर्नीचर बनाने के काम आती है। पेड़ों की छोटी तथा पतली टहनियों को सुखाकर जलाने के काम में लाया जाता है।

(२) इनसे सागौन की लकड़ी प्राप्त होती है जो समुद्री जहाज तथा हवाई जहाज बनाने के काम आती है। आजकल समुद्री जहाजों में स्पात का प्रयोग अधिक होने लगा है। परन्तु प्राचीन समय में लकड़ी का प्रयोग ही अधिक व्यापक था।

(३) बच्चों के खेलने के लिये खिलौने जंगलों से प्राप्त लकड़ी से बनते हैं।

(४) जंगलों से तरह-तरह के रस प्राप्त होते हैं। रबड़, जिसका महत्त्व आधुनिक जीवन में बहुत अधिक है, एक पेड़ का रस है।

(५) जंगलों से हजारों प्रकार की जड़ी बूटियाँ प्राप्त होती हैं जिनसे तरह-तरह की दवायें बनती हैं।

(६) जंगलों से कत्था मिलता है जिसका प्रयोग भारत में बहुत अधिक होता है। तारपीन का तेल जो 'रेजिन' से बनता है, एक पेड़ का रस है।

(७) जंगलों में घास पैदा होती है जो जानवरों के खाने के काम आती है।

(८) जंगलों से प्राप्त होने वाले बाँस, पेड़ों की सूखी पत्तियों और 'सवाई' तथा 'भाभर' घासों से कागज बनता है।

(९) जंगलों में तरह-तरह के जानवर एवं पक्षी पाये जाते हैं जो मनुष्य के लिये आमदनी के साधन हैं।

(१०) बबूल तथा 'मेरीबोलनस' पेड़ों की छालें चमड़ा पक्का करने के काम में लाई जाती हैं।

अप्रत्यक्ष लाभ—जंगलों से अनेक अप्रत्यक्ष लाभ हैं जिनमें निम्न मुख्य हैं :—

(१) पेड़ बहुत ठंडक पहुँचाते हैं। गर्मी के दिनों में जब सड़कों पर गर्मी लगती है तो पेड़ की छाया शीतल होती है। अतएव जहाँ जंगल पाये जाते हैं, वहाँ का तापमान कम होता है और वहाँ ठंडक रहती है।

(२) जंगलों से वर्षा की मात्रा बढ़ जाती है। भाप के भरे बादल जब जंगलों के ऊपर होकर जाते हैं तो ठंडे वायु मंडल को छूकर वह स्वयं ठंडे हो जाते हैं और अपना पानी गिरा देते हैं। यह देखा गया है कि नील नदी के डेल्टे में जब जंगल नहीं थे तब वहाँ वर्ष में केवल छै दिन वर्षा होती थी। परन्तु जंगल लगने के पश्चात् अब वहाँ वर्षा ४० दिन होने लगी है।

(३) इनके कारण मिट्टी का क्षरण कम हो जाता है क्योंकि यह पानी के बहाव को कम कर देते हैं।

(४) पेड़ों के पत्ते गिर कर मिट्टी में मिल जाते हैं और मिट्टी का उपजाऊ-पन बढ़ाते हैं।

(५) जंगल प्राकृतिक सौन्दर्य को बढ़ाते हैं।

(६) युद्ध के समय यह प्राकृतिक रुकावट का काम देते हैं तथा सिपाहियों को छिपने के लिये स्थान प्रदान करते हैं।

भारतीय बनों का वर्गीकरण तथा संचालन

सन् १८५० तक हमारे देश के जंगलों की देख-भाल के लिये कुछ भी प्रबन्ध न था और जंगल बे-रोक टोक काटे जाते थे। कभी-कभी जंगली जातियाँ मीलों लम्बे बनों को काट डालती थीं या जला डालती थीं। ब्रिटिश सरकार ने जंगलों का आर्थिक महत्व समझ उनकी रक्षा के लिये कदम उठाये। सन् १८४७ में बम्बई राज्य में जंगलों का एक रक्षक (Conservator of Forests) नियुक्त किया गया और १८५८ में मद्रास में ऐसे ही एक अफसर की नियुक्ति हुई। धीरे-धीरे अन्य प्रान्तों में भी ऐसे अफसर नियुक्त हुए। १८६३ में सर्व प्रथम जंगल के बड़े अफसर की नियुक्ति की गई जिसका कार्य भारतीय बनों का वैज्ञानिक ढंग से प्रबन्ध करता था। १८६४ में भारत सरकार ने एक जंगल विभाग (Forest Department) खोला। इसका कार्य जंगलों का प्रबन्ध तथा उनकी रक्षा करना था। १६३५ के भारतीय विधान के अनुसार बनों की देख-भाल का कार्य प्रान्तीय सरकारों के अधीन हो गया और तब से यही इनकी देख-भाल करती हैं।

जंगल विभाग ने भारतीय बनों को, उसकी उपयोगिता के अनुसार, चार भागों में बाँटा है :—

(१) वह जंगल जिनकी रक्षा जलवायु तथा प्राकृतिक कारणों से आवश्यक है।

(२) वह जंगल जो व्यापार के लिये बहुमूल्य लकड़ी देते हैं।

(३) वह जंगल जो मामूली लकड़ी देते हैं और जिनका संचालन जलाने की लकड़ी के लिये तथा चारे के लिये आवश्यक है।

(४) चारागाह, जो जंगल तो नहीं हैं परन्तु सुविधा के लिये इनकी देख-भाल जंगल विभाग के आधीन है।

जंगलों को एक दूसरे ढंग से तीन भागों में बाँटा गया है—(१) संचित बन (२) रक्षित बन तथा (३) अवर्गीय बन। संचित बन सबसे महत्वपूर्ण है, क्योंकि यहाँ बहुमूल्य लकड़ी पाई जाती है। अतएव यहाँ जानवरों को चराने की आज्ञा नहीं दी जाती और लकड़ी काटने की आज्ञा भी सोच समझ कर दी जाती है। रक्षित बन वह हैं जहाँ अच्छी लकड़ी पैदा होती है और जहाँ लकड़ी काटने तथा पशु चराने की आज्ञा माँगने पर मिल जाती है। अवर्गीय बनों से जलाने की लकड़ी लाई जाती है और इनका आर्थिक महत्व अधिक नहीं है। इन बनों से लकड़ी काटने का काम एक ठेकेदार को दे दिया जाता है।

भारत सरकार की बन-सम्बन्धी नीति—

दुर्भाग्य से राज्य की सरकारों की नीति बनों के सम्बन्ध में बहुत अच्छी नहीं रही है। उन्होंने जंगलों के वर्गीकरण और उनकी रक्षा करने तक ही अपने को

सीमित रक्खा है और उनकी उन्नति और प्रगति के लिये किसी अच्छी नीति को नहीं अपनाया है। सरकारों को चाहिए था कि वह उन पेड़ों का पता लगातीं जो विभिन्न आब-हवा में उग सकते हैं और जिनका देश के लिये भारी आर्थिक महत्व है और फिर ऐसे पेड़ों को लगवाने का प्रबन्ध करतीं। परन्तु सरकारों ने इस तरह की किसी नीति का अनुसरण नहीं किया। देहरादून में स्थित 'जंगल खोज संस्था' (Forest Research Institute) ने कुछ अच्छी खोजें की हैं परन्तु देश के उद्योग उससे अधिक लाभ नहीं उठा सके हैं। इसका कारण यह है कि उस संस्था तथा उद्योग पतियों में सम्पर्क नहीं है। इस प्रकार के सम्पर्क की अत्यन्त आवश्यकता है। अभी तक ऐसे बहुत से जंगल हैं जिन तक पहुँचा नहीं जा सकता और इस कारण इनका आर्थिक शोषण नहीं हो सका है। इस बात की आवश्यकता है कि देश की सरकार इस ओर ध्यान दे। अभी तक विभिन्न राज्य सरकारें विभिन्न बन-नीति का पालन कर रही हैं और उनको एक सूत्र में बाँधने का कोई प्रयत्न नहीं हुआ है। केन्द्रीय सरकार ने इस कार्य के लिये एक बड़े अफसर (Inspector Genural of Forest) की नियुक्ति कर रखी है। परन्तु वह इस दिशा में सफलता पूर्वक कार्य नहीं कर सका है। इस बात की आवश्यकता है कि उसको अधिक अधिकार दिये जायँ जिससे वह अपने कार्य में अधिक सफल हो सके।

सन् १९५० में केन्द्रीय सरकार के खाद्य-मंत्री श्री कन्हैयालाल माणिक लाल मुन्शी ने जंगलों को लगाने की ओर काफी जोर डाला और उनकी प्रेरणा के फलस्वरूप देश में प्रतिवर्ष 'बन-महोत्सव' मनाया जाता है। पहिला बन-महोत्सव १ जुलाई से ७ जुलाई १९५० तक मनाया गया और अनुमान है कि देश में कुल साढ़े तीन लाख पेड़ लगाये गये। परन्तु अगले वर्ष तक उनमें से केवल १½ लाख पेड़ ही जीवित रहे और बाकी नष्ट हो गये। कुछ लोगों का अनुमान है कि सम्भवतः इतने भी पेड़ जीवित न रहे हों। वास्तव में पेड़ लगाने का महत्व तभी है जब उनकी रक्षा के लिये उचित प्रबन्ध हो। साथ ही साथ यह भी आवश्यक है कि वर्तमान पेड़ों को अनुचित रूप से न काटा जाय और न नष्ट ही होने दिया जाय। जब तक ऐसा नहीं होता, बन-महोत्सव मनाने का कोई फल नहीं प्राप्त हो सकता।

साथ ही आवश्यकता इस बात की भी है कि सरकार तथा जनता में सहयोग हो। राजपूताना का रेगिस्तान उत्तर प्रदेश में मथुरा तथा आगरे के जिलों की ओर बड़ी तेजी से बढ़ रहा है। यदि जंगल न लगाये गये तो उत्तर प्रदेश की काफी उपजाऊ भूमि रेगिस्तान में परिणत हो जायगी। अतएव उस राज्य के नागरिकों का और साथ ही में सरकार का भी यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह इस ओर विशेष रूप से ध्यान दे।

परीक्षा-प्रश्न

१—हमारी अर्थ व्यवस्था में जंगलों के महत्व को सविस्तार बताइये। आप भारत में जंगलों के विकास के लिये क्या सुझाव रखेंगे। (१९५३, १९४९)

२—भारत में कौन-कौन से जंगल पाये जाते हैं? इनके आर्थिक लाभों को बताइये। (१९५१)

३—भारतीय वनों के लाभों पर एक नोट लिखिये। (१९५०, १९४५)

४—वनों का देश की अर्थव्यवस्था में क्या महत्व है? भारत सरकार ने बनों की उन्नति के लिये जो नीति अपनाई है उसको बताइये। (१९३९)

५—भारत में कच्चे माल का वितरण बताइये और यह भी लिखिये कि उद्योगों के विकास में उनका क्या महत्व है? (१९३२)

पटना इन्टर आर्ट्स

६—विहार में पाये जाने वाले जंगलों और खनिज पदार्थों का वर्णन कीजिये। उनका आर्थिक महत्व बताइये। (१९५२)

सागर इन्टर आर्ट्स

७—भारत में कौन-कौन से वन पाये जाते हैं? देश की अर्थ व्यवस्था में जंगलों का आर्थिक महत्व बताइये। (१९५०)

दिल्ली हायर सेकेन्ड्री

८—भारत के आर्थिक जीवन में वनों का महत्व बताइये। उनके उच्चतम प्रयोग के लिये कुछ सुझाव बताइये। (१९५१)

बत्तीसवाँ अध्याय

भारत में सिंचाई के साधन

(Irrigation Resources of India)

भारत की जलवायु बताते समय आपको यह बताया गया था कि हमारे देश में सिंचाई के बिना खेती अच्छी नहीं हो सकती। साथ ही हमारे देश की जनसंख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। इस बढ़ती हुई जनसंख्या को जीवित रखने के लिये यह आवश्यक है कि हमारे देश में अधिक मात्रा में अन्न पैदा हो। इसके लिये वर्ष में दो फसलों का उगाया जाना आवश्यक है और यह तभी हो सकता है जब सिंचाई द्वारा खेतों को पर्याप्त मात्रा में पानी दिया जा सके। इन बातों से यह स्पष्ट है कि भारत में सिंचाई की बड़ी आवश्यकता है और खेती की उन्नति के लिये ऐसा करना बड़ा आवश्यक है।

भारत में सिंचाई के तीन साधन हैं :—(१) नहरें (२) कुएँ तथा (३) तालाब। इन सब में नहरें अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

१. नहरों से सिंचाई

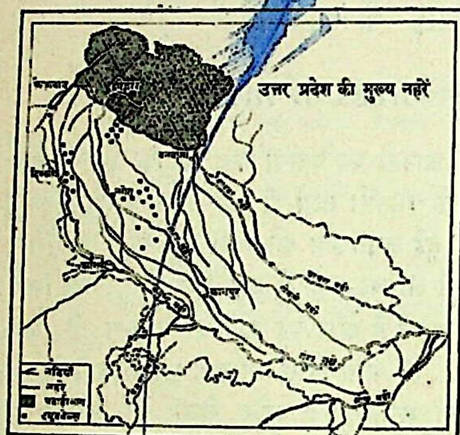
भारत के उत्तरी भाग में स्थित सतलज-गंगा के मैदान में ही अधिक नहरें पाई जाती हैं। देश के बँटवारे के पहिले पंजाब की नहरें देश भर में प्रसिद्ध थीं। परन्तु अब इनमें से अधिकांश पाकिस्तान में चली गई हैं।

उत्तर प्रदेश की नहरें—

उत्तर प्रदेश की प्रमुख नहरें निम्नलिखित हैं :—(१) गंगा की ऊपरी नहर (२) गंगा की निचली नहर (३) यमुना की पूर्वी नहर (४) आगरा नहर, तथा (५) शारदा नहर। इनके अतिरिक्त पठार से आने वाली नदियों से भी कुछ नहरें निकली हैं जिनमें (१) बेतवा नहर (२) धसान नहर (३) केन नहर, तथा (४) घाघरा नहर उल्लेखनीय हैं।

गंगा की ऊपरी नहर—यह नहर हरद्वार के पास से निकाली गई है। रुड़की के पास सूलाबी नदी पर पुल बाँधकर इसे नदी के दूसरी ओर लाये हैं। गंगा-यमुना के दुआब में इससे सिंचाई होती है। अलीगढ़ के जिलों में इसकी दो शाखायें हो गई हैं जिनमें एक यमुना से मिली है तथा दूसरी कानपुर के पास गंगा से। वहाँ से फिर एक शाखा निकली है जो फतेहपुर शाखा कहलाती है और इलाहाबाद तक आती है।

गंगा की निचली नहर—अलीगढ़ जिले के निरोरा नामक स्थान से यह निकाली गई है। यह नहर कासगंज के पास गंगा की ऊपरी नहर से मिलकर आगे बढ़ती है। आगे जाने पर यह गंगा की ऊपरी नहर की अन्य दो शाखाओं को पार करती है। इस तरह यह नहर अलीगढ़, इटावा, फतेहपुर तथा कानपुर के जिलों को पानी देती है।



चित्र ७२—उत्तर-प्रदेश की नहरें

यमुना की पूर्वी नहर—यह यमुना नदी में से फैजाबाद से निकली है और दिल्ली के पास यमुना नदी से मिल जाती है इस नहर की कोई शाखा नहीं है। यह सहारनपुर, मेरठ तथा मुजफ्फरपुर के जिलों को सींचती है। यह नहर १२६ मील लम्बी है और इससे लगभग ४ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होती है।

आगरा नहर—यह नहर दिल्ली से ११ मील दूर ओखला नामक स्थान पर यमुना नदी से निकली है। इस नहर से भरतपुर राज्य, आगरा तथा मथुरा के जिले और देहली के कुछ भाग में सिंचाई होती है। इसकी मुख्य नहर १०० मील लम्बी है और इसकी शाखायें ७६५ मील लम्बी हैं। इससे लगभग २$\frac{१}{२}$ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होती है।

शारदा नहर—यह नहर घाघरा नदी की सहायक नदी शारदा से दकनपुर के पास वरमदेव नामक स्थान से निकली है। इससे तराई, रूहेलखंड तथा पश्चिमी अवध में सिंचाई की जाती है। इसकी एक शाखा रूहेलखंड की नहरों को पानी देती है तथा दूसरी शाखा कई छोटी-छोटी शाखाओं में बँटकर गंगा तथा घाघरा नदी के बीच के भाग को सींचती है।

पंजाब की नहरें—

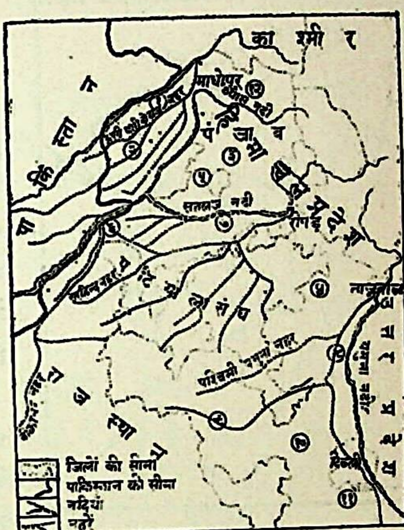
पंजाब में अब केवल तीन ही नहरें रह गई हैं (१) यमुना की पश्चिमी नहर (२) सरहिंद नहर तथा (३) ऊपरी बरी-दुआब नहर।

यमुना की पश्चिमी नहर—यह नहर ताजवाला नामक स्थान से निकाली गई है, जहाँ नदी पर्वत को छोड़कर मैदान में उतरती है। इससे कर्नाल, रोहतक और हिसार के जिलों में तथा राजस्थान संघ के कुछ भाग में सिंचाई होती है। इसकी तीन शाखायें है (१) सिरसा शाखा (२) हाँसी शाखा, तथा (३) नई दिल्ली शाखा।

सरहिंद नहर—यह नहर रुपड़ के पास से सतलज नदी से निकाली गई है। इससे फरीदकोट, जामा तथा पटियाला आदि राज्यों में, जो पटियाला तथा पूर्वी पंजाब राज्य संघ में स्थित है, सिंचाई होती है और पंजाब के लुधियाना, फरीदकोट तथा हिसार के जिले में भी इसकी कई शाखायें हैं।

ऊपरी बरी दुआब नहर—यह नहर रावी नदी में से माधोपुर नामक स्थान से, जो पठानकोट के पास है, निकाली गई है। जहाँ नदी हिमालय से मैदान में आती है। इस नहर से गुरदासपुर, अमृतसर तथा पाकिस्तान के लाहौर के जिलों में सिंचाई होती है।

सतलज घाटी की नहरें—यह नहर सतलज नदी से फिरोजपुर के पास से निकाली गई है। इनमें दो नहरें—पूर्वी नहर तथा बीकानेर नहर प्रसिद्ध हैं।



① गुरुदासपुर ② अमृतसर ③ होशियारपुर ④ अम्बाला ⑤ जालन्धर ⑥ फिरोजपुर ⑦ लुधियाना ⑧ करनाल ⑨ हिसार ⑩ रोहतक ⑪ गुड़गाँव ⑫ कांगड़ा

चित्र ७३—पंजाब की नहरें

बिहार की नहरें

इस राज्य की निम्न प्रसिद्ध नहरें हैं :—

सोन नहरें—सोन नदी पर देहरी नामक स्थान पर एक बाँध बनाकर सोन नहरें निकाली गई हैं। इनसे बिहार के शाहाबाद, गया तथा पटना जिलों में सिंचाई होती है। यहाँ की दो मुख्य नहरें हैं—(१) मुख्य पश्चिमी नहर, तथा (२) मुख्य पूर्वी नहर।

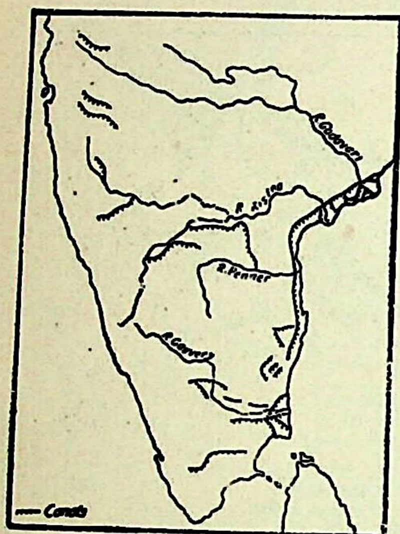
मद्रास राज्य की नहरें

दक्षिण में मद्रास राज्य में सब से अधिक नहरें हैं। इसका कारण यह है कि यहाँ कई नदियों के डेल्टा हैं। यहाँ निम्न मुख्य नहरे हैं :

कावेरी डेल्टा की नहरें—यहाँ की सिंचाई व्यवस्था बहुत प्राचीन है। कावेरी डेल्टा से १८ मील ऊपर कावेरी नदी के दो भाग हो जाते हैं। श्री रंगम का टापू नदी को दो भागों में बाँटता है। कावेरी उसके पूर्व की ओर और कोलरून नदी पश्चिम की ओर बहती है।

प्रमुख नहरों की लम्बाई १५०० मील है और शाखाओं की २०,००० मील। इससे १० लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होती है।

कृष्णा डेल्टा की नहरें—कृष्णा नदी अपने मुहानें से ६० मील की दूरी पर दो पहाड़ियों के बीच से बहती है। यहाँ से दो नहरें निकाली गई हैं। इन नहरों की शाखाओं में कृष्णा नदी के डेल्टा भर में सिंचाई होती है।



चित्र ७४—दक्षिण की नहरें

गोदावरी घाटी की नहरें—गोदावरी नदी पश्चिमी घाट से निकलती है और बंगाल की खाड़ी में गिरती है। डेल्टा के सिरे पर इस नदी के दो भाग हो जाते हैं—(१) गोमती—गोदावरी (जो पूर्वी भाग है) और (२) विशिष्ट गोदावरी। गोमती और गोदावरी के ऊपर दो बाँध बनाये गये हैं। इनसे नहरें निकाली गई हैं जो डेल्टा के क्रमशः पूर्वी तथा पश्चिमी भाग की सिंचाई करती हैं।

मुख्य नहर ५०० मील लम्बी है और उसकी शाखायें २००० मील लम्बी हैं। इससे १० लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होती है।

मेटूर बाँध—कावेरी नदी पर एक बाँध बनाया गया है जो संसार के सबसे बड़े बाँधों में है। इसके द्वारा लगभग १३ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होती है। सिंचाई के अतिरिक्त वहाँ सस्ती जल विद्युत् भी उत्पन्न की जाती है। यहाँ की नहर की लंबाई ७६० मील है।

मध्य प्रदेश की नहरें

महानदी नहर—यह १६१ मील लम्बी है और उसकी शाखायें ७४१ मील लम्बी हैं। इससे तीन लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होती है।

वेन गंगा नहर से बालघाट तथा भन्डारा के कुछ भागों की सिंचाई होती है। मुख्य नहर २८ मील लम्बी है और इसकी शाखाओं की लम्बाई ५० मील है। इनसे लगभग १ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होती है।

बम्बई राज्य की नहरें

बम्बई राज्य में दो मुख्य नहरें हैं। (१) नीरा नहर, तथा (२) प्रवरा नहर। नीरा नदी पर एक बाँध बनाकर दो नहरें निकाली गई हैं। एक बाईं ओर और दूसरी दाईं ओर। इनसे १ लाख ३२ हजार एकड़ भूमि की सिंचाई होती है। प्रवरा नहर की लम्बाई २६८ मील है।

२. कुओं से सिंचाई

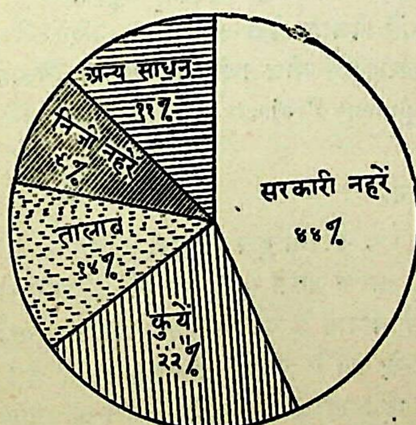
हमारे देश में जितनी सिंचाई होती है उसकी लगभग चौथाई कुओं से होती है। इस समय लगभग ३० लाख एकड़ भूमि की सिंचाई कुओं से होती है। कुएँ अधिकतर सतलज-गंगा के मैदान में ही पाये जाते हैं। उत्तर प्रदेश का बनारस से पश्चिम का भाग कुओं से भरा पड़ा है।

आजकल कुओं के स्थान पर ट्यूब वेल (Tube-well) से सिंचाई अधिक होने लगी है। बिजली से चलने वाले एक ट्यूब वेल से लगभग १ हजार एकड़ भूमि की सिंचाई हो जाती है। उत्तर प्रदेश में इसका प्रयोग बहुत व्यापक हो गया है और १९४५ तक इसकी संख्या लगभग २० हजार थी। तब से प्रतिवर्ष २०० नये ट्यूब वेल खोदने का आयोजन चल रहा है। इस प्रकार के कुएँ मुजफ्फर-नगर, मेरठ, अलीगढ़ बिजनौर, मुरादाबाद तथा बदायूँ के जिलों में अधिक पाये जाते हैं।

३. तालाबों से सिंचाई

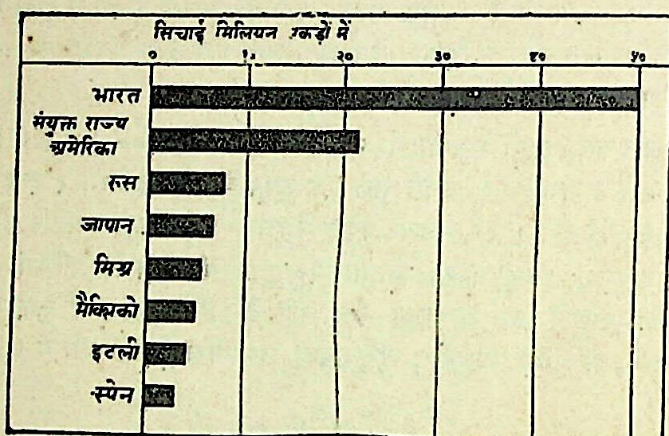
तालाबों से अधिकतर सिंचाई दक्षिण भारत में होती है। उसका कारण यह है कि वहाँ की भूमि पथरीली तथा ऊँची-नीची होने के कारण नहर या कुएँ खोदने के लिये उपयुक्त नहीं है। तालाब से सिंचाई के लिये मद्रास, हैदराबाद तथा मैसूर प्रसिद्ध हैं। केवल मद्रास में ही ७ हजार से अधिक तालाब हैं। दक्षिण भारत के अतिरिक्त राजस्थान संघ, तथा मध्य भारत में भी तालाबों से सिंचाई होती है।

भारत में लगभग ४० लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होती है। इसमें से ३०० लाख एकड़ भूमि की सिंचाई नहरों से, १४० लाख एकड़ भूमि की कुओं



चित्र ७५—सिंचाई

से, ६० लाख भूमि की तालाबों से तथा ६० लाख एकड़ भूमि की अन्य साधनों से होती है।



चित्र ७६—भिन्न-भिन्न देशों में सिंचाई की भूमि

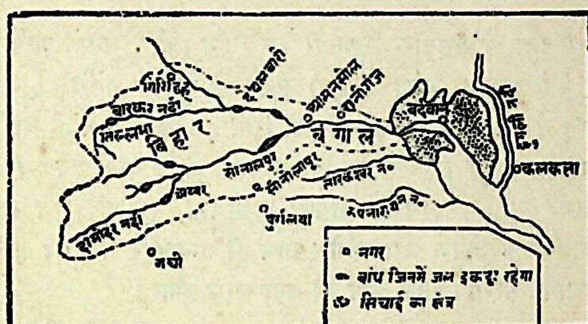
४. सिंचाई तथा जल विद्युत् की नवीन योजनायें

भारत में सिंचाई के इतने साधन होते हुए भी वह मात्रा में अपर्याप्त हैं और देश के आर्थिक विकास के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि सिंचाई के साधनों को बढ़ाया जाय। जब से हमारा देश स्वतंत्र हुआ है भारत सरकार अपना ध्यान इस ओर दे रही है और उसने कई नवीन योजनाओं पर काम करना प्रारम्भ कर दिया है। विकास की नवीन योजनाओं का उद्देश्य बहुमुखी है। सिंचाई के लिये नहरें निकालने के साथ इनसे बिजली पैदा होगी तथा नदियों में आने वाली बाढ़ें भी रुक जायँगी। इसी कारण इन योजनाओं को बहुमुखी विकास योजनायें (Multi-purpose Development Projects) कहते हैं। इसमें से निम्न योजनायें महत्त्वपूर्ण हैं।

दामोदर घाटी योजना

दामोदर नदी एक अत्यन्त दुखदाई नदी है क्योंकि इसमें प्रायः बाढ़ आया करती है और बाढ़ के कारण लाखों रुपये प्रतिवर्ष की हानि होती है। साथ ही यह घाटी अनेक महत्त्वपूर्ण खनिजों से भरी पड़ी है और यदि यहाँ सस्ती बिजली प्राप्त हो जाय तो इनका अच्छे ढंग से आर्थिक शोषण हो सकता है। यही नहीं, इस घाटी में लाखों एकड़ परती भूमि पड़ी है और यदि सिंचाई की सुविधा प्राप्त हो जाय तो उसे लहलहाते खेतों में परिणित किया जा सकता है। इन्हीं बातों को पूरा करने के लिये यह योजना बनाई गई है।

योजना के अनुसार दामोदर तथा उसकी सहायक नदियों पर सात बाँध बनाये जायेंगे। उन बाँधों में ४७ लाख एकड़ फीट पानी रक्खा जायगा। इससे लगभग १० लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होगी और ३ लाख किलोवाट बिजली तैयार

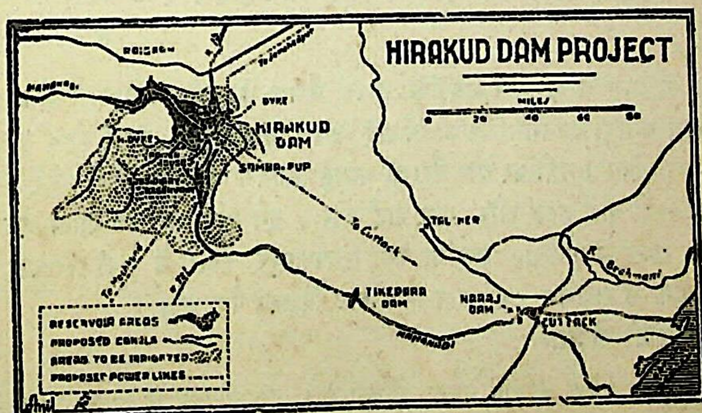


चित्र ७७—दामोदर घाटी योजना

होगी। ध्यान रखने की बात है कि यह योजना अमरीका की टेनेसी घाटी योजना के अनुसार बनाई गई है। यह योजना बिहार तथा बंगाल राज्यों की सम्मिलित योजना है।

महानदी घाटी योजना

महानदी घाटी योजना उड़ीसा राज्य की है। उड़ीसा इस समय एक निर्धन



चित्र ७८—हीराकुंड योजना

राज्य है। परन्तु यहाँ कोयला, लोहा आदि अनेक खनिज पदार्थ पाये जाते हैं। बिजली तथा यातायात की सुविधाओं से इन खनिजों का उचित शोषण हो सकेगा। सिंचाई की सुविधा से कृषि की उन्नति हो सकेगी और इस प्रकार उड़ीसा राज्य की भारी आर्थिक उन्नति हो सकेगी।

इस योजना के अनुसार महानदी पर तीन बाँध बनाये जायेंगे जो (१) हीराकुंड (२) तिंकरपाड़ा, तथा (३) नारज स्थानों पर बनेंगे। हीराकुंड बाँध से सम्बलपुर जिले में ११ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होगी। साथ ही यहाँ दो बिजली घर होंगे जिनसे २०२ लाख किलोवाट बिजली प्राप्त हो सकेगी। बिजली कटक, मध्य प्रदेश तथा जमशेदपुर तक भेजी जायगी। योजना पूरी हो जाने पर महानदी में १०० मील भीतर तक जहाज आ सकेंगे। साथ ही सम्बलपुर में ३०४ लाख टन खाद भी तैयार हो जाया करेगी जिससे कृषि को बड़ा लाभ होगा।

भाखरा-नागल योजना

यह योजना पंजाब राज्य की है। इस योजना के अनुसार सतलज नदी पर भाखरा दर्रा में (जो सरहिन्द नहर के उत्पत्ति स्थान से १० मील उत्तर में है) एक बाँध बनेगा जो ६८६ फीट ऊँचा होगा। बन जाने पर यह संसार का सबसे ऊँचा बाँध होगा। इससे लगभग ६६ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होगी और २·३ लाख किलोवाट बिजली उत्पन्न होगी। नागल नहर से १·७ लाख किलोवाट बिजली अलग से प्राप्त होगी।

कोसी नदी योजना

यह बिहार राज्य की बड़ी महत्वपूर्ण योजना है। इससे नैपाल को भी लाभ होगा।

योजना के अनुसार नदी के ऊपर नैपाल में पाये जाने वाले छतरा दर्रे में एक बाँध बनाया जायगा जिसकी ऊँचाई ७५० फीट होगी। इसमें ११० लाख फीट पानी भरा रहेगा। नदी पर दो बैराज बनाये जायेंगे जिनसे तीन नहरें निकाली जायँगी—दो बाईं तरफ और एक दाईं ओर। इन नहरों से २० लाख एकड़ भूमि (बिहार राज्य में पूर्निया, दरभंगा तथा मुजफ्फरपुर जिलों में) की सिंचाई होगी। इस योजना से लगभग १२ लाख किलोवाट बिजली पैदा होगी।

रिहिन्द घाटी योजना

उत्तर प्रदेश की यह प्रमुख योजना है। इस योजना के अनुसार मिर्जापुर के पहाड़ी देश के पास सोन नदी की एक सहायक नदी, रिहिन्द पर पिपरी नामक स्थान पर एक बाँध बनाया जायगा। यह स्थान मिर्जापुर के लगभग १०० मील दक्षिण में

है। यहाँ तीन हजार फीट लम्बा एक बाँध बनेगा जिसमें ६० लाख एकड़ फीट पानी भरा रहेगा। बाँध के पीछे एक झील बनाई जायगी जिससे रीवां राज्य की बहुत सी भूमि की सिंचाई हो सकेगी। यहाँ लगभग १८ लाख किलोवाट बिजली पैदा की जायगी।

तुंगभद्रा योजना

यह योजना मद्रास तथा हैदराबाद राज्यों की है। इसके अनुसार कृष्णा नदी की एक शाखा तुंगभद्रा के ऊपर एक बाँध बनाया जायगा। यह बाँध ८२०० फीट लम्बा और १६० फीट ऊँचा होगा और इसमें २६ लाख एकड़ फीट पानी जमा रहेगा। इनमें मद्रास तथा हैदराबाद राज्यों की तीन लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होगी। साथ ही इससे २० हजार किलोवाट बिजली पैदा की जायगी।

रामपदसागर योजना

यह योजना मद्रास राज्य की है। इसके अनुसार गोदावरी नदी पर रामपद सागर स्थान पर एक बाँध बनेगा। यह बाँध ४२८ फीट ऊँचा होगा। इसमें १५० लाख एकड़ फीट पानी रहेगा। इससे २३ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होगी और ७५ हजार किलोवाट बिजली पैदा होगी।

मोर योजना

यह योजना पश्चिमी बंगाल राज्य के पश्चिमी भाग की है। इस योजना के अनुसार मोर नदी पर दो बाँध बनाये जायेंगे। इससे छै लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होगी। यहाँ एक विद्युत शक्ति गृह भी होगा जहाँ से ४००० किलोवाट बिजली पैदा की जायगी।

नर्मदा-ताप्ती योजना

यह योजना मध्य-प्रदेश तथा बम्बई राज्यों की है। इसके अनुसार नर्मदा तथा ताप्ती नदियों के ऊपर बाँध बनाये जायेंगे। जिससे इन नदियों में आने वाली बाढ़ें रोकी जा सकें। इससे ११ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होगी और १० लाख किलोवाट बिजली पैदा होगी।

चंबल योजना

इस योजना से मध्यभारत तथा राजस्थान राज्यों को लाभ होगा। इस योजना के अनुसार चंबल नदी के ऊपर छत्रपुर से ३० मील दूरी पर स्थित चौरासी-नगर पर २०० फीट ऊँचा एक बाँध बनाया जावेगा। इससे एक लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होगी और एक लाख किलोवाट बिजली पैदा की जावेगी।

अन्य योजनायें

इन योजनाओं के अतिरिक्त इस प्रकार की बहुमुखी अन्य कई योजनायें भी हैं। इनमें निम्न मुख्य हैं :—

कोयना योजना	(बम्बई राज्य)
गंडक घाटी योजना	(बिहार, नैपाल तथा उत्तर प्रदेश राज्य)
जावई योजना	(राजस्थान)
भद्रा बाँध योजना	(मैसूर)
वेनगंगा योजना	(मध्य प्रदेश)
भवानी योजना	(मद्रास राज्य)
कृष्णा-पेनर योजना	(मद्रास राज्य)
राम गंगा बाँध योजना	(उत्तर प्रदेश राज्य)
झेलम योजना	(काश्मीर राज्य)
नैयर योजना	(उत्तर प्रदेश)

इन योजनाओं में करोड़ों-अरबों रुपया व्यय होगा। परन्तु भारत सरकार के पास इतना धन नहीं है कि इन सभी योजनाओं को एक साथ पूरा किया जा सके। इस कारण कुछ योजनाओं पर काम हो रहा है। सरकार ने योजना कमीशन (Planning Commission) के मत के अनुसार कुछ योजनाओं पर काम आरम्भ कर दिया है।

५. सिंचाई से हानि-लाभ

सिंचाई से अनेक लाभ हैं। साथ ही इससे कुछ हानियाँ भी हैं। नीचे इन्हीं हानि-लाभों को बताया गया है।

सिंचाई से लाभ

सिंचाई से निम्न लाभ हैं।

१. सिंचाई के साधनों की उन्नति होने पर, भारत की जल-वर्षा की अनिश्चितता दूर हो जायगी। इस समय जलवर्षा की अनिश्चितता के कारण खेती सूख जाती है। सिंचाई के साधन जब पर्याप्त होंगे तो इस प्रकार हानि नहीं हो सकेगी।

२. सिंचाई के साधनों की उन्नति हो जाने पर वह स्थान जो अब रेगिस्तान कहलाते हैं या जहाँ कम वर्षा के कारण खेती नहीं हो पाती, लहलहाते खेतों में बदल जायँगे। पंजाब का नहर-क्षेत्र इस बात का ज्वलन्त उदाहरण है। पहले यहाँ खेती नहीं होती थी। परन्तु अब यह एक अत्यन्त उपजाऊ क्षेत्र है।

३. सिंचाई के साधनों की उन्नति हो जाने पर वर्ष में दो फसलें उगाना संभव हो जायगा। इस समय भारत में केवल ३-४ लाख एकड़ भूमि में ही दो फसलें उगाई जाती हैं। सिंचाई की सुविधा बढ़ जाने पर यह क्षेत्र बढ़ जायगा।

४. सिंचाई की सुविधा बढ़ जाने पर कृषि का उत्पादन भी बढ़ जायगा। भारत में यह देखा जाता है कि जहाँ सिंचाई की सुविधायें प्राप्त हैं वहाँ उपज कई गुना अधिक होती है।

५. सिंचाई की सुविधा बढ़ जाने पर किसानों की आमदनी बढ़ जायगी, उनका स्वास्थ्य अच्छा हो जायगा और इससे देश का भी भारी आर्थिक कल्याण होगा।

६. सिंचाई की सुविधा बढ़ जाने पर बंजर भूमि पर भी खेती होने लगेगी, देश की बढ़ती हुई जनसंख्या को पर्याप्त भोजन मिल सकेगा।

७. सिंचाई के साधनों की उन्नति से किसानों की आमदनी तो बढ़ेगी ही, सरकार की आय भी बढ़ेगी। मालगुजारी से तथा कृषि-आय कर (Agricultural Income Tax) से उसे अधिक आमदनी होने लगेगी।

८. सिंचाई के कारण व्यापारिक फसलों का भी उत्पादन बढ़ेगा जिससे औद्योगिक उन्नति हो सकेगी।

९. सिंचाई की उन्नति के बाद विस्तृत खेती अधिक मात्रा में होने लगेगी और खेतों में ट्रैक्टर आदि का प्रयोग अधिक व्यापक हो जायगा।

१०. सिंचाई की, विशेषतः नहरों की, मात्रा बढ़ जाने पर कुओं में पानी की मात्रा बढ़ जाती है और पानी की सतह ऊँची हो जाती है। इससे सिंचाई में बड़ा लाभ होता है।

सिंचाई से हानियाँ

सिंचाई के सभी साधनों से नहीं, परन्तु नहरों की उन्नति से कुछ हानियाँ भी होती हैं जो निम्न हैं :—

१. नहरों के पानी के कारण भूमि में कुछ रासायनिक प्रतिक्रियाएँ हो जाती हैं जिसके फलस्वरूप मिट्टी में नमक ऊपर आ जाता है और उन स्थानों पर खेती नहीं हो पाती। भारत में नहरों के आस-पास की बहुत सी भूमि इसी रासायनिक प्रतिक्रिया के कारण बेकार हो गई है। यही नहरों से सबसे बड़ी हानि है।

२. नहरों से पानी देते समय खेतों में अधिक पानी लग जाता है और खेतों को लाभ के स्थान पर हानि हो जाती है।

फिर भी सिंचाई से लाभ अधिक हैं और इस कारण भारत में सिंचाई के साधनों की उन्नति की बड़ी आवश्यकता है।

सिंचाई या रेलें

यह प्रश्न कभी-कभी पूछा जाता है कि देश में सिंचाई के साधनों की पहले उन्नति की जाय या रेलों की। वास्तव में यह प्रश्न इस समय महत्वपूर्ण नहीं रहा है। परन्तु बीसवीं सदी के आरंभ के दिनों में यह बड़े महत्व का प्रश्न था। कारण यह था कि उस समय देश में बहुत अकाल पड़ रहे थे और सरकार का यह कहना था कि अकाल को दूर करने के लिये रेलों की मात्रा बढ़ाई जाय जिससे खाद्यान्न एक स्थान से दूसरी जगह सुगमता से आ-जा सके। परन्तु कुछ अन्य व्यक्तियों का मत था कि इससे तो यह अच्छा है कि रुपया सिंचाई के साधनों की उन्नति पर व्यय हो जिससे उपज बढ़ जाय और अकाल का संकट न रहे।

अब यह प्रश्न महत्व का नहीं है और देश में इस प्रकार की अब कोई समस्या नहीं है। सिंचाई के साधनों तथा रेलों में कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है।

परीक्षा प्रश्न

उत्तर-प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—दामोदर घाटी योजना और उसकी महत्ता पर सूक्ष्म नोट लिखिये। (१९५३, १९५२)

२—भारतीय कृषि को सिंचाई के साधनों से क्या लाभ हुआ है। भारत के विभिन्न भागों में सिंचाई के कौन-कौन से साधन काम में लाये जाते हैं? उनका तुलनात्मक महत्व बताइये। (१९४७)

३—भारत को सिंचाई के साधनों से क्या-क्या लाभ हो सकते हैं और उनके विकास का क्या क्षेत्र है? भारत की अकाल से रक्षा करने के लिये आप सिंचाई के साधनों की या रेलों की। उन्नति करेंगे? (१९४५)

४—भारत में प्रयोग में लाये जाने वाली सिंचाई की कौन सी विभिन्न रीतियाँ हैं? नहर की सिंचाई से लाभ तथा हानियाँ बताइये। (१९४२)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

५—भारत में सिंचाई किन-किन महत्वपूर्ण साधनों से होती है? सिंचाई से होने वाले लाभों को बताइये। (१९४१)

सागर इन्टर आर्ट्स

६—भारत में सिंचाई के विभिन्न साधनों को बताइये और उनके आर्थिक महत्व पर प्रकाश डालिये। (१९५२)

७—भारत में सिंचाई की आवश्यकता को बताइये और भारत के विभिन्न सिंचाई के साधनों को सूक्ष्म में बताइये। (१९४९)

पंजाब इन्टर आर्ट्स

८—भारत में सिंचाई के कौन-कौन से विभिन्न साधन हैं? देश के उन भागों को बताइये जहाँ पर प्रत्येक साधन महत्वपूर्ण है? (१९५१)

९—पंजाब को सिंचाई से जो लाभ प्राप्त हैं उन्हें बताइये। पूर्वी पंजाब की प्रमुख नहरों को बताइये। (१९४९)

तैंतीसवाँ अध्याय

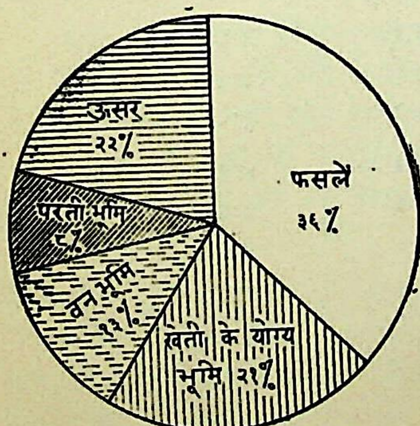
भारत के कृषि-साधन

(Agriculturla Resources of India)

हमारे देश का क्षेत्रफल ८१·१ करोड़ एकड़ है। उसमें से १९·६ करोड़ एकड़ के बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त नहीं है। बाकी की ६१·५ करोड़ एकड़ भूमि निम्न प्रकार काम में लाई जाती है :—

	करोड़ एकड़	प्रतिशत भाग
१—वन प्रदेश	९·३	१५
२—वह क्षेत्रफल जिस पर खेती होती है	२६·६	४३
३—परती भूमि	५·८	९
४—वह भूमि अभी खेती नहीं होती परन्तु जो खेती योग्य बनाई जा सकती है	९·८	१६
५—वह भूमि जो खेती के लिये उपलब्ध नहीं है	९·६	१६
	६१·५	१००

तालिका से यह स्पष्ट है कि केवल दूसरी तथा तीसरी भूमि पर ही खेती होती है। इन दोनों प्रकार की भूमि का क्षेत्रफल ३२·४ करोड़ एकड़ है। इसमें से ३·५ करोड़ एकड़ भूमि में दो फसलें उगाई जाती हैं। इस प्रकार कृषि-योग्य कुल भूमि ३१·७ करोड़ एकड़ है।



चित्र ७९—भारत में भूमि की उपयोगिता

जहाँ तक कृषि की उत्पादन की गति का प्रश्न है, हम यह कह सकते हैं कि विभिन्न राज्यों में विभिन्न फसलों का भिन्न-भिन्न उत्पादन है। फिर भी मोटे रूप से यह कहा जा सकता है कि खाद्य फसलों के प्रति एकड़ उत्पादन में कोई भी वृद्धि नहीं हुई है, यद्यपि व्यापारिक फसलों का प्रति एकड़ उत्पादन कुछ अवश्य बढ़ा है। निम्न तालिका से कुछ महत्वपूर्ण फसलों की उपज तथा उनके क्षेत्रफल का अनुमान लगाया जा सकता है :—

फसलें	क्षेत्र फल (लाख एकड़ में)		उत्पादन (लाख टन में)	
	१९५०·५१	१९५१-५२	१९५०-५१	१९५१-५२
चावल	७५९·८	७३५·९	२०२·९	२०७·७
ज्वार	३८४·२	३८३·३	५४·०	५५·७
बाजरा	२२२·७	२१८·६	२५·५	२१·५
मक्का	७७·९	८०·०	१७·०	१९·६
रागी	५४·४	५२·९	१४·१	११·७
गेहूँ	२४१·३	२३२·४	६३·१	५७·७
जौ	७७·०	७८·०	२३·४	२१०·४
चना	१८७·१	१६७·२	३५·९	३१·६
अन्य दालें	२८४·७	२८५·५	४६·९	४५·८
आलू	५·९	६·१	१६·३	१७·०
ईख	४२·१	४७·३	५६·२	५८·९
सौंठ	० ४	०·४	०·२	०·२
काली मिर्च	१·९	१·९	०·३	०·३
लाल मिर्च	१४·६	१५·३	३·५	३·५
तम्बाकू	·९·०	७·६	२·६	२·३
मूँगफली	१११·३	११७·६	२४·४	३०·४
अंडी	१३·८	१४·३	१·०	१·०
तिल	५६·३	५७·३	४·५	४·४
सरसों तथा राई	५१ ०	५७·०	७·५	९·०
अलसी	३४·५	३३·०	३·६	३·१
राई	१४५·६	१६२·१	२९·७*	३१·३*
जूट	१४·५	१९·५	३३·१*	४३·८*
चाय	७·८		६०७३**	
कहवा	२·२		५४३**	

*गाँठों में
**पौन्डों में

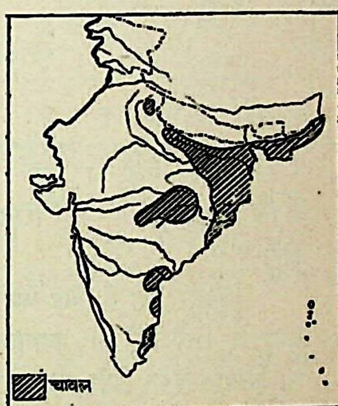
१· खाद्य फसलें
(Food Crops)

चावल (Rice)

क्षेत्रफल तथा उत्पादन की दृष्टि से चावल भारत की सबसे महत्वपूर्ण फसल है। सन् १९४८ से १९५२ के बीच इस फसल का क्षेत्रफल ७२० से लेकर ७६० लाख एकड़ के बीच रहा। १९५१-५२ में यह फसल ७३५½ लाख एकड़ भूमि में उगाई गई।

देश के स्वतन्त्र हो जाने के बाद से धान का उत्पादन देश में काफी बढ़ गया है। सन् १९४५-४६ में उसका उत्पादन १८० लाख टन था। १९५१-५२ में यह बढ़कर २०७·७ लाख टन हो गया।

धान की फसल के लिये अधिक तापमान तथा अधिक पानी की आवश्यकता होती है। साथ ही इसे काफी उपजाऊ भूमि भी चाहिए। इसके लिये दोमट सबसे अच्छी मिट्टी है। इन्हीं कारणों से भारत में धान की खेती नदियों के डेल्टाओं में होती है। मद्रास, पश्चिमी बंगाल उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, आसाम तथा बिहार उसके उत्पादन के लिये प्रसिद्ध हैं।



चित्र ८०—चावल का क्षेत्र

भारत में धान का औसतन उत्पादन केवल ८४० पौंड प्रति एकड़ है जब कि जापान का २३५० पौंड और अमेरिका का ६४८५ पौंड है। इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि उत्पादन बढ़ाया जाय।

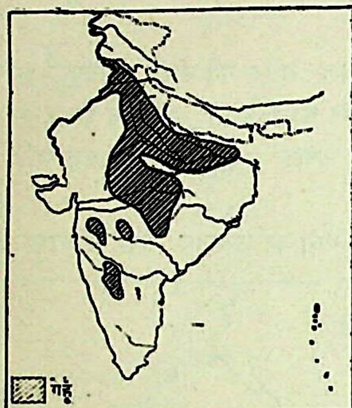
भारत में चावल का औसतन उत्पादन दो करोड़ टन है। यह हमारी आवश्यकता से कम है और इस कारण हमें चावल का भारी मात्रा में आयात करना होता है।

गेहूँ (Wheat)

भारत की दूसरी महत्वपूर्ण खाद्य फसल गेहूँ है। हमारे देश में लगभग २३० लाख एकड़ भूमि में इसकी खेती होती है। सन् १९५१-५२ में २३२·४ लाख एकड़ भूमि में इसकी खेती हुई थी।

उसका कुल उत्पादन लगभग ६० लाख टन है। १९४७-४८ में इसका कुल उत्पादन ५४ लाख टन था। १९५०-५१ यह बढ़कर ६३ लाख टन हो गया। परन्तु १९५१-५२ में इसका उत्पादन केवल ५८ लाख टन ही था।

गेहूँ के लिये ७०° से ७५° का तापमान, १५" से ३०" की वर्षा, उपजाऊ मिट्टी और सिंचाई की आवश्यकता होती है। यह जाड़े की फसल है और नवम्बर में बोकर अप्रैल तक काट ली जाती है। भारत में यह फसल उत्तर प्रदेश में अधिक पैदा होती है। यहाँ देहरादून, सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, मेरठ, मुरादाबाद, इटावा आदि के जिले काफी प्रसिद्ध हैं। पंजाब राज्य का दूसरा स्थान है। और बिहार का तीसरा। इनके अतिरिक्त मध्य भारत, मध्य प्रदेश, बम्बई तथा हैदराबाद राज्य भी उल्लेखनीय हैं।



चित्र ८१—गेहूँ का क्षेत्र

भारत में गेहूँ का प्रति एकड़ औसतन उत्पादन ६६० पौंड है, जब कि डेनमार्क का उससे तीन गुना अधिक है। यह भी देखा गया है कि हमारे देश में जहाँ सिंचाई की सुविधायें प्राप्त हैं वहाँ उत्पादन अधिक होता है।

हमारे देश में गेहूँ पर्याप्त मात्रा में नहीं पैदा होता और हमें अपनी आवश्यकता के लिये गेहूँ का आयात करना होता है। १९४२ में हमें १४ लाख टन गेहूँ का आयात करना पड़ा और १९४९ में २०½ लाख टन का।

ज्वार-बाजरा (Millets)

यह निर्धनों के भोजन हैं और इस कारण उस भूमि पर बोये जाते हैं जहाँ गेहूँ, चावल आदि मूल्यवान फसलें नहीं उग सकतीं। इन खाद्यानों का उत्पादन दक्षिणी पठार में ही होता है। बम्बई, मद्रास, हैदराबाद, राज्यस्थान तथा पंजाब इनके लिये प्रसिद्ध हैं।

सन् १९५१-५२ में ज्वार की खेती ३८३ लाख एकड़ भूमि में हुई, बाजरे की खेती २१९ लाख एकड़ भूमि में और रागी की खेती ५३ लाख एकड़ भूमि में हुई। यह कहा जा सकता है कि इन खाद्यान्नों का औसतन क्षेत्रफल ६५० लाख एकड़ है।

इनका औसतन उत्पादन १०० से १५० लाख टन है। सन् १९५१-५२ में ज्वार का उत्पादन ५५ लाख टन, बाजरे का २१½ लाख टन और रागी का ५८ लाख टन था।

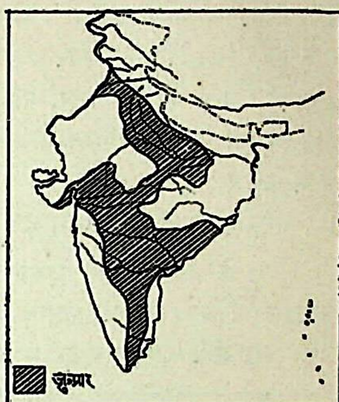
जौ (Barley)

यह निर्धनों का भोजन है और उन स्थानों पर बोया जाता है जहाँ गेहूँ की खेती नहीं हो सकती। यह उत्तर प्रदेश की मुख्य फसल है और भारत का ⅔

जौ इसी प्रान्त में पैदा होता है। उत्तर प्रदेश के अतिरिक्त बिहार, पंजाब, मध्य भारत तथा मध्य प्रदेश में भी जौ उगाया जाता है। सन् १९५१-५२ यह इसकी खेती ७८ लाख एकड़ भूमि में हुई थी और इसका कुल उत्पादन २२ लाख टन था।

दालें

भारतीय भोजन में दालों का विशेष स्थान है। यहाँ की मुख्य दालें अरहर, उर्द, मूँग, चना, मटर तथा मसूर हैं। इनमें से प्रथम तीन खरीफ की फसलें हैं और अन्तिम तीन रबी की हैं।



चित्र ८२ जुआर का क्षेत्र

चना सबसे महत्वपूर्ण दाल है। यह उत्तर प्रदेश में सबसे अधिक पैदा होती है। इसके अतिरिक्त बिहार, पंजाब, मध्य प्रदेश, बम्बई, हैदराबाद में भी चना पैदा होता है। अरहर उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, आसाम, मध्य प्रदेश तथा मद्रास में उगाई जाती है। मटर उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश तथा पंजाब में उगाई जाती है। स्पष्ट है कि सभी दालों के लिये उत्तर प्रदेश काफी प्रसिद्ध है।

विभिन्न दालों के क्षेत्रफल तथा उत्पादन का ज्ञान निम्न तालिका से हो जायगा :—

	क्षेत्रफल (लाख एकड़)	उत्पादन (लाख टन में)
चना	१६७·२	३१·६
अन्य दालें	२८५·५	४५·८
	४५२·७	७७·४

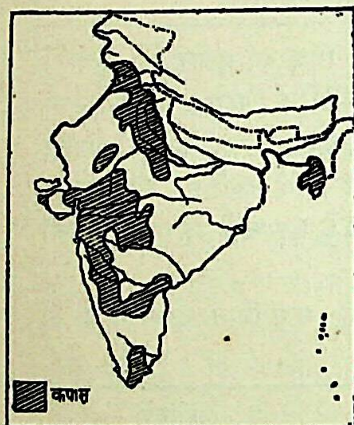
२. व्यापारिक फसलें
(Commercial Crops)

कपास (Cotton)

कपास के उत्पादन में भारत का अमेरिका के बाद दूसरा स्थान है। भारत संसार में उत्पन्न होने वाली कपास का पाँचवाँ भाग पैदा करता है।

कपास के लिये भारत में चार क्षेत्र प्रसिद्ध हैं : (१) काली मिट्टी का क्षेत्र (२) गंगा, यमुना के सिंचाई वाला क्षेत्र (३) गंगा की पूर्वी घाटी वाला प्रदेश, तथा (४) लाल मिट्टी वाला प्रदेश। इनमें सबसे प्रसिद्ध काली मिट्टी वाला क्षेत्र है। बम्बई, मध्य प्रदेश, बरार, मद्रास, उत्तर प्रदेश, हैदराबाद, मध्य भारत तथा बड़ौदा कपास के लिये भारत में प्रसिद्ध हैं। भारत में औसतन १६० लाख एकड़ भूमि में कपास की खेती होती है और इसका औसतन उत्पादन ३० लाख गाँठ हैं। १ गाँठ ३९२ पौंड की होती है।

देश के विभाजन के पश्चात् लम्बी रेशे वाली कपास का अधिकांश भाग पाकिस्तान में चला गया। फलतः भारत केन्द्रीय कपास समिति ने यह सिफारिश की कि देश में ४० लाख एकड़ भूमि में लम्बे रेशेवाली कपास उगाई जाय। भारत सरकार इस नीति पर चल रही है और विभिन्न राज्यों में लम्बे रेशे वाली कपास के उगाने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। सन् १९४८ में भारत ने ५२ करोड़ रुपये के मूल्य की लम्बी रेशे की कपास का आयात किया और २० करोड़ रुपये मूल्य की छोटी रेशे की कपास निर्यात किया।



चित्र ८३—कपास का क्षेत्र

जूट (Jute)

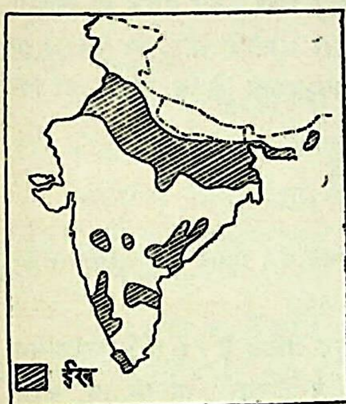
विभाजन के पहले जूट के उत्पादन में भारत का एकाधिकार था परन्तु विभाजन के कारण जूट का अधिकांश भाग पाकिस्तान में चला गया और जूट की भारी कमी हो गई।

जूट के लिये अधिक गर्मी, अधिक पानी और बहुत अधिक उर्वर भूमि की आवश्यकता होती है। भारत में पश्चिमी बंगाल, आसाम, बिहार तथा उड़ीसा में जूट पैदा होता है। बिहार का ९०% जूट पूर्नियाँ जिले से, उड़ीसा का ९२% जूट कटक के जिले से और आसाम का अधिकांश जूट ब्रह्मपुत्र की घाटी से आता है। सन् १९५१-५२ में १९½ लाख एकड़ भूमि में जूट की खेती हुई और उसका कुल उत्पादन लगभग ४७ लाख गांठ था। १ गांठ ४०० पौंड वजन की होती है।

देश के लिये यह आवश्यक है कि हम जूट के उत्पादन में आत्मनिर्भर हो जायँ और पाकिस्तान पर निर्भर न रहें। भारत सरकार इस ओर समुचित ध्यान दे रही है और इस बात की पूर्ण आशा है कि हमारा देश जूट के उत्पादन में शीघ्र ही आत्मनिर्भर हो जायगा।

ईख (Sugarcane)

भारत में ईख लगभग ४७ लाख एकड़ भूमि में उगाई जाती है। भारत में उगने वाली ईख का लगभग ५४·१% भाग उत्तर प्रदेश से आता है। उत्तर प्रदेश के बाद बिहार, मद्रास तथा कोयम्बटूर का स्थान है। ईख का औसतन उत्पादन ५५—६० लाख टन है। १९५१-५२ में ईख का उत्पादन ५८·६ लाख टन था।



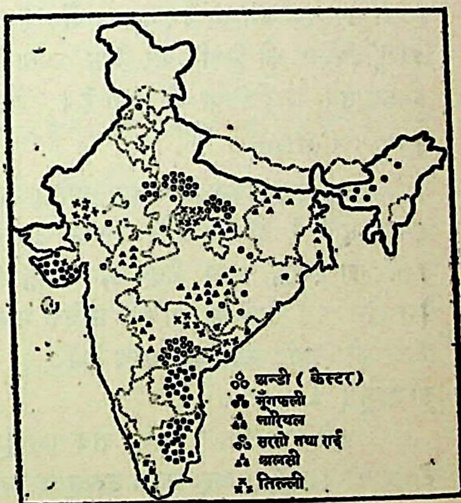
चित्र ८४—ईख का उत्पादन

हमारे देश में ईख का औसतन उत्पादन बहुत कम है। भारत में प्रति एकड़ १४ टन ईख की उपज होती है, परन्तु जावा में ५६ टन और हवाई में ६२ टन। इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि ईख का उत्पादन बढ़ाया जाय।

तिलहन (Oil Seeds)

तिलहन भारत के लिये एक महत्वपूर्ण फसल है, क्योंकि इससे भारत को काफी विदेशी विनिमय प्राप्त होते हैं। हमारे देश में पैदा होने वाले तिलहनों में अलसी, लाही, सरसों, अंडी, मूंगफली तथा बिनोला मुख्य हैं।

भारत में तिलहन ८% खेतिहर-भूमि में बोई जाती है। इसका क्षेत्रफल लगभग २२३ लाख एकड़ है और उत्पादन लगभग ४२ लाख टन। मूँगफली कुल तिलहन के ४०% क्षेत्र में बोई जाती है और इसकी उपज कुल तिलहन की लगभग ६०% है।



चित्र ८५—तिलहन का उत्पादन

भारत से निर्यात की जाने वाली तिलहनों की मात्रा क्रमशः कम होती जा रही है। सन् १९३८-३९ में लगभग १९ करोड़ मूल्य की तिलहनों का निर्यात हुआ था। सन् १९४८-४९ में यह निर्यात घट कर ११ करोड़ रुपया रह गया।

रबर (Rubber)

भारत में रबर का औसतन उत्पादन १६ हजार टन वार्षिक है। इसका

उत्पादन देश में इसी शताब्दी में आरम्भ हुआ है। १६१० के लगभग इसका क्षेत्रफल ३० हज़ार एकड़ था। १६५० में यह बढ़कर १७५ हजार एकड़ हो गया।

भारत में संसार की लगभग १% रबर पैदा होती है और यह सब की सब निर्यात कर दी जाती है। इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि इसका उत्पादन बढ़ाया जाय।

३· पेय फसलें

चाय (Tea)

चाय के उत्पादन में भारत का दूसरा स्थान है। संसार की आधी से कुछ अधिक चाय भारत में पैदा होती है।

चाय के उत्पादन के लिये देश में दो क्षेत्र प्रसिद्ध हैं। (१) दार्जिलिंग, कमायूँ तथा काँगड़ा की घाटी का क्षेत्र, और (२) उत्तरी आसाम तथा कछार का क्षेत्र। इनके अतिरिक्त दक्षिण में ट्रावनकोर कोचीन तथा कोयम्बटूर में भी थोड़ी चाय पैदा होती है।

भारत में लगभग ७८ लाख एकड़ भूमि में चाय पैदा की जाती है और इसका उत्पादन लगभग ६१ लाख पौंड है। कुल पैदा होने वाली चाय का लगभग ७५% विदेशों को निर्यात कर दिया जाता है। अधिकांश चाय ग्रेट ब्रिटेन, अमरीका कनाडा तथा आस्ट्रेलिया को जाती है।

कहवा (Coffee)

इसके उत्पादन में भारत प्रसिद्ध नहीं है। इसकी खेती लगभग २२५ लाख एकड़ भूमि में होती है और इसका उत्पादन ५४ लाख पौंड है। पैदा होने वाले कहवे का ३७% भाग मैसूर से, ३६% मद्रास से और २०% कुर्ग से आता है। पैदा होने वाले कहवे का आधे से अधिक भाग ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी तथा आस्ट्रेलिया को निर्यात कर दिया जाता है।

तम्बाकू (Tobacco)

अमेरिका तथा चीन के बाद तम्बाकू के उत्पादन में भारत का स्थान है। संसार की ३१% तम्बाकू भारत उत्पन्न करता है।

भारत में तम्बाकू के उत्पादन के लिये दो क्षेत्र प्रसिद्ध हैं: (१) पूर्वी क्षेत्र—जिसमें बिहार, उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी बंगाल आ जाते हैं और (२) दक्षिणी क्षेत्र जिसमें मद्रास, मैसूर तथा बम्बई के राज्य आते हैं।

१६५१-५२ में इसकी खेती ७·६ लाख एकड़ भूमि में हुई और इसका कुल उत्पादन २३/४ लाख टन था। उत्पन्न होने वाली तम्बाकू का उपभोग देश में हो जाता है और इसका विदेशों को निर्यात नहीं होता। उल्टे बढ़िया तम्बाकू

का आयात करना पड़ता है। देश में सिगरेट-उद्योग प्रगति कर रहा है और उसके लिये बढ़िया तम्बाकू की आवश्यकता पड़ती है। अतएव इस बात की आवश्यकता है कि देश में बढ़िया तम्बाकू का उत्पादन बढ़ाया जाय।

अफीम (Opium)

हमारे देश में अफीम की खेती के ऊपर सरकारी नियन्त्रण है और इस कारण जो कुछ भी खेती होती है वह सरकारी देखभाल में होती है।

अफीम के लिये बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा पश्चिमी बंगाल प्रसिद्ध हैं। बिहार में अफीम पटना के आस-पास और उत्तर प्रदेश में बनारस के आस-पास उगाई जाती है।

भारत संसार भर में सबसे अधिक अफीम पैदा करता है। पहले हमारे देश से करोड़ों रुपये की अफीम चीन को निर्यात की जाती थी। परन्तु अब इसका निर्यात केवल दवा के लिये ही होता है।

परीक्षा-प्रश्न

उत्तर-प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—भारत का एक मानचित्र बनाइये और इसमें प्रधान फसल, खनिज पदार्थों और आधुनिक उद्योगों को दिखाइये। (१९४१)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

२—भारत की कौन कौन सी मुख्य फसलें हैं? इनका उत्पादन बढ़ाने के लिये आप क्या सुझाव रखेंगे। सविस्तार बताइये। (१९५२)

३—भारत की कौन कौन सी मुख्य कृषि फसले हैं? इनके भौगोलिक वितरण को बताइये। (१९४०)

४—भारत के विभिन्न भागों में कच्चे माल का वितरण बताइये। (१९३२)

पटना इन्टर आर्ट्स

५—भारत की प्रधान कृषि फसलों को बताइये। उनके प्रादेशिक वितरण को बताइये और उनके व्यापारिक महत्व पर प्रकाश डालिये। (१९५२)

पंजाब इन्टर आर्ट्स

६—भारत के उन भागों को बताइये जहाँ निम्न फसलें उत्पन्न होती हैं—(अ) चाय, (ब) कहवा, तथा (स) रबर। (१९४९)

७—भारत की कौनसी प्रधान खाद्य फसलें हैं? उनके प्रादेशिक वितरण को बताइये। (१९४९)

चौंतीसवाँ अध्याय

भारत की पशु-संपत्ति

(Cattle Wealth of India)

हमारे देश में पशुओं का भारी महत्व है और देश की कुल राष्ट्रीय आय में लगभग १ हजार करोड़ रुपये इनके द्वारा प्राप्त होते हैं। १९५१ की गणना के अनुसार देश में १९३० लाख पशु पाये जाते हैं जिनमें १५०० लाख गाय-बैल तथा ४३० लाख भैंस-भैंसे हैं। पाये जाने वाले गाय-बैलों में लगभग ५५% बैल तथा ४५% गायें हैं और ७३% भैंस तथा २७% भैंसे हैं। हमारे देश में प्रति १०० मनुष्यों के पीछे ४४ पशु हैं।

पशुओं की दशा

परन्तु इन पशुओं की दशा अत्यन्त सोचनीय है। यह बहुत कमजोर तथा अशक्त हैं। साथ ही यह दूध भी बहुत कम देते हैं। अमरीका की तुलना में भारत की गायें लगभग चौथाई दूध देती हैं। यही नहीं, देश के लगभग १०% पशु बेकार हैं। पशुओं की इस बुरी दशा के मुख्य तीन कारण हैं।

(१) चारे की कमी
(२) नस्ल की खराबी
(३) विभिन्न रोग

(१) चारे की कमी—पशुओं की कमजोरी का मुख्य कारण यह है कि उन्हें भर पेट भोजन नहीं मिलता। जब देश में मनुष्यो के लिये पर्याप्त भोजन प्राप्त नहीं है तो फिर जानवर भूखे रहें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। बरसात में तो जानवर किसी प्रकार अपना पेट भर लेते हैं, परन्तु जनवरी आते ही चारे की समस्या बिकट होने लगती है और मई जून के गर्मी के दिनों में समस्या अत्यन्त विकट हो जाती है।

(२) नस्ल की खराबी—हमारे देश के किसान साँड़ों की नस्ल पर ध्यान नहीं देते। ऐसे अनेक गाँव हैं जहाँ कोई अच्छा साँड़ नहीं पाया जाता। इसका परिणाम यह होता है कि बच्चे कमजोर तथा बुरी नस्ल के पैदा होते हैं।

(३) विभिन्न रोग—हमारे देश के जानवर अनेक रोगों से ग्रस्त रहते हैं। इसका कारण यह है कि उनके पीने का पानी और उनके बाँधने की जगह अत्यन्त

गन्दी होती है। जानवरों को प्रायः पौकनी, जहरबाद, मुँह तथा पैरों की छूत आदि के रोग हो जाते हैं जिनके कारण हजारों जानवर प्रति वर्ष मर जाते हैं। पशु-डाक्टरों के अभाव के कारण जानवरों की ठीक से चिकित्सा भी नहीं होने पाती।

समस्या का हल

जानवरों की दशा सुधारने के लिये यह आवश्यक है कि चारे की कमी दूर की जाय। इसके लिये यह आवश्यक है कि गाँवों के आस-पास जो ऊबड़-खाबड़ जमीन पड़ी रहती है उसको चौरस कर उस पर घास उगाई जाय। क्लोवर, आस्ट्रेलियन चरी, लुसरीन तथा फ्राँसीसी जई आदि ऐसी अनेक फसलें हैं जिन्हें फसल काटने के उपरान्त बोया जा सकता है और जो थोड़े दिनों में तैयार होकर चारे की कमी की समस्या हल कर सकती हैं। सरकार को इस प्रकार की फसलों का प्रयोग व्यापक करने के लिये प्रयास करना चाहिए।

नस्ल सुधारने के लिये यह आवश्यक है कि रोगी तथा बूढ़े साँड़ों को नष्ट कर दिया जाय। इसके पश्चात् राज्य की सरकारों, जिला-परिषदों तथा ग्राम पंचायतों को मिलकर गावों में अच्छे-अच्छे साड़ों को रखने का प्रयास करना चाहिए। सन् १९३५-३६ में देश भर में १० हजार अच्छे साँड़ थे जब कि लगभग १२-१३ लाख साँड़ों की आवश्यकता थी। इसी से साँड़ों की कमी का अनुमान लगाया जा सकता है।

जानवरों को रोगों से बचाने के लिये यह आवश्यक है कि पशु-चिकित्सालय खोले जायँ और पशु-डाक्टरों की संख्या बढ़ाई जाय। भारतीय कृषि-कमीशन के अनुसार देश में पन्द्रह लाख जानवरों के ऊपर केवल १ डाक्टर है। इनमें से अधिकांश शहरों में रहते हैं और गाँव वालों के लिये उन्हें बुलाना बहुत मंहगा पड़ता है। देश भर में कुल २००० पशु-चिकित्सालय हैं और इनमें से अधिकांश शहर तथा बड़े नगरों में है। गाँव वालों की भलाई तभी हो सकती है जब घूमने वाले अस्पताल गाँवों में जाकर जानवरों की देख भाल करें। सरकार को इस ओर उचित ध्यान देना चाहिए।

प्रश्न

१—भारत के पशुओं की क्या दशा है? बताइए

२—भारत के पशुओं की दशा सुधारने के उपाय बताइए।

३—चारे की कमी को किस प्रकार दूर किया जा सकता है।

———

पैंतीसवाँ अध्याय

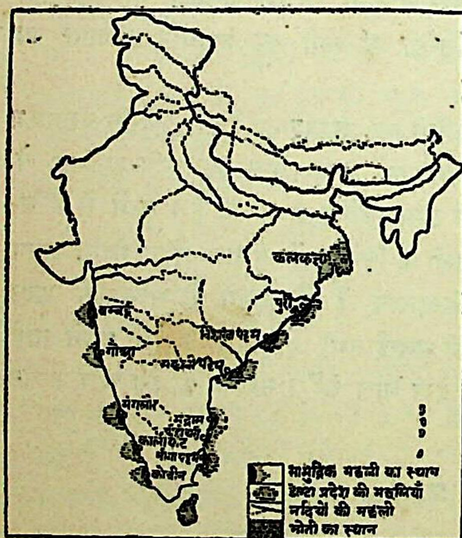
भारत की मछलियाँ

(Fishery In India)

भारत में पाई जाने वाली मछलियों को मुख्य दो भागों में बाँटा जा सकता है—(१) समुद्र के किनारे पकड़ी जाने वाली मछलियाँ जिन्हें समुद्री मछलियाँ कहा जाता है, और (२) नदी, नहर, तालाब आदि में पकड़ी जाने वाली मछलियाँ।

समुद्री मछलियाँ

सामने के चित्र से हमें १०० फैदम गहरी समुद्री रेखा का पता लग जाता है। साथ ही विभिन्न मत्स्य-क्षेत्रों का भी पता चल जाता है जहाँ मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। उसको देखकर यह कहा जा सकता है कि हमारे देश में समुद्री मछलियाँ किनारे से पाँच मील की दूरी तक पकड़ी जाती हैं। यह मद्रास, ट्रावनकोर-कोचीन, बंगाल तथा बम्बई के आसपास अधिक पकड़ी जाती हैं। समुद्री मछलियों को पकड़ने में मद्रास राज्य बहुत प्रसिद्ध है। यहाँ विजगापट्टम, कोकनाडा, मद्रास, मछलीपट्टम, पांडिचेरी, नैलोर, गंजम, भोपाल पुर, तथा नागा पट्टम मछली पकड़ने के मुख्य स्थान हैं। बम्बई में भी मछली पकड़ने की बहुत सी सुविधायें हैं। यहाँ वर्ष में सात महीने मछली पकड़ी जा सकती है। यहाँ का समुद्री किनारा भी अच्छा है। भारत में समुद्री मछली पकड़ने का तीसरा मुख्य स्थान पश्चिमी बंगाल तथा उड़ीसा में है। यहाँ पकड़ी जाने वाली मछलियों की मांग कलकत्ते में बहुत है।



चित्र ८६—समुद्री मछलियाँ पकड़ने का स्थान

भारत का समुद्री किनारा लगभग ४००० मील तक फैला हुआ है। अनुमान है कि यहाँ लगभग सवा लाख वर्ग मील क्षेत्र में मछलियाँ पकड़ी जा सकती हैं।

परन्तु अभी तक केवल पन्द्रह हजार वर्ग-मील क्षेत्र में ही मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। पकड़ी जाने वाली मछलियों में सारडीन, मैकरिल, ज्यू, पोमफ्रेट, कैटफिस, हिलसा, गागिल्स आदि प्रसिद्ध हैं।

अन्य मछलियाँ

समुद्री किनारे के अतिरिक्त हमारे देश में नदियों तथा तालाबों में भी मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। गंगा, यमुना महानदी, ब्रह्मपुत्र नदियों में मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। दक्षिणी भारत में नर्मदा, कृष्णा, कावेरी तथा गोदावरी नदियों के डेल्टाओं में भी मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। पश्चिमी बंगाल तथा बिहार प्रान्तों में मछलियों की माँग अधिक होने के कारण गाँव के लोग तालाबों में मछली पकड़ते हैं और अपने भोजन के काम में लाते हैं। नदियों में पकड़ी जाने वाली मछलियों में रोहू, हेल कटला, पौन, कैटफिश, आदि प्रसिद्ध हैं।

नदियों में पकड़ी जाने वाली मछलियां समुद्री मछलियों की अपेक्षा छोटी होती हैं। मात्रा में भी यह बहुत कम पकड़ी जाती हैं। पुनः बरसात के दिनों में इनका पकड़ना बन्द कर दिया जाता है। जितनी मछलियाँ पकड़ी जाती हैं उनको आसपास के शहरों में रहने वाले व्यक्ति भोजन के काम में लाते हैं।

मछली-उद्योग में असुविधायें

दुर्भाग्य से हमारे देश में मछलियों का उद्योग प्रगतिशील दशा में नहीं है। इसके कई कारण हैं। एक तो हमारे देश की जलवायु गर्म है जो मछलियों की प्रगति में बाधक है। दूसरे देश में एक स्थान पर कई प्रकार की मछलियाँ एक साथ मिली हुई मिलती हैं। अतः उनको एक एक करके छाँटने तथा बेचने में बड़ा समय लगता है। तीसरे, यहाँ की जलवायु गरम होने के कारण मछलियाँ दूर स्थान तक कच्ची दशा में नहीं भेजी जा सकतीं। हमारे देश में ठंडे कमरे (Cold Storage) नहीं हैं जहाँ यह सुरक्षित रह सकें। चौथे, भारत में केवल बंगाल, आसाम तथा मद्रास प्रान्तों में इनकी अधिक माँग है। अन्य प्रान्तों में मछलियों की भोजन के लिये अधिक माँग नहीं है। पाँचवे, मछलियों को वैज्ञानिक ढंग से नहीं पकड़ा जाता। उनके पकड़ने वाले कम पढ़े-लिखे होते हैं जो नावों द्वारा मछली पकड़ते हैं। यूरुप के देशों में इसके लिये बड़े-बड़े ट्रालर होते हैं। परन्तु हमारे देश में वह काम में नहीं लाये जाते। इस कारण मछलियाँ अधिक मात्रा में नहीं पकड़ी जातीं और साथ ही उनके पकड़ने का व्यय भी बहुत पड़ता है। छठें, मछलियों पर निर्भर मछली के तेल का उद्योग भी हमारे देश में उन्नतिशील दिशा में नहीं है। सातवे, यहाँ मछली पकड़ने का समय केवल पाँच ही महीने है—अक्टूबर से लेकर फरवरी तक। इस कारण अधिक मात्रा में मछलियाँ नहीं पकड़ी जा सकतीं। गर्मियों तथा बरसात में मछलियाँ कम पकड़ी जाती हैं।

यह अनुमान किया जाता है कि देश में लगभग ११६'७ लाख मन समुद्री मछली पकड़ी जाती है। उसमें ८'८ लाख मन मल्लाह अपने खाने के लिये रख बाकी बेच देते हैं। जहाँ तक तालाब तथा नदियों में पकड़े जाने वाली मछलियों का सवाल है, यह पता लगाना कठिन है कि मल्लाह कितनी मात्रा में अपने उपभोग के लिये रख लेते हैं। परन्तु इतना पता है कि औसतन ६२'६ लाख मन मछली बाजार में बिकने आती है। इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि इस उद्योग की प्रगति की ओर ध्यान दिया जाय क्योंकि इनके द्वारा देश की अन्न-समस्या काफी सुलझ सकती है।

प्रश्न

१—भारत में मछली व्यवसाय की क्या दशा है ? विस्तार से बताइये।

२—भारत में किस प्रकार की मछलियाँ पकड़ी जाती हैं ? बताइये।

३—भारतीय मछली व्यवसाय की कठिनाइयों पर प्रकाश डालिये।

———

छत्तीसवाँ अध्याय

भारत के खनिज पदार्थ

(Minerals of India)

भारत का खनिज पदार्थों की उत्पत्ति में अच्छा तथा महत्वपूर्ण स्थान है। परन्तु दुर्भाग्य से इनका उचित मात्रा में शोषण नहीं हो पाया है। साथ ही देश की अधिक औद्योगिक उन्नति न होने के कारण खनिज पदार्थ संबंधी व्यवसाय भी उन्नति नहीं कर पाये हैं। नीचे महत्वपूर्ण खनिजों के बारे में बताया गया है।

कोयला

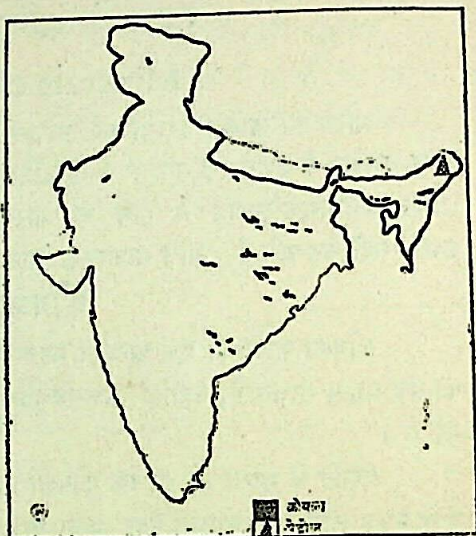
कोयला शक्ति का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन है। भारत में अब भी शक्ति का यह प्रमुख साधन है, क्योंकि जल-विद्युत-शक्ति की उचित मात्रा में उन्नति नहीं हुई है।

प्रकृति ने भारत को अधिक कोयला नहीं दिया है। सन् १९३८ में भारत में कुल २५३ लाख टन कोयला पैदा हुआ था, जबकि संसार का उत्पादन १२२५० लाख टन था। भारत में ९८ प्रतिशत कोयला गौंडवाना काल की शिलाओं से निकाला जाता है। गौंडवाना काल की शिलायें बंगाल तथा बिहार राज्य की दामोदर घाटी में अधिक पाई जाती हैं। इस समय की कोयले की खानों में निम्न खानें प्रसिद्ध हैं।

गौंडवाना कोयला

राज्य	खानों के नाम
पश्चिमी बंगाल	रानीगंज
बिहार	झरिया, बोकारो, गिरडीह, राजमहल, पालामऊ, करनपुर, रामगढ़, रायपुर, औरंगापुर, तथा डाल्टनगंज
उड़ीसा	तालचर
मध्य भारत	उमरिया, सुहागपुर तथा सिंगरौली
मध्य प्रदेश	मोहपानी, शाहपुर, पैंचघाटी, वरोरा (वर्धा घाटी) यवतमाल तथा छत्तीसगढ़
हैदराबाद	सिंगरैनी, सस्ती तथा तानदूर

भारत में कोयला उत्पन्न करने वाला सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र झरिया है जहाँ देश का लगभग ५०% कोयला खोदा जाता है। इसके पश्चात् रानीगंज का क्षेत्र आता है, जहाँ देश का लगभग २५% कोयला खोदा जाता है। मध्य प्रदेश और हैदराबाद में भी कोयले का थोड़ा सा उत्पादन होता है।



चित्र ८७—कोयले की खानें

भारत में कोयला-उद्योग अधिक उन्नति नहीं कर सका है। इसके कई कारण है। १—भारतीय कोयला अच्छी किस्म का नहीं है। गौंडवाना कोयले में भी काफी मिलावट रहती है और वह राख भी बहुत अधिक देता है। २—अधिकांश कोयला भारत के पूर्वी कोने में पाया जाता है और उसको अन्य प्रान्तों तक ले जाने में बहुत खर्चा होता है। ३—जिस क्षेत्र में कोयला पाया जाता है उसने अधिक आर्थिक उन्नति नहीं की है और इस कारण वहाँ यातायात के साधन भी अधिक उन्नति नहीं कर पाये हैं। परिणामस्वरूप कोयले को भेजने में कठिनाई होती है। ४—भारतीय कोयला नदियों या समुद्र के किनारे नहीं पाया जाता और उसे रेल से ही भेजना पड़ता है जिसके कारण यातायात-व्यय अधिक पड़ता है।

इतना सब होते हुए भी भारतीय कोयला काफी महत्त्व रखता है, क्योंकि भारत के आसपास के देशों में कहीं भी कोयला नहीं पाया जाता और यदि भारत में कोयले का यातायात सस्ता हो जाय तो ये सब देश भारत से ही कोयला मँगाने लगें।

लोहा

लोहे के उत्पादन में भारत का संसार में नवाँ स्थान है। यहाँ लोहे का उत्पादन ३० लाख टन वार्षिक है। देश का लगभग आधा लोहा बिहार, उड़ीसा, में स्थित सिंहभूमि की खान से प्राप्त किया जाता है। दूसरा स्थान उन्हीं राज्यों में मयूरभंज का है जहाँ से देश का लगभग ¼ लोहा प्राप्त किया जाता है। लोहे के लिये भारत में निम्न स्थान प्रसिद्ध हैं :—

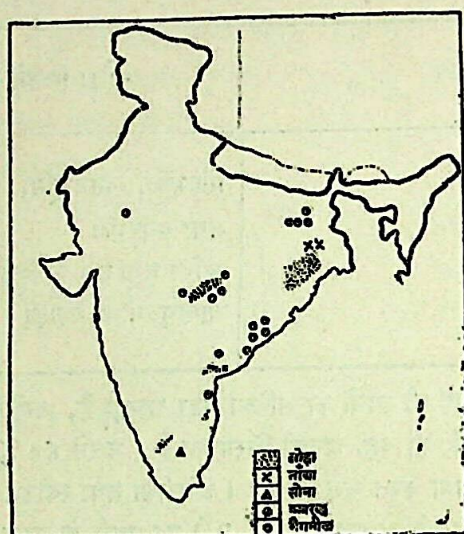
राज्य	लोहा मिलने के स्थान
बिहार-उड़ीसा	सिंहभूमि, मानभूमि, क्योंझर, बोनाई तथा मयूरभंज
मध्य प्रदेश	चाँदा तथा दुर्ग के जिले
मैसूर	बाबाबूदन की पहाड़ी

भारत में लोहे की खानों का भविष्य बड़ा अच्छा है, क्योंकि (१) यहाँ जो कोयला पाया जाता है वह बड़ी अच्छी क़िस्म का है, उसमें ६०% शुद्ध लोहा रहता है और गंधक की मात्रा बहुत कम होती है। अमरीका तथा स्वीडन में प्राप्त होने वाले लोहे से इसकी तुलना की जा सकती है। (२) यह पृथ्वी के सतह पर पाया जाता है और इस कारण इसकी खुदाई में अधिक व्यय नहीं करना पड़ता। (३) इसकी स्थिति बहुत अच्छी है। कोयले की खानें पास ही हैं। मैंगनीज तथा चूना अधिक दूर नहीं हैं। रेल की लाइन पास ही होकर गुजरती है और कलकत्ते का बन्दरगाह बहुत नजदीक है। इन सब कारणों से इनकी उन्नति में बड़ी सुविधा है।

मैंगनीज

मैंगनीज के उत्पादन में भारत का संसार में रूस के बाद दूसरा स्थान है। इसके निम्न प्रसिद्ध उत्पादन क्षेत्र हैं।

राज्य	स्थान
मध्य प्रदेश	बालघाट, भंडारा, छिंदवाड़ा, नागपुर
मद्रास	गंजाम, वेलारी, विजगापट्टम तथा संदूर
उड़ीसा	गंगापुर, क्योंझर
बम्बई	नामकोट, पंचमहल, छोटा उदयपुर, रत्नगिरि तथा धारवार
मैसूर	चीदलदुर्ग, कादर, शिमोगा तथा तुमकर
बिहार	सिंहभूमि



चित्र ८८—खनिज पदार्थ

देश के उत्पादन की ६०% मैंगनीज मध्य प्रदेश से और ३०% मद्रास से आती है।

अभ्रक

अभ्रक के उत्पादन में भारत का संसार में सर्व प्रथम स्थान है। संसार की ८५% अभ्रक भारत से आती है। इसके लिये निम्न स्थान प्रसिद्ध हैं :—

राज्य	स्थान
बिहार	हजारीबाग, मुंगेर तथा गया
मद्रास	नैलोर
राजस्थान	अजमेर तथा जयपुर

भारत की ८०% अभ्रक बिहार राज्य से प्राप्त होती है। बिहार की अभ्रक सफ़ेद रंग की और मद्रास की नीले रंग की होती है।

ताँबा

भारत ताँबा के लिये प्रसिद्ध नहीं है और संसार में इसका तेरहवाँ स्थान है। देश में सब से अधिक ताँबा बिहार राज्य से प्राप्त होता है, जहाँ सिंहभूमि तथा हजारीबाग के स्थान प्रसिद्ध हैं। दूसरा स्थान मद्रास राज्य का है जहाँ नैलौर का

जिला प्रसिद्ध है। इनके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश, मैसूर तथा नैपाल में भी ताँबा पाया जाता है।

सोना

बहुमूल्य खनिजों में भारत प्रसिद्ध नहीं है। सोने के उत्पादन में भारत का संसार में नवाँ स्थान है। संसार का केवल दो प्रतिशत सोना ही भारत में पैदा होता है।

भारत का ९९% सोना मैसूर राज्य में स्थित कोलहार की खानों से प्राप्त किया जाता है। ये खानें काफी गहरी खोदी जा चुकी हैं और अब इनमें अधिक सोना नहीं रहा है।

क्रोमाइट

क्रोमाइट का प्रयोग फौलाद को सख्त करने के लिये होता है। फोटोग्राफी में भी इसका प्रयोग होता है।

भारत में यह खनिज मैसूर तथा बिहार राज्यों में पाया जाता है। भारत का ¾ क्रोमाइट मैसूर राज्य से प्राप्त होता है। यहाँ शिमोगा तथा हसन दो मुख्य खानें हैं। बिहार में सिंहभूमि का जिला क्रोमाइट के लिये प्रसिद्ध है।

टंगस्टन

टंगस्टन की मुख्य खनिज वुल्फरेम (Wolfrem) है। इसका प्रयोग फौलाद बनाने के लिये होता है। बिजली के बल्ब के तार भी इसी धातु से बनाये जाते हैं।

यह खनिज भारत में बिहार-उड़ीसा के सिंहभूमि जिले में, मध्य प्रदेश के अमरगाँव तथा मारवाड़ के डेगाना स्थानों पर पाई जाती है। भारत का टंगस्टन के उत्पादन में संसार में कोई महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं है।

अन्य

शोरा हमारे देश में बिहार तथा उत्तर-प्रदेश में पाया जाता है। देश में इसका प्रयोग बहुत कम होता है और अमरीका, चीन तथा इंगलैंड आदि देशों को इसका निर्यात कर दिया जाता है। काँच बनाने के काम में आने वाली बालू मिट्टी पश्चिमी बंगाल में राजमहल के पास; उत्तर प्रदेश में लोहगरा तथा बरगढ़ में; बीकानेर तथा बड़ौदा में पाई जाती है। **संगमरमर** मध्य प्रदेश में नागपुर तथा जबलपुर में पाया जाता है। किशनगढ़, अजमेर, जोधपुर, जेसलमेर, उदयपुर तथा जयपुर में भी विभिन्न रंगों के पत्थर पाये जाते हैं। **बाक्साइट** अधिकतर मध्य प्रदेश

में पाई जाती है। थोड़ी सी बाक्साइट विहार, बम्बई तथा मद्रास राज्यों में भी पाई जाती है। मोनाजाइट ट्रावनकोर राज्य तथा गोदावरी के डेल्टा में पाई जाती है।

सन् १९५०-५१ में भारत में विभिन्न खनिजों का उत्पादन निम्न प्रकार था :

खनिज पदार्थ	उत्पादन (टनों में)
कोयला	३,४४,३०,५२२
क्रोमाइट	१५,५६७
ताँबा	३,६९,०५८
जिप्सम	१,९०,२२३
इल्मैनाइट	१,४०,९१२
लोहा	३६,५५,१६१
मैंगनीज	११,६१,०४५
अभ्रक	२,१८,७३९ हंडरवेट
चाँदी	१७,१८० औंस
सोना	२,२६,४७५ औंस

इन सब खनिजों का मूल्य लगभग ७४ करोड़ रुपया था।

भारत सरकार की खनिज पदार्थ संबंधी नीति

ऊपर के विवरण से यह स्पष्ट हो गया होगा कि भारत कई खनिजों के उत्पादन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यह ठीक है कि बहुमूल्य खनिज भारत में अधिक नहीं पाये जाते, परन्तु औद्योगिक प्रगति के लिये आवश्यक खनिजों की भारत में कमी नहीं है। फिर भी इन खनिजों का उचित रूप से शोषण नहीं हो पाया है। इसके कई कारण हैं। एक तो हमारे देश में यातायात के साधनों का उचित रूप से विकास नहीं हो पाया है। दूसरे, देश ने अधिक औद्योगिक प्रगति नहीं की है और इस कारण खनिज पदार्थों का प्रयोग अधिक नहीं हो पाता है। तीसरे, खनिजों को साफ करने के साधन भी देश में उचित मात्रा में प्राप्त नहीं हैं। सरकार को चाहिये कि इन कमियों को दूर करे और साथ में इनके निर्यात पर भी यथा-आवश्यक रोक लगा दे जिससे इनका प्रयोग देश में ही अधिक होने लगे।

परीक्षा-प्रश्न

उत्तर प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—भारत की खनिज संपत्ति पर एक सूक्ष्म नोट लिखिये। (१९५०, १९४७)

२—भारत की खनिज संपत्ति का संक्षिप्त में वर्णन कीजिये और देश के भावी आर्थिक विकास में उसका महत्व बताइये। (१९४८)

३—भारत का एक मानचित्र बनाइये और उसमें प्रधान फसलों, खनिज पदार्थों तथा आधुनिक उद्योगों का समुचित विभाजन दिखाइये। (१९४१)

४—"भारत की प्राकृतिक संपत्तियाँ अनन्त हैं। आवश्यकता इस बात की है कि उनकी समुचित रक्षा, विकास तथा प्रयोग किया जाय।" इस कथन की, विशेषतः जल शक्ति, वन तथा खनिज पदार्थं के संबंध में व्याख्या कीजिये। (१९४०)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

५—भारत की खनिज संपत्ति का संक्षिप्त में वर्णन कीजिये। इसका भारत की भावी आर्थिक उन्नति के लिये क्या महत्व है? (१९५०)

सागर इन्टर आर्ट्स

६—भारत के खनिज पदार्थों को बताइये। मध्य प्रदेश में पाये जाने वाले खनिज पदार्थों का विशेषतः उल्लेख कीजिये। (१९५०)

सैंतीसवाँ अध्याय

भारत में शक्ति के स्रोत

(Power Resources of India)

देश में पाये जाने वाले उद्योग-धन्धे उसी समय उन्नति कर सकते हैं जब उनकी उन्नति के लिये देश में शक्ति के स्रोत पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हों। जिस प्रकार बिना भोजन के मनुष्य का शरीर नहीं चल सकता, उसी प्रकार बिना शक्ति के साधनों के उद्योग-धन्धे नहीं चल सकते।

शक्ति के साधन कई हैं जैसे (१) मनुष्य, (२) पशु, (३) वायु, (४) लकड़ी, (५) कोयला, (६) पेट्रोल, तथा (७) जल-विद्युत्। इनके बारे में हम एक-एक कर बतावेंगे।

मनुष्य-शक्ति

मनुष्य अपने हाथों से काम करता है और इस कारण वह शक्ति का एक साधन है। एक देश की मनुष्य-शक्ति वहाँ की जनसंख्या तथा मनुष्यों की कार्य-कुशलता पर निर्भर रहती है। हमारे देश की आबादी लगभग ३७ करोड़ है। इस हिसाब से यहाँ की मानवीय शक्ति काफी अधिक होनी चाहिए। परन्तु हमारे देश के लोगों का स्वास्थ्य काफी बुरा है, और उनके रहन-सहन का स्तर नीचे होने के कारण वे विभिन्न बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। साथ ही शिक्षा की कमी के कारण वे कुशल भी नहीं हैं। इन सब कारणों से भारत की मानवीय शक्ति अधिक नहीं हैं।

पशु-शक्ति

पशु भी शक्ति के साधन हैं। हमारे देश में पशुओं का प्रयोग कृषि के लिये और यातायात में बहुत प्राचीन समय से होता आया है। भारत में संसार के अन्य सभी देशों से अधिक जानवर पाये जाते हैं। केवल गाय-बैलों की संख्या ही २१ करोड़ है। परन्तु इतना सब होते हुए भी पशु शक्ति अधिक महत्व की नहीं है क्योंकि जानवरों का स्वास्थ्य बहुत गिरा है। भर पेट भोजन न मिलने के कारण वह इतने कमजोर हैं कि वे ठीक से काम भी नहीं कर पाते। नश्ल की खराबी के कारण उनकी दशा में सुधार नहीं हो पाया है। परिणाम यह हुआ है कि पशुओं की अधिक संख्या हमारे देश के लिये भार हो गई है।

वायु शक्ति

बहुत से देशों में वायु से भी शक्ति का काम लिया जाता है। वायु से आटे की चक्कियाँ तो बहुत से पेशों में चलती हैं। हमारे देश में पहाड़ी प्रदेशों में कुछ चक्कियाँ अवश्य हैं परन्तु उनकी संख्या अधिक नहीं है। इसका कारण यह है कि हमारे देश में वर्ष भर तेज हवा नहीं बहती। कुछ किसान अनाज तथा भूसा को पवन की सहायता से अवश्य अलग करते हैं। परन्तु यह वायु शक्ति का कोई महत्वपूर्ण उपयोग नहीं है।

ईंधन शक्ति

जिस समय तक मनुष्य कोयले को शक्ति के साधन के रूप में प्रयोग करना नहीं सीखे थे, वे लकड़ी से ही काम चलाते थे। इस कारण उस समय अधिकतर उद्योग-धन्धे जंगलों के पास ही केन्द्रित होते थे। परन्तु आजकल ईंधन का प्रयोग शक्ति के रूप में कम हो गया है। भारत में भी अब ईंधन का प्रयोग शक्ति के रूप में अधिक नहीं होता। केवल मैसूर के फौलाद के कारखाने में सिमोगा के जंगल से लकड़ी काटकर लाई जाती है और उसकी शक्ति से फौलाद तैयार किया जाता है। इसके अतिरिक्त हमारे देश में कोई दूसरा उदाहरण नहीं है।

कोयला

कोयला शक्ति का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन है। भारत में अभी तक कोयले का प्रयोग शक्ति के रूप में बहुत अधिक होता है। जलविद्युत् का प्रयोग शक्ति के रूप में होने लगा है, परन्तु यह इतना अधिक व्यापक नहीं हो पाया है जितना कि कोयला है।

कोयले की उत्पत्ति के बारे में हम आपको पिछले अध्याय में बता चुके हैं। यहाँ केवल इतना कह देना पर्याप्त है कि हमारे देश के समुचित औद्योगिक विकास के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि जलविद्युत् शक्ति की उन्नति की जाय।

पेट्रोल

पेट्रोल भी शक्ति प्रदान करने वाला एक महत्वपूर्ण साधन है। मोटर तथा हवाई जहाजों के आविष्कार से संसार भर में पेट्रोल का महत्व काफी बढ़ गया है। आजकल युद्ध में मोटर लारी, हवाई जहाज तथा बम वर्षक जहाजों का अत्यन्त आवश्यक स्थान है। आवागमन के अनेक साधन पेट्रोल पर ही आश्रित हैं। इन्हीं कारणों से शक्ति के स्रोतों में पेट्रोल का बहुत महत्व है।

बर्मा के भारत से अलग हो जाने से पेट्रोल उत्पादन करने वाला एक महत्वपूर्ण क्षेत्र भारत से अलग हो गया। पाकिस्तान के अलग हो जाने से पेट्रोल

के उत्पादन में और भी कमी आ गई है, क्योंकि पंजाब तथा सीमाप्रान्त में पाये जाने वाला पेट्रोल अब पाकिस्तान से चला गया है।

भारत में अब पेट्रोल केवल आसाम में खासी तथा जयन्तिया पहाड़ियों के उत्तर पूर्व में लखीमपुर जिले में पाया जाता है। यहाँ की डिग्बोई की खान प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त बदरपुरा, पथरीया तथा मसीमपुर की खानों से भी, जो सूर्मा घाटी में स्थिति हैं, तेल निकाला जाता है। डिग्बोई की खान २३ वर्ग मील क्षेत्रफल में आबाद है और भारत में सबसे अधिक प्रसिद्ध है। यहाँ डिग्बोई, वप्पापुंग तथा हमनपुंग स्थानों से तेल निकाला जाता है। इन सब खानों से मिलाकर लगभग ६० लाख गैलन पेट्रोल हर वर्ष निकाला जाता है। पाकिस्तान का कुल वार्षिक उत्पादन १५ लाख गैलन है।

विद्युत्-शक्ति

ऊपर के वर्णन से आपको यह स्पष्ट हो गया होगा कि जन, पशु, वायु, कोयला तथा पेट्रोल सभी शक्ति के स्रोतों में भारत बहुत पिछड़ा हुआ है। कोयला तथा पेट्रोल की कमी देश की आर्थिक प्रगति में काफी बाधक होती, यदि सौभाग्य से भारत विद्युत्-शक्ति में धनवान न होता। वास्तव में विद्युत् शक्ति ही भारत का सबसे महत्वपूर्ण शक्ति का स्रोत है।

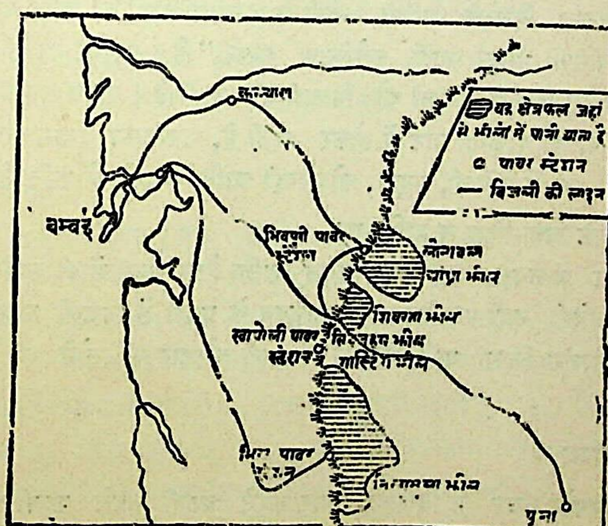
भारत में विद्युत्-शक्ति के निम्न लिखित महत्वपूर्ण कारखाने हैं :—

राज्य	शक्तिगृह की स्थिति	योजना का नाम
बम्बई	भिवपुरी	आन्ध्र वैली-पावर सप्लाई कम्पनी लिमिटेड
बम्बई	खोपली	टाटा हाइड्रो-इलैक्ट्रिक पावर सप्लाई कम्पनी लिमिटेड
बम्बई	भीरा	टाटा पावर कम्पनी लिमिटेड
मद्रास	मैट्टूर	मैट्टूर हाइड्रो-इलैक्ट्रिक स्कीम
	पाइकारा	पाइकारा हाइड्रो-इलैक्ट्रिक स्कीम
	पापनासम	पापनासम हाइड्रो-इलैक्ट्रिक स्कीम
उत्तर प्रदेश	चन्दौसी तथा हरदुआगंज	गंगा कैनाल हाइड्रो-इलैक्ट्रिक ग्रिड

राज्य	शक्तिगृह की स्थिति	योजना का नाम
पंजाब	योगेन्द्रनगर	मन्डी हाइड्रो-इलैक्ट्रिक स्कीम
मैसूर	शिव समुद्रम	शिव समुद्रम हाइड्रो इलैक्ट्रिक स्कीम
	शिमशा	शिमशा हाइड्रो-इलैक्ट्रिक स्कीम
ट्रावनकोर	त्रिवेन्द्रम	त्रिवेन्द्रम इलैक्ट्रिक सप्लाई कम्पनी
काश्मीर	पल्लीवासल बुनीयार	पल्लीवासल हाइड्रो-इलैक्ट्रिक स्कीम बरामुल्ला हाइड्रो-इलैक्ट्रिक स्कीम

बम्बई राज्य के बिजली के कारखाने

भारत में बिजली के सबसे महत्वपूर्ण कारखाने बम्बई राज्य में टाटा एण्ड सन्स ने बनवाये हैं। इन्होंने तीन कारखाने स्थापित किये हैं। सन् १९१५ में देश



चित्र ८९—बम्बई राज्य के जल विद्युत् कारखाने

के प्रसिद्ध व्यवसायी श्रीयुत् टाटा ने एक 'टाटा हाइड्रो इलैक्ट्रिक पावर सप्लाई कम्पनी' की स्थापना की। १९२२ में टाटा ने एक दूसरी कम्पनी खोली जिसे

"आन्ध्र वैली इलैक्ट्रिक सप्लाई कम्पनी' कहते हैं। टाटा ने तीसरी कम्पनी सन् १९२७ में 'टाटा पावर कंपनी लिमिटेड' के नाम से स्थापित की।

ये तीनों कम्पनियाँ बम्बई राज्य के एक हजार वर्ग मील के क्षेत्र में बिजली देती हैं। ये तीनों कम्पनियाँ मिलकर भारत में सबसे बड़ी हैं। इनकी शक्ति लगभग ढाई लाख हार्स पावर है। बम्बई, पूना, थाना तथा कल्यान में स्थित उद्योग-धन्धों को तथा बी० बी० एण्ड सी० आई० और जी० आई० पी० रेलों को भी यहाँ से बिजली मिलती है।

मद्रास के बिजली के कारखाने

सन् १९२८ तक मद्रास में चाय के बागों में छोटे छोटे बिजली के शक्तिगृह थे। नीलगिरि में कसेरी नामक स्थान पर भी एक छोटा सा शक्तिगृह था। परन्तु अब मद्रास राज्य में विद्युत् शक्ति ने पर्याप्त उन्नति करली है। यहाँ तक कि अब मद्रास का स्थान बम्बई के बाद आता है। यहाँ तीन शक्ति गृह हैं तथा दो नये गृहों के बनाने के बारे में योजना तैयार हो रही है।

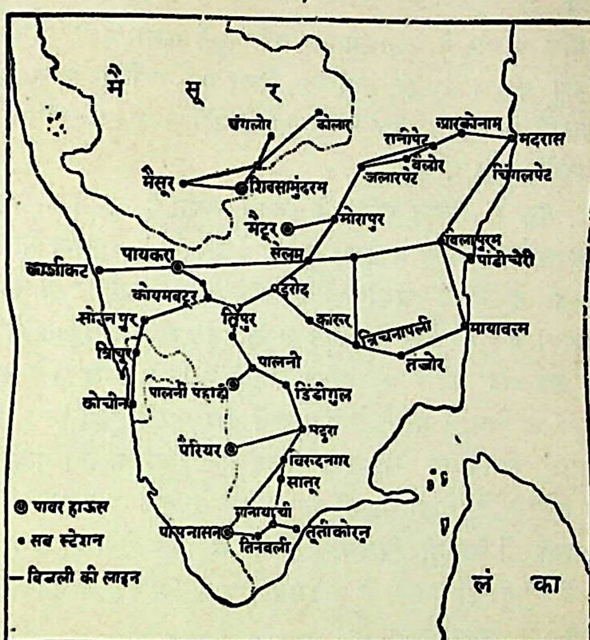
मद्रास के दक्षिण में नीलगिरि पहाड़ियों में पाइकारा नदी के पानी को रोक कर बिजली पैदा की जाती है। "पाइकारा हाइड्रोइलैक्ट्रिक योजना" मद्रास सरकार ने सन् १९२९ में आरम्भ की थी और यह सन् १९३२ में पूरी हो गई। पाइकारा से उत्पन्न बिजली तामिल प्रदेश में उद्योग-धन्धों को शक्ति प्रदान करती है। दूसरी कम्पनी "मैटूर हाइड्रो-इलैक्ट्रिक कम्पनी" है। यहाँ से सालिम, तनजोर, आरकट तथा चित्तौड़ के जिलों को बिजली दी जाती है। मद्रास सरकार ने ताम्र-पारनी नदी पर, जो दक्षिणी घाट में होकर बहती है, पापनासम स्थान पर एक शक्ति गृह बनाया है जो टिनीविली, मदुरा, कोइलपट्टी आदि स्थानों को शक्ति देती है।

मैसूर राज्य के जल-विद्युत् शक्ति-गृह

भारत में सबसे पहले जल-विद्युत् शक्ति मैसूर राज्य में ही आई थी। मैसूर दरबार ने कावेरी नदी पर स्थित शिवसमुद्रम के प्रपात से बिजली बनाने का काम १९०२ में आरंभ किया था। यहाँ से बिजली कोल्हार की सोने की खानों को जाती है।

ट्रावनकोर राज्य

ट्रावनकोर राज्य में बिजली तैयार करने वाली सबसे पहली कम्पनी सन् १९०५ में बनी थी। यहाँ की बिजली उसी कम्पनी की मिल तथा उसके आफिस को जाती थी। सन् १९२७ में सरकार ने बिजली शक्ति को बढ़ाने की तरफ ध्यान दिया और सन् १९२९ में "त्रिवेन्द्रम इलैक्ट्रिक-सप्लाई कम्पनी" स्थापित की। उसके उपरान्त सन् १९३२ में कोटियाम पर एक शक्ति गृह खोला गया। सन् १९३४ में



चित्र ६०—दक्षिण के जल विद्युत् क्षेत्र

एक तीसरी कम्पनी खुली जिसने नगरकोल में शक्ति-गृह स्थापित किया गया। कोटियाम तथा नगरकोल की दोनों कम्पनियाँ व्यक्तिगत हैं और स्थानीय तौर पर बिजली देती हैं।

उत्तर-प्रदेश

"गंगा कैनाल हाइड्रो इलैक्ट्रिक ग्रिड' के द्वारा उत्तर प्रदेश के १४ पश्चिमी जिलों को बिजली मिलती है। इन सब शक्ति गृहों को तथा जल प्रपातों से उत्पन्न होने वाली बिजली को एक बिजली की लाइन से जोड़ दिया गया है जिसे Electric Grid कहते हैं। इससे लाभ यह है कि यदि एक शक्ति-गृह बंद भी हो जाय तो भी सभी स्थानों पर बिजली पहुँचती रहती है। उस ग्रिड से सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, मेरठ, बुलन्द शहर, बदायूँ, मुरादाबाद, बिजनौर, अलीगढ़, एटा, आगरा, मैनपुरी तथा फरुखाबाद के जिलों को बिजली मिलती है।

पंजाब राज्य में विद्युत् शक्ति

पंजाब में मंडी राज्य में उह्ल (Uhl) नदी पर योगेन्द्रनगर के समीप बिजली पैदा की गई है। यहाँ से बिजली पंजाब राज्य के अमृतसर, लुधियाना, जालन्धर तथा धारीवाल शहरों को जाती है।

काश्मीर राज्य

काश्मीर दरबार ने लगभग ४० वर्ष पहले झेलम नदी के किनारे बरामुला स्थान के समीप एक शक्ति-गृह स्थापित किया था जहाँ से बिजली श्रीनगर तक जाती है। बिजली की लाइन नगर की सिल्क फैक्टरी में जाकर समाप्त होती है।

सरकार की नीति तथा भविष्य

हमारे देश में विद्युत् शक्ति के जितने साधन हैं उनमें से केवल १½—२ प्रतिशत को ही अभी तक काम में लाया गया है। देश में ४०० लाख किलोवाट बिजली तैयार हो सकती है जिसमें अभी तक केवल ५ लाख किलोवाट ही तैयार की जाती है। अतः भविष्य में हमारे देश में विद्युत् शक्ति बहुत अधिक बढ़ सकती है। परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि इसकी उन्नति के लिये प्रयत्न किये जायँ। कनाड़ा में जल-विद्युत् का विकास भारत से कुछ वर्षों बाद प्रारंभ हुआ था। परन्तु आजकल वहाँ इस शक्ति का विकास भारत से पन्द्रह गुना अधिक है। नार्वे, स्वीडन तथा जापान जैसे छोटे-छोटे देशों में भी हमारे देश से दस गुनी अधिक बिजली तैयार होती है। भारत में जितनी बिजली वर्ष भर में तैयार होती है, अमरीका में उतनी एक सप्ताह में तैयार हो जाती है। इससे स्पष्ट है कि देश में अधिक बिजली पैदा करने की बड़ी भारी आवश्यकता है।

भारत सरकार इस बात से सहमत है और जब से देश स्वतन्त्र हुआ है उसने जल-विद्युत् विकास की नवीन योजनाओं पर काम करना आरंभ कर दिया है। इन योजनाओं का उद्देश्य जल-विद्युत् के साथ-साथ सिंचाई की सुविधा भी प्रदान करना है। अतएव इन्हें बहु-मुखी योजनाएँ (Multi-purpose projects) कहा जाता है। इस प्रकार की योजनाओं में दामोदर घाटी योजना, महानदी घाटी योजना, भाखरा-नंगल योजना, कोसी योजना, रिहिन्द योजना, तुंगभद्रा योजना आदि प्रसिद्ध हैं। इनका विस्तृत विवरण सिंचाई वाले अध्याय में दे दिया गया है।

परीक्षा-प्रश्न

उत्तर-प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—भारत में शक्ति के प्रमुख साधन क्या-क्या हैं? दामोदर घाटी योजना पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। (१९५३)

२—भारत के मुख्य शक्ति के साधन कौन-कौन से हैं? हमारे देश में जल विद्युत शक्ति उत्पन्न करने वाले साधनों को कहाँ तक बढ़ाया जा सकता है? (१९५१)

४—भारत में पाये जाने वाले शक्ति के स्रोत कौन से हैं? जलशक्ति के विकास की संभावनाओं की परीक्षा कीजिये। (१९४८)

५—भारत में शक्ति के कौन से मुख्य साधन हैं? भारत में जल-शक्ति के विकास से क्या लाभ हो सकते हैं? (१९४६)

६—भारत में औद्योगिक ईंधन की क्या स्थिति है ? वे कौन-कौन से शक्ति के साधन हैं जिनका भविष्य में पर्याप्त विकास होने की संभावना है ? (१९४३)

७—"भारत की प्राकृतिक शक्तियाँ अनन्त हैं। आवश्यकता इस बात की है कि उनका उचित विकास तथा प्रयोग किया जाय"। इस कथन की व्याख्या जल-शक्ति, खनिज पदार्थों तथा वनों के संबंध में कीजिये। (१९४०)

८—भारत में शक्ति के साधनों की गणना कीजिये और बताइये कि इनका किस सीमा तक उपयोग हो रहा है ? (१९३९)

९—किसी देश के आर्थिक व्यवस्था में शक्ति के साधनों का क्या महत्व है ? उत्तर-प्रदेश तथा देश के अन्य भागों में जल-विद्युत्-शक्ति के विकास से क्या प्रभाव पड़ने की आशा है ? (१९३६)

१०—भारत में शक्ति के कौन से मुख्य साधन उपलब्ध हैं ? जल विद्युत्-शक्ति के विकास से ग्रामीण उद्योगों और कृषि पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? (१९३४)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

११—भारत के प्रमुख शक्ति के स्रोतों का वर्णन कीजिये। जल विद्युत् शक्ति के विकास की भावी संभावनाओं का विस्तार से विवेचन कीजिये। (१९५३, १९४९, १९४२ १९४१)

१२—भारत में जल-विद्युत्-शक्ति की वर्तमान उन्नति और भावी संभावनाओं का वर्णन कीजिये। भारत के आर्थिक जीवन पर इनका क्या प्रभाव पड़ेगा ? (१९५२)

१३—भारत में पाये जाने वाले शक्ति के स्रोतों का वर्णन कीजिये। इस संबंध में विंध्य प्रदेश या मध्य भारत में जल विद्युत् शक्ति के विकास की भावी संभावनाओं को भी बताइये। (१९५१)

१४—भारत के मुख्य शक्ति के स्रोतों का वर्णन कीजिये। ऐसे साधनों की उन्नति का भारत के उद्योग-धधों पर पड़ने वाले प्रभावों को सविस्तार बताइये। (१९५०)

१५—भारत में शक्ति के प्रमुख स्रोतों का वर्णन कीजिये और जलविद्युत् शक्ति के विकास की भावी संभावनावों पर प्रकाश डालिये (१९४९)

१६—कोयला और जल विद्युत् शक्ति पर एक नोट लिखिये। (१९४७)

पटना इन्टर आर्ट्स

१७—भारत में शक्ति के विभिन्न स्रोतों का वर्णन कीजिये और इनके विकास का देश के उद्योगों पर पड़ने वाले प्रभाव को बताइये। (१९५२)

———

अड़तीसवाँ अध्याय

श्रम

(Labour)

श्रम उत्पत्ति का एक अत्यन्त आवश्यक साधन है। मेहनत किये बिना उत्पादन कभी हो ही नहीं सकता। उत्पादन की परिभाषा में ही यह निहित है कि मेहनत द्वारा वस्तुओं की उपयोगिता बढ़ाई जाय। अतएव श्रम उत्पादन के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

१. श्रम का अर्थ

(Meaning of Labour)

साधारण अर्थ

साधारणतः श्रम से आशय किसी भी प्रकार की मेहनत से है। जब हम गर्मी के दिनों में इक्के में जुते हुए किसी घोड़े को पसीने से लथपथ देखते हैं तो हमारे मुख से अनायास ही यह निकल पड़ता है, "बेचारे पर बड़ी मेहनत पड़ रही है।" इसी प्रकार जब हम किसान को खेत में फावड़ा चलाते हुए, या मजदूर को मजदूरी करते हुए या श्रमिक को मिल में काम करते हुए या विद्यार्थी को पढ़ते हुए देखते हैं तो हम यही कहते हैं कि ये लोग बड़ी मेहनत कर रहे हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि परिश्रम चाहे कोई जानवर करे या कोई मनुष्य, साधारणतया यही कहा जाता है कि यह श्रम कर रहे हैं।

आर्थिक अर्थ

परन्तु अर्थशास्त्र में श्रम का एक विशेष अर्थ है। पहली बात ध्यान रखने की यह है कि अर्थशास्त्र में केवल मानवीय परिश्रम ही श्रम कहलाता है। क्योंकि अर्थशास्त्र में हम जानवरों की क्रियाओं का अध्ययन नहीं करते, इस कारण जानवरों के परिश्रम को हम श्रम के अन्तर्गत नहीं लाते।

दूसरी बात यह है कि केवल शारीरिक परिश्रम ही श्रम के अन्तर्गत आता है। परिश्रम शारीरिक भी हो सकता है और मानसिक भी। उदाहरण के लिये एक मजदूर शारीरिक परिश्रम करता है और एक वकील मानसिक। आप कह सकते हैं कि संसार में कोई भी व्यक्ति पूर्णतः शारीरिक या पूर्णतः मानसिक परिश्रम नहीं करता। उदाहरण के लिये जब एक वकील अदालत में बहस करता है तो वह मानसिक परिश्रम करता ही है, परन्तु साथ ही वह शारीरिक परिश्रम भी

करता है क्योंकि वह खड़ा रहता है और यह एक शारीरिक परिश्रम है। इसी प्रकार ईंट उठाकर देने वाला मजदूर शारीरिक परिश्रम करते समय अपना दिमाग इस बात में भी लगाता है कि वह किसी जगह गिर न पड़े और वह उचित स्थान से ईंटें उठाकर उचित स्थान पर उन्हें रखे। इस प्रकार सभी व्यक्ति शारीरिक तथा मानसिक दोनों ही प्रकार के परिश्रम करते हैं। यह बात ठीक है। फिर भी, हमें यह ध्यान में रखना चाहिये कि कुछ श्रम अधिकांश में शारीरिक होते हैं और कुछ अन्य अधिकांश में मानसिक। श्रम से तात्पर्य केवल उस मेहनत से है जो अधिकांश में शारीरिक हो।

कुछ अर्थशास्त्रियों का कहना है कि परिश्रम चाहे शारीरिक हो या मानसिक, श्रम कहलाता है। उदाहरण के लिये डाक्टर जैवन्स (Jevons) का कहना है कि "किसी भी प्रकार का श्रम चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक, यदि वह धन कमाने के लिये किया जाता है तो वह श्रम कहलाता है।"* आचार्य मार्शल ने इस परिभाषा को उचित माना है। उनका कहना है कि "श्रम का अर्थ मनुष्य के आर्थिक कार्य से है—चाहे वह हाथ से किया जाय या दिमाग से।"† परन्तु आधुनिक अर्थ-शास्त्री शारीरिक परिश्रम को श्रम और मानसिक परिश्रम को संगठन मानते हैं। श्रम को शारीरिक परिश्रम मानना सर्वथा उचित भी है अन्यथा श्रम और संगठन में भेद स्पष्ट नहीं हो सकता।

तीसरी बात ध्यान रखने की यह है कि मनुष्य का केवल वही शारीरिक परिश्रम श्रम कहलाता है जो उत्पादन करने के उद्देश्य से या धन पैदा करने के उद्देश्य से किया जाय। ‡मनुष्य उपभोग तथा उत्पादन दोनों ही क्रियाओं में परिश्रम करता है। परन्तु यदि वह क्रिया धन के उत्पादन के उद्देश्य से की गई है तो वह उत्पादन की क्रिया हो जाती है, अन्यथा वह उपभोग की क्रिया कहलाती है।

* Labour is any exertion of mind or body undertaken partly or wholly with a view to some good other than the pleasure derived directly from the work" Dr. Jevons. Quoted by Marshall, *Principles of Economics* p. 65

†"By labour is meant the economic work of man, whether with hand or the head"—Marshall, *Principles of Economics*, p. 138

‡Labour is "physical exertion of human beings that assists production"—Prof. S. K. Rudra, *Fundamentals of Economics* p. 109

इस प्रकार 'श्रम' वही आर्थिक है जो

१. मनुष्य द्वारा किया गया हो
२. शारीरिक हो
३. जिसका उद्देश्य धन कमाना हो

इतना जान लेने के पश्चात् हम यह कह सकते हैं कि मनुष्य का वह शारीरिक परिश्रम जो धन कमाने के लिये किया जाता है श्रम कहलाता है।

२. श्रम का अन्य साधनों से भेद

(Difference Between Labour And Other Factors)

श्रम तथा भूमि

भूमि प्रकृति की निःशुल्क देन है। मनुष्य को जो वस्तुएँ बिना मेहनत के मिली हैं उन्हें भूमि कहते हैं। भूमि के लिए मनुष्य को मेहनत या त्याग नहीं करना पड़ता। परन्तु श्रम स्वयं त्याग है। त्याग का दूसरा नाम ही मेहनत है। यह त्याग मनुष्य द्वारा किया गया होता है। अर्थशास्त्र में मानवीय त्याग को ही श्रम कहते हैं।

भूमि उत्पादन का निश्चेष्ट साधन है। वह स्वयं उत्पादन नहीं कर सकता। परन्तु श्रम सचेष्ट साधन है और वह अन्य साधनों का सहयोग प्राप्त कर उत्पादन करता है।

भूमि की मात्रा निश्चित होती है। वह घटाई-बढ़ाई नहीं जा सकती। परन्तु श्रम की मात्रा घट-बढ़ सकती है।

श्रम तथा पूँजी

पूँजी श्रम द्वारा उत्पन्न होती है। जब मनुष्य अपनी मेहनत से कमाई हुई संपत्ति का कुछ भाग पुनः उत्पादन कार्य में लगाता है तो उसे पूँजी कहते हैं। इसी कारण पूँजी को 'घनीभूत श्रम' (Crystallised labour) कहते हैं।

फिर भी इन दोनों में भेद है। (१) श्रम को जब बचाया जाय तभी वह पूँजी हो सकती है*। (२) पूँजी की अपेक्षा श्रम शीघ्र नाशवान है। श्रम रखे-रखे नष्ट हो जाता है, परन्तु पूँजी इस प्रकार नष्ट नहीं होती। (३) पूँजी अधिक

* Capital is saved up labour.

गतिशील होती है और श्रम अपेक्षाकृत कम गतिशील होता है। बैंक द्वारा या पोस्ट आफिस से आप रुपया दूर-दूर भेज सकते हैं। परन्तु श्रम इतनी सुगमता से नहीं जाता। उसे अनेक बातों का ख्याल करना पड़ता है। (४) पूँजी सुगमता से एक काम से दूसरे काम में लगाई जा सकती है, परन्तु श्रम इतनी शीघ्रता से काम नहीं बदल सकता। मिल आदि को बेचकर रुपया किसी दूसरे काम में लगाया जा सकता है। परन्तु मजदूर जब एक विशिष्ट शिक्षा प्राप्त कर लेता है तो वह किसी दूसरी शिक्षा सुगमता से प्राप्त नहीं कर सकता और इस कारण वह काम सुगमता से नहीं छोड़ता।

श्रम तथा संगठन

श्रम शारीरिक परिश्रम है और संगठन मानसिक। क्योंकि शारीरिक श्रम करने वाले अधिक होते हैं इस कारण श्रमिकों की संख्या अधिक होती है और संगठन-कर्ताओं की कम। श्रमिकों को मजदूरी (Wages) कम मिलती है और संगठन-कर्ताओं को वेतन (Salaries) अधिक मिलती है।

३. श्रम के गुण

(Characteristics of Labour)

श्रम के निम्नलिखित गुण हैं

१. श्रम नाशवान है—श्रम एक ऐसा साधन है जिसे जोड़कर नहीं रखा जा सकता। यह आवश्यक है कि श्रम का प्रति दिन प्रयोग कर लिया जाय। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो वह नष्ट हो जायगा। यदि मजदूर एक दिन काम पर न जाय तो उस दिन का नष्ट हुआ श्रम उसे पुनः प्राप्त नहीं हो सकता। इसी कारण श्रम अधिक मोल-तोल नहीं कर पाता।

२. श्रम उत्पत्ति का अत्याज्य साधन है—श्रम उत्पादन के लिये अत्यन्त आवश्यक है। इस साधन के प्रयोग के बिना उत्पादन कभी हो ही नहीं सकता।

३. श्रम और श्रम-जीवी पृथक् नहीं किये जा सकते—श्रमजीवी अपने शरीर से श्रम करते हैं। अतएव जहाँ पर श्रम करना होता है श्रमजीवी को वहीं जाना पड़ता है। बिना उस स्थान पर श्रमिक के जाये, श्रम हो ही नहीं सकता। यदि किसी मजदूर को मिल में काम करना है और वह चाहे कि घर पर बैठकर वह मिल का काम करले तो यह संभव नहीं है।

४. श्रम गतिशील होता है—श्रमिक एक स्थान से दूसरे स्थान को आ-जा सकता है। उत्तर-प्रदेश के हजारों मजदूर कलकत्ता तथा बम्बई में काम करते हैं। मारवाड़ी व्यापारियों की दुकानें तथा मिलें भारत के कोन-कोन में स्थित हैं। इसका कारण यही है कि श्रम गतिशील है।

५. श्रम में पूँजी व्यय कर उसे अधिक निपुण बनाया जा सकता है—श्रम एक ऐसा साधन है जिसमें पूँजी लगाई जा सकती है। पूँजी व्यय कर श्रमिक को अधिक निपुण बनाया जा सकता है। उदाहरण के लिये आप रुपया खर्च करके किसी व्यक्ति को डाक्टरी की शिक्षा दिला सकते हैं और जब वह डाक्टर बन जाय तो जो रुपया आपने व्यय किया है उसे आप वापस ले सकते हैं।

६. श्रमजीवी वस्तुओं का उत्पादन कर उनका उपभोग भी करते हैं—श्रमिक वस्तुओं को पैदा करते हैं और उन वस्तुओं का उपभोग भी करते हैं। इसका कारण यह है कि श्रमिक उत्पादक भी हैं और उपभोक्ता भी। उत्पादक बनकर वह वस्तुएँ पैदा करते हैं और उपभोक्ता के रूप में उनका उपभोग करते हैं।

४. श्रम के प्रकार

(Kinds of Labour)

श्रम कई प्रकार का होता है। निम्न उसके महत्त्वपूर्ण प्रकार हैं—

१. उत्पादक तथा अनुत्पादक श्रम

उत्पादक और अनुत्पादक (Unproductive) श्रम क्या हैं, इस समस्या को लेकर अर्थशास्त्रियों में बड़ा वाद-विवाद छिड़ चुका है। विभिन्न समयों में अर्थशास्त्रियों के इस संबंध में विभिन्न मत रहे हैं। फ्रान्स के कुछ अर्थशास्त्री, जिन्हें कृषि-अर्थशास्त्री (Physiocrats) कहा जाता है, का मत था कि केवल भूमि पर काम करने वाले अर्थात् किसान ही उत्पादक हैं और शेष सब अनुत्पादक हैं। इसका कारण यह था कि यह अर्थशास्त्री भूमि को ही उत्पादन का एकमात्र साधन मानते थे। बाद में जब ऐसे अर्थशास्त्रियों का जन्म हुआ जो औद्योगिक उन्नति में विश्वास करते थे तो उन्होंने खानों में काम करने वाले तथा उद्योग-धन्धे में लगे हुए श्रमिकों को भी उत्पादक कहना आरंभ कर दिया। उदाहरण के लिये आदम स्मिथ (Adam Smith) का कहना था कि भौतिक पदार्थ बनाने वाले श्रमिक उत्पादक हैं। परन्तु साथ ही उनका यह भी कहना था कि अध्यापक, गायक, सरकारी अफसर आदि उत्पादक श्रमिक नहीं हैं क्योंकि वह किसी स्पर्शनीय पदार्थ (Tangible good) को पैदा नहीं करते।

परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री इस विचार से सहमत नहीं हैं। आजकल अर्थशास्त्री यह मानते हैं कि श्रमिक किसी भी प्रकार का उत्पादन करे वह उत्पादक श्रमिक है। उत्पादन का अर्थ है किसी वस्तु की उपयोगिता बढ़ाना। इस परिभाषा के अनुसार अध्यापक जब पढ़ाता है तो वह बालकों का ज्ञान बढ़ाता है और इस

कारण उपयोगिता का सृजन करता है। वकील जब अदालत में बहस करता है तो वह मामले को स्पष्ट रूप से न्यायाधीश के सामने रख देता है और इस कारण उपयोगिता बढ़ाता है। गवैया अपने गाने से आपको सुख देता है और इस प्रकार उपयोगिता बढ़ाता है। अतएव यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति चाहे जिस प्रकार का श्रम करे, यदि वह उपयोगिताओं का सृजन करता है तो वह उत्पादक श्रमिक कहलावेगा। और क्योंकि उत्पादन कार्य में लगे सभी श्रमिक उपयोगिताओं का सृजन करते हैं, इस कारण सभी श्रमिक उत्पादक हैं और कोई भी श्रमिक अनुत्पादक नहीं है।

वास्तव में श्रमिक कभी भी अनुत्पादक हो ही नहीं सकता। श्रमिक उत्पत्ति का एक साधन है। उत्पत्ति का साधन वही हो सकता है जो उपयोगिताओं का सृजन करे। और जो उपयोगिताओं का सृजन करता है वह अनुत्पादक हो ही नहीं सकता। यह कहना कि केवल स्पर्शनीय वस्तुओं को बनाने वाला ही उत्पादक श्रमिक है सर्वथा गलत है। अतः सभी श्रमिक उत्पादक हैं।

२. कुशल तथा अकुशल श्रम

श्रम कुशल (Skilled) भी हो सकता है और अकुशल (Unskilled) भी। जिस कार्य को करने में विशेष चतुराई की आवश्यकता पड़ती है या जिसे करने के पहले विशिष्ट शिक्षा (Specialised Training) लेनी पड़ती है उस श्रम को कुशल श्रम कहते हैं। उदाहरण के लिये डाक्टर, इंजीनियर, वकील, अध्यापक आदि का कार्य ले लीजिये। इन सब कार्यों में विशिष्ट शिक्षा तथा चतुराई की आवश्यकता पड़ती है। इस कारण यह कुशल-श्रम के अन्तर्गत आते हैं।

परन्तु जब किसी कार्य को करने के लिये श्रमिक को किसी विशेष शिक्षा या चतुराई की आवश्यकता नहीं होती तो उसे अकुशल-श्रम कहते हैं। उदाहरण के लिये बोझा ढोने में, घर का साधारण काम-काज करने में, चपरासीगीरी आदि में किसी विशेष प्रकार की शिक्षा लेने की आवश्यकता नहीं होती। इस कारण इस प्रकार का काम करने वाले अकुशल-श्रमिक कहलाते हैं।

कुशल और अकुशल श्रम का भेद समय तथा स्थान के अनुसार बदलता रहता है। जैसे-जैसे कोई देश आर्थिक उन्नति करता जाता है, या जैसे-जैसे किसी देश में शिक्षा का प्रसार बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे उस देश में कुशल तथा अकुशल श्रमिक का भेद कम होता जाता है। भारत में जिस मिस्त्री को हम कुशल श्रमिक मानेंगे, इंगलैंड के हिसाब से वह अकुशल श्रमिक होगा।

३. शारीरिक तथा मानसिक श्रम

श्रम जो शरीर से किया जाता है उसे शारीरिक और जो दिमाग से किया जाता है उसे मानसिक श्रम कहते हैं। उदाहरण के लिये अध्यापक, वकील, डाक्टर, इंजीनियर आदि का श्रम मानसिक अधिक है और बोझा ढोने वाले, पल्लेदारी करने वाले, कुली आदि का श्रम शारीरिक है।

यह ठीक है कि कोई भी श्रम न तो पूर्णतः शारीरिक होता है और न पूर्णतः मानसिक ही। परन्तु जब हम शारीरिक या मानसिक श्रम की बात करते हैं तो हमारा आशय अधिकांश में शारीरिक या अधिकांश में मानसिक श्रम से होता है।

ध्यान रखने की बात है कि केवल शारीरिक श्रम ही श्रम कहलाता है और मानसिक श्रम संगठन कहलाता है। अतएव यह वर्गीकरण श्रम का वर्गीकरण नहीं माना जा सकता।

५. श्रम का महत्व

(Importance of Labour)

श्रम उत्पादन का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन है। बिना श्रम के उत्पादन कभी हो ही नहीं सकता। प्राचीन समय में भी जब मनुष्य ने अधिक प्रगति नहीं की थी, श्रम के बिना उसका काम नहीं चलता था। पेट भरने के लिए उसे पेड़ पर चढ़ कर फल तोड़ने पड़ते थे या जानवरों को मारना पड़ता था। और आजकल के वैज्ञानिक युग में भी जब मशीनों का प्रयोग इतना अधिक व्यापक हो गया है उसका काम श्रम के बिना नहीं चलता।

मनुष्य ने अभी तक जो कुछ प्रगति की है उसका श्रेय श्रम को ही है। जंगल साफ कर उसने नगरों का निर्माण किया और विनाशकारी जीवों को मारकर अपना जीवन आनन्दपूर्ण बनाया। बड़े-बड़े आविष्कार उसने अपने जीवन को सुखी बनाने के लिए किये। मनुष्य कम से कम मेहनत कर अधिकतम सुख पाना चाहता है। यही आर्थिक उन्नति के मूल में है।

परीक्षा-प्रश्न

उत्तर-प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—उत्पादक श्रम पर एक संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९४४)

२—कुशल तथा अकुशल श्रम पर एक संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९३४)

उत्तर-प्रदेश इन्टर कामर्श

३—श्रम की परिभाषा ध्यानपूर्वक दीजिये। इसकी मुख्य विशेषताओं को बताइये और भूमि तथा पूँजी से इसके मूल भेदों को दर्शाइये। (१९५१)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

४—श्रम के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिये। (१९४६)

५—उत्पादक और अनुत्पादक श्रम पर नोट लिखिये। (१९४५)

पटना इन्टर कामर्स

६—अर्थशास्त्र में श्रम शब्द का जिस अर्थ में प्रयोग होता है उसको बताइये। श्रम का संपत्ति के उत्पादन में क्या महत्व है? (१९५१)

७—श्रम की पूर्ति से आपका क्या तात्पर्य है? यह किन बातों पर निर्भर है? (१९५०)

सागर इन्टर आर्ट्स

८—श्रम तथा भूमि की क्या विशेषतायें हैं? इनमें से कौन सा अधिक महत्वपूर्ण है? (१९५१)

———



उन्तालीसवाँ अध्याय

जनसंख्या के सिद्धान्त

(Theories of Population)

जनसंख्या संबंधी सिद्धान्त का प्रतिपादन सर्व प्रथम माल्थस ने सन् १७९८ में किया। यों तो माल्थस (Malthus) के पहले कई विद्वान् जनसंख्या के संबंध में थोड़ा-बहुत लिख चुके थे, परन्तु माल्थस सबसे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने जनसंख्या के संबंध में एक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इसी कारण जनसंख्या के सिद्धान्त संबंधी सभी वाद-विवादों का प्रारंभ माल्थस से होता है।

१. माल्थस का जनसंख्या का सिद्धान्त

(Malthusian Theory of Population)

टामस राबर्ट माल्थस (Thomas Robert Malthus) का जन्म सन् १७६६ में हुआ था। केम्ब्रिज विश्वविद्यालय से गणित की उच्च शिक्षा प्राप्त कर १७९८ में वह पादरी हो गये और उसी वर्ष उन्होंने जनसंख्या संबंधी अपने विचार एक पुस्तक* में प्रकाशित किये। उनके सिद्धान्त की मुख्य बातें नीचे बताई गई हैं।

सिद्धान्त के दो आधार—माल्थस अपना सिद्धान्त बताते समय दो स्वयं-सिद्ध आधारों (Axioms) को लेकर चलते हैं। उनका कहना है कि

(१) मनुष्य को जीवित रहने के लिये अन्न आवश्यक है। बिना भोजन किये न तो मनुष्य जीवित रहा है और न जीवित रह ही सकता है।

(२) मनुष्य में सन्तानोत्पत्ति की एक स्वाभाविक इच्छा होती है और इस इच्छा में कोई कमी नहीं हुई है। कुछ बिरले जो धार्मिक प्रवृत्ति के होते हैं या जो साधू-संन्यासी हो जाते हैं इस इच्छा को भले ही दबा लें, परन्तु जन साधारण में यह इच्छा बराबर पाई जाती है।

ऊपर के कथन से स्पष्ट है कि मनुष्य में सन्तानोत्पादन की एक स्वाभाविक इच्छा होती है परन्तु साथ ही स्वयं को जीवित रखने के लिये और अपने बच्चों के लिये उसे भोजन की आवश्यकता होती है। परन्तु मनुष्य की सान्तानोत्पत्ति की शक्ति भूमि की अन्न उत्पन्न करने की शक्ति से कहीं अधिक होती है। मनुष्य

---

* उस पुस्तक का नाम वैसे तो बहुत बड़ा है, परन्तु सूक्ष्म में उसे 'An Essay on The Principle of Population' कहते हैं। कुछ व्यक्ति उसे केवल 'Essay' कह कर पुकारते हैं।

जिस गति से सन्तान उत्पन्न करते हैं उतनी तेजी से भूमि से अनाज की उत्पत्ति नहीं बढ़ती। इसका परिणाम यह होता है कि जनसंख्या अधिक तेजी से बढ़ती है और अन्न की उपज इतनी अधिक नहीं बढ़ने पाती।

जनसंख्या तथा अन्न की बढ़ने की गति

यदि जनसंख्या और अन्न की बढ़ने की गतियों को देखा जाय तो यह कहा जा सकता है कि रुकावट न होने पर जनसंख्या ज्यामितिक-वृद्धि (Geometrical progression) और अनाज समानान्तर-वृद्धि (Arithmetical progression) के हिसाब से बढ़ता है।† कहने का अर्थ यह है कि इन दोनों की बढ़ने की गति निम्न प्रकार है :

जनसंख्या	१	२	४	८	१६	३२	६४	१२८	२५६	५१२
खाद्य सामग्री	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०

ध्यान रखने की बात है कि बढ़ने की समयावधि २५ वर्ष है। अर्थात् २५ वर्ष में जनसंख्या १ से २, और ५० वर्ष में ४ और २२५ वर्षों में ५१२ हो जायगी। इसके विपरीत उतने ही समय में अनाज केवल १० होगा। इस प्रकार यदि जनसंख्या को बढ़ने दिया गया तो जनसंख्या और खाद्यान्न का भेद बढ़ता चला जायगा।

जनसंख्या-निरोध (Checks)

परन्तु बिना भोजन के मनुष्य जीवित नहीं रह सकते। अतएव जब जनसंख्या के लिये पर्याप्त भोजन नहीं होगा तो जनसंख्या जीवित नहीं रह पायगी। अतएव यह आवश्यक है कि जनसंख्या की वृद्धि को रोका जाय। जनसंख्या को रोकने को ही जनसंख्या-निरोध कहते हैं।

जनसंख्या-निरोध के लिये या तो मनुष्य अपने विवेक से काम लें और अपने ऊपर बंधन लगा कर बढ़ती हुई आबादी को रोकें। यदि मनुष्य ऐसा नहीं करते तो फिर प्रकृति अपने तरीकों को काम में लावेगी और जनसंख्या को बढ़ने से रोकेगी। इस प्रकार जनसंख्या-निरोध के दो तरीके हैं। (१) मनुष्य द्वारा काम में लाये जाने वाले उपाय, और (२) प्रकृति द्वारा काम में लाये जाने वाले उपाय। पहले प्रकार के उपायों को माल्थस ने प्रतिबन्धक निरोध (Preventive checks) कहा है और दूसरे प्रकार के निरोधों को प्राकृतिक या नैसर्गिक निरोध (Positive checks) कहा है।

---

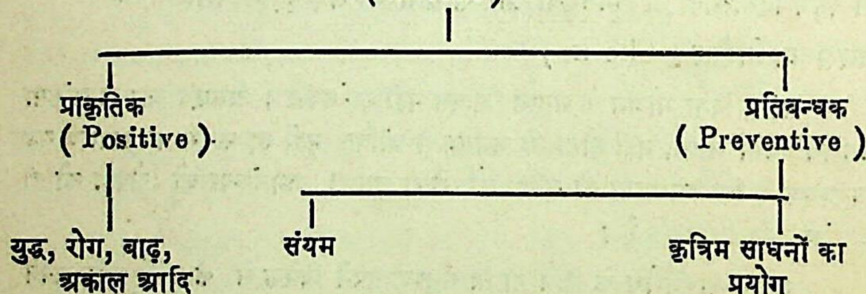
† "Population, if unchecked, increases in geometrical progression and food supply in arithmetical progression"—Malthus, *an Essay on Population*, p. 16

प्रतिबन्धक निरोध (Preventive checks)—यह वह निरोध हैं जिनका प्रयोग मनुष्य अपने विवेक से करते हैं। इनके दो मुख्य उपभेद हैं (१) संयम या ब्रह्मचर्य (Moral restraint) तथा (२) कृत्रिम साधनों (Artificial birth control methods) का प्रयोग। संयम का अर्थ यह है कि मनुष्य अपनी इच्छा का दमन कर सन्तानोत्पत्ति नहीं करते। यह तरीका सबसे अच्छा है और हमारे देश के विद्वान् इसी तरीके को अच्छा बताते रहे हैं।

ध्यान रखने की बात है कि प्रतिबन्धक निरोधों से जन्म-दर कम हो जाती है।

नैसर्गिक या प्राकृतिक निरोध—यह वह निरोध हैं जिनका प्रयोग प्रकृति करती है और इसमें भूकम्प, बाढ़, अकाल, सूखा, युद्ध, विभिन्न रोग तथा बीमारियाँ आदि आती हैं। यह सब तरीके अत्यन्त दुःखदायी हैं और इनसे मनुष्य को बड़ा क्लेश पहुँचता है। अतएव यह कहीं अच्छा है कि प्रकृति को यह निरोध प्रयोग करने की आवश्यकता न पड़े।

ध्यान रखने की बात है कि नैसर्गिक निरोधों से मृत्यु-दर बढ़ जाती है।



सूक्ष्म में यह कहा जा सकता है कि माल्थस का यह कहना था कि जनसंख्या बहुत अधिक शीघ्रता से बढ़ती है और खाद्यान्न इतनी शीघ्रता से नहीं बढ़ पाते। अतएव जनसंख्या को अधिक न बढ़ने दीजिये। इसके लिये अपने विवेक से काम लीजिये। यदि आप ऐसा नहीं करते तो प्रकृति स्वयं जनसंख्या को कम कर देगी। दूसरा उपाय अत्यन्त दुःखदायी है। इसलिये मनुष्य को स्वयं ही प्रयास कर जनसंख्या को नहीं बढ़ने देना चाहिये।

माल्थस के मत की आलोचना

माल्थस के सिद्धान्त को लेकर अर्थशास्त्रियों में बड़ा वाद-विवाद चल चुका है। आधुनिक समय में ऐसा कोई भी अर्थशास्त्री नहीं है जिसको लेकर इतना वाद-विवाद चला हो। यदि माल्थस के सिद्धान्त को सामान्य दृष्टि से देखा जाय तो वह

ठीक जँचता है क्योंकि इसमें संदेह नहीं कि यदि जनसंख्या न रोकी जाय तो वह खाद्यान्न से अधिक तेजी से बढ़ जायगी। माल्थस के सिद्धान्त में निहित इस सत्य से मुँह नहीं मोड़ा जा सकता। परन्तु यदि इस सिद्धान्त के प्रत्येक पहलू का सूक्ष्म रूप से आलोचनात्मक विवेचन किया जाय तो इसमें अनेक कमियाँ दीख पड़ती हैं। उन्हें नीचे बताया गया है।

(१) माल्थस का कहना है कि मनुष्य अन्न के बिना जीवित नहीं रह सकता। अन्न न होने पर मनुष्य भूखों मर जायगा। इसके साथ ही वह कहते हैं कि यदि जनसंख्या न रोकी गई तो २२५ वर्षों में जनसंख्या ५१२ हो जायगी और अन्न केवल १० होगा। परन्तु यह दोनों बातें एक साथ संभव नहीं हैं। क्योंकि जब मनुष्य भोजन के बिना ज़ीवित रह ही नहीं सकता तो जैसे ही जनसंख्या भोजन की मात्रा से अधिक होगी, वह अतिरिक्त जनसंख्या भूखे रहने के कारण मर जायगी। अतएव जनसंख्या कभी भी भोजन की मात्रा से अधिक नहीं हो सकती। फलतः जनसंख्या और भोजन के बढ़ने की वास्तविक गति समान ही रहेगी।

(२) माल्थस ने यह मान लिया है कि भूमि से हमें हमेशा उत्पत्ति ह्रास नियम ही प्राप्त होता है। परन्तु यह आवश्यक नहीं है। आजकल यह माना जाने लगा है कि भूमि से भी हमें सीमान्त उत्पत्ति वृद्धि नियम प्राप्त होता है।

(३) माल्थस जब भोजन की बात करते हैं तो वह केवल अनाज की ही बात करते हैं। परन्तु हम जानते हैं कि संसार के व्यक्ति एक बड़ी मात्रा में मांसाहारी हैं। अतएव भोजन में हमें अनाज के साथ साथ जानवरों की वृद्धि-गति को भी ध्यान में रखना चाहिये और जानवर उसी गति से बढ़ते हैं जिस गति से मनुष्य।

(४) प्राणिशास्त्र (Biology) हमें यह बताता है कि जैसे जैसे मनुष्य अधिक सभ्य होते जाते हैं उनकी प्रजनन शक्ति कम होती जाती है। यही प्रभाव शिक्षा का होता है। जीवन-स्तर बढ़ जाने पर भी प्रजनन शक्ति कम हो जाती है। माल्थस ने इन सब बातों का ध्यान नहीं रखा है।

(५) माल्थस का यह कहना कि जनसंख्या ज्यामितिक गति से बढ़ती है अतिशयोक्ति है। माल्थस ने जब यह लिखा था तो उन्होंने अमरीका देश की जनसंख्या वृद्धि को अपना आधार माना था। परन्तु उस समय अमरीका नया-नया बसा था और नये देश में जनसंख्या तेजी से बढ़ती ही है। अतएव यह कहना कि सभी देशों में वृद्धि-गति इतनी ही होगी उचित नहीं है। माल्थस के समय से अब तक की जनसंख्या की वृद्धि देखने से स्पष्ट हो जाता है कि जनसंख्या इतनी तेजी से किसी भी देश में नहीं बढ़ी है।

माल्थस का सिद्धान्त तथा भारत

यह प्रश्न प्रायः पूछा जाता है कि माल्थस का सिद्धान्त भारत में लागू होता है या नहीं। इस पर भी अर्थशास्त्रियों में कुछ मतभेद है।

हम ऊपर बता आये हैं कि माल्थस का सिद्धांत पूर्णतः सही नहीं है। परन्तु उसमें इतनी सचाई अवश्य है कि यदि जनसंख्या को न रोका गया तो उसकी मात्रा उपलब्ध खाद्यान्न से अधिक हो जायगी। इसके कारण व्यक्तियों का स्वास्थ्य गिर जायगा और देश में अनेक प्राकृतिक प्रकोप होते रहेंगे। इस दृष्टि से देखने से हम कह सकते हैं कि माल्थस का सिद्धान्त भारत में लागू होता है। यहाँ पर जनसंख्या आवश्यकता से अधिक है। खाद्यान्न तथा अन्य आवश्यक सामग्रियों की कमी है। लोगों का स्वास्थ्य बुरा है। मनुष्य विभिन्न रोगों से पीड़ित रहते हैं और देश में बाढ़ अकाल आदि समय समय पर आते रहते हैं। यही दशा उन सब देशों की है जहाँ कृषि उत्पत्ति का मुख्य साधन है और जहाँ देश अधिक औद्योगिक उन्नति नहीं कर पाये हैं। जापान को छोड़कर एशिया महाद्वीप के अधिकांश देशों की यही स्थिति है।

२. अनुकूलतम जनसंख्या का सिद्धांत
(Optimum Theory of Population)

माल्थस ने अपने सिद्धान्त में जनसंख्या और अन्न का संबंध स्थापित कर यह बताया था कि जनसंख्या को न बढ़ने देना ही अच्छा है और यदि जनसंख्या कुछ भी न बढ़े तो बहुत ही अच्छा है। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री इस मत से सहमत नहीं हैं। जनसंख्या से हमें श्रमिक प्राप्त होते हैं जिनका सहयोग उत्पादन के लिये आवश्यक है। यदि श्रमिक न होंगे तो उत्पादन नहीं होने पावेगा। अतएव यह कहना कि जनसंख्या की वृद्धि प्रत्येक दशा में अवांछनीय है, ठीक नहीं है। एक सीमा तक जनसंख्या की वृद्धि से देश को लाभ ही होता है। जब जनसंख्या उस सीमा से अधिक हो जाती है तभी हानि होती है। वह सीमा जनसंख्या की अनकूलतम सीमा है।

अनुकूलतम जनसंख्या क्या है ?

अनुकूलतम (Optimum) जनसंख्या वह जनसंख्या है जिससे प्रति व्यक्ति अधिकतम आय प्राप्त होती है। अर्थात् हम यह देख लेते हैं कि कितनी जनसंख्या देश में हो जब हमें अधिकतम आय प्राप्त होगी और उसी जनसंख्या को हम अनुकूलतम जनसंख्या कहते हैं।

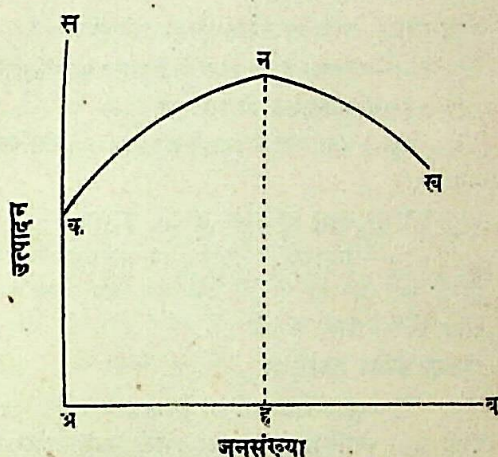
सिद्धान्त का स्पष्टीकरण

यह सिद्धान्त कहता है कि देश के प्राकृतिक साधनों का उचित रूप से शोषण करने के लिये उत्पत्ति के साधनों की आवश्यकता पड़ती है। उत्पत्ति के साधनों में

श्रमिक भी आ जाते हैं। श्रमिकों की वह मात्रा जिसके सहयोग से देश के प्राकृतिक साधनों का उचित रूप से शोषण हो सके जिससे देश की प्रति-व्यक्ति औसतन आय अधिकतम हो जाय, अनुकूलतम जनसंख्या कहलाती है। यदि श्रमिक उस आवश्यक मात्रा से कम संख्या में काम पर लगाये गये तो उत्पादन कम हो जायगा और यदि उनकी मात्रा अधिक हुई तब भी प्रति व्यक्ति औसतन उत्पादन कम हो जायगा।

रेखाचित्र द्वारा निरूपण

इस सिद्धान्त को एक रेखा-चित्र द्वारा भी दिखलाया जा सकता है। मान लीजिये अब रेखा पर जनसंख्या दिखलाई गई है और अ स रेखा पर उत्पादन की मात्रा। क ख वक्र उत्पत्ति वक्र है। अर्थात् यह वक्र यह बताता है कि कितनी जनसंख्या होने पर उत्पादन कितना होगा। न विन्दु पर उत्पादन सबसे अधिक है। अतएव न ही अनुकूलतम जनसंख्या हुई।



चित्र ९१—अनुकूलतम जनसंख्या

आलोचना

अनकूलतम जनसंख्या का सिद्धान्त माल्थस के जनसंख्या के सिद्धान्त से अधिक उचित है। इसका कारण यह है कि यह सिद्धान्त यह बता देता है कि जन-संख्या का क्या वास्तविक प्रयोजन है और हमें जनसंख्या किस मात्रा तक बढ़ानी चाहिये।

अत्यधिक जनसंख्या

जब जनसंख्या की मात्रा अनुकूलतम आकार से बढ़ जाती है तो उसे अत्यधिक जनसंख्या कहते हैं।

परीक्षा-प्रश्न

उत्तर-प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—नैसर्गिक और प्रतिबन्धक निरोध पर संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९५०, १९४९, १९४३, '९३४)

२—नैसर्गिक निरोध पर संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९४१)

३—नैसर्गिक निरोध और अत्यधिक जनसंख्या पर संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९४५)

४—माल्थस के जनसंख्या के सिद्धान्त पर संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९३६)

उत्तर-प्रदेश इन्टर कामर्स

५—माल्थस द्वारा बताये गये जनसंख्या के सिद्धान्त को स्पष्ट कीजिये। क्या आप इस सिद्धान्त से सहमत हैं? (१९५२)

६—माल्थस का जनसंख्या का क्या सिद्धान्त है? आधुनिक अर्थशास्त्री की दृष्टिकोण से इसकी आलोचना कीजिये। (१९४८)

७—माल्थस द्वारा प्रतिपादित जनसंख्या के सिद्धान्त का कथन कीजिये। यह आधुनिक भारत में कहाँ तक लागू है? (१९४६, १९४१)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

८—अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त पर संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९५१, १९४९)

९—निम्नलिखित को स्पष्ट कीजिये—

(अ) जनसंख्या की प्राकृतिक वृद्धि (ब) नैसर्गिक तथा प्रतिबन्धक निरोध (स) अनुकूलतम जनसंख्या (१९४३)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर कामर्स

१०—जनसंख्या के नैसर्गिक तथा प्रतिबन्धक निरोध को बताइये! यदि किसी देश में जन-संख्या का आधिक्य है तो जनसंख्या कम करने के लिये आप इन दोनों में से किसको अधिक पसंद करेंगे? कारण बताइये। (१९४६)

पटना इन्टर आर्ट्स

११—अत्यधिक जनसंख्या के परिणाम बताइये। क्या यह सही है कि उत्पादन क्रिया में घटती हुई जनसंख्या के कारण हमको काफी अधिक कठिनाई हो सकती है और जन-संख्या घट जाने पर इतनी अधिक कठिनाई न होगी? (१९५२)

१२—माल्थस के जन-संख्या के सिद्धान्त को समझाइये। (१९५०)

१३—जन-संख्या की वृद्धि के माल्थस के सिद्धान्त को बताइये। (१९४८)

पटना इन्टर कामर्स

१४—अनुकूलतम जनसंख्या के सिद्धान्त को बताइये। यह माल्थस के जनसंख्या के सिद्धान्त से कहाँ तक अच्छा है? (१९५२)

१५—अत्यधिक जनसंख्या पर एक नोट लिखिये। (१९५०)

१६—माल्थस के जनसंख्या के सिद्धान्त को समझाइये। (१९४९)

सागर इन्टर कामर्स

१७—माल्थस के जनसंख्या के सिद्धान्त को सूक्ष्म में समझाइये। क्या यह नियम भारत में भी लागू होता है? (१९५०)

———

चालीसवाँ अध्याय

जनसंख्या का आकार

(Size of Population)

किसी देश में किसी विशेष समय कितने श्रमिक पाये जाते हैं यह इस बात पर निर्भर रहता है कि उस देश की जनसंख्या कितनी है। सामान्यतः जिस देश की जनसंख्या जितनी अधिक होगी वहाँ उतने ही अधिक काम करने योग्य व्यक्ति भी होंगे। भारत की जनसंख्या काफी अधिक है फलतः यहाँ पर श्रमिकों की संख्या भी अधिक है।

जनसंख्या की मात्रा इस बात पर निर्भर रहती है कि देश में कितने बालक पैदा होते हैं और कितने व्यक्तियों की मृत्यु हो जाती है। यदि हम जनसंख्या की वृद्धि का अनुमान लगाने के लिये एक वर्ष का समय लें तो हमें यह देखना होगा कि उस वर्ष में कुल कितने बच्चों ने जन्म लिया और कुल कितने व्यक्तियों की मृत्यु हो गई। यदि जन्म लेने वालों की संख्या अधिक है और मृत्यु होने वालों की कम, तो हम यह कह सकते हैं कि देश की जनसंख्या बढ़ रही है।

जन्म-दर

एक वर्ष के भीतर प्रति १,००० व्यक्तियों के पीछे जितने बच्चे पैदा होते हैं उसे जन्म-दर (Birth Rate) कहा जाता है। जनसंख्या की वृद्धि जन्म-दर पर निर्भर रहती है। जन्म-दर जितनी अधिक होगी, जनसंख्या की वृद्धि उतनी ही अधिक तेजी से होगी।

मृत्यु-दर

एक वर्ष के भीतर प्रति १,००० व्यक्तियों के पीछे जितने व्यक्तियों की मृत्यु होती है उसे मृत्यु-दर (Death Rate) कहते हैं। जनसंख्या में कमी मृत्यु द्वारा होती है। अतः मृत्यु-दर अधिक होने पर जनसंख्या अधिक घटने लगती है।

जीवन-दर (Survival Rate)

ऊपर के कथन से स्पष्ट है कि जनसंख्या की वृद्धि जन्म-दर पर और जनसंख्या की कमी मृत्यु-दर पर निर्भर है। अतः यह देखने के लिये कि जनसंख्या बढ़ रही है या नहीं हमें यह देखना होगा कि उस देश की जन्म-दर उसकी मृत्यु-दर से अधिक है या कम। यदि जन्म-दर मृत्यु-दर से अधिक है तो स्पष्ट है कि जनसंख्या बढ़ रही है और यदि स्थिति इसके विपरीत है तो इसका अर्थ यह होगा कि जनसंख्या घट रही है। जन्म-दर से मृत्यु-दर घटा देने पर जो शेष बचता है

उसे जीवन-दर कहते हैं। यदि किसी देश की जन्म-दर ३५ है और मृत्यु-दर २६ तो इन दोनों दरों का शेष हुआ ६। अतः जीवन-दर (Survival rate) ६ हुई।

जन्म-दर किन कारणों पर निर्भर है ?

यदि आप संसार के विभिन्न देशों के जन्म-दर के आंकड़ों को देखें तो आपको पता चलेगा कि विभिन्न देशों की जन्म-दर भिन्न-भिन्न है। इसका कारण यह है कि जिन बातों पर जन्म-दर निर्भर रहती है वह सभी देशों में एकसी नहीं हैं। जन्म-दर निम्न कारणों पर निर्भर रहती है।

(१) सामाजिक कारण—सामाजिक रीति-रिवाजों (Customs) का जन्म-दर पर भारी प्रभाव पड़ता है। जिस देश के व्यक्ति बड़े-बड़े कुटुम्ब में गौरव का अनुभव करते हैं वहाँ जन्म दर अधिक होती है। भारत आदि में बड़े-बड़े कुटुम्बों को अच्छा माना जाता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि इन देशों में जनसंख्या अधिक है।

भारत में अभी तक बाल-विवाह का चलन है। यद्यपि बाल-विवाह अब कानून द्वारा अनुचित घोषित कर दिया गया है, परन्तु इसका चलन, विशेषतः गाँवों में, अब भी बहुत है। इसके परिणामस्वरूप शादी जल्दी हो जाती है और बच्चे भी जल्दी-जल्दी होने लगते हैं।

(२) आर्थिक कारण—यह देखा गया है कि जिस देश के व्यक्ति गरीब होते हैं वहाँ जन्म-दर अधिक होती है। इसके कई कारण हैं। जो व्यक्ति गरीब होते हैं वह यह सोचते हैं कि उनके बच्चे बड़े होकर नौकरी करेंगे और थोड़ा बहुत जो भी कमावेंगे उससे कुटुम्ब का पेट भरने में सहायता पहुँचेगी। इसके विपरीत जिन व्यक्तियों की आय अधिक होती है वह यह ध्यान में रखते हैं कि अधिक बच्चों के कारण उनका जीवन-स्तर कम न होने पावे। फलतः वह अधिक बच्चों को अच्छा नहीं समझते।

(३) राजनीतिक कारण—कुछ देश की सरकारें भी जन्म-दर बढ़ाने के लिये जनता को प्रोत्साहित करती हैं और उन्हें विभिन्न प्रलोभनों द्वारा ऐसा करने के लिये बाध्य भी करती हैं। द्वितीय महासमर के पहले जर्मनी, इटली तथा जापान ने अपने अपने देशों में ऐसी ही नीति को अपनाया था। सरकारी नौकरी, अच्छे पद, इनाम आदि का प्रलोभन देकर वह इस नीति में सफल भी हो गये थे।

(४) धार्मिक कारण—देश में जन्म-दर धार्मिक कारणों पर भी निर्भर रहती है। कुछ धर्म मनुष्यों को इस बात के लिये प्रेरित करते हैं कि वह विवाह न कर एक तपस्वी का जीवन बितावें। इसके विपरीत कुछ धर्म मनुष्य के ऊपर यह

बन्धन डालते हैं कि वह अपने स्थान पर कम से कम एक बालक अवश्य छोड़ जायँ अन्यथा उसकी आत्मा को शान्ति नहीं मिलेगी। इन सब बातों का प्रभाव जन्म-दर पर पड़ता है।

मृत्यु-दर किन-किन बातों पर निर्भर रहती है?

जन्म-दर की भाँति किसी देश की मृत्यु-दर भी अनेक बातों पर निर्भर रहती है। उनमें निम्न मुख्य हैं :

(१) **सफाई तथा डाक्टरों की सुविधा**—मृत्यु का मुख्य कारण बीमारी तथा रोग हैं। यदि देश में सफाई का उचित प्रबंध है और व्यक्तियों का स्वास्थ्य ठीक है तो बीमारियाँ कम होंगी और मृत्यु भी कम होंगी।

(२) **शिक्षा तथा सामान्य ज्ञान**—पढ़े-लिखे तथा समझदार व्यक्ति अपनी तथा अपने बच्चों की देख-भाल ठीक से कर लेते हैं। वह अपने घर को साफ रखते हैं, खुले तथा हवादार मकान में रहते हैं और अपने को विभिन्न रोगों से बचाते रहते हैं। परिणामस्वरूप ऐसे व्यक्तियों में मृत्यु-दर कम होती है।

(३) **आर्थिक कारण**—जो व्यक्ति गरीब होते हैं वह अपनी गरीबी के कारण अपना ठीक से उपचार नहीं कर पाते। बीमारी के समय न तो वह डाक्टरों का ही प्रबंध कर पाते हैं और न दवा का ही। फलतः उनमें मृत्यु-दर अधिक होती है।

(४) **अच्छा तथा स्वास्थ्यकर भोजन**—जो व्यक्ति समुचित मात्रा में अच्छा तथा स्वास्थ्यवर्धक भोजन खाते हैं उनका स्वास्थ्य अच्छा होता है। इस कारण उनमें मृत्यु भी कम होती है।

(५) **प्राकृतिक प्रकोप**—भूकम्प, बाढ़, अकाल, आदि के कारण भी मृत्यु-दर बढ़ जाती है। भारत में इन प्राकृतिक विपत्तियों का प्रकोप काफी अधिक रहता है। इनके कारण भी भारत में मृत्यु-दर अधिक है।

(६) **सामाजिक कारण**—जहाँ पर बाल-विवाह का चलन होता है वहाँ मृत्यु अधिक होती है। इसका कारण यह है कि शादी कम उम्र में हो जाने के कारण व्यक्ति कच्ची उम्र में ही माता-पिता बन जाते हैं। ऐसी दशा में उनकी संतान कमजोर तथा अशक्त होती है।

२. शुद्ध प्रजनन दर

(Net Reproduction Rate)

यह बताया जा चुका है कि जीवन-दर को देखकर यह बताया जा सकता है कि जनसंख्या घट रही है या नहीं। परन्तु यदि हमें यह जानना हो कि जन-

संख्या किस गति से घट-बढ़ रही है तो इसके लिये आवश्यक है कि उस देश की शुद्ध प्रजनन दर (Net Reproduction Rate) का पता लगाया जाय।

देश की जनसंख्या की वृद्धि उन व्यक्तियों पर निर्भर रहती है जो १५ से ५० वर्ष तक की उम्र के होते हैं। न तो १५ वर्ष से कम उम्र के व्यक्ति ही साधारणत: पिता बन सकते हैं और न ५० वर्ष से अधिक उम्र के ही।

शुद्ध प्रजनन गति हमें यह बताती है कि यह देखने के लिये कि देश की जनसंख्या किस गति से बढ़ रही है हमें यह देखना चाहिये कि १५-५० वर्ष वाली एक स्त्री जब उस समयावधि को पार कर जाती है तो अपने स्थान पर वह कितनी स्त्रियों को छोड़ जाती है। यदि एक स्त्री अपने स्थान पर केवल एक ही स्त्री छोड़ती है तो इसका अर्थ यह हुआ कि जनसंख्या स्थिर है। यदि एक के स्थान पर एक से अधिक स्त्रियाँ छोड़ती है तो इसका अर्थ यह होगा कि जनसंख्या बढ़ रही है। यही शुद्ध प्रजनन गति का माप है।

निम्न तालिका में विभिन्न देशों की शुद्ध प्रजनन दर दी गई है :

अमरीका	०·६६
फ्रान्स	०·८८
इंगलैंड	०·७८
रूस	१·४
जापान	१·४
कनाडा	१·२
इटली	१·०
भारत	१·१६

परीक्षा प्रश्न

१—जनसंख्या की वृद्धि किन-किन बातों पर निर्भर रहती है? बताइए
२—शुद्ध प्रजनन दर से आप क्या समझते हैं? विस्तार से बताइए।
३—जनसंख्या की वृद्धि की गति का पता कैसे लगाया जाता है? ध्यानपूर्वक बताइए।

———

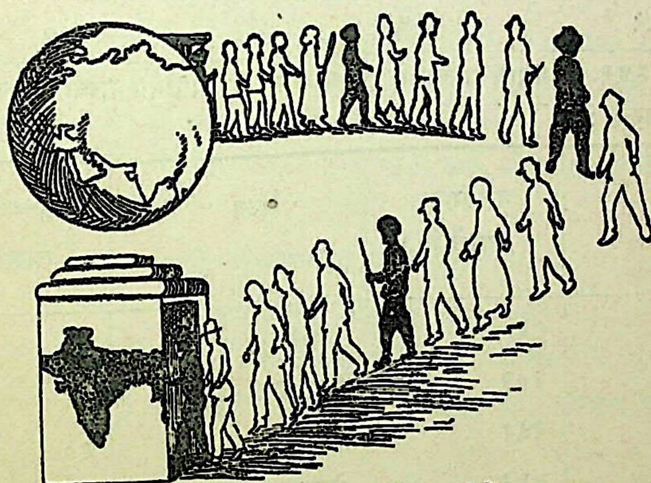
इकतालीसवाँ अध्याय

भारत की जनसंख्या (Population of India)

आजकल के समय में जब प्रत्येक देश की सरकार का उद्देश्य अधिकतम आर्थिक भलाई करना है, जनसंख्या का बड़ा भारी महत्व है। इसका कारण स्पष्ट है। सरकार देश की जनता की भलाई के लिये ही कार्य करती है और इस कारण देश में जितने व्यक्ति होंगे उतने ही व्यक्तियों की भलाई की बात उसे सोचनी होगी।

१. जनसंख्या का आकार (Size of the Population)

भारतीय जनसंख्या की सबसे बड़ी विशेषता उसका बड़ा आकार है। भारत तथा पाकिस्तान की सम्मिलित जनसंख्या संसार की जनसंख्या का पाँचवाँ भाग है। वह अफ्रीका तथा उत्तरी एवं दक्षिणी अमरीका की सम्मलित जनसंख्या के बराबर है। ग्रेट ब्रिटेन की जनसंख्या से वह नौ गुनी और आस्ट्रेलिया से ५७ गुनी अधिक है।



चित्र ६२—संसार की जनसंख्या में भारतीयों का स्थान

जनसंख्या का अनुमान—हमारे देश में सर्वप्रथम सन् १८७२ में मनुष्य-गणना हुई थी और दूसरी १८८१ में। तबसे मनुष्य-गणना हर दसवे वष होती चली आयी है। सबसे अंतिम मनुष्य-गणना सन् १९५१ में हुई है। उसके पहले जितनी मनुष्य गणनायें हुई हैं, वह भारत तथा पाकिस्तान की सम्मिलित जन-गणनायें हैं। केवल १९५१ की मनुष्य-गणना ही वर्तमान भारत की जनसंख्या का सही-सही अनुमान बताती है। निम्न तालिका में विभिन्न मनुष्य-गणनाओं के समय भारत की आबादी का अनुमान बताया गया है :—

वर्ष	जनसंख्या (करोड़ों में)	जनसंख्या की वृद्धि (करोड़ों में)
१८७२	२०·६	—
१८८१	२५·४	४·८
१८९१	२८·७	३·३
१९०१	२९·५	०·७
१९११	३१·५	२·१
१९२१	३१·९	०·४
१९३१	३३·३	३·४
१९४१	३८·९	२·६
१९५१	३५·७	—२·२

१९५१ की मनुष्य गणना के अनुसार भारत के विभिन्न राज्यों की जनसंख्या निम्न प्रकार है :—

राज्य	जनसंख्या (लाखों में)	राज्य	जनसंख्या (लाखों में)
आसाम	९३	काश्मीर	४३
बिहार	४०२	मध्यभारत	७९
बम्बई	२५९	मैसूर	९०
मध्य प्रदेश	२१३	पेपसू	३४
मद्रास	५६६	राजस्थान	२५३
उड़ीसा	१४६	सौराष्ट्र	४१
पंजाब	१२३	ट्रावनकोर-कोचीन	९३
उत्तर प्रदेश	६३२	हिमांचल प्रदेश	१०
पश्चिमी बंगाल	२४७	कच्छ	६
हैदराबाद	१८६	विंध्य प्रदेश	३५

जनसंख्या की वृद्धिगति—यदि हम भारत की जनसंख्या की वृद्धि को देखें तो हमें पता चलेगा कि सन् १९२१ तक देश की जनसंख्या की वृद्धि की गति बहुत कम थी और १९२१ के बाद से ही जनसंख्या शीघ्रता से बढ़ी है। यह बात निम्न तालिका से स्पष्ट हो जायगी :—

वर्ष	प्रतिशत वृद्धि
१८७२-१८८१	१·५
१८८१-१८९१	९·३
१८९१-१९०१	१·४
१९०१-१९११	६·४
१९११-१९२१	१·२
१९२१-१९३१	१०·८
१९३१-१९४१	१५·०
१९४१-१९५१	१२.५ (केवल भारत की)

यदि हम पाकिस्तान को छोड़कर केवल भारत की ही जनसंख्या के आँकड़े देखें तो हमें पता चलेगा कि १८९१ से १९२१ तक के ३० वर्षों में जनसंख्या कुल १·६ करोड़ बढ़ी। लेकिन १९२१ से १९५१ तक के ३० वर्षों में जनसंख्या १०·६ करोड़ बढ़ी। अर्थात् बाद के ३० वर्षों में पहले की अपेक्षा जनसंख्या ७½ गुनी अधिक बढ़ी।

२. जनसंख्या का घनत्व

(Density of Population)

जनसंख्या के घनत्व से हमारा आशय प्रति एक वर्गमील के भीतर रहने वाले व्यक्तियों से है। जनसंख्या का घनत्व जनसंख्या तथा क्षेत्रफल का सम्बन्ध बताता है।

भारत में जनसंख्या सभी स्थानों पर एक सी नहीं है। इसका कारण यह है कि मनुष्य वहीं रहना पसन्द करते हैं जहाँ उन्हें पेट भरने की सुविधायें अधिक मात्रा में उपलब्ध होती हैं। यह एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है। इसी कारण हमारे देश में नदियों के किनारे, खनिज प्रदार्थ पाये जाने वाले स्थानों पर, उद्योग-धंधों के केन्द्रों में तथा बन्दरगाहों में आबादी का घनत्व अधिक है। समतल मैदानों में आबादी का घनत्व अधिक है और पहाड़ों पर कम। जिन स्थानों की जलवायु अच्छी है वहाँ अधिक मनुष्य रहते हैं और इसके विपरीत रेगिस्तान में या मलेरिया वाले क्षेत्रों में आबादी का घनत्व काफी कम है। भारत में निम्नलिखित क्षेत्रों की आबादी अधिक घनी है :—

(१) कलकत्ता तथा उसके आस-पास का क्षेत्र

(२) बम्बई तथा उसके आस-पास का क्षेत्र

(३) अहमदाबाद तथा उसके पास का उपजाऊ क्षेत्र

(४) पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा बिहार का उपजाऊ तथा औद्योगिक क्षेत्र

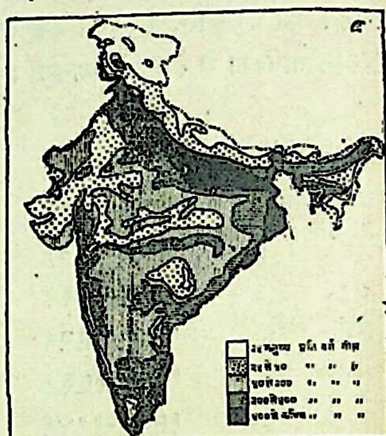
(५) मद्रास तथा उसके आस-पास का क्षेत्र

(६) ट्रावनकोर-कोचीन का औद्योगिक तथा उपजाऊ क्षेत्र

(७) पूर्वीतट का उपजाऊ डेल्टा

(८) कानपुर का औद्योगिक क्षेत्र

(९) दिल्ली तथा उसके आस-पास का क्षेत्र



चित्र ६३—जनसंख्या का घनत्व

(१०) अमृतसर तथा उसके आस-पास का क्षेत्र

१९५१ की मनुष्य-गणना के अनुसार भारत के विभिन्न राज्यों में जनसंख्या का घनत्व निम्न प्रकार है :—

राज्य	घनत्व	राज्य	घनत्व
आसाम	१८६	काश्मीर	४८
बिहार	५२१	मध्य भारत	१५४
बम्बई	२५७	मैसूर	२४६
मध्य प्रदेश	१५०	पेपसू	२१७
मद्रास	२९१	राजस्थान	९०
उड़ीसा	२२९	सौराष्ट्र	११०
पंजाब	१९०.	ट्रावनकोर-कोचीन	८२२
उत्तर प्रदेश	५१८	हिमांचल-प्रदेश	८८
पश्चिमी बंगाल	७५६	कच्छ	६२
हैदराबाद	१९०	विंध्य प्रदेश	१४५

जनसंख्या के घनत्व की विभिन्नता के कारण

भारत के विभिन्न राज्यों में जनसंख्या का घनत्व भिन्न-भिन्न है। इसके निम्न कारण हैं।

(१) **भूपटल की बनावट**—जो स्थान पठारी, पहाड़ी या रेगिस्तानी हैं वहाँ जनसंख्या का घनत्व कम है और जो स्थान समतल मैदान में स्थित हैं, वहाँ घनत्व अधिक है। इसका कारण यह है कि समतल मैदानों में कृषि की सुविधा अधिक होती है।

(२) **वर्षा**—जिन स्थानों पर ३०″ से कम वर्षा होती है वहाँ अच्छी खेती नहीं हो सकती। इसके विपरीत जहाँ ६०″ से अधिक वर्षा होती है, वहाँ भी खाद्यान्न नहीं उगाये जा सकते। भारत में कृषि के लिये ३०″ से ५०″ की वर्षा उपयुक्त है। अतएव जिन स्थानों पर वर्षा इतनी ही होती है वहाँ खेती अच्छी होने के कारण जनसंख्या का घनत्व अधिक है। इसी कारण राजस्थान और हिमालय की तराई में बहुत कम जनसंखया पाई जाती है।

(३) **सिंचाई की सुविधा**—कृषि के लिये यह आवश्यक है कि यदि जलवर्षा अपर्याप्त हो तो सिंचाई की सुविधा प्राप्त हो। अतएव जिन स्थानों में जलवर्षा कम होती है लेकिन वहाँ सिंचाई के साधन प्राप्त हैं वहाँ जनसंख्या का घनत्व अधिक है। पंजाब का वह भाग जिसे नहर-उपनिवेश कहते हैं किसी समय रेगिस्तान था। परन्तु नहरें बन जाने के पश्चात् वह एक उपजाऊ क्षेत्र बन गया है, और वहाँ जनसंख्या का घनत्व भी अधिक हो गया है।

(४) **मिट्टी की उर्वरता**—खेती मिट्टी की उर्वरता पर निर्भर रहती है। उर्वर मिट्टी में खेती अच्छी होती है। इस कारण जिन स्थानों पर उपजाऊ मिट्टी पाई जाती है, वहाँ जनसंख्या का घनत्व अधिक होता है। भारत में जिन स्थानों पर गंगवार मिट्टी तथा काली मिट्टी पाई जाती है, वहाँ जनसंख्या का धनत्व बहुत अधिक है।

(५) **औद्योगिक केन्द्र**—जो क्षेत्र किसी उद्योग के लिये प्रसिद्ध होते हैं वहाँ जनसंख्या का घनत्व अधिक होता है। उदाहरण के लिये कलकत्ता, बम्बई, अहमदाबाद, कानपुर, शोलापुर आदि शहरों को ले लीजिए। उद्योगों के कारण ही इन शहरों में आबादी का घनत्व अधिक है।

(६) **खनिज पदार्थ**—जिन स्थानों पर खनिज पदार्थ पाये जाते हैं वहाँ पर इनको खोदने के लिये बहुत से मजदूर आकर रहने लगते हैं और इस कारण वहाँ आबादी का घनत्व बढ़ जाता है।

(७) राजधानियाँ—जो शहर किसी प्रान्त या किसी देश की राजधानी होते हैं, वहाँ अनेक सरकारी दफ्तर होने के कारण वहाँ की जनसंख्या अधिक हो जाती है। उदाहरण के लिये दिल्ली, लखनऊ, पटना, जयपुर आदि शहरों को ले लीजिये।

(८) शिक्षा-केन्द्र—जो स्थान शिक्षा के लिये प्रसिद्ध हो जाते हैं वहाँ पर भी जनसंख्या का घनत्व अधिक हो जाता है। उदाहरण के लिये इलाहाबाद को ले लीजिये। यहाँ विश्वविद्यालय है और अनेक स्कूल भी हैं। इसी कारण यहाँ अधिक मनुष्य रहते हैं।

(९) यातायात के केन्द्र—ऐसे स्थान जो रेलों के जंकशन हैं या बन्दरगाह हैं या ऐसी जगह स्थित हैं जहाँ कई सड़कें आकर मिलती हैं, वहाँ पर व्यापारिक सुविधा के कारण जनसंख्या का घनत्व बढ़ जाता है।

(१०) धार्मिक स्थान—धार्मिक स्थानों में भी बहुत से व्यक्ति आकर बस जाते हैं। प्रयाग, बनारस, मथुरा, गया, अयोध्या, हरद्वार आदि स्थानों में इसी कारण अधिक जनसंख्या पाई जाती है।

३· जन्म-दर
(Birth Rate)

भारत में जन्म-दर बहुत अधिक है। १८८२ से लेकर १९३१ तक भारत की जन्म-दर औसतन ३५-३६ रही। अर्थात् प्रति १ हजार व्यक्तियों के पीछे १ वर्ष में ३५-३६ बच्चे पैदा हो जाते थे। उसके बाद से जन्म दर में कुछ कमी अवश्य हुई है, परन्तु वह अधिक नहीं है। निम्न तालिका से जन्म दर का अनुमान लगाया जा सकता है :—

वर्ष	पंच-वर्षीय औसत	दस-वर्षीय औसत
१९११—१५	३९·०	३७
१९१६—२०	३४·७	
१९२१—२५	३३·०	३५·०
१९२६—३०	३६·८	
१९३१—३५	३४·६	३४·०
१९३६—४०	३३·५	
१९४१—४५	२८.२	२८·७
१९४६—५०	२९·२	

बढ़ी हुई जन्म-दर के कारण

भारत में जन्म-दर बहुत अधिक है इसके कई कारण हैं। इन कारणों का वर्णन हम पिछले अध्याय में कर आये हैं अतएव उन्हें पुनः बताना आवश्यक नहीं है। लेकिन हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि इस बढ़ी हुई जन्म-दर के कारण ही हमारे देश की जन-संख्या अधिक तेजी से बढ़ रही है और यदि उसे रोकना है तो यह आवश्यक है कि हम जन्म-दर कम करें।

४. मृत्यु-दर

(Death Rate)

हमारे देश में मृत्यु-दर भी काफी अधिक है। इस बढ़ी हुई मृत्यु-दर के कारण ही जन-संख्या बहुत अधिक तेजी से नहीं बढ़ रही है। निम्न तालिका से आपको देश की मृत्यु का अनुमान हो जायगा :—

वर्ष	पंच वर्षीय औसत	दस वर्षीय औसत
१९११-१५	३०·२	३४·२
१९१६-२०	३८·२	
१९२१-२५	२६·२	२५·४
१९२६-३०	२४·६	
१९३१-३५	२३·३	२३·०
१९३६-४०	२२·३	
१९४१-४५	२२·५	२०·४
१९४६-५०	१८·३	

तालिका से स्पष्ट है कि हमारे देश की मृत्यु-दर कम होती जा रही है। परन्तु फिर भी अन्य देशों की तुलना में यह काफी अधिक है।

मृत्यु-दर किन कारणों से अधिक होती है इस पर हम पिछले अध्याय में प्रकाश डाल चुके हैं। भारत में मृत्यु-दर के अधिक होने के दो मुख्य कारण हैं।

(१) अत्यधिक बाल-मृत्यु (Infant Mortality)
(२) अत्यधिक स्त्री-मृत्यु (Female Mortality)
इनके अधिक होने के कारणों पर हम नीचे प्रकाश डालेंगे।

बाल-मृत्यु (Infant Mortality)

हमारे देश में कुल मृत्युओं में से चौथाई मृत्यु बालकों की होती है। जन्मने वाले एक हजार बालको में से लगभग चौथाई बालकों की मृत्यु साल भर के भीतर हो जाती है और लगभग आधे पाँच वर्ष के भीतर काल के मुख में चले जाते हैं। निम्न तालिका यह बताती है कि १ हजार बालकों में से कितने मर जाते हैं :—

वर्ष	बाल-मृत्यु (प्रति १,००० बालक)
१९११-१५	२००·२
१९१५-२०	२१८·२
१९२१-२५	१७४·३
१९२६-३०	१७७·३
१९३१-३५	१७४·०
१९३६-४०	१६१·४
१९४१-४५	१३०·०

अत्यधिक बाल-मृत्यु के कारण

भारत में अत्यधिक बाल-मृत्यु के निम्नलिखित कारण हैं :—

(१) अपर्याप्त भोजन—गरीबी के कारण हमारे देश की मातायें पर्याप्त तथा पौष्टिक भोजन नहीं कर पातीं। इस कारण उनका स्वास्थ्य गिर जाता है और उनके बच्चे भी कमजोर पैदा होते हैं। कमजोरी के कारण ये बच्चे शीघ्र ही मर जाते हैं।

(२) बुरा स्वास्थ्य—भारत की अधिकांश माताओं का स्वास्थ्य बहुत गिरा हुआ है। इसके कई कारण हैं जैसे पर्दा की प्रथा, अनेक बीमारियों का होना, भर पेट भोजन न मिलना और दिन भर घर के काम-काज में लगे रहना आदि। जब माताओं का स्वास्थ्य ठीक नहीं है तो उनके बालकों का स्वास्थ्य भला किस प्रकार अच्छा हो सकता है ?

(३) सफाई—हमारे देश के अधिकांश स्त्री-पुरुष घर तथा बाहर की सफाई के सिद्धान्तों से अनभिज्ञ हैं। एक तो निर्धनता के कारण और दूसरे अशिक्षा के कारण वे यह नहीं जानते की उन्हें कहाँ मल त्यागना चाहिये, कहाँ पेशाब करना चाहिए, कूड़े-करकट को कहाँ फेंकना चाहिए और भोजन को किस प्रकार

मक्खियों से बचाना चाहिए। परिणाम स्वरूप समय-समय पर बीमारियाँ फैलती हैं और लाखों बालक मृत्यु के मुँह में चले जाते हैं।

(४) प्रसूत गृहों की कमी—हमारे देश में प्रसूत गृह बहुत कम हैं। परिणाम स्वरूप सन्तानोत्पत्ति के समय माता तथा बालक की ठीक से देखभाल नहीं हो पाती। गाँवों में होशियार दाइयों तथा डाक्टरों का मिलना अत्यन्त कठिन है। अतएव हमारे देश में बच्चे के जन्म के समय लाखों माताओं तथा शिशुओं की मृत्यु हो जाती है।

स्त्री की मृत्यु (Female Mortality)

भारत में स्त्रियों की मृत्यु की दर संसार में सबसे अधिक है। निम्न तालिका में भारत में स्त्री-मृत्यु-दर के आँकड़े दिये गये हैं :—

आयु	स्त्री-मृत्यु (प्रति एक हजार पीछे)
०-१	६०
१-५	१०४
५-१०	६६
१०-१५	६६
१५-२०	१२६
२०-३०	१३१
३०-४०	१०१

उक्त तालिका से स्पष्ट है कि १५ से ३० वर्ष की उम्र की स्त्रियों की मृत्यु सब से अधिक होती है। इसका कारण यह है कि वह समय उनके प्रजनन का समय है।

भारत में अत्यधिक स्त्री-मृत्यु-दर के कारण

भारत में स्त्री-मृत्यु-दर लगभग २० से ४० प्रतिशत है जब कि इंगलैंड में वह केवल ४ प्रतिशत है। इस अत्यधिक मृत्यु-दर के निम्नलिखित कारण हैं :—

(१) अधिक बालक—भारत में स्त्रियों के बच्चे मात्रा में अधिक तथा जल्दी जल्दी होते हैं। इसके कारण उनका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और वह अनेक बीमारियों की शिकार हो जाती हैं।

(२) बाल-विवाह—यद्यपि हमारे देश में बाल-विवाह कानून द्वारा अवैधानिक है, फिर भी इसका चलन काफी अधिक है। कम पढ़ी लिखी जातियों में तो बाल-विवाह का चलन बहुत व्यापक है। कच्ची उम्र में विवाह होने के कारण

स्त्रियाँ कम उम्र में ही मातायें बन जाती हैं और सन्तानोत्पति के समय भारी संख्या में उनकी मृत्यु हो जाती है। सर जान मीगा (Sir John Megaw) का कहना है कि प्रति एक हजार बाल-माताओं में से कम से कम सौ की मृत्यु सन्तानोत्पत्ति के समय हो जाती है।

(३) उचित चिकित्सा का अभाव—हमारे देश में डाक्टरों तथा अस्पतालों की भारी कमी है। पढ़ी लिखी तथा कुशल दाइयाँ भी बहुत कम पाई जाती हैं।* गाँवों में तो अशिक्षित दाइयों से ही काम लेना पड़ता है और उनकी अनभिज्ञता के कारण स्त्रियों की प्रसूत के समय में भारी मात्रा में मृत्यु हो जाती है।

(४) प्रसूत-गृहों की कमी—भारत में बच्चा जनाने के अस्पताल तथा प्रसूत गृहों की भारी कमी है। परिणाम स्वरूप प्रसूता की उचित देख-भाल नहीं हो पाती और उनकी भारी मात्रा में मृत्यु हो जाती है।

(५) पर्दा-प्रथा—हमारे देश में पर्दा-प्रथा का चलन है उसके कारण स्त्रियों को अच्छी हवा तथा रोशनी नहीं मिल पाती और उनका स्वास्थ्य गिर जाता है। धीरे धीरे पर्दा-प्रथा कम होती जा रही है परन्तु इसकी बड़ी आवश्यकता है कि यह प्रथा शीघ्र ही समाप्त कर दी जाय।

(६) निर्धनता—गरीबी के कारण स्त्रियों को अच्छा तथा स्वास्थ्यकर भोजन नहीं मिल पाता। कुछ स्त्रियों को मिलों में तथा आफिसों में काम करने जाना पड़ता है जिससे उनका स्वास्थ्य और भी खराब हो जाता है।

५· भारत की जन-संख्या संबंधी अन्य आँकड़े

(Other Facts About India's Population)

जन-संख्या का पेशेवार वितरण

आर्थिक दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है कि देश की कितनी जन-संख्या किस काम में लगी हुई है। इससे यह पता लगा है कि देश के सभी उद्योगों की उचित रूप से उन्नति हुई है या नहीं। १९५१ की मनुष्य-गणना से पता चलता है कि भारत के लगभग ७० प्रतिशत व्यक्ति कृषि पर निर्भर हैं। यह निम्न तालिका से स्पष्ट है :—

* अनुमान है कि भारत में प्रति १३०० बच्चे उत्पन्न कराने के लिये केवल एक दाई उपलब्ध हैं और लगभग ७००० स्त्रियों की देखभाल के लिये एक डाक्टर है।

१९५१ की जन-गणना के अनुसार

(संख्या लाखों में)

पेशे	पुरुष	स्त्री	कुल
१—कृषि में लगे हुए	१२६२·१	१२२९·२	२४९१·३
(अ) अपना खेत जोतने वाले	८५१·२	८२०·३	१६७३·५
(ब) खेती करने वाले जो अपना खेत नहीं जोतते	१६२·६	१५३·८	३१६·४
(स) कृषि-श्रमिक	२२४·०	२२४·२	४४८·२
(द) जो खेती नहीं करते, लगान पर रहने वाले	२४·४	२८·९	५३·३
२—जो कृषि में नहीं लगे हैं	५७० ३	५०५·४	१०७५·७
(अ) उत्पादन में लगे हुए (कृषि को छोड़कर)	२००·३	१७६·४	३७६·६
(ब) व्यवसाय	११२·३	१००·८	२१३·१
(स) यातायात	३१·१	२५·०	५५६·१
(द) अन्य कार्य	२२६·६	२०३·२	४२९·८

स्त्री-पुरुषों का अनुपात

हमारे देश में मनुष्यों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या अधिक है। यह निम्न तालिका से स्पष्ट है :

वर्ष	स्त्रियों की संख्या (प्रति १,००० मनुष्यों के पीछे)
१९११	९५४
१९२१	९४६
१९३१	९४०
१९४१	९३५
१९५१	९४७

औसत आयु

हमारे देश के मनुष्यों की औसत आयु बहुत कम है। इसका कारण हमारे देश के रहने वालों का बुरा स्वास्थ्य है। निम्न तालिका से विभिन्न देशों के रहने वालों की औसत आयु का अनुमान लगाया जा सकता है :

देश	औसत आयु
भारत	२३
जापान	४७
जर्मनी	६३
इंगलैंड	६३
आस्ट्रेलिया	६३
न्यूजीलैंड	६५

६. क्या भारत में जन-संख्या का आधिक्य है ?

(Is India Over populated ?)

यह प्रश्न प्रायः पूछा जाता है कि क्या भारत में जन-संख्या आवश्यकता से अधिक है ? कुछ लोगों का मत है कि भारत एक विशाल देश है जहाँ प्रकृति ने अनेक खनिज पदार्थों तथा साधनों को प्रचुर मात्रा में प्रदान किया है। यदि इन सब प्राकृतिक साधनों का शोषण मनुष्य के आर्थिक हितों को ध्यान में रखकर किया जाय तो भारत की भारी आर्थिक उन्नति हो सकती है और ३६ करोड़ क्या ५० या ६० करोड़ जन-संख्या को सुगमता से पाला जा सकता है।

परन्तु यह विचार पूर्णतया ठीक नहीं है। जब हम जन-संख्या के आधिक्य की बात करते हैं तो हमारा आशय किसी एक विशेष समय की परिस्थिति से होता है। अर्थात् हम यह निर्धारित करते हैं कि जिस समय यह प्रश्न पूछा गया है उस समय जन-संख्या आवश्यकता से अधिक है या नहीं। उस समय हम भविष्य की बात नहीं सोचते। भविष्य में जन-संख्या का आधिक्य रहेगा या नहीं रहेगा यह एक दूसरी बात हो जाती है।

भारत की वर्तमान दशा को देखते हुए यह निसंकोच कहा जा सकता है कि भारत में जन-संख्या का आधिक्य है। यह निम्न बातों से सिद्ध हो जाता है :—

१—भारत में अन्न की कमी दिन-प्रति-दिन बढ़ती जा रही है। जन-संख्या अधिक तेजी से बढ़ रही है और खाद्यान्न का उत्पादन इतनी तेजी से नहीं बढ़ रहा है। सन् १९१३-१४ से लेकर १९३५-३६ तक जन-संख्या १% की दर से बढ़ी और खाद्यान्न का उत्पादन ०·६५% की दर से ही बढ़ा। डाक्टर राधा कमल मुकर्जी का कहना है कि भारत में औसतन १२% जन-संख्या के लिये भोजन की कमी है।

२—देश में बेकारी दिन-प्रति-दिन बढ़ती जा रही है।

३—देश के व्यक्तियों की प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय तथा उनका जीवन-स्तर कम होता जा रहा है। इस्टर्न इकनामिस्ट (Eastern Economist) का कहना है कि द्वितीय महासमर तथा उसके बाद के समय में भारतवासियों की प्रति

व्यक्ति राष्ट्रीय आय १९३९-४० में ६७ रुपये से घटकर १९४८-४७ में ५९ रुपये रह गई है।

४—हमारे देश में अनेक बीमारियाँ समय-समय पर होती रहती हैं और उनका प्रकोप कम नहीं हुआ है।

५—हमारे देश में प्रति व्यक्ति कृषि के काम आने वाली भूमि कम होती जा रही है। यह निम्न तालिका से स्पष्ट है :—

वर्ष	प्रति व्यक्ति खेतिहर भूमि (एकड़ में)
१९११	०.९
१९२१	०·८८
१९३१	०·८२
१९४१	०·७२

अकाल-खोज-कमीशन का कहना है कि सन् १९०८-९ से लेकर १९१७-१८ तक प्रति व्यक्ति औसतन ०·८९ एकड़ भूमि पर खेती होती थी। १९४२-४३ में वह घट कर ०·६१ एकड़ रह गई। इन सब बातों से स्पष्ट है कि भारत में जनसंख्या आवश्यकता से अधिक है।

७. जनसंख्या सम्बन्धी नीति*

(Population Policy)

ऊपर के कथन से यह स्पष्ट है कि हमारे देश में जन-संख्या आवश्यकता से अधिक है। इसके साथ ही मृत्यु-दर कम होती जा रही है, लेकिन जन्म-दर में कोई कमी नहीं आई है। डाक्टरों की संख्या बढ़ रही है और नये नये अस्पताल खुलते जा रहे हैं। इससे इस बात की सम्भावना है कि भविष्य में देश की मृत्यु-दर और भी कम हो जायगी। सरकार मलेरिया, तपेदिक आदि बीमारियों को रोकने के लिये अनेक कार्य कर रही है और इन बीमारियों को काफी रोक लिया गया है। इन सब बातों से इस बात की पूर्ण सम्भावना है कि भविष्य में देश की मृत्यु-दर कम हो जायगी। परन्तु यदि जन्म-दर में कोई कमी न आई तो देश की जनसंख्या और भी अधिक तीव्र गति से बढ़ेगी। अतएव इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि देश की जन्म-दर कम की जाय। तभी जन-संख्या का आधिक्य कम होगा और भविष्य में भी स्थिति सुधर जायगी।

---

* जन-संख्या का आधिक्य किस प्रकार कम किया जाय इसके उत्तर में भी यह सब लिखना पड़ेगा।

जन-संख्या निरोध(Population Control)

जन-संख्या को कम करने के लिये दो उपाय सम्भव हैं : (१) ब्रह्मचर्य का पालन, तथा (२) कृत्रिम साधनों का प्रयोग । जहाँ तक ब्रह्मचर्य के पालन का सवाल है देश के अधिकांश व्यक्ति इस पर नहीं चल सकते। अतएव इस बात की आवश्यकता है कि सरकार कृत्रिम साधनों के प्रयोग का प्रचार जनता में करे और साथ ही इस बात का प्रयास करे कि यह साधन सस्ते मूल्य पर जनता को प्राप्त हो सकें ।

प्रवास (Emigration)

भारत में जन-संख्या के आधिक्य को कम करने का दूसरा तरीका यह है कि हमारे देश की अधिक जन-संख्या दूसरे देश में जाकर बस जाय । परन्तु हमको प्रति-वर्ष ४० लाख व्यक्तियों को बाहर भेजना होगा और इस बात की कोई भी सम्भावना नहीं है कि संसार का कोई भी देश इतने अधिक व्यक्तियों को बसाने के लिये तैयार हो जाय । आजकल हालत तो यह है कि जहाँ भी भारतीय बसे हैं, वहाँ से उनको निकालने के प्रयत्न किये जा रहे हैं ।

अतएव हम इसी निष्कर्ष पर आते हैं कि देश में जन-संख्या का आधिक्य कम करने के लिये यह आवश्यक है कि हम जन्म-दर को कम करें । इसी में देश की भलाई है । भारत सरकार को इस ओर शीघ्र ही कदम उठाना चाहिये और एक स्पष्ट नीति निर्धारित कर उस पर चलना चाहिये । अभी तक सरकार की नीति इस सम्बन्ध में स्पष्ट नहीं रही है और इसी कारण इस ओर सफलतापूर्वक कोई कार्य नहीं हो सका है । सरकार को अपनी चुप्पी की नीति को त्याग कर इस संबंध में उचित कदम उठाना चाहिये । इसी में देश की भलाई है । अंग्रेजी सरकार ने जन-संख्या के प्रश्न पर कभी भी ध्यान नहीं दिया । परन्तु हमारी राष्ट्रीय सरकार को इस समस्या पर चुप बैठ कर नहीं रहना चाहिये ।

परीक्षा प्रश्न

उत्तर प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—भारत की वर्तमान जन-संख्या क्या है ? क्या भारत में जन-संख्या का आधिक्य है ? यदि है तो इसके उपाय बताइये । (१९५३)

२—जनसंख्या का घनत्व भारत के विभिन्न भागों में भिन्न-भिन्न है । इसके कारण बताइये । (१९५२)

३—भारत के कुछ प्रांतों की जन-संख्या के घनत्व के आंकड़े नीचे दिये जाते हैं :—

प्रान्त	घनत्व प्रति वर्गमील
राजस्थान	६१
उत्तर-प्रदेश	५१५
बंगाल	७८०

इन अंकों के अन्तर का कारण बताइये । (१९५१)

४—जन-संख्या के घनत्व का क्या अर्थ है ? भारत के विभिन्न भागों में इसकी भिन्नता के कारण बताइये। (१९५०, १९४८, १९४६, १९३७, १९३४, १९३२)

५—भारत में विशेषकर औद्योगिक केन्द्रों में इतनी अधिक बाल-मृत्यु के क्या कारण हैं ? इस बुराई को कम करने के क्या उपाय हैं ? (१९४४)

६—भारत जन-संख्या के अत्यन्त गहरे घनत्व और कम घनत्व का उदाहरण प्रस्तुत करता है। इस अन्तर के कारणों की व्याख्या कीजिये। क्या आप इन व्यक्तियों से सहमत हैं जो भारत की जनसंख्या को उचित सीमा से अधिक मानते हैं ? कारण सहित उत्तर दीजिये। (१९४३)

७—बाल-मृत्यु से आप क्या अर्थ लगाते हैं ? भारत में अधिक बाल-मृत्यु-दर होने के कारण बताइये। इस दोष को दूर करने के उपाय बताइये। (१९४०, १९३६)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

८—भारत के विभिन्न भागों में जन-संख्या का घनत्व जिन बातों पर निर्भर है उनकी व्याख्या कीजिये। (१९४१)

९—जन-संख्या के घनत्व से आप क्या समझते हैं ? वह कौन-कौन-सी बातें हैं जिनसे जन-संख्या का घनत्व प्रभावित होता है ? उदाहरण सहित उत्तर दीजिये। (१९५३, १९४६)

१०—उन सब बातों का वर्णन कीजिये जिनके कारण उत्तर-प्रदेश और राजस्थान में जन-संख्या के घनत्व में भेद पाया जाता है। (१९५२, १९५०)

११—भारत में ऊँची शिशु मृत्यु-संख्या पर एक नोट लिखिये। (१९५०, १९४७, १९४४)

१२—सिन्ध-गंगा के मैदान में जन-संख्या का घनत्व इतना अधिक क्यों है ? आप इस कथन से क्या निष्कर्ष निकालते हैं कि बंगाल का घनत्व लगभग इंगलेंड की आबादी के घनत्व के बराबर है। (१९४४)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर कामर्स

१३—किसी देश में जन-संख्या में वृद्धि के आर्थिक परिणामों का वर्णन कीजिये। (१९५३)

१४—जनसंख्या के घनत्व पर एक नोट लिखिये। (१९५२)

सागर इन्टर आर्ट्स

१५—जन-संख्या के घनत्व पर एक नोट लिखिये। (१९५२)

१६—भारत के विभिन्न भागों में जन-संख्या के भिन्न-भिन्न घनत्व का कारण बताइये। (१९४६)

सागर इन्टर कामर्स

१७—जन-संख्या के घनत्व पर एक नोट लिखिये। (१९४६)

१८—भारत के विभिन्न भागों में जन-संख्या के भिन्न-भिन्न घनत्व के कारण बताइये। (१९४८)

बयालीसवाँ अध्याय

श्रम की कार्य-क्षमता

(Efficiency of Labour)

किसी देश में कितना उत्पादन होता है यह केवल इस बात पर निर्भर नहीं रहता कि उस देश में कितने श्रमिक पाये जाते हैं, परन्तु बहुत अधिक इस बात पर भी निर्भर रहता है कि उस देश के श्रमिक कितने कुशल हैं। यह प्रायः कहा जाता है कि इंगलैंड के श्रमिक भारतीय श्रमिकों से अधिक कुशल हैं। इंगलैंड में एक जुलाहा, भारत के जुलाहे से कई गुना अधिक और अच्छा कार्य करता है। इंगलैंड के श्रमिक भारतीय श्रमिकों से क्यों अच्छे हैं यह उनकी कार्य-कुशलता पर निर्भर है। श्रमिकों की कार्य-कुशलता किन-किन बातों पर निर्भर रहती है, इसका अध्ययन इस अध्याय में किया जायगा।

कार्य-क्षमता का अर्थ

किसी एक निश्चित समय में तथा समान परिस्थितियों में मात्रा में अधिक या गुण में अच्छी या दोनों प्रकार की वस्तुओं को उत्पन्न करने की शक्ति को कार्य-क्षमता कहते हैं। यह जानने के लिये कि दो श्रमिकों में से कौन सा अधिक कार्यशील है हमें यह देखना होगा कि एक ही समय में (चाहे समय एक घंटा हो या आधा घंटा या दो घंटे) और एक ही प्रकार की परिस्थितियों में अर्थात् एक ही प्रकार की मशीन, औजार, कच्चा माल आदि के प्रयोग करने पर कौन मात्रा में अधिक या गुण (Quality) में अच्छी वस्तु बनाता है। यदि कोई श्रमिक गुण में भी अच्छी और मात्रा में भी अधिक वस्तु बनावे तो फिर कहना ही क्या ! फिर तो निसंदेह वह बहुत अधिक कार्य-कुशल है। परन्तु यदि दूसरे की अपेक्षा कोई श्रमिक चाहे मात्रा में अधिक और चाहे क़िस्म में अच्छी वस्तु बनाता है तो भी वह अधिक कार्य-कुशल कहलावेगा।

१. कार्य-क्षमता पर प्रभाव डालने वाली बातें

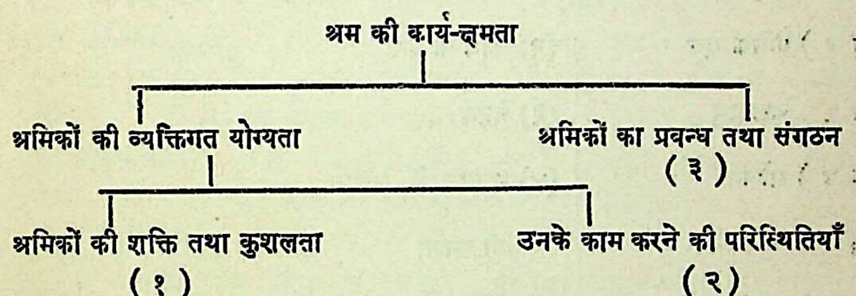
(Factors Responsible for Efficiency)

भिन्न-भिन्न श्रमिकों की कार्य-क्षमता भिन्न भिन्न होती है। इसका कारण यह है कि उनकी शिक्षा, दीक्षा, भोजन, रहन-सहन, शारीरिक शक्ति, मानसिक विकास,

बुद्धि आदि भिन्न-भिन्न होते हैं। मोटे रूप से यह कहा जा सकता है कि श्रमिकों की कार्य-क्षमता दो बातों पर निर्भर रहती है।*

(१) श्रमिकों की व्यक्तिगत योग्यता, तथा
(२) श्रमिकों को संगठित करने तथा प्रबन्ध करने की योग्यता।

श्रमिकों की व्यक्तिगत योग्यता दो बातों पर निर्भर रहती है: (१) उनकी शक्ति तथा कुशलता, और (२) वे परिस्थितियाँ जिनमें वे काम करते हैं। दूसरा कारण अधिक व्यापक है और इसके अन्तर्गत श्रमिकों के प्रबन्ध तथा उनको संगठित करने का ढंग आ जाता है। इस प्रकार श्रमिकों की कार्य-क्षमता तीन बातों पर निर्भर रहती है:



श्रमिकों की शक्ति तथा कुशलता अनेक बातों पर निर्भर रहती है जैसे जातीय गुण, पैत्रिक गुण, जलवायु, भोजन, जीवन-स्तर, सामान्य शिक्षा, विशिष्ट ज्ञान, नैतिक गुण आदि। श्रमिकों के काम करने की परिस्थितियों से हमारा आशय काम करने की दशा, काम का समय, वेतन और स्वतंत्रता, आशा आदि से है। इनके बारे में नीचे बताया गया है।

* Efficiency of labour depends on two factors : "(a) The efficiency of the individual labour; and (b) the organisation and direction of the labour force. The former is a purely personal matter : it concerns the laboure's ability and skill, and the conditions under which his work is done. The second factor is broader. It relates to the way in which the labonr force engaged in any one branch of production is organised and managed"—S. E. Thomas, *Elements of Economics*, p. 77. Penson says that efficiency of labour depends "partly on the employer and partly on the employed, partly on organisation and partly on individul effort, partly on tools, machines, etc., with which the worker is supplied, and partly on his own skill and industry in making use of them."—Sir T. H. Penson, The *Economics of Everyday Life*, p. 51.

श्रम की कार्य-क्षमता निर्भर है

(अ) श्रमिकों की शक्ति तथा कुशलता	(ब) श्रमिकों के काम करने की परिस्थितियाँ	(स) संगठन तथा प्रबन्ध की शक्ति
(१) जातीय गुण	(१) काम करने की दशा	(१) प्रबन्ध करने की योग्यता
(२) पैत्रिक गुण	(२) काम के घन्टे	
(३) जलवायु	(३) वेतन	
(४) भोजन	(४) भविष्य में उन्नति की आशा	
(५) जीवन-स्तर	(५) व्यवसाय की स्वतंत्रता	
(६) शिक्षा		
(७) विशिष्ट शिक्षा		
(८) नैतिक गुण		
(९) स्वास्थ्य		

(अ) श्रमिकों की शक्ति तथा कुशलता

श्रमिकों के कार्य करने की शक्ति तथा उनकी कार्य-कुशलता जिन-जिन बातों पर निर्भर रहती है, उन्हें नीचे विस्तार से बताया गया है :—

(१) जातीय गुण

श्रमिकों की कार्य-शक्ति के ऊपर उनकी जाति तथा कुटुम्ब का गहरा प्रभाव पड़ता है। मनुष्य की बुद्धि, काम करने की शक्ति, अधिक समय तक लगातार काम करने की सामर्थ्य, अच्छा काम करने की योग्यता आदि गुण जाति तथा कुटुम्ब के ऊपर निर्भर रहते हैं। मनुष्य का स्वास्थ्य, उसके शरीर की बनावट तथा उसकी शारीरिक शक्ति माता-पिता, कुटुम्ब तथा जाति के ऊपर निर्भर रहती है। कोई-कोई

जाति अधिक बलिष्ठ, परिश्रमी तथा बुद्धिमान होती हैं और कोई अन्य कमजोर, काहिल तथा सुस्त। भारत में राजपूत तथा जाट अधिक बलिष्ठ तथा परिश्रमी होते हैं और इस कारण अच्छे किसान या सैनिक होते हैं। एक मारवाड़ी व्यापार में अन्य सभी जातियों से अधिक होशियार तथा चतुर होता है। बंगाली शारीरिक परिश्रम तो नहीं कर सकते परन्तु वे अधिक बुद्धिमान होते हैं। ये सब विभिन्नताएँ जाति के गुणों पर निर्भर हैं। भारत में जाति-प्रथा का प्रचलन इस उद्देश्य से हुआ था कि जातियों के गुणों की रक्षा हो सके। ब्राह्मण ज्ञान प्राप्त करें, क्षत्री देश की रक्षा करें, और वैश्य देश का व्यापार बढ़ा कर उसको समृद्धिशाली बनायें।

(२) पैतृक गुण

श्रमिकों के कार्य करने की शक्ति उनके पैतृक गुणों पर भी निर्भर रहती है। यह निर्विवाद सत्य है कि मनुष्य के अनेक गुण माता-पिताओं पर निर्भर रहते हैं। एक बुद्धिमान माता-पिता का लड़का अपेक्षाकृत अधिक बुद्धिमान होता है। इंगलैंड तथा नार्वे के मल्लाह, इटली के कलाकार और स्विटजरलैंड के कुटीर उद्योग-धंधों में काम करने वाले श्रमिक जगत प्रसिद्ध हैं। भारत में भी वैश्य व्यापार में अधिक कुशल होते हैं और क्षत्री शारीरिक बल में अधिक बढ़े-चढ़े होते हैं।

(३) जलवायु

जलवायु का मनुष्य की कुशलता पर गहरा प्रभाव पड़ता है। शीत तथा शीतोष्ण जलवायु में मनुष्य अधिक कार्य कर सकते हैं। इसके विपरीत उष्ण जलवायु में मनुष्य शीघ्र थक जाते हैं और इस कारण यह अधिक समय तक मेहनत का काम नहीं कर सकते। इसके साथ ही शीतोष्ण जलवायु में पैदा होने वाले मनुष्य अधिक लम्बे-चौड़े, मजबूत और बलिष्ठ होते हैं। परन्तु भूमध्य रेखा के आस-पास पैदा होने वाले मनुष्य नाटे, कमजोर और काहिल होते हैं। इस कारण वे न तो अधिक देर तक काम ही कर पाते हैं और न अधिक मेहनत का ही काम करने की शक्ति रखते हैं।

जहाँ उष्ण जलवायु होती है वहाँ फसल उगाना बड़ा सुगम होता है। प्रकृति की इस उदारता के कारण मनुष्यों को अधिक परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। फलतः वह परिश्रम करने के आदी नहीं रहते। इसके विपरीत शीत तथा शीतोष्ण जलवायु में प्रकृति इतनी उदार नहीं होती और मनुष्य को अपनी जीविका-उपार्जन के लिये अधिक मेहनत करनी पड़ती है। अतएव इन स्थानों के मनुष्यों को मेहनत करने का अभ्यास होता है।

(४) भोजन

शारीरिक शक्ति के लिये पर्याप्त मात्रा में स्वास्थ्य-प्रद भोजन करना अत्यन्त आवश्यक है। मनुष्य को शारीरिक तथा मानसिक बल भोजन से ही प्राप्त होता है।

जिस प्रकार पेट्रोल न मिलने पर मोटर का इंजन नहीं चल सकता, ठीक उसी प्रकार पुष्टिकर भोज़न पर्याप्त मात्रा में न मिलने पर मनुष्य का शरीर भी काम नहीं कर सकता।

अमरीका तथा यूरोप के देशों के लोग काफी अच्छा भोजन करते हैं। उनका जीवन स्तर इतना ऊँचा है कि उन्हें पर्याप्त पौष्टिक भोजन मिल जाता है। अतएव उनकी कार्य-शक्ति काफी बढ़ी चढ़ी है। इसके विपरीत भारतीय श्रमिकों को भरपेट भोजन भी नहीं मिलता। परिणामतः श्रमिकों का स्वास्थ्य खराब हो गया है जिससे उनकी कार्य-क्षमता कम हो गई है।

(५) जीवन स्तर

कार्य-शक्ति के लिये केवल भोजन ही नहीं, परन्तु यह भी आवश्यक है कि जीवन की अन्य सुविधायें भी उचित मात्रा में प्राप्त हों। अच्छा तथा हवादार मकान, पर्याप्त वस्त्र और स्वास्थ्यप्रद वातावरण कार्य-क्षमता बढ़ाते हैं। इसके विपरीत गन्दे मकानों में मैले कुचैले तथा फटे-पुराने कपड़े पहिनने वाले और दूषित वातावरण में पले हुए श्रमिक कभी भी अधिक कुशल नहीं हो सकते। उनमें शारीरिक बल तो कम होता ही है, साथ ही उनका दृष्टिकोण भी बड़ा सीमित होता है।

यहाँ यह कह देना अनुचित न होगा कि अधिक विलासपूर्ण जीवन बिताने वाले मनुष्य के लड़के भी कार्य-कुशल नहीं होते। शराब तथा अन्य मादक पदार्थों का उपभोग करने वाले मनुष्यों के लड़के भी कमजोर तथा कम बुद्धि वाले होते हैं। उन्हें भी शराब आदि का व्यसन हो जाता है जिसका प्रभाव उनकी कुशलता पर बहुत बुरा पड़ता है।

(६) सामान्य शिक्षा

मनुष्य की बुद्धि या मानसिक योग्यता का प्रभाव उसकी उत्पादन शक्ति पर बहुत अधिक पड़ता है। जो मनुष्य अधिक होशियार और चतुर होते हैं वह काम जल्दी सीख जाते हैं और साथ ही काम भी अच्छा करते हैं। सोचने तथा समझने की शक्ति, काम करने में शीघ्रता, अधिक स्मरण शक्ति और काम को ठीक ढंग से करने का ज्ञान मनुष्य की सामान्य बुद्धि पर निर्भर रहता है। यह प्रायः देखा गया है कि यूरोप के निवासियों की सामान्य बुद्धि अफ्रीका के काले लोगों से अधिक कुशाग्र होती है।

आजकल के समय में मशीनों का प्रयोग बढ़ता जा रहा है और इस कारण यह आवश्यक हो गया है कि श्रमिक अधिक चतुर और होशियार हों। यदि ऐसा नहीं है तो वह मशीनों से काम नहीं कर पावेंगे। सम्भवतः इसी कारण पाश्चात्य देशों में औद्योगिक क्रान्ति के बाद से शिक्षा का प्रसार काफी बढ़ गया है। यूरोप

के लगभग सभी देशों में प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य तथा निःशुल्क है। इसी कारण वहाँ साक्षरता ९०% से भी अधिक है। परन्तु भारत में केवल ९% व्यक्ति ही साक्षर हैं और बाकी व्यक्ति अपना नाम भी नहीं लिख पाते। उसका परिणाम यह हुआ है कि यहाँ के श्रमिक कार्य-कुशल नहीं हैं।

(७) विशिष्ट शिक्षा

सामान्य शिक्षा से मनुष्य का मानसिक विकास हो जाता है, परन्तु किसी कार्य को करने का ज्ञान उसे विशिष्ट शिक्षा से ही आता है। बड़ी-बड़ी मशीनें चलाने का काम वेही श्रमिक कर सकते हैं जिन्हें उन मशीनों के चलाने की पेचीदा कला का ज्ञान हो। इसी कारण इस तरह के कार्य इन्जीनियरों को सौंपे जाते हैं। इसी प्रकार कल-पुर्जे आदि बनाने का कार्य वेही श्रमिक कर सकते हैं जिन्हें उस कार्य की विशिष्ट शिक्षा मिल चुकी हो। इससे स्पष्ट है कि विशिष्ट शिक्षा प्राप्त कर श्रमिक अधिक कार्य-कुशल हो जाते हैं और उनका वेतन भी बढ़ जाता है।

पश्चात्य देशों में विशिष्ट शिक्षा देने के अनेक केन्द्र हैं और वहाँ के मनुष्य बड़ी मात्रा में इस प्रकार की शिक्षा प्राप्त करते हैं। परन्तु दुर्भाग्य से भारत में इस प्रकार के स्कूलों की भारी कमी है और साथ ही इस प्रकार की शिक्षा पाना बहुत ही महँगा पड़ता है। इस कारण भारतीय श्रमिक अधिक कुशल नहीं हैं।

(८) नैतिक गुण

प्रसन्नता, ईमानदारी, आत्मविश्वास तथा सदाचार आदि ऐसे गुण हैं जिनसे श्रमिक की कार्य-कुशलता बढ़ती है। यदि कोई श्रमिक ईमानदारी से कार्य नहीं करता तो वह अपना आत्म-विश्वास और आत्म-संयम खो वैठता है और वह इस बात से घबड़ाता रहता है कि कहीं उसके काम का निरीक्षण न हो जाय। इसके विपरीत एक सदाचारी श्रमिक अपने आत्म-विश्वास से कार्य करता है और अपने उत्तरदायित्व को समझता है। वह मन लगाकर काम करता है और इस कारण उसका काम भी अच्छा होता है।

मनुष्य के नैतिक गुण जाति, शिक्षा तथा वातावरण पर निर्भर रहते हैं। बचपन में वालक अपने आस-पास के लोगों को जिस प्रकार से कार्य करते देखता है और बातें करते हुए सुनता है, बड़े होने पर भी वह उसी प्रकार से काम करने लगता है। माता-पिता विहीन वालक प्रायः चोरी करते हुए पकड़े जाते हैं। इसका कारण यही है कि जिस वातावरण में वे पले हैं वह इतना दूषित था कि उनको नैतिक गुणों का उचित ज्ञान नहीं हो पाया।

(९) स्वास्थ्य

एक श्रमिक कितना कार्य कर सकता है यह उसके स्वास्थ्य पर निर्भर रहता है। जिस श्रमिक का स्वास्थ्य अच्छा होगा वह समय-समय पर बीमार न पड़ेगा

और इस कारण अपने काम से छुट्टी भी न लेगा। साथ ही वह अधिक समय तक कड़ी मेहनत भी कर सकेगा। इसके विपरीत बुरे स्वास्थ्य वाले श्रमिक बीमारी तथा रोगों के कारण अपनी कार्य-शक्ति को खो बैठते हैं।

(ब) श्रमिकों के काम करने की परिस्थितियाँ

श्रमिकों की कार्य शक्ति इस बात पर भी निर्भर रहती है कि उनके कार्य करने की परिस्थितियाँ कैसी हैं। इसके अन्तर्गत जो बातें आती हैं उन पर नीचे विस्तार से विचार किया गया है।

(१०) काम करने की दशा

मिल तथा कारखाने में जहाँ श्रमिक कार्य करते हैं वहाँ का वातावरण अच्छा होना चाहिए। यदि वह स्थान साफ सुथरा है, हवादार है और उसमें पर्याप्त रोशनी आती है तो मजदूर अधिक मेहनत तथा रुचि से कार्य करेंगे जिससे उनकी उत्पादक शक्ति बढ़ जायगी। इसके विपरीत गन्दे, अंधेरे और दुर्गन्ध-युक्त स्थानों में काम करने पर श्रमिक दत्त-चित्त हो काम नहीं करने पाते और इस कारण उनकी उत्पादन शक्ति कम हो जाती है। हाल ही में की गई खोजों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यदि कोई कारखाना ऐसे स्थान पर है जहाँ काफी शोर-गुल होता है, तो वहाँ के मजदूरों की उत्पादन शक्ति अपेक्षाकृत कम हो जाती है। शहरों के चहल-पहल के बीच काम करने वाले श्रमिकों का ध्यान प्रायः उचट जाता है जिसके कारण उनके उत्पादन की मात्रा कम हो जाती है। इसी कारण यह कहा जाता है कि मिलों की दिवालें अच्छे रंग से पुती होनी चाहिए जिससे मजदूरों का ध्यान काम से न उचटे।

(११) काम करने के घन्टे

श्रमिकों से कितने घन्टे काम लिया जाता है और बीच में उन्हें कितना अवकाश दिया जाता है इस पर भी मजदूरों की कार्य-कुशलता निर्भर रहती है। कुछ उद्योगपति यह सोचते हैं कि मजदूरों से जितना अधिक समय तक काम लिया जायगा उतना ही अधिक कार्य वे करेंगे। परन्तु ऐसा सोचना भारी भूल है क्योंकि कोई भी मनुष्य लगातार तेज रफ्तार से कार्य नहीं कर सकता। थोड़े समय कार्य करने के पश्चात् मनुष्य थक जाता है और इस कारण वह काम धीरे-धीरे करने लगता है और साथ ही उसके काम में गलतियाँ भी होने लगती हैं। इस कारण यह आवश्यक है कि मनुष्य को बीच में थोड़ा आराम दे दिया जाय जिससे वही अपनी खोई हुई शक्ति को पुनः प्राप्त करले। इसी कारण फैक्टरी के नियमों में एक धारा यह भी रहती है कि तीन या चार घन्टे लगातार काम कर लेने के पश्चात् श्रमिक को आधे या एक घन्टे की छुट्टी दे दी जाय।

(१२) मजदूरी

श्रमिकों को काम करने के बदले में कितना प्रतिफल मिलता है इस पर भी उनकी कार्य-क्षमता निर्भर रहती है। मनुष्य को संतुष्ट रखने के लिये यह आवश्यक है कि कार्य के बदले में उसे उचित वेतन दिया जाय। यदि किसी श्रमिक की बुरी आर्थिक स्थिति से अनुचित लाभ उठाकर उसे कम मजदूरी दी जाती है तो वह असन्तुष्ट रहेगा, मन लगाकर काम नहीं करेगा और अवसर मिलते ही दूसरी जगह चला जायगा।

मजदूरी पर्याप्त तो होनी ही चाहिए, परन्तु साथ ही यह भी आवश्यक है कि श्रमिकों को उचित समय पर मजदूरी मिल जाय। श्रमिक गरीब होने के कारण अधिक समय तक मजदूरी के लिये नहीं रुक सकते। अतएव जब तक उन्हें इस बात का पूर्ण निश्चय नहीं होता कि उन्हें समय पर मजदूरी मिल जायगी, वह मन लगा कर काम नहीं करते।

तीसरी बात यह भी आवश्यक है कि श्रमिकों को मजदूरी प्रत्यक्ष रूप से दी जाय, अर्थात् जितनी उनकी मजदूरी हो उतनी ही उन्हें द्रव्य में दे दी जाय। यदि उसका कुछ भाग श्रमिकों की दशा सुधारने में व्यय कर दिया जाता है तो उससे होने वाले लाभ को वह ठीक से नहीं आँक सकेंगे, वह यही समझेंगे कि उन्हें कम मजदूरी मिल रही है।

(१३) भविष्य में उन्नति की आशा

यदि एक श्रमिक को इस बात की आशा हो कि भविष्य में उचित रूप से उन्नति करने की उसे सुविधायें प्राप्त रहेंगी तो वह अधिक मेहनत से और मन लगा कर कार्य करेगा। इसके विपरीत यदि उसका वेतन बढ़ने की कोई सम्भावना न होगी तो वह अधिक निपुण होने तथा अधिक कार्य करने का प्रयास ही नहीं करेगा। उन्नति की आशा ही मनुष्य को अधिक निपुण बनाने के लिए प्रोत्साहित करती रहती है। अतएव उन्नति का मार्ग बन्द होते ही उसकी कार्य-कुशलता पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(१४) व्यवसाय की स्वतन्त्रता

एक मनुष्य उसी समय अधिक अच्छा कार्य करेगा जब उसे अपने काम में पूर्ण स्वतन्त्रता हो। परन्तु यदि समय-समय पर अड़चनें डाली जाती हैं या नये-नये आदेश देकर उसको तंग किया जाता है या उसे इस बात का बोध करा दिया जाता है कि उस पर कोई विश्वास नहीं करता तो उसमें काम करने की लगन नहीं रहती और वह विना तबियत लगाये काम करता है जिससे उसकी कार्य-कुशलता कम हो जाती है।

(स) संगठन तथा प्रबन्ध की शक्ति

कार्य-कुशलता इस बात पर भी निर्भर रहती है कि श्रमिकों को किस प्रकार से संगठित किया जाता है। यह प्रबन्ध की योग्यता पर निर्भर है जिसे नीचे सविस्तार बताया गया है।

(१५) प्रबन्ध करने की योग्यता

श्रमिकों से किस प्रकार से काम लिया जाता है और उन्हें किस प्रकार से संगठित किया जाता है, इस पर भी उनकी कार्य-कुशलता निर्भर रहती है। उद्योग में एक प्रबन्धक का वही कार्य है जो फौज के एक कप्तान का। फौज अपने काम में सफल होती है या नहीं यह इस बात पर निर्भर रहता है कि कप्तान किस प्रकार का आदेश देता है और उसमें बुद्धि या चतुराई कितनी है। ठीक इसी प्रकार प्रबन्धक के ऊपर भी उत्पादन की मात्रा तथा उत्पादन की किस्म निर्भर रहती है। प्रबन्धक का यह कार्य है कि वह श्रमिकों को अच्छे-अच्छे औजार तथा मशीनें दे, प्रत्येक श्रमिक को उसकी योग्यता के अनुसार काम दे, श्रमिकों के कार्यों का ठीक से निरीक्षण करे और इस बात को देखे कि प्रत्येक श्रमिक उचित मात्रा में उत्पादन करता है या नहीं। प्रबन्धक जितना ही अधिक होशियार होगा उतनी ही अधिक निपुणता से वह काम करेगा और परिणामतः श्रमिक उतने ही अधिक कार्य-कुशल होगें। दुर्भाग्य से भारत में अच्छे प्रबन्धकों की बड़ी कमी है और इस कारण यहाँ के श्रमिक भी अधिक कार्य-कुशल नह. हैं।

२. कार्य-क्षमता से लाभ

(Advantages of Efficiency)

यदि श्रमिक अधिक कार्यशील होते हैं तो उत्पादकों को बड़ा लाभ होता है। यह लाभ निम्नलिखित हैं :

(१) श्रमिक अपना काम कम समय में पूरा कर देते हैं।

(२) काम करते समय श्रमिकों के ऊपर नियन्त्रण रखने की आवश्यकता नहीं होती। एक कार्य-कुशल श्रमिक इतना जिम्मेदार होता है कि वह बिना देखभाल के भी काम करता रहता है।

(३) वह कच्चे माल की तथा अन्य पदार्थों की बर्बादी (Waste) नहीं करता। इस प्रकार उत्पादन का व्यय कम हो जाता है।

(४) मशीनों का प्रयोग करना वह जान जाता है और इस कारण मशीनों की टूट-फूट कम होती है।

(५) कार्य-कुशल श्रमिक अपनी बुद्धि तथा विवेक से काम लेता है और उत्पादन की नई-नई प्रणालियों के प्रयोग में उसका मन लगता है। अतएव प्रत्येक

नई उत्पादन विधि को वह सहर्ष स्वीकार कर लेता है और इस कारण प्रति इकाई उत्पादन की लागत कम हो जाती है।

३. भारतीय श्रमिकों की कार्य-कुशलता
(Efficiency of Indian Labourers)

यह सभी जानते हैं कि एक भारतीय श्रमिक अमरीका या यूरोप के श्रमिकों की अपेक्षा बहुत कम कार्य-कुशल है। विद्वानों का अनुमान है कि एक भारतीय श्रमिक की अपेक्षा इंगलैंड का श्रमिक ढाई-तीन गुना अधिक कार्य करता है। इस बात की भारत में अत्यन्त आवश्यकता है कि यहाँ के भी श्रमिक अधिक कार्य-कुशल हों। ऐसा तभी हो सकता है जब हम उन कारणों को जानें जिनसे भारतीय श्रमिकों की कार्य-क्षमता कम है और फिर उन बुराइयों को दूर करने का प्रयास करें। उन बातों को जिनके कारण भारतीय श्रमिकों की कार्य-क्षमता कम है नीचे बतलाया गया है।

(१) जलवायु—हमारे देश की जलवायु गर्म है। इस कारण यहाँ के श्रमिक अधिक मेहनत से तथा अधिक समय तक कार्य नहीं कर पाते। थोड़े समय तक कार्य करने के पश्चात् उन्हें थकावट प्रतीत होने लगती है। उनकी कार्य-क्षमता बढ़ाने के लिये यह आवश्यक है कि मिलों में बिजली के पंखे तथा कमरे को ठंडे करने वाले कृत्रिम साधनों का प्रयोग किया जाय। ऐसा करने से उनके शरीर में पर्याप्त स्फूर्ति रहेगी और वह अधिक काम करेंगे।

(२) भोजन—भारतीय श्रमिकों को स्वास्थ्यकर तथा पर्याप्त मात्रा में भोजन नहीं मिलता जिसके कारण उनके शरीर में पर्याप्त शक्ति नहीं होती। पतले-दुबले तथा कमजोर होने के कारण वह अधिक मेहनत से काम नहीं कर पाते और इस कारण वह कार्य-कुशल भी नहीं होने पाते। इस बात की आवश्यकता है कि उनको पर्याप्त मात्रा में स्वास्थ्यकर भोजन मिले और ऐसा तभी हो सकता है जब उनका जीवन-स्तर ऊँचा हो।

(३) जीवन-स्तर—यही नहीं कि भारतीय श्रमिकों को भर पेट भोजन नहीं मिलता, उन्हें अन्य आवश्यक वस्तुएँ भी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त नहीं होने पातीं। मैले-कुचैले तथा फटे कपड़े पहनकर और गन्दे मकानों में रहकर वह किसी प्रकार से अपना जीवन बिताते हैं। ऐसी दशा में उनका कार्य-कुशल न होना कोई अचंभे की बात नहीं है। इस बात की आवश्यकता है कि उनको अच्छे तथा हवादार मकानों में रखा जाय और उन्हें जीवन की अन्य सुविधायें भी प्राप्त हों।

(४) शिक्षा—भारत में शिक्षा का बड़ा अभाव है। देश में कुल ६% व्यक्ति ही साक्षर हैं। शिक्षा के अभाव के कारण श्रमिकों का उचित मानसिक विकास नहीं होने पाता और इस कारण उन्हें कार्य को समझने में बड़ा समय लगता है और फिर भी वह उसकी गहराई तक नहीं पहुँच पाते। इस बात की बड़ी

आवश्यकता है कि देश में शिक्षा का प्रसार बढ़े और प्रारम्भिक शिक्षा निःशुल्क तथा अनिवार्य कर दी जाय।

(५) विशिष्ट शिक्षा—हमारे देश में विशिष्ट शिक्षा का बड़ा अभाव है। कुछ तो निर्धनता के कारण और कुछ विशिष्ट शिक्षा देने वाले स्कूलों की कमी के कारण देश के बहुत कम लोग इस प्रकार की शिक्षा लेते हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि पेचीदा काम करने के लिये भारत सरकार को विदेशों से इंजीनियरों को बुलाना पड़ता है। दामोदर घाटी आदि बहु-मुखी योजनाओं को चलाने के लिये भारत सरकार ने अनेक विदेशी इंजीनियरों को बुलाया है। इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि देश में विशिष्ट शिक्षा का प्रसार बढ़े।

(६) नैतिक गुण—हमारे देश के श्रमिक गरीबी में और दूषित वातावरण में पलते हैं जिसके कारण उनमें नैतिक गुणों का विकास नहीं होने पाता। आत्म-संयम, आत्म-सम्मान, आत्म-निर्भरता आदि गुणों का उनमें सर्वथा अभाव पाया जाता है। साथ ही उनमें शराब पीने तथा जुआ खेलने आदि के बुरे व्यसन भी पाये जाते हैं। उनमें नैतिक गुण तभी बढ़ेंगे जब उनका जीवन-स्तर ऊँचा हो और इसलिये इस ओर सरकार को प्रयत्न करना चाहिए।

(७) आत्म-संतोष—हमारे देश के श्रमिक बड़े सन्तोषी होते हैं। प्रारम्भ से ही उन्हें सन्तोषी होने की शिक्षा दी जाती है। वह यह समझते हैं कि उनकी जो वर्तमान दशा है वह इस कारण है कि ईश्वर ऐसा चाहता है। इस भावना के कारण उनमें अपनी आर्थिक दशा सुधारने की इच्छा नहीं होती। इस मनोवृत्ति का कारण उनकी सदियों से चली आने वाली बुरी आर्थिक दशा है और जब तक उनकी आर्थिक दशा में सुधार नहीं होता उनकी यह मनोवृत्ति भी नहीं बदल सकती।

(८) सामाजिक दशा—हमारे देश में छुआछूत आदि अनेक ऐसी सामाजिक कुप्रथायें हैं जिनके कारण निम्न जाति के लोग उन्नति नहीं कर पाते। श्रमिक अधिकांश में नीची जाति के ही होते हैं और उन पर अनेक ऐसे सामाजिक बन्धन लगे रहते हैं जिनके कारण वे पर्याप्त आर्थिक उन्नति नहीं कर पाते। सौभाग्य से भारत में छुआछूत कम होता जा रहा है और सामाजिक बन्धन भी ढीले पड़ते जा रहे हैं। अतएव यह आशा की जा सकती है कि भविष्य में श्रमिकों की दशा सुधर जायगी।

(९) स्वास्थ्य—भारतीय श्रमिकों का स्वास्थ्य बहुत खराब है। कमज़ोर होने के साथ-साथ उन्हें समय-समय पर अनेक बीमारियाँ होती रहती हैं जिसके कारण वह अच्छी तरह से काम नहीं कर पाते। सरकार को चाहिए कि स्थान-स्थान पर अस्पताल खुलवाये जिससे उनका इलाज अच्छी प्रकार से हो सके।

(१०) जातीय तथा पैतृक गुण—कुछ पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि भारत के श्रमिक इस कारण भी कम कार्य-कुशल हैं क्योंकि उनके पूर्वज भी अधिक कुशल न थे। परन्तु यह कथन सर्वथा अनुचित है। प्राचीन इतिहास इस बात का साक्षी है कि किसी समय हमारा देश औद्योगिक उन्नति में अन्य देशों से काफी बढ़ा चढ़ा था। जब तक इंगलैंड में औद्योगिक क्रान्ति नहीं हुई थी तब तक भारत का बना सामान वहाँ बिकने के लिये जाता था। उस समय भारत का बना हुआ कपड़ा संसार भर में विख्यात था। अतएव यह नहीं कहा जा सकता कि भारतीय श्रमिकों में औद्योगिक गुणों का अभाव है। आवश्यकता इस बात की है कि उनके इन गुणों का उचित रूप से विकास किया जाय।

(ब) श्रमिकों को कार्य करने की परिस्थितियाँ

भारतीय श्रमिक जिन परिस्थितियों में काम करते हैं वह अनुकूल नहीं हैं और इस कारण वह अधिक उत्पादन नहीं कर पाते। यह नीचे बताई हुई बातों से स्पष्ट हो जायगा।

(११) काम करने की दशा—हमारे देश की मिल तथा फैक्टरियों की दशा बहुत बुरी है। न तो वहाँ रोशनी का ही उचित प्रबन्ध है और न अच्छी हवा का ही। यह प्रायः देखा जाता है कि कारखानों के आस पास तथा कारखानों के भीतर भी गंदे पानी के सड़ने की बदबू फैली रहती है। मिलों में मजदूरों के पानी पीने का उचित प्रबन्ध नहीं होता और न पैखाने तथा पेशाब घर ही साफ होते हैं। भारत सरकार ने समय-समय पर कारखाना कानून (Factory Acts) पास कर इन सब बातों में उचित सुधार करने का प्रयत्न किया है। परन्तु सुधार की अब भी बड़ी आवश्यकता है।

(१२) काम करने के घंटे—भारतीय उद्योग-पति यह समझते हैं कि श्रमिकों से जितने अधिक समय तक काम लिया जायगा उतना ही अधिक वह कार्य करेंगे। सन् १६३४ तक हमारे देश में काम के घंटों पर कोई नियंत्रण न था। परन्तु उक्त वर्ष कारखाना-कानून पास कर सरकार ने यह निश्चय कर दिया कि सदैव चलने वाले कारखानों को दिन में १० घंटे से अधिक नहीं चलाया जा सकता। सन् १६४६ के संशोधन के अनुसार सरकार ने यह समय घटा कर आठ घंटे प्रतिदिन कर दिया है। परन्तु फैक्टरी इन्सपेक्टरों की असावधानी के कारण इस नियम का बहुत उलंघन होता है।

(१३) मजदूरी—भारत में मजदूरों की माँग कम तथा उनकी पूर्ति अधिक है। इस कारण उनको उपयुक्त वेतन नहीं मिलता। साथ ही वह समय पर भी नहीं मिलता। सरकार ने इस सम्बन्ध में कई कानून पास किये हैं। परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि उनका ठीक से पालन हो।

(१४) भविष्य में उन्नति की आशा—भारतीय श्रमिकों को इस बात की आशा नहीं रहती कि अच्छा काम करने पर उन्हें उचित पुरस्कार मिलेगा या भविष्य में उनका वेतन बढ़ जायगा। इस कारण वह मन लगाकर काम नहीं करते और न अधिक काम करने का ही प्रयास करते हैं। अतएव उनकी कार्य-कुशलता नहीं बढ़ने पाती।

(स) संगठन तथा प्रबन्ध की शक्ति

श्रमिकों की कार्य-कुशलता इस बात पर भी निर्भर रहती है कि देश के प्रबन्धक कितने कुशल हैं। हमारे देश में इस सम्बन्ध में जो स्थिति है उसे नीचे बताया गया है।

(१५) प्रबन्ध की योग्यता—भारत में योग्य प्रबन्धकों की भारी कमी है। देश भर में कुछ इने-गिने ही कुशल प्रबन्धक हैं जैसे बिड़ला, डालमिया, मोदी, सिंहानिया आदि। प्रबन्धकों की कमी के कारण भारतीय श्रमिक भी अधिक कार्य-कुशल नहीं हो पाये हैं क्योंकि श्रमिकों की कार्य-कुशलता बहुत अधिक मात्रा में प्रबन्धकों पर निर्भर रहती है।

ऊपर के कथन से यह स्पष्ट है कि पाश्चात्य देशों के श्रमिकों की अपेक्षा भारतीय श्रमिक कम कार्यशील हैं। परन्तु उचित परिस्थितियाँ प्राप्त होते ही उनकी कार्य-शीलता बढ़ जायगी। अतएव सरकार तथा उद्योग-पतियों का यह प्रयत्न होना चाहिये कि उनके लिये अनुकूल परिस्थितियाँ प्रस्तुत करें।

परीक्षा-प्रश्न

उत्तर-प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—श्रम जीवियों की कुशलता किन-किन कारणों पर निर्भर है? समझाइये। (१९५२)

२—'भारतीय कारखाने का श्रमिक अमरीकन कारखाने के श्रमिक से कम कार्य-कुशल है।' आप क्या इस मत से सहमत हैं? यदि हैं, तो कारण दीजिये। (१९५०)

३—श्रम की कार्य-क्षमता पर जिन कारणों का प्रभाव पड़ता है, उनकी परीक्षा कीजिये। (१९५०)

४—जिन बातों पर श्रम की कार्य-कुशलता निर्भर है, उनका वर्णन कीजिये और यह भी बताइये कि भारतीय कारखाने के श्रमिक में ये बातें कहाँ तक पाई जाती हैं? (१९४९)

५—श्रम की कार्य-क्षमता पर संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९४५)

६—भारतीय श्रम की कार्य-कुशलता की कमी के कौन से कारण हैं? आप अपनी ओर से सुधार के सुझाव रखिये। (१९४१)

७—औद्योगिक श्रमिक की कार्य क्षमता किन-किन बातों पर निर्भर है? भारतीय परिस्थिति का ध्यान रखते हुए भारत के श्रमिक की गिरी हुई कार्यशीलता के कारण बतलाइये। (१९३७)

८—भारतीय श्रमिक की गिरी हुई कार्यशीलता के मुख्य कारण बतलाइये। इन्हें कैसे और किस प्रकार दूर किया जा सकता है? (१९३३, १९३२)

उत्तर प्रदेश इन्टर कामर्स

९—श्रम की कार्य-क्षमता किन बातों पर निर्भर है ? आप भारतीय श्रमिक की कार्यशीलता में किस प्रकार वृद्धि कर सकते हैं ? (१९४८)

१०—भारतीय श्रमिकों की अन्य देश के मजदूरों की अपेक्षा कार्य-क्षमता कम है। इसके क्या कारण हैं ? सुधार के उपाय बताइये। (१९४३)

११—श्रम की कार्य कुशलता किन बातों पर निर्भर रहती है ? एक मिल मालिक श्रमिकों की कार्य-कुशलता में किस प्रकार वृद्धि करता है ? (१९४१)

१२—औद्योगिक श्रम की कार्य-कुशलता किन बातों पर निर्भर है ? क्या भारतीय श्रमिक कुशल हैं ? (१९३९)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

१३—उन बातों का उल्लेख कीजिये जिनका श्रम की कार्य कुशलता पर प्रभाव पड़ता है। हमारे औद्योगिक केन्द्रों में ये बातें कहाँ तक पाई जाती हैं ? (१९५३)

१४—श्रम की कार्य-शीलता किन बातों पर निर्भर है ? भारत के औद्योगिक श्रमिकों का उदाहरण लेकर बताइये। (१९५१)

१५—भारत की कुछ सामाजिक संस्थाओं का वर्णन कीजिये और बताइये कि इन संस्थाओं का भारतीय श्रमिक की कार्य-कुशलता पर क्या प्रभाव पड़ता है ? (१९५०)

१६—श्रम की कार्य-क्षमता से आप क्या समझते हैं ? इस पर प्रभाव डालने वाली बातों का उल्लेख कीजिये। भारतीय उदाहरण लेते हुए उत्तर लिखिये। (१९४९)

१७—श्रम की कार्य-क्षमता से आप क्या समझते हैं ? उसको प्रभावित करने वाले साधनों को बताइये। (१९४२)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर कामर्स

१८—श्रम की कार्यशीलता को निर्धारित करने वाले कौन से साधन हैं ? क्या जनसंख्या की वृद्धि का भी इस पर प्रभाव पड़ता है ? (१९५२)

१९—वह कौन सी बातें हैं जो श्रमिक की कार्य-क्षमता निर्धारित करती हैं ? (१९४८)

पटना इन्टर आर्ट्स

२०—उन साधनों को बताइये जिन पर श्रम की कार्य-क्षमता निर्भर रहती है। (१९५१, १९४९)

पटना इन्टर कामर्स

२१—उन विभिन्न साधनों की परीक्षा कीजिये जो श्रम की कार्यशीलता प्रभावित करते हैं। (१९५२)

सागर इन्टर आर्ट्स

२२—श्रम की कार्यशीलता प्रभावित करने वाले कौन-कौन से साधन हैं ? (१९५२)

२३—श्रम की कार्यशीलता किन बातों पर निर्भर रहता है ? (१९४९)

तेतालीसवाँ अध्याय

श्रम-विभाजन

(Division of Labour)

आर्थिक विकास के प्रारंभिक समय में प्रत्येक मनुष्य अपनी आवश्यकता की सभी वस्तुओं का स्वयं ही उत्पादन करता था। एक तो उस समय आवश्यकताएँ सीमित थीं और दूसरे उत्पादन-प्रणाली बड़ी सीधी और सरल थी। अतएव भूख लगने पर मनुष्य जानवरों को मारकर या फल तोड़कर अपना पेट भर लिया करता था। उसको किसी अन्य व्यक्ति के सहयोग की आवश्यकता न थी। इसी प्रकार पेड़ों के पत्तों को या जानवरों की खाल को अपने शरीर से लपेट कर कपड़ों की आवश्यकता को वह पूरा कर लेता था। इस अवस्था में मनुष्य पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर था और शिकारी, कृषिक, शिल्पकार संबंधी सभी कार्य वह स्वयं ही करता था।

परन्तु यह अवस्था अधिक दिन तक न चल सकी। प्रगति के साथ-साथ मनुष्य की आवश्यकताएँ भी बढ़ती गईं और उसे यह प्रतीत होने लगा कि सभी कार्य वह समान योग्यता से नहीं कर सकता। उसने देखा कि कुछ मनुष्य किसी एक वस्तु के उत्पादन में अधिक कुशल हैं और कोई अन्य किसी दूसरी वस्तु के उत्पादन में। अतएव जो मनुष्य जिस वस्तु के उत्पादन में अधिक कुशल हैं यदि वह उसी में लगे रहें और फिर उस वस्तु को देकर आवश्यकता की अन्य वस्तुएँ बदल लिया करें तो उत्पादन की मात्रा बढ़ जायगी और मनुष्य अधिक संख्या में अपनी आवश्यकताओं को भी पूरा कर सकेंगे। यहीं से विशिष्टता (Specialisation) का प्रादुर्भाव हुआ और यहीं से श्रम-विभाजन (Division of Labour) का भी प्रारंभ हुआ। आजकल तो श्रम-विभाजन इतना विषम (Complex) हो गया है कि उत्पादन की एक विधि भी कई उप-विधियों में बाँट दी जाती है और एक व्यक्ति केवल एक उप-विधि को ही करता है। उदाहरण के लिए जूता बनाने के काम को लीजिए। आजकल पूरा का पूरा जूता कोई एक व्यक्ति नहीं बनाता। एक श्रमिक चगड़ा साफ करने का काम करता है, दूसरा तल्ला तैयार करता है, तीसरा जूते के ऊपर के भाग को तैयार करता है, चौथा तल्ले को ऊपरी भाग से सीता है, पाँचवा जूते के फीते तैयार करता है, छठवाँ पालिश करता है आदि। अमरीका में जूता बनाने का काम ६० उप-विधियों में विभक्त है।

१. श्रम-विभाजन की परिभाषा

(Meaning of Division of Labour)

उत्पादन की क्रियाओं को विभिन्न क्रियाओं तथा उप-क्रियाओं में बाँटने का नाम ही श्रम-विभाजन है। इसका दूसरा अधिक उपयुक्त नाम विशिष्टीकरण (Specialisation) है।* उत्पादन की क्रियाओं को विभिन्न सूक्ष्मतर उप-क्रियाओं में बांटना, प्रत्येक विशिष्ट व्यक्ति को उसी उप-क्रिया को करने में लगाना जिसमें वह निपुण हो और फिर सबके प्रयासों को मिलाकर एक करने को ही श्रम-विभाजन कहा जाता है।†

सर सिडनी चैपमैन (Sir Sydney Chapman) का कहना है कि श्रम-विभाजन में 'श्रम' शब्द से हमारा तात्पर्य 'विधियों (Processes) से होता है और इसमें मशीनों का उप-विभाजन भी आ जाता है।‡

२. श्रम-विभाजन के प्रकार

(Kinds of Division of Labour)

श्रम-विभाजन दो प्रकार का होता है—(१) साधारण या सरल (Simple) श्रम-विभाजन, और (२) विषम या कठिन (Complex) श्रम-विभाजन। इनका भेद नीचे बताया गया है।

"जब एक ही प्रकार से काम करने वाले दो या अधिक मनुष्य आपस में मिलकर सहयोग द्वारा इस कारण काम करते हैं क्योंकि वह इतना मंहगा, कठिन

---

*"Specialisation is sometimes called "division of labour" for traditional reasons. But "Specialisation" is perhaps the more appropriate term"—Sir Sidney Chapman, *Outline of Political Economy*, p. 86. ["चलन के कारण ही विशिष्टीकरण को श्रम-विभाजन कहा जाता है। परन्तु 'विशिष्टीकरण' अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त नाम है"

† वाट्सन (Watson) महोदय ने इसी प्रकार की एक परिभाषा दी है। उनका मत है कि "Production by division of labour consists in splitting up the producive process into its component parts, concentrating specialised factors on each subdivision and combining their ontput into the particular forms of consumption outpnt required"—J. Watson, *The Groundwork of Economic Theory*, p. 54

‡ "If the term "division of labour" is employed, it must be remembered that "labour" stands for processes and that division of labour covers division of machinery, so to speak" - Sir Sydney Chapman, *Outline of Political Economy*, p. 87.

या भारी है कि कोई एक मनुष्य अकेले उसे नहीं कर सकता" तो इस प्रकार के श्रम-विभाजन को सरल श्रम-विभाजन कहते हैं।* उदाहरण के लिए खेत जोतने, भारी वजन उठाने, लकड़ी के बड़े-बड़े टुकड़े हटाने आदि का काम ले लीजिए।

इस परिभाषा में ध्यान रखने की बात यह है कि सभी मनुष्य एक ही प्रकार से काम करते हैं और एक सा ही काम करते हैं। वह मिलकर केवल इसलिए कार्य करते हैं क्योंकि अकेला एक मनुष्य उस कार्य को पूरा नहीं कर सकता।

जब मिलकर काम करने वाले विभिन्न मनुष्यों में से "प्रत्येक केवल एक विशिष्ट (Specialised) कार्य करता है जो माल तैयार करने में सहायक-मात्र होता है"† तो इस प्रकार के श्रम-विभाजन को विषम श्रम-विभाजन कहते हैं। इस प्रकार के श्रम-विभाजन के लिये आवश्यक है कि प्रत्येक श्रमिक अलग अलग विशिष्ट काम करे और सबका काम मिला देने पर पक्का माल तैयार हो जाय। उदाहरण के लिये सूती कपड़े के उद्योग में एक कपास से बिनौले अलग करे, दूसरा रुई को धुने, तीसरा उसे काते, चौथा कपड़ा तैयार करे, पाँचवाँ कपड़े को धोये और छठाँ उसे रंगे। इस प्रकार का श्रम-विभाजन विषम है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति एक अलग काम कर रहा है और सभी के कामों को मिला देने पर ही कपड़ा तैयार होगा।

३. श्रम-विभाजन के रूप

(Forms of Division of Labour)

आपको यह बताया जा चुका है कि श्रम-विभाजन का क्यों तथा कैसे आरंभ हुआ और वर्तमान समय में यह कितना विषम हो गया है। श्रम-विभाजन के क्रमिक विकास के इतिहास के अनुसार ही श्रम-विभाजन के विभिन्न रूप पाये जाते हैं। यह रूप निम्न हैं

(१) पेशेवार श्रम-विभाजन (Division into Callings and Industries)

(२) सम्पूर्ण विधियों में विभाजन (Division into Complete Processes)

(३) उप-क्रियाओं में विभाजन (Divison into Sub-processes)

---

* "Division of labour is described as *simple* when two or more men, working in the same way, co-operate to perform a single task, too expensive, difficult or burdensome to be carried out effectively by one man alone"—S. E. Thomas, *Elements of Economics*, p. 87.

† "The division of labour is described as *complex* when each man or group of men undertakes a specialised function which is contributory only to the final result"—S. E. Thomas, *Elements of Economics*, p. 87

(४) स्थानानुसार श्रम-विभाजन (Territorial Division of Labour).

(१) पेशेवार श्रम-विभाजन—इस पद्धति में प्रत्येक श्रमिक उत्पादन से संबन्धित सभी क्रियाओं को करता है। उदाहरण के लिये यदि कोई व्यक्ति कपड़ा तैयार करने का काम करता है तो वह कपास ओटने से लेकर कपड़ा रंगने तक की सभी क्रियाओं को करता है। इसी प्रकार जो खेती करते हैं, वह जमीन खोदने से लेकर फसल माड़ने तक का सब काम करते हैं।

इस प्रकार का विभाजन, श्रम विभाजन का सबसे प्राथमिक रूप है। जब श्रम-विभाजन आरंभ नहीं हुआ था उस समय मनुष्य सभी कार्यों को स्वयं ही करता था—चाहे खेती करने का काम हो या रस्सी बटने का या खुरपी बनाने का या कपड़ा तैयार करने का।

(२) सम्पूर्ण विधियों में विभाजन—पेशेवार श्रम-विभाजन के पश्चात् एक पेशे का विभाजन पूर्ण क्रियाओं में होना आरम्भ हो गया। अब श्रमिक किसी एक कार्य को आरंभ से लेकर अंत तक न कर, उत्पादन की केवल एक विधि को ही करने लगे। उदाहरण के लिये अब रुई ओटने का काम एक श्रमिक करने लगा, सूत कातने का काम दूसरा श्रमिक, कपड़ा बनाने का काम तीसरा और कपड़ा रंगने का चौथा। इसी प्रकार अब कोट सीने का पूरा काम एक दर्जी नहीं करता। कई दर्जी मिलकर उसे करने लगे। उदाहरण के लिये एक दर्जी कोट काटता, दूसरा बांह तैयार करता, तीसरा सामना तैयार करता और चौथा उस पर लोहा करता तथा बटन आदि टाँकता है।

ध्यान रखने की बात है कि श्रम-विभाजन के इस रूप में एक श्रमिक पूरी की पूरी वस्तु को तैयार नहीं करता। इस कारण सभी श्रमिकों का सहयोग अत्यन्त आवश्यक हो जाता है और यदि एक भी प्रकार के श्रमिक काम बन्द कर देते हैं तो पूरा का पूरा काम रुक जाता है।

(३) उपक्रियाओं में विभाजन—मानवीय आवश्यकताओं की वृद्धि के कारण और मशीनों के प्रयोग के कारण श्रम-विभाजन और भी अधिक जटिल और सूक्ष्मतर हो गया। अब प्रत्येक पूर्ण विधि को अनेक उप-विधियों में बाँट दिया गया। उदाहरण के लिये अमरीका में जूता बनाने का काम अब ९० उपक्रियाओं में विभाजित है।* अर्थात् एक जूता ९० कारीगरों के हाथ से होकर गुजरता है और

* "There are about ninety operations in making a pair of shoes, a hundred and fifty in making a man's coat, and thirteen in making a spring leaf for an automobile spring"—S. H. Slichter, *Modern Economic Society*, p. 93

तब वह तैयार होता है। कोई कारीगर दो-चार कीलें ठोंक देता है तो दूसरा फीते बाँधने के लिये जूते में छेद करने का काम करता है, कोई पालिश करता है तो कोई जूते चमकाता है, कोई फीते बनाने का काम करता है तो कोई दूसरा फीते बाँधने का, कोई जूतों पर नम्बर लगाता है तो दूसरा उसे पतंगी कागज में बाँधता है, और तीसरा उसे डिब्बों में रखने का काम करता है। इसीसे आप उपक्रियाओं में कार्य के विभाजन का कुछ अनुमान लगा सकते हैं।

ध्यान रखने की बात है कि अब एक कारीगर और भी कम काम के लिये जिम्मेदार होता है और उत्पादित वस्तु में उसका कार्य बहुत ही कम होता है। फलतः वह और भी अधिक निपुण और विशेषज्ञ (Specialised) हो जाता है।

(४) स्थानानुसार श्रम-विभाजन—श्रम के उप-विधियों में विभाजित हो जाने के उपरान्त कुछ उद्योग-धन्धे कुछ विशेष स्थान पर केन्द्रित होने लगते हैं। वैसे तो उद्योगों के स्थानीयकरण के भौगोलिक, जलवायु सम्बन्धी, आर्थिक तथा राजनैतिक आदि अनेक कारण हैं, परन्तु इसका एक कारण यह भी है कि उस स्थान के श्रमिक इस प्रकार के कार्य करने में विशेषतः निपुण होते हैं। किसी स्थान विशेष पर जब एक उद्योग केन्द्रित हो जाता है तो उस स्थान के सभी श्रमिक उस उद्योग में विशेषतः निपुण हो जाते हैं और जब यह निपुणता एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक चलती रहती है तब वह स्थान विशेष ख्याति प्राप्त कर लेता है।

४· श्रम-विभाजन से लाभ

(Advantages of Division of Labour)

श्रम-विभाजन से अनेक लाभ हैं। कुछ लाभ तो उत्पादन को प्राप्त होते हैं और कुछ श्रमिकों को। इस प्रकार श्रम विभाजन से होने वाले लाभों को दो भागों में बाँटा जा सकता है—(१) उत्पादन को प्राप्त होने वाले लाभ, तथा (२) श्रमिकों को प्राप्त होने वाले लाभ।

श्रम-विभाजन से लाभ

(अ) उत्पादन को लाभ	(ब) श्रमिकों को लाभ
(१) उत्पादन की मात्रा बढ़ जाना	(९) कुशलता में वृद्धि
(२) अच्छी किस्म की वस्तुओं का उत्पादन	(१०) काम सीखने के समय में कमी
(३) कम व्यय पर उत्पादन	(११) योग्यता के अनुसार काम मिलना
(४) मशीनों का अधिक प्रयोग	(१२) स्थान-परिवर्तन की सुविधा
(५) बड़े पैमाने पर उत्पादन	(१३) कम शारीरिक परिश्रम
(६) नये-नये आविष्कार	(१४) काम करने के समय में कमी
(७) समय की बचत	(१५) खोज तथा आविष्कारों की संभावना
(८) मशीन तथा औजारों की बचत	(१६) एकता बढ़ जाना
	(१७) बुद्धि का विकास
	(१८) कार्यों का विस्तृत तथा विभिन्न होना

(अ) उत्पादन को होने वाले लाभ

श्रम-विभाजन से उत्पादन को अनेक लाभ होते हैं। वह निम्नलिखित हैं :

(१) उत्पादन की मात्रा बढ़ जाना—श्रम-विभाजन के कारण प्रत्येक श्रमिक अपने कार्य में विशेष निपुण हो जाता है जिससे वह उतने ही समय में अधिक उत्पादन करने लगता है। साथ ही मशीनों का भी अधिक प्रयोग होने लगता है और उत्पादन का पैमाना भी बड़ा हो जाता है। इन सब कारणों से उत्पादन की मात्रा बढ़ जाती है।

(२) अच्छी किस्म की वस्तुओं का उत्पादन—श्रम-विभाजन के कारण प्रत्येक उप-क्रिया एक निपुण और दक्ष कारीगर द्वारा सम्पन्न होती है। इस कारण जब पूरी वस्तु तैयार होती है तो वह भी किस्म में बहुत अच्छी होती है। जब एक कारीगर पूरी वस्तु तैयार करता है तो इस बात की संभावना बनी रहती है कि वह कुछ उप-विधियों को अच्छी प्रकार से करना न जानता हो और इस कारण जो वस्तु तैयार हो वह बहुत अच्छी न हो। परन्तु जब प्रत्येक उप-विधि को एक निपुण कारीगर पूरा करता है तो अच्छी वस्तु का तैयार होना स्वाभाविक है।

(३) कम व्यय पर उत्पादन—श्रम-विभाजन के कारण उत्पादन क्रिया में मशीनों का प्रयोग बढ़ जाता है, उत्पादन बड़े पैमाने पर होने लगता है, सामान के क्रय-विक्रय में बचत होती है, यातायात का व्यय कम हो जाता है और कच्चे माल की बर्बादी भी कम हो जाती है। इन सब कारणों से उत्पादन-व्यय कम हो जाता है।

(४) मशीनों का अधिक प्रयोग—श्रम-विभाजन के कारण उत्पादन की विधियों का कई सूक्ष्म उप-विधियों में विभाजन हो जाता है।* प्रत्येक उप-विधि इतनी सूक्ष्म होती है कि उसे मशीनों की सहायता से ही सम्पन्न किया जाता है। अतएव मशीनों का प्रयोग बढ़ जाता है और मशीनों से प्राप्त होने वाले अनेक लाभ उत्पादन को मिलने लगते हैं।

(५) बड़े पैमाने पर उत्पादन—श्रम-विभाजन से एक लाभ यह भी है कि उत्पादन बड़े पैमाने पर होने लगता है। वास्तव में जब तक उत्पादन बड़े पैमाने पर नहीं होता श्रम-विभाजन पूरी तरह हो ही नहीं पाता। बड़े पैमाने के उत्पादन से आन्तरिक तथा वाह्य मितव्ययतायें (Internal and external economies) प्राप्त होने लगती हैं जिससे उत्पादक को बड़ा लाभ होता है।

(६) नये नये आविष्कार—श्रम-विभाजन के कारण काम अनेक उप-विधियों में बँट जाता है और इससे नये नये आविष्कारों का क्षेत्र बहुत बढ़ जाता है। नये नये आविष्कारों के कारण उत्पादन-व्यय में कमी होती रहती है।

(७) समय की बचत—श्रम-विभाजन के कारण समय की बहुत बचत होती है क्योंकि (१) मशीनों द्वारा काम जल्दी होता है, (२) श्रमिकों को एक ही स्थान पर बैठे बैठे काम करना होता है, उन्हें स्थान बदलने की आवश्यकता नहीं होती, और (३) श्रमिकों को एक ही औजार से निरन्तर काम करना पड़ता है।

(८) मशीन तथा औजारों की बचत—श्रम-विभाजन के कारण एक श्रमिक केवल एक ही कार्य करता है जिसे पूरा करने के लिये उसे बहुत कम औजारों की आवश्यकता पड़ती है। जब श्रमिक कई कार्य एक साथ करते थे तो उन्हें कई औजारों की आवश्यकता पड़ती थी। परन्तु उनमें से केवल एक ही औजार एक समय काम में लाया जाता था और बाकी औजार बेकार पड़े रहते थे। श्रम-विभाजन के कारण यही लाभ नहीं कि एक श्रमिक को अब केवल एक ही औजार की

---

*Division of labour "makes possible a great extension in the use of machinery. Any manufacturing process can be split up into a number of distinct operations"—Dr. A Cairncross, *Introduction to Economices*, p. 45.

आवश्यकता पड़ती है, वरन् प्रत्येक औजार निरन्तर प्रयोग में आता रहता है। इस प्रकार औजार तथा मशीनों की बचत होने के साथ साथ उनकी बर्बादी भी नहीं होती।

(ब) श्रमिकों को लाभ

श्रम-विभाजन से श्रमिकों को भी अनेक लाभ होते हैं। वह निम्न हैं।

(९) कुशलता में वृद्धि*—श्रम-विभाजन से श्रमिक अपने काम में बड़े निपुण हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि एक श्रमिक को केवल एक सरल सा काम करना पड़ता है। क्योंकि वह उसी कार्य को निरन्तर करता रहता है, इस कारण उसकी माँस-पेशियाँ, उसका मस्तिष्क और आँखें उस विशेष क्रिया से अभ्यस्त हो जाती हैं और इसके कारण श्रमिक की कार्य कुशलता बढ़ जाती है।†

(१०) काम सीखने के समय में कमी—क्योंकि श्रम-विभाजन के कारण प्रत्येक उप-विधि बड़ी सरल हो जाती है, इस कारण उसे सीखने में बहुत कम समय लगता है। श्रमिक के लिये यह आवश्यक नहीं रहता कि वह उत्पादन की सभी क्रियाओं का ज्ञान रखता हो। इस कारण शिष्यत्व के काल की बचत हो जाती है।

(११) योग्यता के अनुसार काम मिलना—श्रम-विभाजन के कारण प्रत्येक श्रमिक को वही काम मिलता है जिसके लिये उसकी स्वाभाविक रुचि होती है और जिसका वह विशेष ज्ञान रखता है।‡ इससे दो लाभ हैं। एक तो श्रमिक मन लगाकर काम करते हैं और अपने कार्य में शीघ्र ही निपुण हो जाते हैं और दूसरे, उत्पादन की मात्रा बढ़ जाती है और उसकी किस्म भी अच्छी हो जाती है।

(१२) स्थान-परिवर्तन की सुविधा—श्रम-विभाजन के कारण श्रमिकों की गतिशीलता (Mobility) बढ़ जाती है जिसके कारण उसको स्थान परिवर्तन करने में कोई कठिनाई नहीं होती। गतिशीलता बढ़ जाने का कारण यह है कि प्रत्येक उप-विधि इतनी सरल होती है कि उसे आसानी से सीखा जा सकता है।

---

*"the division of lab our by reducing everyman's business to some one simple operation, and by making this operation the sole enjoyment of his life, necessarily increases very much the dexterity of the workman"—Adam Smith, *Wealth of Nations.*

† "Muscles, brain and eye are adapted to certain movements, and become almost automatic in their speed and precision"—S. E. Thomas, *Elements of Economic* p. 88

§"The special gift (and not just any natural gift) of each man are given the greatest possible scope when he specialises so as to devote the whole of his time to the occupation to which he is best suited"—Dr. A. Cairncross's *Introduction to Economics*, p. 44

साथ ही सभी स्थानों पर लगभग एकसी मशीनों को प्रयोग में लाया जाता है और इस कारण उनकी सहायता से काम करना सरल हो जाता है।

(१३) **कम शारीरिक परिश्रम**—श्रम-विभाजन के कारण मशीनों का प्रयोग बढ़ जाता है। उद्योग में जितना भी कठिन और अधिक परिश्रम वाला कार्य होता है, वह मशीनों द्वारा ही किया जाता है। बहुत सी मशीनें स्वयंचालित (automatic) होती हैं और श्रमिक का कार्य केवल इतना होता है कि वह यह देखता रहे कि उनमें कोई खराबी तो नहीं आ रही है। इस प्रकार श्रमिकों को अधिक शारीरिक परिश्रम नहीं करना पड़ता। मशीनों के प्रयोग के कारण उनका मुख्य काम निरीक्षण भर का ही होता है।

(१४) **काम करने के समय में कमी**—श्रम-विभाजन से मशीनों का प्रयोग बढ़ जाता है, और इस कारण श्रमिकों को कम समय काम करना पड़ता है क्योंकि उतने ही समय में वह निश्चित मात्रा में वस्तु उत्पन्न कर लेते हैं। इस प्रकार उन्हें अधिक अवकाश मिलता है जिसे वह अपनी उन्नति करने में लगाते हैं।

(१५) **खोज तथा आविष्कारों की संभावना**—श्रम-विभाजन के कारण श्रमिक एक थोड़ा सा काम ही निरन्तर करते रहते हैं। उसी काम को लगातार करते रहने से वह उसकी नस-नस से परिचित हो जाते हैं और फिर उनकी समझ में यह भी आने लगता है कि मशीनों में क्या-क्या परिवर्तन किए जायँ जिससे वह और भी अधिक लाभदायक बन जायँ। इस प्रकार वह नये-नये आविष्कार करते हैं जिनसे उद्योग को बड़ा लाभ होता है।

(१६) **एकता बढ़ जाना**—श्रम-विभाजन के कारण उत्पादन बड़े पैमाने पर होने लगता है। जब उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है तो श्रमिक भी अधिक मात्रा में काम करते हैं। यह सब श्रमिक पास-पास रहते हैं और एक साथ काम करते हैं। अतएव इनमें एकता तथा सहयोग बढ़ जाता है। इसी सहयोग के फल-स्वरूप श्रम-संघों (Trade-Unions) का जन्म होता है जो अपने प्रयत्नों से श्रमिकों की दशा सुधारने के अनेक प्रयास करते हैं।

(१७) **बुद्धि का विकास**—विभिन्न स्थानों से आए हुए श्रमिक जब एक स्थान पर काम करते हैं तो वह एक-दूसरे से मिलते हैं और बात-चीत करते हैं। इस संपर्क के कारण वह बहुत सी नई-नई बातें सीखते हैं। विभिन्न स्थानों के रीति-रिवाज, खान-पान आदि के बारे में उनकी जानकारी हो जाती है जिससे उनका मानसिक विकास हो जाता है।

(१८) **कार्यों का विस्तृत तथा विभिन्न होना**—श्रम-विभाजन के कारण एक कार्य अनेक उप-क्रियाओं में बाँट दिया जाता है। इनमें से कुछ उप-क्रियाएँ इतनी

सरल हो जाती हैं कि उन्हें कोई भी कर सकता है—अर्थात् स्त्रियाँ तथा छोटे-छोटे बच्चे भी उन्हें कर सकते हैं। कुछ क्रियाएँ ऐसी होती हैं जिन्हें मनुष्य लंगड़ा होने पर भी बैठे-बैठे कर सकता है। अतएव बालकों, स्त्रियों, लंकड़ों आदि को भी श्रम-विभाजन के कारण काम मिल जाता है।

५· श्रम-विभाजन से हानियाँ

(Disadvantages of Division of Labour)

श्रम-विभाजन से केवल लाभ ही लाभ नहीं है, इससे कुछ हानियाँ भी हैं। इन हानियों को दो भागों में बाँटा जा सकता है : (अ) वह जो श्रमिकों को होती हैं और (ब) वह जो उत्पादन को होती हैं। वैसे तो जो हानियाँ श्रमिकों को होती हैं उनका प्रभाव उत्पादन पर भी पड़ता है, परन्तु हानियों को इस प्रकार दो भागों में विभक्त करने से लाभ यह है कि हम यह स्पष्टतया समझ जाते हैं कि श्रम-विभाजन के कारण श्रमिकों को क्या प्रत्यक्ष हानियाँ उठानी पड़ती हैं।

श्रम-विभाजन से हानियाँ

(अ) श्रमिकों को होने वाली हानियाँ	(ब) उत्पादन को होने वाली हानियाँ
१—कार्यक्षमता का ह्रास	८—शहरों का वातावरण गंदा होना
२—उत्तरदायित्व का ह्रास	९—अत्यधिक उत्पादन
३—नीरसता	१०—अनुचित निर्भरता
४—आनन्द का लोप	११—श्रमिकों तथा उद्योगपतियों के झगड़े बढ़ जाना
५—स्त्रियों तथा बच्चों का काम पर लगना	
६—गतिशीलता का ह्रास	
७—बुरी आदतें सीखना	

(अ) श्रमिकों को होने वाली हानियाँ

श्रम-विभाजन के कारण श्रमिकों को अनेक हानियाँ होती हैं। उन्हें नीचे बताया गया है।

(१) कार्य-क्षमता का ह्रास—श्रम-विभाजन से सबसे बड़ी हानि यह है कि श्रमिकों की कार्य-क्षमता (Efficiency) तथा निपुणता (Skill) कम हो

जाती है। इसका कारण यह है कि श्रमिक केवल एक ही उप-क्रिया को लगातार करता रहता है और उत्पादन की अन्य क्रियाओं से सर्वथा अनभिज्ञ रहता है। इस कारण उसकी कार्य-कुशलता तथा निपुणता पहले से कम हो जाती है। दूसरी बात यह भी है कि मशीनों के प्रयोग के कारण कुशल तथा अकुशल श्रमिकों का भेद मिट जाता है। श्रमिक का कार्य प्रधानतः निरीक्षण (Supervision) का ही रह जाता है और निर्माण (Manufacturing) का बहुत कम। मशीनें काम करती रहती हैं और श्रमिक को केवल इतना भर देखना होता है कि काम ठीक हो रहा है या नहीं। क्योंकि श्रमिकों का काम बड़ा सरल हो जाता है इस कारण उनमें कार्यशीलता की कमी हो जाती है। उनका पूरी तरह मानसिक विकास नहीं हो पाता। 'छोटा काम, छोटा दिमाग' वाली कहावत ठीक ही है।*

(२) **उत्तरदायित्व का ह्रास**—श्रम-विभाजन के फलस्वरूप एक उत्पादन कार्य कई उप-क्रियाओं में बँट जाता है और एक श्रमिक केवल एक उप-क्रिया को ही करता है। अतः, जो पक्का माल तैयार होता है उसकी जिम्मेदारी किसी एक श्रमिक पर नहीं होती। अतएव यदि माल खराब तैयार होता है तो किसी भी एक श्रमिक को उसके लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता।† अतएव श्रमिक लापरवाह हो जाते हैं और काम खराब होने लगता है।

(३) **नीरसता**—श्रम-विभाजन के कारण प्रत्येक श्रमिक का कार्य बड़ा नीरस (Monotonus) हो जाता है। हर श्रमिक को एक ही कार्य, एक ही प्रकार से और हर दिन करना पड़ता है। उदाहरण के लिए यदि कोई श्रमिक जूतों को डिब्बों में रखने का काम करता है तो उसको यही काम निरंतर करना पड़ता है। एक ही काम करते-करते उसका मन उकता जाता है। इसके कारण औद्योगिक थकान, मन-चांचल्य और ख्याली-पुलाव बनाने आदि के दुष्परिणाम प्रकट होने लगते हैं जिससे उत्पादन की मात्रा कम हो जाती है।§

---

* डाक्टर केर्नक्रोस का कहना ठीक ही है कि "मनुष्य को एक बड़ा काम दीजिए और इस बात की संभावना रहती है कि वह अपनी कार्य-शक्ति, उचित कार्य का ज्ञान और विवेक बढ़ा ले। काम कम कर देने से उसका दिमाग भी छोटा हो जाता है" ["Set a man wide variety of tasks and he has a chance to develop initiative, judgement and resource. Narrow his task and you narrow the man"—Dr. A. Cairncross, *Introduction to Economics*, p. 48

† "His responsibility is very limited, and cannot easily be fixed when a product passes through many hands"—S. E. Thomas, *Elements of Economics*, p. 87

‡ "The continuous performance of the same processes results in industrial fatigue, mind-wandering and day-dreaming, with consequent ill-effect on the mentality of the worker and on the amount of his output"—S. E. Thomas, Op. Cit., p. 89

(४) आनन्द का लोप—क्योंकि एक श्रमिक पूरी वस्तु को स्वयं नहीं बनाता (वह केवल एक ही उप-क्रिया को करता है) इस कारण वस्तु बन जाने के उपरान्त वह आनन्द का अनुभव नहीं करता। जब तक श्रम-विभाजन अधिक व्यापक नहीं हुआ था और एक ही श्रमिक पूरी वस्तु अकेले तैयार करता था, उस समय उसे अपनी वस्तु पर गर्व होता था। जब वह कारीगरी में अच्छी वस्तु तैयार करता था उसका रोम-रोम हर्ष से खिल उठता था। वह जानता था कि अच्छी वस्तु बनाने पर उसकी ख्याति बढ़ेगी और इस कारण वह बड़े आनन्द से मन लगाकर काम करता था। परन्तु श्रम-विभाजन के कारण उसे अपने काम में आनन्द नहीं मिलता।

(५) स्त्रियों तथा बच्चों का काम पर लगना—श्रम-विभाजन से एक हानि यह भी है कि स्त्रियों तथा बच्चों को कारखानों में काम मिलने लगता है। श्रम-विभाजन के कारण उद्योग की प्रत्येक उप-क्रिया इतनी सहल हो जाती है कि स्त्री तथा बच्चे भी उसे करने में समर्थ हो जाते हैं। परन्तु स्त्रियों तथा बच्चों को कारखानों में काम करने देना बहुत बुरा है क्योंकि इससे इनके स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। राष्ट्र के हित में यही है कि इनको कारखानों में काम करने न दिया जाय।

(६) गतिशीलता का ह्रास—श्रम-विभाजन के कारण एक श्रमिक एक छोटा सा काम बराबर करता रहता है। इस कारण वह अन्य काम करने के सवर्था अयोग्य हो जाता है। इस अयोग्यता के कारण उसमें इतनी हिम्मत नहीं रहती कि वह एक व्यवसाय को छोड़कर किसी दूसरे उद्योग में काम करने लगे। इस कारण गति-शीलता का ह्रास हो जाता है।

(७) बुरी आदतें सीखना—श्रम-विभाजन के कारण उद्योग बड़े पैमाने पर होने लगता है और सैकड़ों-हजारों श्रमिक मिलकर कारखानों में काम करते हैं। अन्य श्रमिकों से मिलकर वह अनेक बुरी आदतें सीख जाते हैं जैसे जुआ खेलना, शराब पीना आदि। इससे श्रमिकों का स्वास्थ्य खराब हो जाता है और अपने रुपये से वह उचित मात्रा में उपयोगिता भी प्राप्त नहीं कर पाते।

(ब) उत्पादन को होने वाली हानियाँ

श्रम-विभाजन से उत्पादन को भी अनेक हानियाँ होती हैं। उन्हें नीचे बताया गया है :

(८) शहरों का वातावरण गन्दा होना—श्रम-विभाजन के कारण बड़े-बड़े कारखानों का निर्माण हो जाता है और हजारों श्रमिक उसमें काम करने के लिये बाहर से आते हैं। कारखानों से निकलने वाले कोयले के धुयें से शहर का वातावरण

बहुत खराब हो जाता है। श्रमिकों के कारण भी बहुत गन्दगी होने लगती है और सफाई की ओर विशेष सतर्कता दिखलाने की आवश्यकता हो जाती है। यदि सफाई की ओर से तनिक भी लापरवाही की गई तो शहर का वातावरण बहुत अधिक खराब हो जाता है।

(६) **अत्यधिक उत्पादन**—श्रम विभाजन के कारण उत्पादन बड़े पैमाने पर होने लगता है और बड़े पैमाने के उत्पादन का सबसे बड़ा दुष्परिणाम यह है कि वस्तु का उत्पादन माँग से अधिक हो जाता है। अत्यधिक उत्पादन के कारण व्यवसाय में मन्दी (Depression) आ जाती है और इसके परिणाम बड़े भयंकर होते हैं।

(१०) **अनुचित निर्भरता**—श्रम-विभाजन के कारण श्रमिकों को एक दूसरे पर बहुत अधिक मात्रा में निर्भर रहना पड़ता है। उद्योग के कई उप-विभागों में बँट जाने के कारण यह आवश्यक हो जाता है कि सभी श्रमिक काम करें और यदि किसी भी उप-क्रिया के करने वाले श्रमिक श्रम पर नहीं आते या हड़ताल कर देते हैं तो सारा का सारा उत्पादन रुक जाता है। इससे सभी श्रमिकों को और साथ में उद्योगपति को भी भारी हानि उठानी पड़ती है। श्रम-विभाजन का यह बड़ा भारी दोष है।

(११) **श्रमिकों तथा उद्योगपतियों के झगड़े बढ़ जाना**—श्रम-विभाजन के कारण श्रमिक तथा उद्योगपतियों का व्यक्तिगत सम्बन्ध नहीं रहता। दोनों एक दूसरे को विभिन्न वर्ग के मनुष्य समझने लगते हैं और इस कारण उनमें एक संघर्ष सा चलता रहता है। इस संघर्ष के कारण उत्पादन ठीक से नहीं हो पाता।

६· श्रम विभाजन की सीमाएँ

(Limitations of Division of Labour)

किसी उद्योग में श्रम-विभाजन किस सीमा तक किया जा सकता है और उस सीमा के उपरान्त श्रम-विभाजन संभव होगा या नहीं इसका अध्ययन इस विभाग में किया जायगा।

किस उद्योग में श्रम-विभाजन किस सीमा तक वांछनीय है या संभव होगा यह तीन बातों पर निर्भर रहता है—(१) व्यवसाय की प्रकृति (२) व्यापार की सुविधायें और (३) बाजारों का क्षेत्र। इन्हीं तीनों बातों को अर्थशास्त्र के जन्मदाता, आदम स्मिथ (Adam Smith) ने श्रम विभाजन की सीमाएँ कह कर पुकारा है।

(१) **व्यवसाय की प्रकृति**—श्रम-विभाजन किस मात्रा तक हो सकता है, यह इस बात पर भी निर्भर रहता है कि व्यवसाय कैसा है अर्थात् उसमें क्रियाओं का

उप-विभाजन किस सीमा तक हो सकता है। कुछ व्यवसाय प्रकृति से ऐसे होते हैं कि उनमें श्रम-विभाजन की अधिक संभावना नहीं होती। अतएव इन उद्योगों में अधिक सीमा तक श्रम-विभाजन हो ही नहीं सकता। उदाहरण के लिए ज़री का काम ले लीजिए। इस काम में अधिक सीमा तक श्रम-विभाजन की संभावना नहीं होती।

(२) व्यापार की सुविधायें—श्रम-विभाजन इस बात पर भी निर्भर रहता है कि व्यापार सम्बन्धी सुविधायें किस मात्रा में उपलब्ध हैं। व्यापार के साधनों से हमारा तात्पर्य यातायात के साधन, सन्देश वाहक साधन, बैंक प्रणाली आदि से है। जहाँ पर यह सब सुविधायें अधिक मात्रा में प्राप्त होती हैं, वहाँ श्रम-विभाजन भी अधिक सीमा तक हो सकता है।

(३) बाजारों का क्षेत्र—जिस वस्तु का बाजार अधिक विस्तृत होता है अर्थात् जिसकी माँग अधिक होती है उसका उत्पादन बड़े पैमाने पर हो सकता है और इस कारण उस वस्तु की उत्पादन प्रणाली में श्रम-विभाजन अधिक मात्रा तक हो सकता है। इसके विपरीत यदि किसी वस्तु की माँग कम है तो श्रम-विभाजन अधिक नहीं हो सकता। उदाहरण के लिये गाँव के एक दर्जी का काम ले लीजिए। क्योंकि उसका बाजार बहुत सीमित है इस कारण उसके पास दिन में दो-चार कपड़ों से अधिक सिलने नहीं आते और उसके लिये इस काम को कई उप-विभागों में बाँटना अनावश्यक है। परन्तु यदि आप बम्बई के किसी दर्जी को देखें तो आपको पता चलेगा कि वह अपना काम कई उप-विभागों में बाँटता है क्योंकि उसके पास इतना अधिक काम होता है कि एक आदमी उसे पूरा नहीं कर सकता। अतएव काम एक होने पर भी यदि माँग भिन्न-भिन्न है तो जहाँ माँग अधिक है वहाँ पर श्रम-विभाजन अधिक मात्रा तक हो सकेगा।

परीक्षा-प्रश्न

उत्तर-प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—श्रम-विभाजन पर एक संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९४६)

२—पूर्ण विधियाँ और अपूर्ण विधियों के श्रम विभाजन से आप क्या अर्थ समझते हैं? श्रम-विभाजन के लाभ बतलाइये। (१९४४)

३—श्रम-विभाजन का क्या अर्थ है? इसके लाभों और हानियों का वर्णन कीजिए। (१९४२)

४—श्रम-विभाजन का क्या अर्थ है? इसके लाभ तथा हानियों को बताइये। इसका प्रादुर्भाव किस प्रकार हुआ है? (१९३४)

५—आधुनिक उद्योगों में प्रयोग में आने वाले श्रम-विभाग का आप क्या अर्थ समझते हैं? इसके आर्थिक और सामाजिक परिणामों की विवेचना कीजिये। (१९३८)

उत्तर-प्रदेश इन्टर कामर्स

६—श्रम-विभाजन का ध्यान पूर्वक स्पष्टीकरण कीजिये। यह कैसे उत्पन्न होता है ? इसके मुख्य लाभों की विवेचना कीजिये। (१६४६)

७—श्रम-विभाजन का क्या अर्थ है ? इसके क्या लाभ है ? पूर्णतया समझाइये। (१६४५)

८—श्रम-विभाजन के लाभ तथा हानियाँ बताइये। श्रम-विभाजन की क्या सीमायें हैं ? (१६४२)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

९—प्रादेशिक-श्रम-विभाजन पर नोट लिखिये। (१६५२)

१०—श्रम-विभाजन पर संक्षिप्त नोट लिखिये। (१६५३, १६५२, १६५१)

११—श्रम-विभाजन किसे कहते हैं ? उसके विभिन्न रूप उदाहरणों से स्पष्ट कीजिये। (१६५०)

१२—श्रम-विभाजन का क्या अर्थ है ? इसके लाभ-हानि का वर्णन कीजिये। (१६४८)

१३—क्या यह सच है कि श्रम-विभाजन से श्रम कम गतिशील हो जाता है ? (अ) बाजार का विस्तार तथा (आ) रोजगार के स्वभाव, से श्रम-विभाग किस प्रकार सीमित हो जाता है ? ध्यान पूर्वक उत्तर दीजिये। (१६४४)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर कामर्स

१४—श्रम-विभाजन पर एक टिप्पणी लिखिये। (१६४८)

१५—श्रम-विभाजन से आप क्या अर्थ समझते हैं ? इसके लाभ-हानि की विवेचना कीजिये। (१६४७)

१६—श्रम-विभाजन के दोषों को किस प्रकार दूर किया जा सकता है ? (१६४१)

पटना इन्टर आर्ट्स

१७—श्रम-विभाजन से होने वाले हानि तथा लाभों का वर्णन कीजिये। (१६५२)

१८—श्रमिक तथा उपभोक्ताओं को श्रम-विभाजन से होने वाले लाभों का वर्णन कीजिये। (१६५१)

पटना इन्टर कामर्स

१९—श्रम-विभाजन से होने वाले हानि तथा लाभों का वर्णन कीजिये। (१६५२)

२०—श्रम-विभाजन से होने वाले हानि तथा लाभों का वर्णन कीजिये। (१६४६)

२१—आप श्रम-विभाजन के क्या अर्थ समझते हैं ? (१६४८)

सागर इन्टर आर्ट्स

२२—श्रम-विभाजन से होने वाले हानि-लाभ का वर्णन कीजिये। (१६५२, १६४६)

२३—श्रम-विभाजन पर संक्षिप्त नोट लिखिये। (१६५१)

२४—श्रम-विभाजन से आप क्या अर्थ समझते हैं ? इससे होने वाले हानि और लाभ का वर्णन कीजिये। (१६५१)

२५—प्रादेशिक श्रम-विभाजन पर संक्षिप्त नोट लिखिये। (१६४६)

सागर इन्टर कामर्स

२६—आप श्रम-विभाजन के क्या अर्थ समझते हैं ? इसके मुख्य लाभों का वर्णन कीजिये। (१६५२)

२७—श्रम-विभाजन पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। (१६५१ s)

२८—श्रम-विभाजन से आप क्या अर्थ समझते हैं ? इससे होने वाले हानि लाभ का वर्णन कीजिये। (१६५१)

२६—प्रादेशिक श्रम-विभाजन की महत्ता और अर्थ बतलाइये। भारतीय दशाओं में उदाहरण दीजिये। (१६४६)

३०—श्रम-विभाजन से होने वाले हानि-लाभ का वर्णन कीजिये। (१६४६)

३१—बड़ी मात्रा के उत्पादन तथा श्रम-विभाजन से सम्बन्ध बतलाइये। उदाहरण भी दीजिये। (१६४८)

चौवालीसवाँ अध्याय

पूँजी

(Capital)

पूँजी उत्पत्ति का एक महत्वपूर्ण साधन है। प्राचीन समय में जब मनुष्य ने अधिक प्रगति नहीं की थी और जब उसकी आवश्यकतायें मात्रा में सीमित थीं, उस समय उसके पास पूँजी नाम की कोई वस्तु ही न थी। भूख लगने पर वह जानवरों को मारकर या फल आदि तोड़कर अपनी भूख मिटा लिया करता था और किसी व तु को संचित कर या जोड़कर रखना उसने नहीं सीखा था। परन्तु धीरे-धीरे उसको इस बात का बोध हुआ कि यदि वह पेट भरने के सामान को संचित करके रखे तो आवश्यकता के समय उनका उपभोग किया जा सकता है और उसकी फिक्र कुछ मात्रा में कम हो सकती है। पूँजी का यहीं से आरंभ हुआ। जब उसे भोजन की वस्तुओं के संचय का ज्ञान हो गया, तो वह जानवरों को अधिक संख्या में मारने का भी प्रयास करने लगा। उसने सीखा कि तीर-कमान या पत्थरों के हथियारों की सहायता से वह जानवरों को अधिक संख्या में मार सकता है। बस तीर-कमान तथा अन्य प्रकार के हथियारों का प्रयोग आरंभ हो गया। यह पूँजी के ही रूप हैं। ज्ञान तथा बुद्धि के विकास के साथ-साथ पूँजी का भी प्रयोग बढ़ता गया और आज-कल दशा यह है कि छोटे से छोटा उद्योग भी पूँजी की सहायता से किया जाता है। प्राचीन समय में औजार मात्रा में कम, और देखने में भद्दे थे। आज कल सैकड़ों प्रकार के बढ़िया से बढ़िया औजारों का चलन आरंभ हो गया है। छोटे से पेचकस से लेकर भीमकाय मशीनें आदि पूँजी ही हैं।

१. पूँजी का अर्थ

(Meaning of Capital)

इन विभिन्न मशीनों तथा औजारों में एक विशेषता है कि यह सब के सब मनुष्य के भूतकालिक परिश्रम (Past labour) के परिणाम हैं।* अर्थात् इनका निर्माण मनुष्य ने अपने श्रम से किया है। अतएव कुछ विद्वान पूँजी की परिभाषा

---

*"The simplest instrument of agriculture, the vast transport system, the mighty liner—all are the result of past labour."—Dr. S. E. Thomas, *Elements of Economics*, p. 96.

इसी के अनुसार करते हैं। उनका कहना है कि पूँजी भूतकालिक श्रम है।* परन्तु उपर्युक्त परिभाषा पूर्णतः स्पष्ट नहीं है और न इससे श्रम तथा पूँजी का भेद ही स्पष्ट होता है। अतएव यह आवश्यक है कि पूँजी की कोई अन्य उचित परिभाषा दी जाय।

पूँजी की परिभाषा—आदम स्मिथ का कहना है कि पूँजी "किसी मनुष्य की संपत्ति का वह भाग है जिससे वह आय की आशा रखता है।"† आचार्य मार्शल का कहना है कि "सब प्रकार की संपत्ति, प्रकृति की निःशुल्क देनों को छोड़कर, जनसे आय होती है" पूँजी कहलाती है।‡ प्रोफेसर टामस (Thomas) का कहना है कि "व्यक्ति तथा समाज की संपत्ति का वह भाग, भूमि को छोड़कर, जिसका प्रयोग अधिक धन पैदा करने के लिए किया जाता है" पूँजी है।§

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं से पूँजी के संबंध में तीन बातें स्पष्ट हैं :

(१) पूँजी संपत्ति का एक भाग है।

(२) पूँजी उत्पादन के काम में लाई जाती है या पूँजी से मनुष्य को आय होती है।

(३) प्रकृति की निःशुल्क देन या भूमि पूँजी नहीं कहलाई जा सकती।

पूँजी और संपत्ति—पूँजी संपत्ति का एक भाग है। इस कारण सभी पूँजी संपत्ति है लेकिन सभी संपत्ति पूँजी नहीं हो सकती। संपत्ति का केवल कुछ भाग ही पूँजी कहलाता है। प्रश्न यह उठता है कि संपत्ति का कौन सा भाग पूँजी है ? उत्तर में कहा जा सकता है कि संपत्ति का केवल वह भाग जो उत्पादन के काम में लाया जाता है पूँजी है। उदाहरण के लिये मान लीजिये एक सेठ के पास ५० हजार रुपया है। उसमें से वह १० हजार तिजोरी में बंद कर रख देता है जिससे आवश्यकता के समय उसे काम में ला सके। पाँच हजार रुपये एक दावत में व्यय कर देता है और बाकी के ३५ हजार रुपयों से एक व्यवसाय करता है। इस उदाहरण में उसकी कुल

---

* "Capital is crystallised labour"—Dr. S. E. Thomas, *op. cit.*, p. 96.

† "Capital is that part of his stock from which he expects to derive an income"—Adam Smith's definition quoted by Marshall in his, *Economics of Industry*, p. 45.

‡ Capital consists of "those kinds of wealth, other than the free gifts of nature, which yield income"—Dr. Marshall, *Economics of Industry*, p. 48.

§ Capital is "part of that wealth of individuals and of communities, other than land, which is used to assist in the production of further wealth"—Dr. S. E. Thomas, *Elements of Economics*, p. 96.

संपत्ति तो पचास हजार है, परन्तु उसकी पूँजी केवल ३५ हजार रुपया ही है क्योंकि न तो तिजोरी में रखा हुआ रुपया ही और न दावत में व्यय किया हुआ रुपया ही उत्पादन के काम में लाया जा रहा है।

संपत्ति – [उपभोग + गाड़ना] = पूँजी

पूँजी तथा भूमि

भूमि या प्रकृति की निःशुल्क देन पूँजी नहीं कहलाती। केवल वेही वस्तुयें जिन्हें मनुष्य ने अपने श्रम से पैदा किया है पूँजी कहलाती हैं। भूमि को पूँजी से अलग रखा जाता है।

कुछ विद्वानों का कहना है कि इस समय ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जो पूर्ण रूप से प्रकृति-दत्त हो अर्थात् जिस पर मनुष्य ने अपना श्रम कुछ भी न लगाया हो। जंगलों से लकड़ी लाते समय, खानों से खनिज-पदार्थ निकालते समय, नदियों के पानी को सिंचाई के काम में लाते समय मनुष्य को श्रम करना पड़ता है। इस कारण जंगल, खनिज-पदार्थ या नदी के पानी को भूमि नहीं कहा जा सकता।

यह बात ठीक है। ध्यान रखने की बात है कि प्रकृति द्वारा दी हुई वस्तुओं पर जब मनुष्य अपना श्रम लगा देते हैं तो वे वस्तुयें पूँजी हो जाती हैं। उदाहरण के लिये जब मनुष्य भूमि के किसी टुकड़े को साफ कर उसे खेती के योग्य बना लेता है तो उस टुकड़े को भूमि न कहकर हम 'पूँजी' कहते हैं।

अतएव यह कहा जा सकता है कि वे सब "भौतिक पदार्थ...जिनका प्रयोग उत्पादन प्रणाली में किया जा सकता है" पूँजी कहलाते हैं।*

२. पूँजी के लक्षण

(Charactersics of Capital)

पूँजी के कई लक्षण हैं। उन्हें नीचे बताया गया है।

(१) पूँजी का प्रयोग आवश्यक नहीं है—पूँजी उत्पादन के लिये नितांत आवश्यक नहीं है। पूँजी के प्रयोग के बिना भी उत्पादन हो सकता है। बताया जा चुका है कि अति-प्राचीन काल में मनुष्य बिना पूँजी के जीवित रहता था। हाँ, पूँजी के प्रयोग के बिना बड़े पैमाने पर उत्पादन नहीं हो सकता।

* "Capital consists of all material resources which...are suitable for use in productive processes"—Watson, *The Groundwork of Ecoomic Theory*, p. 104

(२) पूँजी की घिसावट होती है—पूँजी की दूसरी विशेषता यह है कि यह नष्ट हो जाती है और इस कारण इसे कुछ समय बाद बदलना पड़ता है। उदाहरण के लिये मशीनों की घिसावट होती है और थोड़े समय पश्चात् उन्हें बदलना पड़ता है। रेल के इंजिन आदि ८-१० वर्ष बाद बेकार हो जाते हैं और फिर उनसे काम नहीं लिया जा सकता।

(३) पूँजी की उत्पत्ति मनुष्य द्वारा होती है—पूँजी मनुष्य द्वारा की गई बचत का परिणाम है। अपनी वर्तमान आय के कुछ भाग को मनुष्य भविष्य में प्रयोग के लिये रख लेता है और यही पूँजी कहलाती है। अपनी आय के कुछ भाग को इस प्रकार बचा कर रखने में मनुष्य को कुछ कष्ट होता है और इस कारण यदि कोई अन्य व्यक्ति उस पूँजी का प्रयोग करना चाहता है तो यह आवश्यक है कि पूँजी बचाने में हुये कष्ट के बदले में वह कुछ प्रतिफल दे। इसी प्रतिफल को सूद (Interest) कहा जाता है और पूँजीपति द्वारा किये गये त्याग का यह प्रतिफल है।

३. पूँजी के प्रकार

(Kinds of Capital)

पूँजी अनेक कामों में प्रयोग में लाई जाती है और इस कारण यह अनेक रूपों में पाई जाती है। कार्य के अनुसार (अर्थात् जिस कार्य के लिये पूँजी का प्रयोग होता है) पूँजी के कई भेद हैं।* उन्हें नीचे बताया गया है।

(१) चल तथा अचल पूँजी (Fixed and Circulating Capital)

चल पूँजी वह पूँजी है जो एक ही बार प्रयोग में लाई जा सकती है और एक ही बार के प्रयोग में इसकी सम्पूर्ण उपयोगिता समाप्त हो जाती है। प्रोफेसर मिल (Mill) का कहना है कि चल पूँजी वह है "जो उत्पादन संबन्धी सम्पूर्ण कार्य एक ही बार में पूरा कर देती है"†। उदाहरण के लिए कच्चे माल, बीज, ईंधन तथा वेतन के रूप में व्यय किये गये रुपयों को ले लीजिये। एक बार के प्रयोग के बाद कच्चा माल समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार एक बार बीज बो देने

---

* "It is usual...to distinguish types of capital according to their *Functions* in the productive organisation"—S. E. Thomas, *Elements of Economics*, p. 99

† J. S. Mill says that circulating capital is that "which fulfils the whole of its office in production in which it is engaged, by a single use." मार्शल ने इस परिभाषा को सही माना है। देखिये Marshall, *Economics of Industry*, p. 50.

पर उनको पुनः प्राप्त नहीं किया जा सकता। इस प्रकार चल पूँजी की विशेषता यही है कि एक बार प्रयोग में ले आने पर उन्हें दूसरी बार प्रयोग में नहीं लाया जा सकता क्योंकि उनका वह रूप बदल कर दूसरा हो जाता है। कच्चा माल अपना रूप बदलकर बने हुए माल का रूप ले लेता है।

अचल पूँजी (Fixed Capital) वह पूँजी है जिसका प्रयोग बार बार किया जा सकता है और एक बार के प्रयोग से उसकी उपयोगिता नष्ट नहीं होती। यह पूँजी टिकाऊ होती है। जे० एस० मिल (J. S. Mill) के अनुसार अचल पूँजी वह है जो "टिकाऊ होती है और जिससे आय कुछ समय तक लगातार प्राप्त हो सकती है।"* उदाहरण के लिये मिलों की इमारतें, मशीनें, आफिस का फर्नीचर, रेल के डिब्बे, रेल की पटरियाँ आदि ले लीजिये। ये सब वस्तुयें एक बार के प्रयोग में नष्ट नहीं हो जातीं और अनेक बार उत्पादन क्रिया में भाग लेती हैं। अतः इनसे प्राप्त होने वाली आय धीरे धीरे कर बहुत समय तक मिलती रहती है।

(२) उत्पादन तथा उपभोग पूँजी (Production and Consumption Capital)

उत्पादन पूँजी वह पूँजी है जिसका प्रयोग उत्पादन क्रिया में किया जाता है। अर्थात् जिसकी सहायता से अन्य वस्तुएँ उत्पन्न की जाती हैं। मार्शल के अनुसार उत्पादन पूँजी के अन्तर्गत "वे सब पदार्थ आ जाते हैं जो उत्पादन में श्रम की सहायता करते हैं।"† उदाहरण के लिये मशीन, कच्चे माल, औजार आदि को ले लीजिये। इन सबके सहयोग से ही उत्पादन होता है और इस कारण इन्हें उत्पादक-पूँजी कहा जा सकता है।

उपभोग पूँजी वह है जिसका प्रयोग "प्रत्यक्ष रूप से उपयोगिता प्राप्त करने के लिये किया जाता है‡।" उदाहरण के लिये भोजन, कपड़ा, रहने के मकान आदि को ले लीजिए। इन वस्तुओं का प्रयोग कर श्रमिक जीवित रहते हैं और उत्पादन कार्य करते हैं।

---

* Fixed capital is that "which exists in a durable shape and the return to which is spread over a period of corresponding duration." मार्शल ने इस परिभाषा को सही माना है। देखिये Marshall's, *Economics of Industry*, p. 50.

† Production capital "consists of all the goods that aid labour in production"—Marshall, *Economics of Industry*, p. 50.

‡ "Consumption capital consists of goods in a form to satisfy wants directly"—Marshall, *op. cit.*, p. 50.

(३) भौतिक तथा वैयक्तिक पूँजी (Material and Personal Capital)

भौतिक पूँजी (Materal Capital) वह पूजी है "जो स्थूल रूप से विद्यमान है और जो एक मनुष्य से दूसरे के पास भेजी जा सके*" अर्थात् जो विनिमयसाध्य हो। उदाहरणके लिये कच्चा माल, औजार, मशीन, मकान आदि को ले लीजिए। इनको देखा जा सकता है और साथ ही इनका क्रय-विक्रय भी होता है। अतएव ये सब वस्तुएँ भौतिक पूँजी के अन्तर्गत आती हैं।

व्यक्तिगत पूँजी के अन्तर्गत वे सब "व्यक्तिगत गुण, शक्तियाँ और क्षमताएँ आती हैं जिनपर मनुष्य की कार्य-शीलता निर्भर रहती है।"† इनको न बेचा जा सकता है और न खरीदा ही जा सकता है। उदाहरण के लिंये नर्तकी के नाच करने की कला, गाने वाले का सुरीला राग, एक डाक्टर की चीरा-फाड़ी करने की क्षमता, एक अध्यापक की पढ़ाने की कला, एक वकील की बहस करने की पटुता आदि ले लीजिए। ये सब व्यक्तिगत शक्तियाँ हैं जिनके कारण उस व्यक्ति को लाभ होता है और जिनका विनिमय नहीं हो सकता।

(४) विशिष्ट तथा अविशिष्ट पूँजो (Sunk and Floating Capital)

विशिष्ट या एक-अर्थी (Sunk) पूँजी वह पूँजी है जो किसी एक विशेष काम में ही प्रयोग में लाई जा सकती है और किसी अन्य काम में व्यवहार में नहीं लाई जा सकती। अन्य शब्दों में जिसका केवल एक ही प्रयोग हो सकता हो उसे विशिष्ट पूँजी कहा जाता है। उदाहरण के लिये सड़क बनाने में या टनल(Tunnel) बनाने में लगी हुई पूँजी किसी अन्य काम में नहीं आ सकती। अतएव इसे विंशिष्ट या एक-अर्थी पूँजी कहा जावेगा।

अविशिष्ट या बहु-अर्थी (Floating) पूँजी वह पूँजी है जो उत्पत्ति के किसी एक कार्य से हटाकर किसी अन्य कार्य में प्रयोग में लाई जा सके। अन्य शब्दों में इस प्रकार की पूँजी अनेक कामों में प्रयोग में लाई जा सकती है। उदाहरण के लिये द्रव्य या नकद रुपया, कच्चे माल आदि को ले लीजिये। इनको किसी भी रूप में बदला जा सकता है।‡

---

* Material capital consists of objects "which exist in a concrete, tangible form, and are capable of being transferred from one person to another"—S. E Thomas, *Elements of Economics*, p. 99.

† Personal capital comprises of "all those energies, faculties and habits which contribute to make a people efficient"—Quoted by S. E. Thomas, *Elements of Economics*, p. 99.

‡ प्रोफेसर टामस (S. E. Thomas) ने बहु-अर्थी पूँजी की परिभाषा निम्न शब्दों में दी है "Capital is said to be floating or free when it can be changed at will for employment in any branch of industry, and can at any time assume a different form." *vide*, his *Elements of Economics*, p. 100.

(५) वेतन और सहायक पूँजी (Remunerative and Auxilliary Capital)

वेतन पूँजी (Remunerative Capital) वह पूँजी है जिसे श्रमिकों के प्रतिफल अर्थात् वेतन के लिए प्रयोग में लाया जाता है। श्रमिक जो काम करते हैं उसके बदले में उन्हें जो वेतन दिया जाता है। उसे वेतन पूँजी कहते हैं।

सहायक पूँजी (Auxilliary Capital) वह पूँजी है जो श्रमिकों को उत्पादन कार्य में सहायता पहुँचाती है। उदाहरण के लिए कच्चा माल, मशीन, औजार, शक्ति आदि को ले लीजिए। उत्पादन कार्य में जितनी पूँजी की आवश्यकता है उसमें जो श्रमिकों को वेतन के रूप में दी जाय वह वेतन पूँजी हो गई और शेष सहायक पूँजी कहलावेगी।

(६) वैयक्तिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय पूँजी (Individual Social, and National Capital)

वह पूँजी जिस पर किसी व्यक्ति विशेष का अधिकार है व्यक्तिगत पूँजी कहलाती है। परन्तु जिस पर समाज का अधिकार है जैसे सड़कें, पार्क, सार्वजनिक स्कूल आदि उन्हें सामाजिक पूँजी कहा जावेगा। किसी एक देश की सम्पूर्ण पूँजी को राष्ट्रीय पूँजी कहा जावेगा। देश के रहने वाले सभी व्यक्तियों की सम्मिलित पूँजी तथा कुल सामाजिक पूँजी या योग राष्ट्रीय पूँजी होती है।

४. पूँजी का महत्व तथा उसके कार्य
(Importance and Functions of Capital)

वर्तमान समय में जो भी उत्पादन होता है—चाहे वह छोटे पैमाने पर हो या बड़े-पैमाने पर—सभी में पूँजी का प्रयोग होता है। वैसे तो बिना पूँजी लगाये उत्पादन हो ही नहीं सकता, लेकिन आजकल अधिकाधिक पूँजी लगाकर बड़े से बड़े उद्योग खोलने की ओर सभी की प्रवृत्ति है। इसका कारण यह है कि पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली में प्रतिस्पर्धा में वही उद्योगपति ठहर सकते हैं जिनके पास अधिक पूँजी हो।

आजकल बड़े पैमाने पर उत्पादन होने लगा है। बड़े पैमाने पर उत्पादन करने के लिये यह आवश्यक है कि बड़ी बड़ी मशीनों की सहायता से उत्पादन किया जाय। यह बड़ी बड़ी मशीनें पूँजी लगाकर ही तैयार की जा सकती हैं। वास्तव में मशीनें पूँजी से तैयार होती हैं और तैयार हो जाने के बाद पूँजी ही कहलाती हैं।

अभी तक जितने आविष्कार हुए हैं और जिनके कारण मनुष्य ने प्रकृति पर अधिकाधिक विजय पाई है वह सब पूँजी के कारण ही संभव हो सके हैं। पूँजी के कारण ही मनुष्य का जीवन अधिक सुखमय हो गया है। गर्मी के दिनों में पंखे की हवा और जाड़े के दिनों में हीटर की गर्मी पूँजी के कारण ही उसे प्राप्त होती है।

पूँजी के कारण ही उत्पादन अधिक मात्रा में होने लगा है। फलतः वस्तुओं के मूल्य भी कम हो गये हैं। जब मशीनों का प्रयोग होना आरंभ नहीं हुआ था, उस समय जूते केवल राजा-महाराजाओं को ही नसीब हो पाते थे। आजकल सभी व्यक्ति उनका सुगमता से उपयोग करने लगे हैं।

पूँजी के कार्य

पूँजी के अनेक कार्य हैं। यदि ध्यान से देखा जाय तो उत्पादन का ऐसा कोई भी कार्य नहीं मिलेगा जो पूँजी के बिना किया जा सके। फिर भी पूँजी के द्वारा किये जाने वाले कार्यों को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है।

(१) **कच्चा माल प्राप्त करना**—पूँजी का सबसे बड़ा काम यह है कि इसके द्वारा कच्चा माल प्राप्त किया जा सकता है। प्रत्येक उत्पादन क्रिया में हमें कुछ कच्चे माल की आवश्यकता पड़ती है। उदाहरण के लिये सूती कपड़े की मिलों में रुई तथा सूत की आवश्यकता होती है। इनको पूँजी की सहायता से खरीदा जाता है।

(२) **मशीनों का प्रबन्ध**—पूँजी द्वारा मशीनें तथा विभिन्न औजार जिनका प्रयोग उत्पादन करते समय श्रमिक करते हैं, प्राप्त किये जाते हैं। आजकल मशीनें अधिक विशाल और विषम होती जा रही हैं और इनको प्राप्त करने में पूँजी की अधिक आवश्यकता पड़ती है।

(३) **श्रमिकों की मजदूरी**—श्रमिक जो उत्पादन-कार्य करते हैं उसके लिये उन्हें प्रतिफल (जो मजदूरी कहलाती है) देना पड़ता है। क्योंकि श्रमिक गरीब होते हैं इसलिए उनके जीवन-निर्वाह के लिये यह आवश्यक होता है कि उन्हें मजदूरी थोड़े थोड़े दिन बाद दे दी जाया करे। परन्तु उद्योगपति को उत्पादित वस्तु से धन कुछ समय उपरान्त ही मिलता है क्योंकि उत्पादन आरंभ करने में और माल तैयार होकर बिकने में समय लगता है। इस बीच में श्रमिकों को मजदूरी बराबर देनी पड़ती है। यह काम पूँजी द्वारा किया जाता है।

(४) **उत्पादन के अन्य सामानों की प्राप्ति**—कच्चे माल, मशीन तथा वेतन के अतिरिक्त उत्पादन के लिए आवश्यक अन्य सभी वस्तुओं का प्रबन्ध पूँजी द्वारा ही होता है। उदाहरण के लिए कारखाने की इमारत, आफिस का फर्नीचर, बिजली, पानी के नल आदि का प्रबन्ध मशीनों द्वारा ही होता है।

५. पूँजी की कार्यशीलता
(Efficiency of Capital)

पूँजी की कार्यशीलता से हमारा आशय यह है कि पूँजी से गुण में अच्छा तथा मात्रा में अधिक सामान तैयार हो। यह दो बातों पर निर्भर है : (१) जिस

काम के लिए पूँजी का प्रयोग किया जा रहा है उसके लिए वह प्रयुक्त है या नहीं, तथा (२) पूँजी के प्रयोग करने की रीति ठीक है या नहीं। सूक्ष्म में यह कहा जा सकता है कि पूँजी की कार्यशीलता उसकी (१) प्रयुक्तता तथा (२) प्रयोग की रीति पर निर्भर है।

(१) पूँजी की प्रयुक्तता (Suitability)

उत्पादन कितना होगा और कैसा होगा यह इस बात पर भी निर्भर है कि जिस काम के लिये पूँजी प्रयोग में लाई जा रही है, उसके लिए वह प्रयुक्त है या नहीं। उदाहरण के लिये यदि कोई उद्योगपति बड़े-पैमाने पर उत्पादन करना चाहता है तो उसके लिए आवश्यक है कि वह बड़ी बड़ी मशीनों को प्रयोग में लाये। छोटी-छोटी मशीनें, जिनसे उत्पादन कम मात्रा में होगा प्रयोग में लाने पर उत्पादन-व्यय बढ़ जायगा। इसी प्रकार यदि पुराने ढंग की मशीनों को प्रयोग में लाया गया तो उत्पादन खराब तथा कम होगा। आवश्यक है कि उत्पादन के लिए नवीनतम डिजाइन की मशीनों को प्रयोग में लाया जाय। साथ ही आवश्यकता इस बात की भी है कि जो औजार या मशीन काम में लाए जायँ वह उस काम के लिए प्रयुक्त हों। उदाहरण के लिए यदि आप एक छोटे से पेच को बड़े पेच-कस से कसना चाहें तो आपको सफलता नहीं मिलेगी और पेच भी टूट जायगा। यह मामूली सा उदाहरण इस बात को स्पष्ट करता है कि जैसा काम हो उसके लिए वैसा ही मशीन का प्रयोग करना चाहिये।

(२) प्रयोग की रीति

आवश्यकता इस बात की भी है कि पूँजी जिस रीति से काम में लाई जाय वह ठीक हो। उदाहरण के लिए कच्चे माल को ले लीजिए। आवश्यकता इस बात की है कि वह बेकार न जाय और न उसकी बर्बादी हो। एक दर्जी कपड़े को काटकर कोट सीता है। उसे देखना चाहिये कि कपड़ा बेकार न जाय और अनावश्यक कतरन न बचे अन्यथा कोट में अधिक कपड़ा लग जायगा। यही बात अन्य उत्पादनों के बारे में भी सही है। दूसरे, मशीन आदि उन्हीं व्यक्तियों के हाथ में देनी चाहिये जो उनको ठीक से चला सकें और उन्हें व्यर्थ में घिसने न दें। उदाहरण के लिए होशियार मोटर-ड्राइवर गाड़ी को ठीक रखता है और इंजिन कई वर्ष तक खराब नहीं होता। इसके विपरीत एक अनाड़ी ड्राइवर के हाथ में मोटर पड़ते ही उसका इंजिन खराब हो जाता है। मशीन चाहे छोटी हो या बड़ी, यह आवश्यक है कि उसका चलाने वाला होशियार हो।

परीक्षा-प्रश्न

उत्तर-प्रदेश इन्टर आर्टस

१—चल और अचल पूँजी में भेद बताइये। पूँजी का संचित होना किन बातों पर निर्भर है? (१९५३)

२—चल और अचल पूँजी पर एक संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९५२, १९४८, १९३९, १९३४)

३—'पूँजी' से आप क्या समझते हैं ? (१९५१)

४—पूँजी शब्द की परिभाषा दीजिये। चल और अचल पूँजी का अन्तर स्पष्ट कीजिये। भारतीय कृषि में पूँजी का महत्व बताइये। (१९४२)

५—पूँजी पर नोट लिखिये। (१९३८)

६—चल और अचल पूँजी तथा धन और पूँजी का भेद स्पष्ट कीजिये। (१९३१)

७—पूँजी की परिभाषा दीजिये। क्या भूमि पूँजी में शामिल होती है ? कारण सहित उत्तर दीजिये। (१९३१)

उत्तर-प्रदेश इन्टर कामर्स

८—पूँजी की परिभाषा दीजिये। अचल और चल पूँजी का भेद बताइये। क्या निम्नलिखित पूँजी हैं—(क) बीज का नाज (ख) संचित रुपये (ग) किसी व्यवसाय की ख्याति (प्रसिद्धि)। (१९४९)

९—पूँजी की परिभाषा दीजिये। और चल तथा अचल पूँजी का भेद बताइये। क्या निम्न लिखित पूँजी हैं—(अ) व्यापार की ख्याति (ब) डाक्टर की कुशलता (इ) कंजूस का धन (ई) घर (उ) अध्यापक की बुद्धि। (१९४१)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

१०—पूँजी शब्द से आप क्या अर्थ समझते हैं ? (१९५३)

११—पूँजी किसे कहते हैं ? (१९५२, १९४८)

१२—चल और अचल पूँजी पर संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९५०)

१३—पूँजी के कार्यों पर नोट लिखिये। (१९५०, १९४५)

१४—पूँजी की परिभाषा दीजिये। यह धनोत्पत्ति में किस प्रकार सहायक होती है ? (१९४६)

१५—भारतीय द्रव्य बाजार में पूँजी की कमी के क्या कारण हैं ? (१९५०, १९४५)

१६—पूँजी की क्षमता पर नोट लिखिये। (१९४५, १९४४)

१७—(अ) पूँजी की सहायता से संपत्ति की उत्पत्ति करना हेर-फेर (Round about) की उत्पत्ति कहलाती है। यह क्यों है ? (आ) पूँजी का विभाजन (I) चल और अचल पूँजी और (II) विशिष्ट तथा स्वतन्त्र पूँजी में किया जाता है। प्रत्येक का उदाहरण दीजिये। (१९४३)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर कामर्स

१८—चल और अचल पूँजी पर एक संक्षिप्त नोट लिखिए। (१९५२, १९५०, १९४६)

पटना इन्टर आर्ट्स

१९—पूँजी से आप क्या अर्थ समझते हैं ? पूँजी और भूमि में अन्तर स्पष्ट कीजिये। पूँजी के कौन-कौन भेद हैं ? (१९५१)

२०—पूँजी किस प्रकार उत्पादन में सहायक होती है ?

पटना इन्टर कामर्स

२१—'भूमि' और 'पूँजी' पर नोट लिखो। (१९५१)

२२—चल पूँजी पर नोट लिखिये। (१९५०)

सागर इन्टर आर्ट्स

२३—पूँजी क्या है? इसके क्या कार्य हैं? (१९५२)

२४—पूँजी के प्रकार पर संक्षिप्त नोट लिखो। (१९५१, १९४९)

२५—पूँजी के कार्य पर नोट लिखिये। (१९५०, १९४८)

सागर इन्टर कामर्स

२६—पूँजी उत्पादन का साधन है। प्रबन्ध के कार्य में और इसमें भेद बताइये। (१९५२)

२७—अचल पूँजी पर संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९५०)

२८—चल तथा अचल पूँजी पर संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९४३)

२९—'धन' तथा पूँजी पर संक्षित नोट लिखिये। (१९४८)

पैंतालीसवाँ अध्याय

पूँजी का संचय

(Accumulation of Capital)

सभ्यता के प्रारम्भिक दिनों में मनुष्य के पास पूँजी जैसी कोई वस्तु न थी। जब उसे कोई आवश्यकता प्रतीत होती थी, वह उसे पूरा करने का तुरन्त प्रयास करता था। भविष्य के लिये वह कुछ भी बचा कर नहीं रखता था। परन्तु धीरे-धीरे पूँजी का संचय आरम्भ हुआ और मनुष्य अपनी भावी आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिये जो कुछ पैदा करता था उसका कुछ भाग बचाकर रखने लगा।

वर्तमान समय में पूँजी के संचय का रूप बदल गया है। अब मनुष्य अनाज, जानवर, मछली आदि भौतिक पदार्थों को संचित करके नहीं रखता क्योंकि यह सब वस्तु नाशवान हैं। अब द्रव्य (Money) में पूँजी का संचय होता है।

यह तो ठीक है कि वर्तमान समय में संचय का रूप बदल गया है, परन्तु जिन कारणों से प्राचीन समय में संचय होता था वह अब भी वही हैं। पूँजी के संचय के लिये यह आवश्यक है कि व्यय से आय अधिक हो अर्थात् व्यक्ति में पूँजी बचाने की योग्यता हो। इसके साथ-साथ यह भी कहा जा सकता है कि पूँजी के बचाने की मात्रा इस बात पर भी निर्भर रहती है कि मनुष्य पूँजी संचय करना चाहता है या नहीं। इस प्रकार पूँजी का संचय दो बातों पर निर्भर है (अ) संचय की शक्ति, तथा (ब) संचय की इच्छा।

(अ) संचय की शक्ति (Ability to Save)

संचय की शक्ति से हमारा तात्पर्य यह है कि उत्पादन उपभोग से अधिक हो या यों कहिए कि मनुष्य की आय उसके व्यय से अधिक हो। उदाहरण के लिये मान लीजिये किसी व्यक्ति की आमदनी १५० रुपया माहवार है। यदि उसका व्यय भी १५० रुपया माहवार है, तो स्पष्ट है कि वह कुछ भी नहीं बचा सकेगा। उसके लिये धन बचाना तभी सम्भव होगा जब या तो उसकी आय बढ़ जाय या उसका व्यय कम हो जाय। जो बात एक व्यक्ति के बारे में सही है, वही पूरे देश के लिये भी। हम कह सकते हैं कि देश के व्यक्तियों की संचय-शक्ति वहाँ के रहने वालों की आय तथा उनके व्यय पर निर्भर है। मनुष्यों की आय देश के व्यापार तथा उद्योगों की कुशलता पर निर्भर रहती है और व्यापार तथा उद्योग अनेक बातों पर निर्भर रहते हैं जैसे (१) देश के प्राकृतिक साधन, (२) देश की औद्योगिक

उन्नति, (३) देश की वितरण सम्बन्धी नीति, तथा (४) सरकारी रीति। इनके बारे में नीचे बताया गया है।

(१) प्राकृतिक साधन—जो देश प्राकृतिक साधनों में अधिक संपन्न हैं, वह अधिक आर्थिक उन्नति कर लेते हैं और इस कारण उस देश के लोगों की आय भी अधिक होती है। ऐसी स्थिति में धन-संचय की उनकी शक्ति भी बढ़ जाती है। इसके विपरीत जिन देशों में प्राकृतिक साधनों का अभाव है, उनके नागरिकों की आय भी कम होती है और इस कारण वह पूँजी का अधिक संचय भी नहीं कर पाते।

(२) औद्योगिक उन्नति—देश के व्यक्तियों की आय केवल इस बात पर ही निर्भर नहीं रहती कि वहाँ प्राकृतिक साधन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं या नहीं, वरन् इस बात पर भी कि उन प्राकृतिक साधनों का किस मात्रा तक आर्थिक शोषण हुआ है। उदाहरण के लिये भारत को ले लीजिए। प्राकृतिक साधनों में यह काफी सम्पन्न हैं। परन्तु क्योंकि इसकी औद्योगिक उन्नति नहीं हुई है, इस कारण प्राकृतिक साधनों का उचित मात्रा में शोषण नहीं हो पाया है। फलतः भारतीयों की आय बहुत कम है जिससे पूँजी का संचय भी बहुत कम होता है।

(३) वितरण नीति—मनुष्य कितना रुपया बचाते हैं यह इस बात पर भी निर्भर रहता है कि राष्ट्रीय आय का कितना भाग किन लोगों को मिल रहा है। अन्य शब्दों में देश की वितरण प्रणाली किस प्रकार की हैं। यदि राष्ट्रीय आय सभी व्यक्तियों में बराबर बँटती है तो परिणाम यह होगा कि हर व्यक्ति की आय कम होगी और इस कारण पूँजी का संचय भी कम होगा। परन्तु यदि राष्ट्रीय आय का वितरण असमान है, अर्थात् कुछ व्यक्तियों की आय अधिक और कुछ की कम है तो अधिक आय वाले व्यक्ति अपनी आमदनी का काफी अधिक भाग बचाने में समर्थ होंगे। अतः, देश में पूँजी का कुल संचय भी अधिक होगा।

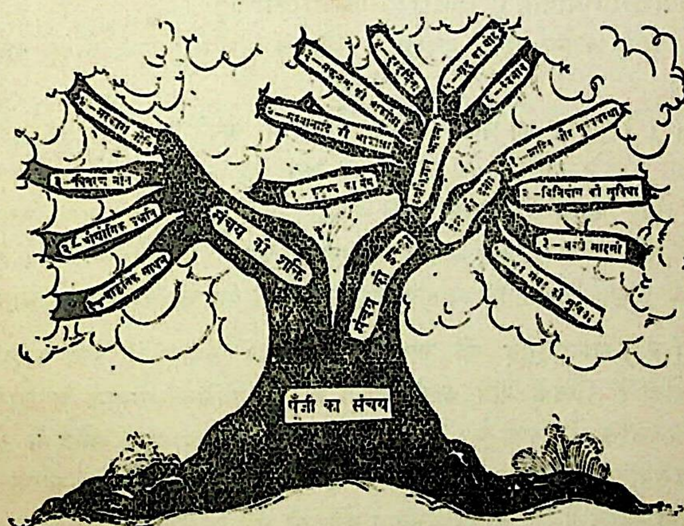
(४) सरकारी नीति—देश में उत्पादन की मात्रा और औद्योगिक प्रगति सरकारी नीति पर भी निर्भर रहती है। यदि सरकार की नीति ऐसी है कि उद्योग-पतियों को अधिक उत्पादन करने में प्रोत्साहन मिलता है तो निसन्देह उत्पादन अधिक होगा। परन्तु, यदि सरकारी नीति देश के औद्योगिक विकास के हित में नहीं है तो उत्पादन अधिक नहीं हो पावेगा। उदाहरण के लिये भारत में जब तक अंग्रेजी राज्य रहा देश की समुचित आर्थिक उन्नति नहीं हो पाई, क्योंकि सरकार यह नहीं चाहती थी कि भारत औद्योगिक प्रगति करे। सरकार के पास ऐसे अनेक साधन हैं जिनके द्वारा वह आर्थिक प्रगति में सहायता दे सकती है या उसमें बाधा डाल सकती है जैसे संरक्षणता, कर नीति, व्यापारिक नीति आदि।

(ब) संचय की इच्छा (Willingness to Save)

संचय के लिये केवल इतना ही आवश्यक नहीं है कि मनुष्य की आय उसके व्यय से अधिक हो, परन्तु यह भी आवश्यक है कि उसमें धन बचाने की भावना हो। उदाहरण के लिये यदि कोई मनुष्य अपनी सम्पूर्ण आय खर्च कर देता है और धन जोड़ने का प्रयास ही नहीं करता, तो स्पष्ट है कि वह कुछ भी संचय नहीं कर पावेगा। इस प्रकार संचय व्यक्तिगत भावना पर भी निर्भर रहता है।

व्यक्तिगत भावना रहते हुए भी कभी-कभी ऐसे अनेक कारण उपस्थित हो जाते हैं जिनसे मनुष्य पर्याप्त मात्रा में पूँजी संचय नहीं कर पाता। उदाहरण के लिये यदि देश में शान्ति न हो और बराबर झगड़े होते रहते हों, या देश में बैंक आदि की सुविधा न हो, या अच्छे साहसियों का अभाव हो तो मनुष्य में रुपया बचाने के लिये कोई प्रोत्साहन नहीं रहता। अतएव पूँजी का संचय देश की दशा पर भी निर्भर रहता है।

पूर्वोक्त कथन से स्पष्ट है कि संचय की इच्छा दो बातों पर निर्भर रहती है—



चित्र ६४—पूँजी का संचय

(क) व्यक्तिगत भावना, तथा (ख) देश की दशा। ये दोनों बातें अन्य बहुत सी बातों पर निर्भर रहती हैं जो नीचे के खाके से स्पष्ट हो जायगीं।

पूँजी का संचय

(अ) संचय की शक्ति	(आ) संचय की इच्छा	
	(क) व्यक्तिगत भावना	(ख) देश की दशा
१. प्राकृतिक साधन	१. कुटुम्ब का प्रेम	१. शान्ति और सुव्यवस्था
२. औद्योगिक उन्नति	२. सम्मानादि की आकांक्षा	२. विनियोग की सुविधा
३. वितरण-नीति	३. सफलता की आकांक्षा	३. अच्छे साहसी
४. सरकारी-नीति	४. दूरदर्शिता	४. अर्घ संग्रह की सुविधा
	५. सूद का मोह	
	६. स्वभाव	

(क) व्यक्तिगत भावना (Individual Desire)

मनुष्य कितना रुपया बचाता है और कितना नहीं यह निम्न बातों पर निर्भर है :

(१) कुटुम्ब का प्रेम—प्रत्येक मनुष्य में अपने घर वालों के प्रति कुछ स्नेह होता है और उस स्नेह के कारण वह स्वयं कष्ट उठाकर और अभाव सहकर धन का संग्रह करता है। उसकी यही भावना रहती है कि उसके बाद उसके घर वालों को किसी प्रकार का कष्ट न हो। अतएव वह अपने आश्रितों के लिये पर्याप्त धन छोड़ जाना चाहता है और इस भावना से प्रेरित होकर वह धन का संचय करता है।

(२) सम्मानादि की आकांक्षा—वर्तमान समाज में उसी मनुष्य का आदर होता है जिसके पास काफी रुपया है। सामाजिक सम्मान के साथ-साथ राजनैतिक शक्ति भी रुपये के द्वारा प्राप्त हो जाती है। प्राचीन समय में विद्वानों का आदर होता था। परन्तु अब धनवानों का आदर होता है। इसी कारण मनुष्य धन जोड़ना चाहते हैं जिससे वह धनवान कहलाने लगें।

(३) दूरदर्शिता—भविष्य अनिश्चित है। पता नहीं कि किस समय किस कार्य के लिये रुपये की आवश्यकता पड़ जाय। अतएव दूरदर्शी तथा विवेकी मनुष्य आपत्ति-काल के लिये कुछ रुपया जोड़कर अवश्य रखते हैं। प्रायः सभी मनुष्य अपने बुढ़ापे के लिये तो कुछ रुपया अवश्य ही जोड़कर रखने का प्रयास करते हैं।

(४) सफलता की आकांक्षा—वर्तमान आर्थिक व्यवस्था में जिस मनुष्य के पास जितना अधिक रुपया होता है, उद्योग तथा व्यवसाय में उसे उतनी ही अधिक सफलता मिलती है। पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली में, जो घातक प्रतिस्पर्धा पर आधारित है, थोड़ी पूँजी वाले उद्योगपति बड़े उद्योगपतियों के सामने नहीं ठहर पाते। अतएव व्यापार में सफलता के लिये अधिक पूँजी अत्यन्त आवश्यक है।

(५) सूद का मोह—कुछ लोग धन इसलिये भी जोड़कर रखते हैं क्योंकि वह सूद कमाना चाहते हैं। भारत में विधवाओं तथा निराश्रितों के लिये सूद पर रुपया उधार देना ही आमदनी का एकमात्र साधन है। प्रायः सूद की दर जितनी अधिक होती है, मनुष्य उतना ही अधिक रुपया जोड़कर रखते हैं। मनुष्य चाहे तो अपने रुपये को किसी उद्योग में लगा दे और चाहे तो किसी बैंक में जमाकर उससे सूद कमाये। वह इन दोनों में से वह कौन सा काम करेगा यह इस बात पर निर्भर है कि उसे इन दोनों में से किस साधन से अधिक आमदनी होगी। सूद की दर अधिक होने पर मनुष्य रुपया अधिक मात्रा में जमा करते हैं और उसे व्यवसाय में कम लगाते हैं।

(६) स्वभाव—कुछ मनुष्यों का यह स्वभाव भी होता है कि अपनी आय का कुछ भाग अवश्य बचायें। भले ही उन्हें रूखा-सूखा भोजन करना पड़े और मैले-कुचैले कपड़े पहिनने पड़ें, परन्तु अपनी आय का कुछ भाग वह बचाते अवश्य हैं। धन जोड़कर रखने का उनका स्वभाव सा पड़ जाता है और बिना धन जोड़े उन्हें चैन नहीं पड़ता।

(ख) देश की दशा (Conditions in the Country)

देश में संचित किये जाने वाले धन की मात्रा इस बात पर भी निर्भर रहती है कि देश में धन के संचय की पर्याप्त सुविधायें प्राप्त हैं या नहीं। यह अनेक बातों पर निर्भर है जिन्हें नीचे बताया गया है।

(१) शान्ति और सुरक्षा—मनुष्य धन उसी समय जोड़कर रखता है जब उसे इस बात का पूरा विश्वास हो कि उसका धन न तो चोर ही चुराकर ले जायँगें और न सरकार ही उसे हड़प लेगी। बिना इस आश्वासन के कि भविष्य में मनुष्य को अपना रुपया अपनी इच्छा के अनुसार व्यय करने की पूर्ण स्वतन्त्रता रहेगी, कोई भी मनुष्य धन का संचय नहीं करेगा।

प्राचीन काल में जब शान्ति और सुरक्षा का अच्छा प्रबन्ध न था और सुदृढ़ सरकारें न होने के कारण चोरी, लूटमार तथा युद्ध का भय बना रहता था, मनुष्य बहुत कम संचय करते थे। परन्तु सभ्यता के विकास के साथ-साथ और सुव्यवस्था के साथ-साथ लोगों के मन से इस बात का डर जाता रहा और इस कारण अब

मनुष्य धन का अधिक मात्रा में संचय करने लगे हैं। भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना के समय से ही लूट मार तथा झगड़ों की सम्भावना कम हुई है और इस कारण तभी से धन के संचय की मात्रा भी बढ़ी है।

(२) विनियोग की सुविधा—मनुष्य रुपया तभी जोड़ कर रखते हैं जब पूँजी को सुरक्षित रूप से कहीं लगाया जा सके। जब तक इस बात की सम्भावना नहीं होती मनुष्यों में पूँजी संचय करने के लिये कुछ भी प्रोत्साहन नहीं रहता।

विनियोग (Investment) की सुविधा से हमारा तात्पर्य यह है कि देश में स्थान स्थान पर अच्छी और बड़ी-बड़ी बैंकें हों, देश की औद्योगिक संस्थाओं में धन व्यय करने की पर्याप्त सुविधा हो, देश में मिश्रित पूँजी वाले उद्योग धन्धे पर्याप्त मात्रा में और अच्छी दशा में हों, यातायात तथा संदेश वाहक साधनों की प्रचुर उन्नति हो गई हो (जिससे खबरों को सुगमता से भेजा जा सके) और देश में रुपये की प्रचुर मात्रा में माँग हो। यह माँग सरकारी हो सकती है या बीमा कम्पनी से, या औद्योगिक फर्मों से, या बैंकों आदि से हो सकती है।

(३) अच्छे साहसी—जिस देश में अच्छे, योग्य, और ईमानदार साहसी प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं वहाँ लोग अधिक मात्रा में पूँजी बचाने के लिये प्रोत्साहित होते हैं। इसका कारण यह है कि मनुष्य अपनी संचित पूँजी उसी व्यक्ति के हाथ में सौंपना चाहते हैं जिस पर उनका विश्वास हो और जिसकी साख बाजार में अच्छी हो।

(४) अर्घ-संग्रह की सुविधा—मनुष्य पूँजी उस समय बचाते हैं जब उन्हें इस बात का पूर्ण आश्वासन हो कि जितनी पूँजी वह आज बचा कर रख रहे हैं भविष्य में उसका मूल्य उतना ही रहेगा। इसके लिये यह आवश्यक है कि देश में एक ऐसी मुद्रा का चलन हो जिसका मूल्य स्थिर रहे। प्राचीन समय में गाय, बैल, बकरी, अन्न, जानवरों की खाल आदि का चलन मुद्रा के रूप में था। पूँजी को इस रूप में संचित कर रखने के कारण कुछ समय पश्चात् उसका मूल्य काफी घट जाता था। उदाहरण के लिये बूढ़े हो जाने पर जब जानवर मर जाते थे तो व्यक्तियों को भारी हानि हो जाती थी। अतएव उस समय पूँजी का संचय बहुत कम था। जब से चाँदी, सोना आदि धातुओं का चलन द्रव्य के रूप में हो गया है, इस प्रकार की कोई कठिनाई नहीं रही है।

२. भारत में पूँजी का संचय

(Accumulation of Capital in India)

भारत के अधिकांश व्यक्ति बहुत गरीब हैं। उनकी आय इतनी कम है कि वह अपनी आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाते। ऐसी स्थिति में धन का संचय

करना उनके लिये नितान्त असम्भव है। भारत प्राकृतिक साधनों में काफी संपन्न है और इस कारण यहाँ के व्यक्तियों की आर्थिक स्थिति अच्छी होनी चाहिये थी। परन्तु दुर्भाग्य से देश का औद्योगिक विकास नहीं हो पाया है। जब तक देश में अंग्रेजी राज्य रहा ब्रिटिश सरकार को यही नीति रही कि भारत औद्योगिक उन्नति न करने पाये जिससे इंगलैंड का बना माल भारत में बिकता रहे। सरकारी प्रोत्साहन के अभाव में भी देश ने कुछ आर्थिक प्रगति अवश्य की, परन्तु वह इतनी अधिक न थी कि देश-वासियों की संचय शक्ति बहुत अधिक बढ़ जाती। हमारे देश में धनवान लोग बहुत कम हैं, लेकिन जो हैं उनके पास बहुत अधिक पूँजी है। उदाहरण के लिये राजा-महाराजा तथा मठाधीशों को ले लीजिये। परन्तु ये व्यक्ति अपनी पूँजी को अपने पास गाड़ कर ही रखते हैं और उसका विनियोग नहीं करते। इस कारण भी देश की आर्थिक प्रगति नहीं हुई है।

भारतीयों में कुटुम्ब के लिये प्रेम है और उनमें दूरदर्शिता भी है। साथ ही सम्मान तथा सफलता की आकांक्षा भी उनमें पाई जाती है। परन्तु देश की दशा कुछ ऐसी रही है कि लोग अधिक रुपया जोड़ कर नहीं रख पाये हैं। इसका कारण यह है कि अंग्रेजी राज्य की स्थापना के पहिले तक देश में लूट मार, चोरी और युद्धों का डर बराबर लगा रहा। साथ ही सम्पूर्ण देश में किसी ऐसी मुद्रा का चलन न था जिसका मूल्य हर समय एक सा रहता। विभिन्न राजाओं के आगमन के साथ मुद्रा भी बदल जाया करती थी। इसके साथ ही देश में न तो रुपये की अधिक माँग थी और न सुयोग्य तथा ईमानदार साहसी ही प्रचुर मात्रा में थे। आजकल भी टाटा, बिडला, डालमिया, सिंहानिया, मोदी आदि जैसे सुयोग्य साहसी उंगलियों पर गिने जा सकते हैं। इन सब कारणों से देश में पूँजी का संचय बहुत कम है। अब हमारा देश स्वतंत्र हो गया है और इस बात की पूरी सम्भावना है कि भविष्य में दशा सुधरे। परन्तु जब तक देश की राष्ट्रीय आय नहीं बढ़ती, व्यक्तियों की आर्थिक दशा में सुधार नहीं होगा और पूँजी का संचय अधिक नहीं हो सकेगा। अतएव पूँजी का संचय बढ़ाने के लिये देश की औद्योगिक उन्नति करना अत्यन्त आवश्यक है।

परीक्षा-प्रश्न

उत्तर-प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—पूँजी से आप क्या समझते हैं? पूँजी का संचय किन-किन बातों पर निर्भर है? भारत की वर्तमान स्थिति से उदाहरण दीजिए। (१९५१)

२—किसी देश में पूँजी का संचय किन-किन बातों पर निर्भर है? उत्तर-प्रदेश में यह बातें कहाँ तक पाई जाती हैं? (१९४०)

३—पूँजी की परिभाषा दीजिए और बताइये कि उत्पत्ति में इसका क्या महत्व है? भारत में पूँजी का संचय धीमी गति से क्यों होता है? (१९३५)

उत्तर-प्रदेश इन्टर कामर्स

४—किसी देश में पूँजी का संचय किन बातों पर निर्भर है ? हमारे देश में यह बातें कहाँ तक पाई जाती हैं ? (१६३६)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

५—पूँजी किसे कहते हैं ? वह कौनसी बातें हैं जिनका पूँजी के संचय पर प्रभाव पड़ता है ? (१६५२, १६४८)

६—भारतीय उदाहरण लेकर बताइये कि वह कौनसी दशाएँ हैं जो धन के संचय में सहायक होती हैं ? यह बातें भारतीय कृषिक पर कहाँ तक लागू होती हैं ? (१६५१)

७—पूँजी धनोत्पत्ति में किस प्रकार सहायक होती है ? भारत में पूँजी का संचय इतनी धीमी गति से होने के कारण बताइये। (१६४६)

८—भारत में पूँजी संचय करने की सुविधाओं पर प्रकाश डालिए। (१६४७)

६—उन बातों की व्याख्या कीजिए जिन पर किसी देश में पूँजी का संचय निर्भर है और यह भी बताइये कि इनमें कौनसी भारत में कार्यशील हैं ? (१६४१)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

१०—पूँजी के संचय पर सामाजिक रीति-रिवाजों और ब्याज की दर का क्या प्रभाव पड़ता है ? बताइये। (१६५३)

११—पूँजी शब्द से आप क्या अर्थ समझते हैं ? वह क्या दशा हैं जो इसकी पूर्ति निर्धारित करती हैं ? इस बात की परीक्षा कीजिए कि वह किस सीमा तक भारत में पाई जाती हैं ? (१६४२)

पटना इन्टर आर्ट्स

१२—उन दशाओं को बताइये जो पूँजी की वृद्धि में सहायक होती हैं। (१६५२)

१३—पूँजी की वृद्धि किन-किन बातों पर निर्भर है ? (१६४६)

सागर इन्टर कामर्स

१४—भारत में पूँजी की वृद्धि के साधनों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए। (१६५०)

———

छियालीसवाँ अध्याय

मशीनों से हानि तथा लाभ

(Advantages and Disadvantages of Machinery)

वर्तमान समय में मशीनों का प्रयोग बहुत व्यापक हो गया है। औद्योगिक उन्नति तथा विकास के साथ साथ मशीनों का प्रयोग भी बढ़ता जा रहा है और यहाँ तक कि छोटे से छोटे उत्पादन में भी इनको प्रयोग में लाया जाता है। औद्योगिक विकास के प्रारम्भिक दिनों में मशीनें छोटी तथा कम पेचीदा थीं। परन्तु अब बड़ी बड़ी तथा अधिक पेचीदा मशीनों का प्रयोग अधिक होने लगा है। इसका कारण यह है कि मशीन जितनी अधिक पेचीदा होती है, उसके द्वारा काम उतना ही अधिक अच्छा तथा सही होता है। मशीनों के इस व्यापक प्रयोग के कारण ही वर्तमान युग को 'मशीन युग' कहा जाता है।

यदि इस बात को देखा जाय कि मनुष्य ने मशीनों का प्रयोग क्यों आरम्भ किया तो यह समझ में आ जायगा कि इसका मुख्य कारण यह था कि मशीनों के प्रयोग से उत्पादन बढ़ जाता है। ऐसे ऐसे कार्य जो मनुष्य स्वयं नहीं कर सकता मशीनों द्वारा सुगमता से हो जाते हैं, प्रकृति पर मनुष्य अधिकाधिक विजयी होने लगता है और उत्पादन व्यय कम हो जाता है। स्पष्ट है कि मशीनों से होने वाले लाभों के कारण ही इनका प्रयोग अधिक व्यापक हुआ।

१. मशीनों से लाभ

(Advantages of Machinery)

मशीनों से अनेक लाभ हैं जिन्हें नीचे बताया गया है।

(१) कठिन तथा अधिक शक्ति चाहने वाले कार्यों के करने की सुविधा—मशीनों के प्रयोग से विशाल और कठिन कार्य जिन्हें मनुष्य अपनी शक्ति से पूरा नहीं कर सकता, सुगमता से पूरे हो जाते हैं। उदाहरण के लिये नदियों पर बने हुए मीलों लम्बे पुल, गगन चुम्बी विशाल महल, हजारों टन भारी समुद्री जहाज आदि का निर्माण मशीनों द्वारा ही सम्भव हो सका है। भाप के हथौड़ों द्वारा ही बड़े बड़े जंगी जहाज कुछ घंटों में ही तोड़ फोड़ कर चूर चूर किये जा सकते हैं। क्रेनों (Craines) द्वारा ही हजारों टन भारी जहाज या रेल एक स्थान से हटा कर दूसरे स्थान पर रखे जा सकते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि मशीनों के कारण ही मनुष्य इस प्रकार के कठिन काम करने में सफल हो सका है।

(२) बारीक काम करने की सुविधा—भारी काम ही नहीं वरन् महीन काम भी मशीनों द्वारा ही होते हैं। वास्तव में ऐसे कार्य जो बहुत अधिक बारीक या नाजुक होते हैं और जिन्हें करने में बड़ी सावधानी तथा बारीकी की आवश्यकता पड़ती है मशीनों द्वारा ही किये जाते हैं। उदाहरण के लिये घड़ियों के कुछ पुर्जे इतने सूक्ष्म होते हैं कि उन्हें आँखों से देखा भी नहीं जा सकता। परन्तु मशीनों द्वारा वह बनाये जाते हैं और खराबी हो जाने पर मशीनों द्वारा ही उनमें सुधार किया जाता है। उदाहरण के लिये घड़ियों के पेच जो एक औंस में ६,००० की मात्रा में चढ़ते हैं और जो केवल दुर्बीन द्वारा ही अलग किये जा सकते हैं, मशीनों द्वारा ही बनते हैं।

(३) उत्पादन में वृद्धि—मशीनों के प्रयोग से एक बड़ा लाभ यह भी है कि उत्पादन की मात्रा बढ़ जाती है। इसका कारण यह है कि मशीनें जल्दी जल्दी काम करती हैं और उनसे चाहे कितने ही समय तक काम लिया जा सकता है। कुछ घंटे काम करने के पश्चात् मनुष्य थक जाता है, परन्तु मशीनें कभी नहीं थकतीं। दूसरे, मनुष्य के हाथ-पैर तथा उसकी आँखें अधिक तेजी से नहीं चलतीं और इस कारण वह बहुत शीघ्रता से कार्य नहीं कर सकता। परन्तु मशीनों के प्रयोग से काम काफी तेजी से होता है।

(४) समय की बचत—मशीनों के प्रयोग से समय की बड़ी भारी बचत होती है। जो काम मनुष्य महीनों में करता है, वह मशीनों द्वारा दो-तीन दिनों में ही पूरा हो जाता है। उदाहरण के लिये एक मशीन एक घंटे में २० मील लम्बे समाचार पत्र छाप देती है और दूसरी मशीन एक घंटे में तीस लाख दियासलाइयाँ बना देती है। वायुयानों द्वारा सैकड़ों मील लम्बा रास्ता घंटों में ही तय किया जा सकता है, परन्तु उतना ही पैदल चलने पर मनुष्य को महीनों लग जायेंगे। इस प्रकार महीनों के प्रयोग से समय की बड़ी भारी बचत होती है।

(५) वस्तुओं का प्रमाणीकरण—मशीनों के प्रयोग से एक बड़ा लाभ यह भी है कि जो भी चीज बनती है वह आकार-प्रकार में एक सी होती है। अन्य शब्दों में वस्तुओं का प्रमाणीकरण (Standardisation) हो जाता है। उससे लाभ यह है कि किसी एक पुर्जे के खराब हो जाने पर उसी तरह का दूसरा हिस्सा आसानी से लगाया जा सकता है। प्रमाणीकरण के कारण ही यह सम्भव हो सका है कि इंगलैंड, अमरीका आदि की बनी मशीनें भारत में प्रयोग में लाई जाती हैं। मोटर के इंजिनों का इतना अधिक प्रमाणीकरण हो गया है कि इंजिन के विभिन्न हिस्से मनुष्य के बालों की १/३० मोटाई तक सही होते हैं।*

---

* *See Introduction to Economics* by Dr. A. Cairncross, p. 46

प्रमाणीकरण से दूसरा लाभ यह भी है कि वस्तु का बाजार अधिक विस्तृत हो जाता है। दुकानदार वस्तुओं का नमूना देख कर ही उन्हें मँगा लेते हैं और इस बात की आवश्यकता नहीं रहती कि दुकानों में अधिक माल रखा जाय।

(६) उत्पादन व्यय में कमी—मशीनों के प्रयोग से उत्पादन व्यय में कमी हो जाती है। इसका कारण यह है कि उद्योग में श्रम-विभाजन किया जा सकता है और बड़े पैमाने पर उत्पादन सम्भव हो जाता है। बड़े पैमाने के उत्पादन के कारण उद्योग में आन्तरिक तथा बाह्य मितव्ययताएँ प्राप्त होने लगती हैं जिनसे उत्पादन व्यय कम हो जाता है।

(७) प्रकृति पर विजय—मशीनों के सहायता से मनुष्य प्रकृति पर विजय पा लेता है। पृथ्वी के गर्भ में छिपे हुये खनिज पदार्थों का पता मशीनों द्वारा ही लगता है और उनका शोषण भी मशीनों द्वारा ही होता है। बड़े-बड़े जल-प्रपातों का पानी रोककर मशीनों की ही सहायता से मनुष्य जल-विद्युत-शक्ति प्राप्त करता है। आजकल मशीनों की सहायता से ही मनुष्य गर्मी में अपना कमरा ठंडा रखता है और जाड़े में गर्म। इन्हीं के कारण वह कृत्रिम वर्षा (Artificial rain) की बात सोचने लगा है। वास्तव में मशीनों के द्वारा मनुष्य ने प्रकृति पर काफी विजय पा ली है।

(८) श्रम-विभाजन—मशीनों के प्रयोग के कारण ही श्रम को विभिन्न विभागों तथा उपविभागों में बाँटना सम्भव हो जाता है। पहले जिस काम को एक मनुष्य करता था, उसको अब कई श्रमिक कई हिस्से में करते हैं। इंगलैंड में पता चला है कि आलपिन बनाने जैसे साधारण काम में भी श्रम-विभाजन के कारण उत्पादन की मात्रा बढ़ गई है।

(९) समय तथा दूरी की समस्या का हल—मशीनों द्वारा दूरी की समस्या बहुत कुछ सुलझ गई है। हवाई जहाजों द्वारा मनुष्य सैकड़ों मील प्रति घन्टे के हिसाब से एक स्थान से दूसरे स्थान तक आ-जा सकता है। रेडियो द्वारा संसार के कोने कोने की खबर मनुष्य को घर बैठे मालूम पड़ जाती है। बे-तार के तार द्वारा विदेशों को कहीं भी खबरें भेजी जा सकती हैं। मशीनों के कारण ही संसार में ऐक्य की भावना बढ़ी है और इसके कारण व्यापार तथा उद्योग-धन्धों में भारी प्रगति हुई है।

(१०) नीरस कार्यों से बचत—मशीनों के कारण नीरस, गन्दे, थकाने वाले तथा खतरनाक काम मनुष्य को नहीं करने पड़ते। उदाहरण के लिये सड़कों तथा नालियों की सफाई का काम, कपड़े धोने का काम, बर्तन साफ करने का काम, लकड़ी चीरने का काम, छपाई के समय मशीन में कागज लगाने का काम आदि सब

मशीनों द्वारा होने लगे हैं। विदेशों में ऐसी मशीनें बन गई हैं जो केवल छपाई ही नहीं करतीं, वरन् छपे हुए अखबार मुड़े-मुड़ाये उसमें से निकलते हैं। अखबारों का मोड़ना एक अत्यन्त नीरस काम है जो अब अनेक देशों में मशीनों से किया जाता है। थकाने वाले कार्यों से मनुष्य किस प्रकार बच जाता है इसका उदाहरण स्पात के कारखाने में मनुष्यों को काम करते हुए देखने से पता चल जायगा।*

(११) बुद्धि का विकास—मशीनों के निरन्तर प्रयोग के कारण श्रमिकों की बुद्धि पैनी हो जाती है। वह अपने काम में समय का पाबन्द और निर्णय करने में सही बन जाता है। यही नहीं, वह नये नये आविष्कार भी करता है जिनसे उद्योगों को भारी लाभ होता है। मशीनों को चलते हुए देखते देखते और उसी काम को बार बार करते करते उसमें सोचने की इतनी शक्ति आ जाती है कि वह यह बता सकता है कि कौन-कौन से परिवर्तन करने पर मशीनों से अधिक उत्पादन हो सकता है।

(१२) गतिशीलता में वृद्धि—मशीनों के प्रयोग से श्रमिकों की गतिशीलता (Mobility) बढ़ जाती है। इसका कारण यह है कि विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के उत्पादन में लगभग एक सी ही मशीनों का प्रयोग होता है और एक प्रकार की मशीन का ज्ञान हो जाने पर श्रमिक किसी भी स्थान पर जाकर उनके द्वारा उत्पादन कर सकता है। गतिशीलता में वृद्धि हो जाने से सबसे बड़ा लाभ यह है कि श्रमिकों का वेतन एक सा हो जाता है।

(१३) अकुशल श्रमिकों को काम—मशीनों के प्रयोग से यह सम्भव हो सका है कि अकुशल श्रमिकों से भी काम लिया जा सकता है। इसका कारण यह है कि मशीनों के कारण उत्पादन प्रणाली बड़ी सरल हो गई है। श्रमिकों को स्वयं कोई कार्य नहीं करना पड़ता, उनका कार्य अधिकतर निरीक्षण तथा देख भाल का ही रह गया है और केवल इतने कार्य के लिये यह आवश्यक नहीं है कि श्रमिक को उस उद्योग का विशिष्ट ज्ञान हो।

(१४) उत्तरदायित्व की वृद्धि—मशीनों के प्रयोग से श्रमिकों में जिम्मेदारी और आत्म-निर्भरता की भावनायें जाग्रत हो जाती हैं। उसे हमेशा सतर्क रहना पड़ता है क्योंकि वह जानता है कि उसकी तनिक सी असावधानी से उत्पादन को भारी हानि हो सकती है। अतएव श्रमिकों में उत्तरदायित्व की भावना बढ़ जाती है।

(१५) कार्यशीलता में वृद्धि—मशीनों के निरन्तर प्रयोग के कारण श्रमिकों को इतना अभ्यास हो जाता है कि उनके हाथ-पैर ठीक समय पर ठीक काम करते हैं। जिस प्रकार टाइप करते करते मनुष्य की उँगलियाँ ठीक शब्दों पर ही

*विस्तार के लिये देखिये Marshall, *Economics of Industry*, p. 145

पड़ती हैं और उसे टाइपराइटर में लिखे विभिन्न शब्द देखने की आवश्यकता नहीं पड़ती, ठीक इसी प्रकार मशीनों के निरंतर प्रयोग से श्रमिकों के विभिन्न अंग स्वाभाविक रूप से सही काम ही करते हैं। इस कारण उनकी कार्यशीलता बहुत बढ़ जाती है।

२. मशीनों से हानियाँ

(Disadvantages of Machinery)

मशीनों के प्रयोग से उत्पादन को अनेक महत्वपूर्ण लाभ प्राप्त हुए हैं। परन्तु इससे कुछ हानियाँ भी हुई हैं जिन्हें नीचे बताया गया है।

(१) बेकारी बढ़ना—मशीनों से सब से बड़ी हानि यह है कि इनके कारण बेकारी बढ़ जाती है। संसार में मशीनों का प्रयोग इसीलिये अधिक व्यापक हुआ क्योंकि एक मशीन के द्वारा इतना काम हो जाता है जितना कई श्रमिक मिलकर करते हैं। अतएव मशीनों के प्रयोग से श्रमिक बेकार हो जाते हैं और उनको तथा उनके कुटुम्ब को भारी कष्ट उठाने पड़ते हैं।

कुछ विद्वानों का मत है कि मशीनों से बेकारी नहीं बढ़ती, क्योंकि जो लोग पहले किसी उद्योग में लगे थे वे अब मशीन बनाने के उद्योग में लग जाते हैं। श्रमिकों को एक उद्योग से हट कर दूसरे उद्योग में जाना पड़ता है, परन्तु वे बेकार नहीं रहते। यह कथन कुछ अंश तक तो ठीक है परन्तु जो देश अधिक उन्नतिशील नहीं है वहाँ मशीनों के बनाने का उद्योग सुगमता से चालू नहीं हो सकता। उदाहरण के लिये भारत को ही लीजिये। भारत सरकार यह चाहती है कि देश में मशीनों का उत्पादन प्रारम्भ हो जाय। परन्तु मार्ग में अनेक ऐसे रोड़े हैं जिनके कारण सरकार को सफलता नहीं मिल रही है।

पाश्चात्य देशों में मशीनों के प्रयोग के कारण बेकारी इसलिये भी नहीं बढ़ी है* क्योंकि वहाँ अन्य प्रकार का उत्पादन बढ़ गया है। राष्ट्रीय आय बढ़ते रहने के कारण लोगों की माँगें भी बढ़ती रही हैं और इस कारण औद्योगिक उत्पादन भी बढ़ता रहा है। परन्तु भविष्य में भी ऐसा होता रहेगा निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

(२) कुशल श्रमिकों तथा कलाकारों को हानि—मशीनों के प्रयोग से कुशल तथा अकुशल श्रमिकों का भेद मिट जाता है। इसका कारण यह है कि

* डाक्टर केर्नक्रोस का कहना है कि विगत शताब्दी में मशीनों का प्रयोग बहुत अधिक बढ़ गया है, फिर भी उद्योगों में लगे श्रमिकों की संख्या घटने के स्थान पर पाँच गुनी अधिक बढ़ गई है। देखिये *Introduction to Economics* by Alec Cairncross, *p.* 51.

काम मशीनों द्वारा होता है, श्रमिक केवल देखभाल ही करते हैं। जब उत्पादन कुटीर उद्योग-धन्धों की भाँति होता था तब जो वस्तु तैयार होती थी उस पर श्रमिक की कुशलता की स्पष्ट छाप रहती थी। अतएव प्रत्येक कारीगर को अपनी वस्तु पर अभिमान होता था और अच्छी वस्तु बनाने पर उसे बड़ी आत्म-सन्तुष्टि मिलती थी। आजकल के मशीन युग में इन कुशल कारीगरों का अन्त ही हो गया है। अब सब वस्तुएँ एकसी बनती हैं और उनमें सभी श्रमिकों का सहयोग रहता है।

(३) कलापूर्ण वस्तुओं का लोप—मशीनों के चलन के कारण कलापूर्ण वस्तुओं का लोप हो गया है। इसका कारण यह है कि उद्योगपति कारीगरी के ऊपर ध्यान न देकर-उत्पादित वस्तु की मात्रा पर ही अधिक ध्यान देते हैं। साथ ही ऐसे अनेक कार्य हैं जिनको मशीन द्वारा नहीं किया जा सकता, क्योंकि उन वस्तुओं के बनाने में जितनी अधिक संलग्नता, होशियारी और कारीगरी की आवश्यकता होती है, वह मशीनों द्वारा नहीं मिल सकती। उदाहरण के लिये बनारसी साड़ियों का काम, ज़री का काम, हाँथी-दाँत के खिलौनें बनाने का काम आदि ले लीजिये। ये सब काम मशीनों द्वारा हो ही नहीं सकते क्योंकि इनकी विशेषता इसी में है कि वस्तु की हर इकाई की डिजाइन दूसरी हो। मशीनों द्वारा एक ही तरह की हजारों वस्तुएँ बनाई जा सकती हैं, परन्तु हर वस्तु नई प्रकार की नहीं बनाई जा सकती।

(४) शहर का वातावरण गन्दा होना—मशीनों के कारण उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है और बड़े-बड़े कारखानों की स्थापना हो जाती है। कारखानों के कारण शहर का वातावरण गन्दा, धुएँदार तथा खराब हो जाता है। मशीनों के शोर-गुल के कारण व्यक्तियों की नाड़ी क्रिया (Nervous system) पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। शहरों में बहुत भीड़ रहने लगती है जिसके कारण शहर में गन्दगी बढ़ जाती है और शहर का सम्पूर्ण वातावरण गंदा हो जाता है।

(५) श्रमिकों का नैतिक पतन—मशीनों के प्रयोग के कारण अनेक उद्योग एक ही स्थान पर स्थापित हो जाते हैं। उस स्थान पर हज़ारों श्रमिक आकर बस जाते हैं। परन्तु उन्हें रहने के लिये अच्छे मकान नहीं मिल पाते और छोटी सी कोठरियों में कई एक परिवार मिलकर रहते हैं। वहाँ पर्दा का सर्वथा अभाव रहता है और इस कारण श्रमिकों में अनेक नैतिक खराबियाँ आ जातो हैं। साथ ही, इनमें शराब पीना, जुआ खेलना आदि व्यसन भी आ जाते हैं।

(६) श्रमिकों का स्वास्थ्य गिर जाना—निर्धनता के कारण श्रमिकों को गन्दे स्थानों पर ही रहना पड़ता है जिन्हें चौल (Slums) कहते हैं। इन स्थानों में न तो सफाई का ही कोई प्रबन्ध होता है, न पीने के साफ पानी का और न यहाँ के मकान ही रोशनीदार तथा हवादार होते हैं। बड़े-बड़े शहरों में गाँवों जैसी खुली

तथा अच्छी हवा भी नहीं प्राप्त होती। इन सब कारणों से श्रमिकों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है और वह अनेक रोगों के शिकार हो जाते हैं।

(७) नीरसता बढ़ जाना—मशीनों द्वारा काम करते रहने से काम बड़ा नीरस हो जाता है। श्रमिकों को वही काम और उसी प्रकार से, बार बार और दिन प्रतिदिन करना पड़ता है। न तो काम में ही कोई परिवर्तन होता है और न उसके करने के ढंग में ही। फलतः काम अत्यन्त नीरस (Monotonous) हो जाता है। जब श्रमिक अपने आप काम बनाते थे, तो हर एक काम में एक भिन्न डिजाइन होती थी और जो काम तैयार होता था वह कारीगरी तथा कला में भिन्न होता था। अतएव उसमें नीरसता नहीं आने पाती थी।

(८) अत्यधिक उत्पादन—मशीनों द्वारा उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है। उत्पादन करते समय प्रत्येक प्रबन्धक यह चाहता है कि वह अधिक से अधिक उत्पादन करे और अपना माल अधिक से अधिक मात्रा में बेचे क्योंकि अधिक माल बेचने पर लाभ की सम्भावना भी अधिक रहती है। परन्तु सभी उत्पादक ऐसा ही सोचते हैं इसलिये उत्पादन आवश्यकता से अधिक हो जाता है। अत्यधिक उत्पादन पूँजीवादी प्रथा का सबसे बड़ा दोष है। अत्यधिक उत्पादन (Over-production) के कारण बाजार में मन्दी (Depression) आ जाती है और उत्पादन बन्द करने की आवश्यकता पड़ जाती है। इससे मजदूरों में बेकारी फैलती है और उन्हें अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं।

परन्तु इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि अत्यधिक उत्पादन का कारण पूँजीवादी प्रथा की दोषपूर्ण नीति या प्रबन्धकों का माँग के संबंध में गलत अनुमान है। इस कारण अत्यधिक उत्पादन का दोष मशीनों पर नहीं रखा जा सकता। जब उत्पादन किसी योजना के अनुसार होता है तब अत्यधिक उत्पादन का डर नहीं रहता। अतएव अत्यधिक उत्पादन मशीनों का दोष नहीं है।

(९) वर्ग-संघर्ष का बढ़ना—मशीनों के प्रयोग के कारण उद्योगपति तथा श्रमिकों का भेद बड़ा स्पष्ट हो जाता है। दोनों अपने को विभिन्न वर्गों के लोग समझने लगते हैं और उनके हित भी भिन्न-भिन्न होते हैं। इस कारण दोनों वर्गों में संघर्ष बढ़ जाता है और इसी संघर्ष के परिणामस्वरूप मिलों में कभी-कभी हड़तालें भी हो जाती हैं।

(१०) सम्पत्ति का केन्द्रित हो जाना—मशीनों के कारण उत्पादन में अधिक पूँजी लगाने की आवश्यकता पड़ती है। इस कारण केवल धनवान व्यक्ति ही उद्योगपति बन सकते हैं। पुनः, मशीनों द्वारा उत्पादन का परिणाम यह होता है कि अधिक धनवान पूँजीपति तथा उद्योगपतियों के पास सत्ता बढ़ती जाती है और

धीरे-धीरे वह एकाधिकारी (Monopolist) बन जाते हैं। इससे सम्पत्ति तथा शक्ति कुछ ही लोगों में केन्द्रित हो जाती है।

(११) बच्चे तथा स्त्रियों का काम करना—मशीनों के कारण उत्पादन प्रणाली सरल हो जाती है और इस कारण बच्चे तथा स्त्रियाँ भी उत्पादन कार्य करने में समर्थ होते हैं। बच्चों तथा स्त्रियों को मनुष्य की अपेक्षा कम वेतन देना पड़ता है और इस कारण उद्योगपतियों की यह इच्छा रहती है कि इन्हीं को काम पर लगाया जाय। इंगलैंड में औद्योगिक क्रांति (Industrial Revolution) के बाद दशा यह हो गई थी कि आदमियों को काम नहीं मिलता था, परन्तु स्त्री तथा बच्चों की सभी कारखानों में माँग थी। कारखानों में काम करने से स्त्री तथा बच्चों के स्वास्थ्य पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है और इसी कारण सभी देशों की सरकारों ने कानून पास कर इस संबन्ध में प्रतिबन्ध लगा दिये हैं।

मशीनों द्वारा होने वाले लाभ तथा हानियों को देखकर यह कहा जा सकता है कि इनसे लाभ अधिक हैं और हानि कम। अतएव इनका प्रयोग वांछनीय है।

परीक्षा-प्रश्न

उत्तर प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—मशीन के प्रयोग से हानि व लाभ की विवेचना कीजिये। (१९४१)

उत्तर प्रदेश इन्टर कामर्स

२—उत्पत्ति में मशीन के प्रयोग के लाभ और हानियाँ बताइये। (१९४३)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

३—उत्पादन में मशीनों से हानि-लाभ का वर्णन कीजिये। (१९४१)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर कामर्स

४—उत्पादन में मशीन के प्रयोग से होने वाले हानि-लाभ का वर्णन कीजिये। (१९५१)

पटना इन्टर आर्ट्स

५—श्रम के लिये मशीनरी के प्रयोग से होने वाले हानि-लाभ का वर्णन कीजिये। (१९५०)

६—क्या आप सोचते हैं कि मशीन के प्रयोग से बेरोजगारी पैदा होती है? मशीन के प्रयोग से क्या लाभ हैं? (१९४७)

७—निम्नलिखित पर किसी खास उद्योग में मशीन के प्रयोग बढ़ जाने से क्या असर पड़ता है?

(अ) श्रमिक पर और (ब) वस्तु के उपभोक्ताओं पर। (१९४६)

८—मशीनरी के प्रयोग के क्या प्रभाव हैं? (१९४५)

पटना इन्टर कामर्स

९—आर्थिक प्रगति में मशीन के प्रयोग का प्रभाव बताइये। श्रमिक वर्ग पर इसके क्या प्रभाव पड़े हैं? (१९५२)

१०—निम्नलिखित पर किसी उद्योग में मशीन का प्रयोग बढ़ जाने से क्या प्रभाव पड़ता है ?

(अ) श्रमिक पर (ब) वस्तु के उपभोक्ताओं पर । (१९४६)

सागर इन्टर कामर्स

११—मशीन से होने वाले गुण तथा अवगुण पर भारतीय दशाओं का ध्यान रखते हुए अपने विचार प्रकट कीजिये । (१९५०)

१२—उद्योग के लिये मशीन मिश्रित आशीर्वाद है । अच्छी प्रकार समझाये । (१९४९)

—:o:—

सैंतालीसवाँ अध्याय
संगठन या व्यवस्था
(Organisation)

संगठन उत्पादन का एक आवश्यक और अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन है। जिस प्रकार एक मनुष्य साधनों की सहायता के बिना कुछ भी उत्पन्न नहीं कर सकता, उसी प्रकार बिना संगठन की सहायता के उत्पादन के अन्य साधन कुछ भी उत्पन्न नहीं कर सकते। संगठनकर्त्ता उत्पादन के सभी साधनों को मिलाकर उत्पादन कार्य में लगाता है और उसके सहयोग से ही उत्पादन होता है। वर्तमान समय में उत्पादन के साधन भिन्न-भिन्न लोगों के हाथ में होते हैं। किसी के पास भूमि है परन्तु पूँजी न होने के कारण उत्पादन करने में सर्वथा असमर्थ है। किसी दूसरे के पास पूँजी है परन्तु उसमें श्रम करने की शक्ति नहीं है। तीसरे के पास शारीरिक शक्ति है परन्तु पूँजी के अभाव में वह अपनी शक्ति को प्रयोग में नहीं ला पाता। इन तीनों व्यक्तियों को एक दूसरे की आवश्यकता है जिससे प्रत्येक व्यक्ति अपने साधन का पूर्णरूप से उपयोग कर सके और सम्पत्ति का निर्माण कर लाभ उठा सके। परन्तु इनको एक दूसरे का ज्ञान नहीं होता। इन्हें पता नहीं रहता कि अन्य व्यक्ति कहाँ रहते हैं और क्या चाहते हैं। वह व्यक्ति जो इन तीनों को मिलाता है और इनका सहयोग प्राप्त कर उत्पादन कराता है निसन्देह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य करता है। इस व्यक्ति को प्रबन्धक कहते हैं।

१· प्रबन्ध की परिभाषा
(Definition of Organisation)

ऊपर के कथन से आप समझ गये होंगे कि प्रबन्धक का एक आवश्यक काम उत्पत्ति के विभिन्न साधनों को मिलाना है और फिर उनका सहयोग प्राप्त कर उत्पादन करना है। अतएव हम यह कह सकते हैं कि उत्पत्ति के विभिन्न साधनों को एकत्रित कर उन्हें संगठित तथा नियन्त्रित करने को ही प्रबन्ध कहते हैं और इस कार्य को करने वाला व्यक्ति प्रबन्धक कहलाता है।*

---

* प्रोफेसर वाट्सन (Watson) का कहना है कि "जैसे ही विभिन्न साधनों के सहयोग से उत्पादन आरंभ होता है, वैसे ही संगठन तथा नियंत्रण करने वाले व्यक्ति की आवश्यकता प्रतीत होने लगती है। 'प्रबन्ध' का यह कार्य प्रबन्धक करता है।" ["As soon as production is carried on by the co-ordination of different factors, the need emerges for a co-ordinating and controlling agency. This function of 'organisation' is performed by the organiser"—J. watson, *The Groundwork of Economic Theory*, p. 13

आचार्य मार्शल (Prof. Marshall) और उनके अनुयायी प्रबन्धक और साहसी में भेद नहीं करते थे और दोनों को उत्पादन का एक ही साधन मानते थे। उनका विचार था कि साहसी (Enterpriser) के काम दो हैं—(१) संगठन, और (२) जोखिम उठाना।* परन्तु आजकल के विद्वान् इस मत से सहमत नहीं हैं और वह प्रबन्ध तथा जोखिम को उत्पत्ति के दो भिन्न साधन मानते हैं। ऐसा करना उचित भी है क्योंकि आजकल के समय में इन दोनों कार्यों को भिन्न-भिन्न व्यक्ति करते हैं।

प्रबन्ध का अर्थ उचित रूप से समझने के लिए यह आवश्यक है कि श्रम तथा साहस से इसका भेद स्पष्ट रूप से समझ लिया जाय। यह नीचे बताया गया है।

प्रबन्ध तथा श्रम

प्रबन्ध तथा श्रम में बड़ा भारी अन्तर है। प्रबन्धक का कार्य उद्योग को संगठित तथा नियन्त्रित करना है। प्रबन्धक नीति निर्धारित करता है और श्रमिक उस नीति पर चलते हैं। आधुनिक अर्थशास्त्रियों का कहना है कि प्रबन्धक मानसिक परिश्रम करते हैं और श्रमिक शारीरिक परिश्रम।† यह ठीक है कि कोई भी ऐसा परिश्रम नहीं है कि जो पूर्णतः शारीरिक या पूर्णतः मानसिक हो। परन्तु यह निर्णय करने में कि अमुक परिश्रम श्रम के अन्तर्गत आता है या प्रबन्ध के अन्तर्गत हमें यह देखना होता है कि वह अधिकांश में शारीरिक है या मानसिक।

प्रबन्ध तथा साहस

प्राचीन अर्थशास्त्री साहस तथा प्रबन्ध में भेद नहीं करते थे। उनका विचार था कि साहसी के दो कार्य हैं—(१) जोखिम उठाना और (२) उद्योग की व्यवस्था करना। जिस समय एक ही व्यक्ति उद्योग को चलाता था उस समय बात ऐसी ही थी। परन्तु आजकल सीमित उत्तरदायित्व (Limited Liability) वाली कम्पनियों का चलन अधिक व्यापक हो गया है। इनमें जोखिम उठाने वाले वह

---

* उदाहरण के लिये देखिये L. Mesurier की पुस्तक, *Common sense of Economics*, p. 47; J. Watson की पुस्तक, *The Groundwork of Economic Theory* p. 13; Sir Sydney Chapman की पुस्तक, *Outline of Political Economy* p. 69; Prof. S E. Thompson की पुस्तक, *Elements of Economics*, p. 108 आदि। उदाहरण के लिए L. Mesurier (मेसूरियर) का कहना है कि "एक साहसी के क्या कर्तव्य हैं ?...... उत्तर केवल दो शब्दों में दिया जा सकता है : प्रबन्ध तथा जोखिम" ["What are the duties of an enterpriser ?........the reply can be given in just two words: Management and Risk"—*Common sense of Economics*, p. 47

† उदाहरण के लिए देखिये प्रोफेसर जे० के० मेहता (J. K. Mehta) की पुस्तक, *Groundwork of Economics*, पृष्ठ ६२-६४.

लाखों व्यक्ति होते हैं जो इन कम्पनियों के हिस्से खरीदते हैं। परन्तु वह उद्योग का व्यवस्था में कुछ भी हिस्सा नहीं लेते। उनमें से अधिकांश तो यह भी नहीं जानते कि कम्पनी किस प्रकार का तथा कैसा उत्पादन कर रही है। कम्पनी की व्यवस्था और उसके संगठन का भार मैनेजर, अतिरिक्त-मैनेजर तथा उनके सहयोगी अन्य अफसरों के ऊपर रहता है। अतएव इन लोगों को ही प्रबन्धक कहा जाता है। प्रबंधक को प्रति माह वेतने मिल जाता है। कंपनी को होने वाले हानि-लाभ से उन्हें कुछ भी मतलब नहीं रहता। कम्पनी को हानि हो तब भी उनका वेतन वही रहता है और लाभ हो तब भी वही रहता है। हानि-लाभ का भार साहसी के ऊपर पड़ता है।

२. प्रबन्धक का महत्व
(Importance of Organiser)

वैसे तो संसार में ऐसा कोई भी कार्य नहीं जिसमें संगठन, व्यवस्था, नियन्त्रण तथा नीति निर्धारण की आवश्यकता न पड़े। एक मामूली सा जुलाहा जो चर्खे से रुई कातकर अपने घर पर थोड़ा सा कपड़ा तैयार करता है, वह भी अपने काम का उचित रूप से प्रबन्ध करता है। वह स्वयं ही अपने उद्योग का साहसी होता है और प्रबन्धक भी। प्रबन्धक के नाते उसे यह तय करना होता है कि कच्चे माल को कहाँ से लाये, कैसा माल तैयार करे—बढ़िया या घटिया—कितनी मात्रा में माल तैयार करे, किस स्थान पर उसे बेचने ले जाय, और किस मूल्य पर उसे बेचे। यह एक छोटे पैमाने के उत्पादन में प्रबन्ध का उदाहरण है। परन्तु आजकल उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है। बड़े-बड़े कारखानों की समस्यायें अधिक जटिल होती हैं। साथ ही साहसियों का सम्पर्क उत्पादन से बहुत कम होता है। अतएव प्रबन्धक का कार्य कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के हाथ में सौंप दिया जाता है और उन्हीं की कार्यशीलता के ऊपर उत्पादन की मात्रा तथा उसकी किस्म निर्भर रहती है। पूँजीवादी औद्योगिक प्रणाली में जहाँ घातक प्रतिस्पर्धा का बोलबाला है, प्रबन्धक का कार्य बहुत अधिक महत्व का हो जाता है क्योंकि उसे न केवल उत्पत्ति के विभिन्न साधनों को ही एकत्रित कर उन्हें संगठित करना होता है, वरन् उसे यह भी निश्चय करना पड़ता है कि वह उद्योग को कहाँ स्थापित करे, कितना उत्पादन करे, किस किस्म की वस्तु उत्पन्न करे, कच्चे माल की व्यवस्था कहाँ से करे, किन श्रमिकों को किस किस काम पर लगाये, मशीन और औजारों को कहाँ से लाये, तैयार माल को किस बाजार में बेचे और उत्पादन प्रणाली में क्या क्या परिवर्तन करे जिससे वह सस्ते से सस्ते दाम पर वस्तु को पैदा कर सके। उसके महत्व के कारण ही प्रबन्धक को 'उद्योग का कप्तान'* कहते हैं।

* देखिये Prof. S. E. Thomas की पुस्तक, *Elements of Economics*, p. 108 "That person is variously described as the organiser......or Captain of Industry".

३· प्रबन्धक के कार्य

(Functions of Organiser)

प्रबन्धक अनेक कार्य करता है। उसके द्वारा किये जाने वाले कार्यों को निम्न भागों में बाँट सकते हैं :—

(१) उत्पादन प्रारम्भ करने का निश्चय करना
(२) उत्पादन के साधनों को एकत्रित करना
(३) उद्योग के स्थानीयकरण की समस्या हल करना
(४) उत्पादन की मात्रा या किस्म तय करना
(५) कच्चे माल की व्यवस्था करना
(६) श्रमिकों को उचित कार्य पर लगाना
(७) मशीन तथा औजारों का प्रबन्ध करना
(८) श्रमिकों के काम की देखभाल करना
(९) बने हुए माल को वेचने की व्यवस्था करना
(१०) खोज द्वारा नई नई विधियों का पता लगाना
(११) वस्तुओं की बाजारी माँग तथा पूर्ति सम्बन्धी ज्ञान रखना

(१) उत्पादन प्रारम्भ करने का निश्चय करना—प्रबन्धक का यह कार्य होता है कि वह उत्पादन सम्बन्धी योजना तैयार करे। आँकड़ों के आधार पर वह यह पता लगाता है कि किस स्थान पर उद्योग स्थापित किया जाय, कितनी मात्रा में और किस किस्म का माल तैयार किया जाय, उत्पादन के विभिन्न साधनों को कितना कितना पुरस्कार दिया जाय और ऐसा करने पर उत्पादन व्यय कितना पड़ेगा, बाजार में उस वस्तु का मूल्य क्या है और उत्पादन करने पर कितने लाभ की सम्भावना है। यह सब पता लगाने के उपरान्त वह एक योजना पत्र बनाते हैं, उसकी रजिस्ट्री कराते हैं, उसकी विवरण पत्रिका निकलवाते हैं और उसके आधार पर उत्पत्ति के विभिन्न साधनों का सहयोग प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।

(२) उत्पादन के विभिन्न साधनों को एकत्रित करना—प्रबन्धक का यह भी कार्य है कि वह उत्पादन के विभिन्न साधनों का सहयोग प्राप्त करे। श्रम और भूमि सुगमता से मिल जाते हैं। कठिनाई पूँजी एकत्रित करने तथा साहसी खोजने में होती है। इसके लिये वह अपनी योजना को लेकर बड़े-बड़े उद्योग-पतियों तथा पूँजी-पतियों के पास जाते हैं और उन्हें अपनी योजना की अच्छाई बताते हैं। उनके सन्तुष्ट होने पर ही पूँजी तथा जोखिम की समस्या पूरी हो पाती है। विख्यात उद्योग-पति तथा पूँजी-पति जब योजना से सन्तुष्ट हो जाते हैं, तो अपना नाम देकर जनता को यह बता देते हैं

कि उन्हें इस बात का विश्वास है कि यह योजना लाभदायक है। जनता तभी विश्वास करती है और तभी आयोजित कम्पनी के हिस्से खरीदती है।

(३) उद्योग के स्थानीयकरण की समस्या तय करना—प्रबन्धक को यह निश्चय करना पड़ता है कि उद्योग कहाँ पर स्थापित किया जाय। उसे यह देखना पड़ता है कि किस स्थान पर उद्योग स्थापित करने से वस्तु की बिक्री अधिक होगी और उसे कम प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ेगा। स्थानीयकरण के नियम सम्बन्धी बातों को ध्यान में रख कर वह यह पता लगा लेता है कि किस स्थान पर कारखाने खोलने से उत्पादन व्यय सबसे कम होगा। इन्हीं बातों के आधार पर वह कारखाने को अनुकूलतम स्थान पर स्थापित करता है।

(४) उत्पादन की मात्रा तथा किस्म निश्चित करना—प्रबन्धक को यह भी निश्चित करना पड़ता है कि वह कितनी वस्तु पैदा करे। इसके लिये उसे कई बातों को ध्यान में रखना पड़ता है। सबसे पहले उसे यह देखना पड़ता है कि वस्तु की कुल माँग कितनी है और माँग बढ़ने की कितनी संभावना है। इससे बाद उसे यह देखना होता है कि विभिन्न मूल्यों पर वस्तु की कितनी माँग होगी। इसके बाद उसे यह देखना होता है कि किस मूल्य पर वह कितनी वस्तु बेंच सकेगा और उसे कितनी प्रतिस्पर्धा का सामना करना होगा। इन सब बातों को ध्यान में रखकर ही वह उत्पादन की मात्रा तय करता है।

उत्पादन की मात्रा के साथ उसे यह भी सोचना होता है कि वह किस किस्म की वस्तु पैदा करे। उदाहरण के लिये सूती कपड़े की मिल के एक प्रबन्धक को यह तय करना पड़ता है कि वह मोटा कपड़ा तैयार करे या महीन, कम महीन कपड़ा तैयार करे या अधिक महीन, महीन कपड़ों में धोती तैयार करे या मलमल या कमीज का कपड़ा आदि। विभिन्न किस्म के कपड़ों की माँग, उनकी पूर्ति तथा उनके उत्पादन-व्यय को ध्यान में रखकर ही वह इस बात का निर्णय करता है।

(५) कच्चे माल की व्यवस्था करना—प्रबन्धक को यह निश्चय करना पड़ता है कि वह किस प्रकार के कच्चे माल का प्रयोग करे। उदाहरण के लिये सूती कपड़े की मिल के एक प्रबन्धक को यह सोचना पड़ता है कि वह लम्बी रुई को प्रयोग में लाये या कम लम्बी रुई को या छोटी रुई को। शक्ति बिजली से प्राप्त करे या कोयले से, और विभिन्न रासायनिक पदार्थों में से किसका प्रयोग करे। इसके लिये यह आवश्यक है कि वह प्रत्येक के गुण-दोषों को जाने।

प्रबन्धक को यह भी तय करना पड़ता है कि कच्चा माल वह किस स्थान से प्राप्त करे। उदाहरण के लिये कोयला झरिया या रानीगंज से ले या अन्य किसी खान से, रुई अहमदाबाद से ले या बम्बई या भड़ौंच से, और रासायनिक पदार्थ बम्बई से खरीदे या कलकत्ते से या विदेशों से आयात करे।

इन सब बातों के साथ-साथ उसे यह भी देखना होता है कि उत्पादन के समय कच्चे माल की कमी न पड़े। अतएव उसे यह निर्णय करना पड़ता है कि कितना माल जोड़कर रखा जाय और कितना किस समय खरीदा जाय जिससे कच्चा माल खराब भी न हो और रुपया भी बेकार न फँसे।

(६) **श्रमिकों को उचित कार्य पर लगाना**—प्रबन्धक का यह भी कार्य है कि प्रत्येक श्रमिक को उसकी योग्यता के अनुसार काम दे। उसमें इतनी बुद्धि होनी चाहिए कि मजदूर की कार्य-शक्ति कितनी है, उसका झुकाव किस ओर है और वह कितना होशियार या निपुण है। उचित श्रमिक को उचित कार्य देने से उत्पादन व्यय कम होता है और सामान भी अच्छा तैयार होता है।

(७) **मशीनों तथा औजारों का प्रबन्ध**—प्रबन्धक को यह देखना होता है कि उत्पादन किस प्रकार की मशीनों से किया जाय। उसको इस बात का ध्यान रहता है कि नई से नई मशीनों को प्रयोग किया जाय। परन्तु उसे इस बात का भी ध्यान रखना होता है कि देश के मजदूरों की योग्यता, शिल्प-शिक्षा तथा वैज्ञानिक ज्ञान इतना है कि नहीं कि वह इन मशीनों का प्रयोग ठीक से कर सकेंगे। साथ ही उसे यह भी देखना होता है कि काम के समय औजारों की कमी न पड़ जाय जिससे श्रमिकों को बेकार बैठना न पड़ जाय।

(८) **श्रमिकों के काम की देख-भाल करना**—प्रबन्धक को यह देखना होता है कि प्रत्येक मजदूर ठीक से काम कर रहा है या नहीं, वह कहीं बेकार तो नहीं बैठा, उसका काम किस्म में खराब तो नहीं है और मिल में जो सामान बन रहा है उसकी किस्म ठीक है या नहीं। इस कार्य के लिये वह फोरमैन (Foreman) को नियुक्त कर देता है जो बराबर घूमते रहते हैं और श्रमिकों के कार्य के ऊपर निगाह रखते हैं।

(९) **बने माल के बेचने की व्यवस्था करना**—प्रबन्धक को यह भी देखना होता है कि उत्पादित वस्तु उपभोक्ताओं के पास तक पहुँच जाय। इसके लिये उसे यह देखना पड़ता है कि विभिन्न स्थानों पर वस्तु की कितनी माँग है और उसी के अनुसार उसे अपनी वस्तु विभिन्न स्थानों को भेजनी होती है। साथ ही वह यह भी ध्यान में रखता है कि वस्तु का मूल्य उसे उचित मिल रहा है या नहीं।

(१०) **खोज द्वारा नई-नई विधियों का पता लगाना**—प्रबन्धक को यह भी देखना रहता है कि बाजार में कौन सी नई मशीन आ गई है और उत्पादन प्रणाली में कोई उन्नति हुई है या नहीं। यही नहीं, वह निरन्तर खोज कराता रहता है और इस प्रयत्न में रहता है कि नये-नये आविष्कारों द्वारा उत्पादन व्यय में कमी आ जाय।

माँग तथा पूर्ति सम्बन्धी ज्ञान रखना—प्रबन्धक का यह काम है कि वह बाजार की स्थिति का बराबर अध्ययन करता रहे और इस बात का पता लगाता रहे कि भविष्य में माँग कम होने की सम्भावना है या बढ़ने की। उपभोक्ताओं की रुचियों में होने वाले परिवर्तनों का भी वह अध्ययन करता रहता है और उसके अनुसार उत्पादन की मात्रा तथा किस्म भी बदलता रहता है। वह इस बात का भी ध्यान रखता है कि विभिन्न उत्पादक कितनी मात्रा में वस्तु तैयार कर रहे हैं और भविष्य में पूर्ति बढ़ेगी या नहीं। इन बाजारी परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए, वह अपनी मिल के उत्पादन में यथा-आवश्यक परिवर्तन करता रहता है।

४· संगठन की कार्यक्षमता

(Efficiency of Organisation)

एक निश्चित समय में मात्रा में अधिक या गुण में अच्छी या कम उत्पादन व्यय पर किसी वस्तु को तैयार करने की शक्ति को ही संगठन या प्रबन्ध की कार्य-क्षमता कहते हैं। प्रबन्धक उत्पादन का संचालक है। जिस प्रकार फौज की किसी टुकड़ी की सफलता या असफलता उसके कप्तान की हिम्मत और निपुणता पर निर्भर रहती है, ठीक उसी प्रकार एक उद्योग की सफलता या असफलता उसके प्रबन्धक पर निर्भर रहती है। अतएव उद्योग की सफलता के लिए यह बहुत आवश्यक है कि प्रबन्धक निपुण हो। एक निपुण प्रबन्धक में निम्न गुण होने चाहिये :—

(१) दूरदर्शिता (Foresight)

प्रबन्धक के लिये यह बहुत आवश्यक है कि वह दूरदर्शी हो। उसमें इतनी बुद्धि और विवेक हो कि वस्तु की माँग तथा पूर्ति में होने वाले परिवर्तनों से तथा उनके कारणों से उसको पूरी जानकारी हो। उपभोक्ताओं की रुचियों में कैसा परिवर्तन हो रहा है इसका उसे ज्ञान हो। बाजार में जो नई नई फैशनों का चलन हो रहा है और जिस प्रकार की डिजाइनों की माँग है उसको वह जानता हो और बाजारी स्थिति का उसे पूर्ण ज्ञान हो। उसमें इतनी दूरदर्शिता होनी चाहिये कि भविष्य में होने वाले परिवर्तनों का वह सही सही अनुमान लगा सके। जितना सही अनुमान वह लगा सकेगा, उतना ही वह कुशल कहलावेगा।

(२) संगठन की शक्ति

उत्पत्ति के विभिन्न साधनों को एक सूत्र में बाँधकर उनका पूरा पूरा सहयोग पाने की शक्ति उसमें होनी चाहिये। उसको इतनी समझ होनी चाहिये कि आदमी को देखते ही वह समझ ले कि यह व्यक्ति किस काम का है और क्या काम सुगमता से कर सकता है। एक प्रबन्धक की निपुणता इसी में है कि काम करने वाले सभी

साधन बिना किसी मन-मुटाव के प्रसन्नता से काम करते रहें। उसे प्रत्येक साधन की उचित माँगों को ध्यान में रखकर उनकी भलाई का ध्यान रखना चाहिये।

(३) प्रभाव डालने की योग्यता

प्रबन्धक का व्यक्तित्व रोबीला होना चाहिये जिससे उसके नीचे काम करने वालों पर उसका प्रभाव पड़े। उसकी बात-चीत के ढंग से ऐसा लगना चाहिये कि वह बहुत समझदार और योग्य है। उसमें हिम्मत और साहस पर्याप्त मात्रा में होना चाहिये जिससे वह संकटों का सामना कर सके। उसके लिये यह आवश्यक है कि अपनी बात-चीत से वह लोगों में विश्वास पैदा कर सके। तभी वह लोगों पर समुचित प्रभाव डाल सकेगा।

(४) विज्ञान तथा शिल्प-कला का ज्ञान

प्रबन्धक तभी निपुण हो सकता है जब उसे उद्योग संबंधी सभी विशिष्ट (Technical) बातों का पूर्ण ज्ञान हो। काम किस प्रकार होता है, उसके लिए किन किन वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है, इन वस्तुओं को किस प्रकार मिलाया जाता है आदि बातों का ज्ञान उसे होना चाहिये। उसे मशीन तथा औजारों की समझ होनी चाहिये जिससे वह यह समझ जाय कि कौनसी मशीन अच्छी है और कौनसी बुरी। तभी वह अच्छी से अच्छी मशीनों को तथा उत्पादन-विधि को प्रयोग में ला सकेगा।

५. संगठन के उद्देश्य

(Aims of Organisation)

प्रत्येक प्रबन्धक इस बात का प्रयास करता है कि वह उद्योग का संगठन करने से उचित रूप से करे। उद्योग का संगठन उचित रूप से उसे लाभ यह है कि अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में वह सफल हो जाता है। एक प्रबन्धक निम्न उद्देश्यों को प्राप्त करना चाहता है।

(१) न्यूनतम लागत पर उत्पादन—प्रबन्ध की यही इच्छा रहती है कि वह कम से कम लागत मूल्य पर उत्पादन करे। स्पष्ट है कि लागत मूल्य जितना ही कम होगा उतनी ही अधिक इस बात की सम्भावना होगी कि प्रबन्धक अन्य उद्योग-पतियों की प्रतिस्पर्धा में ठहर सके।

(२) वृद्धिमान उत्पत्ति पर उत्पादन करना—प्रबन्धक की यही इच्छा रहती है कि उद्योग से वृद्धिमान उत्पत्ति प्राप्त होती रहे। इसके लिये वह उत्पादन के विभिन्न साधनों को उचित मात्रा में लगाता है और इस प्रयत्न में बराबर लगा रहता है कि महँगे साधन के स्थान पर एक सस्ता साधन प्रयोग में लाया जा सके।

(३) प्रबन्ध में मितव्ययता—एक प्रबन्धक का उद्देश्य यही होता है कि वह उत्पादन में किसी भी प्रकार की बर्बादी न होने दे। न तो श्रमिक ही बेकार बैठें और न कच्चा माल ही बेकार जाय। इस प्रकार उसका प्रयास यह रहता है कि उत्पादन में अधिक से अधिक मितव्ययता हो सके।

६. भारत में संगठन

(Organisation in India)

भारत में सुयोग्य संगठन-कर्ताओं की भारी कमी है। इसी कारण कुछ प्रबन्धकों के हाथ में ही देश के अधिकांश उद्योग-धन्धे हैं। उदाहरण के लिये बिड़ला ब्रदर्श २०-२५ मिलों का प्रबन्ध करते हैं। इसी प्रकार डालमिया अखबार, मोटर, हवाई जहाज, बैंक, जूट मिल, बिस्कुट, चीनी की मिल आदि का प्रबन्धक करते हैं।

देश में पाये जाने वाले विभिन्न उद्योग-धन्धों को मोटे रूप से तीन भागों में बाँटा जा सकता है—(१) कृषि, (२) कुटीर उद्योग-धन्धे और (३) बड़े पैमाने के उद्योग-धन्धे। इनमें प्रबन्ध की क्या दशा है यह नीचे बताई गई है।

कृषि में संगठन की दशा

यद्यपि हमारे देश के लिये कृषि उत्पादन का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन है, फिर भी इसका संगठन बहुत बुरा है। देश में बड़े-बड़े खेत नहीं हैं और किसान छोटे-छोटे खेतों का प्रबन्ध स्वयं ही करते हैं। निर्धनता के कारण न तो वह खाद का ही प्रबन्ध करने पाते हैं, न अच्छे बीजों का, न समय पर पानी देने पाते हैं और न फसल को उचित स्थान पर बेचने पाते हैं। हमारे कहने का मतलब यह नहीं है कि भारतीय किसानों में इतनी शक्ति या बुद्धि नहीं है कि वह कृषि का ठीक से प्रबन्ध कर सकें। परन्तु अपनी निर्धनता और विवशताओं के कारण वह उचित रूप से प्रबन्ध नहीं कर पाते।

कुटीर उद्योग-धन्धों का प्रबन्ध

हमारे देश में कुटीर उद्योग-धन्धों का भी उचित रूप से प्रबन्ध नहीं होता। न तो उनमें पूँजी की ही ठीक से व्यवस्था हो पाती है और न कच्चा माल ही समय पर प्राप्त होता है। बने हुए माल के विपणन (Marketing) का भी ठीक से प्रबन्ध नहीं हो पाता। इसका कारण यह है कि कुटीर उद्योग-धन्धों की भाँति काम करने वाले व्यक्ति प्रायः कम पूँजी वाले होते हैं और पूँजी के अभाव के कारण ही वह अच्छा प्रबन्ध नहीं कर पाते। इधर राज्य की सरकारें कुटीर धन्धों के विकास की ओर ध्यान दे रही हैं और इस बात की संभावना है कि भविष्य में प्रबन्ध अच्छा होने लगे।

बड़े पैमाने के उद्योग-धन्धों का संगठन

हमारे देश में बड़े पैमाने के उद्योग-धन्धों का संगठन अच्छे प्रकार से हो रहा हैं। पहले बड़े पैमाने के उद्योग-धन्धों का प्रबन्ध विदेशियों के हाथ में था। परन्तु अब प्रबन्ध बहुत कुछ भारतीयों के हाथ में आ गया है और फिर भी प्रबन्ध बुरा नहीं है।

परन्तु प्रबन्ध की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि अधिकांश मिलों का प्रबन्ध थोड़े से व्यक्तियों के हाथ में है। यहाँ पर प्रबन्ध-कारणी-एजेन्सी-प्रणाली (Managing Agency System) का चलन है और इस प्रणाली के ही कारण कुछ इनेगिने व्यक्तियों के हाथ में देश के अधिकांश उद्योग-धन्धों का प्रबन्ध है। आवश्यकता इस बात की है नये नये प्रबन्धक आगे आवें जिससे प्रबन्ध में स्फूर्ति आवे और कुछ लोगों पर अधिक मात्रा में आश्रित रहने की अनुचित दशा समाप्त हो जाय। इसके लिये देश के होनहार नवयुवकों को औद्योगिक संगठन की शिक्षा देने के लिये विदेश भेजना चाहिए।

परीक्षा-प्रश्न

उत्तर-प्रदेश, इन्टर आर्ट्स

(१) संगठन का क्या अर्थ है ? यदि हाथ से बने कपड़े के उद्योग की व्यवस्था करने को आपसे कहा जाय तो आप संकठन कैसे करेंगे ? (१९४४)

उत्तर-प्रदेश इन्टर कामर्स

(२) "प्रबन्ध औद्योगिक इकाइयों का प्राण है।" इस कथन को स्पष्ट कीजिये। (१९४८)

पटना इन्टर कामर्स

(३) उद्योग के संगठन के कार्यों का वर्णन कीजिये। उसे सफल होने के लिये कौन-कौन से गुण होने चाहिए ? (१९५०)

सागर इन्टर कामर्स

(४) पूँजी का उत्पादन में क्या कार्य है ? इसके कार्य का संगठनकर्त्ता के कार्य से भेद कीजिये। (१९५१)

अड़तालीसवाँ अध्याय

उद्योगों का स्थानीयकरण

(Localisation of Industries)

व्यक्तियों की भाँति शहरों तथा प्रदेशों में भी विशेषज्ञता प्राप्त करने के लिये प्रतिस्पर्धा होती है। व्यक्ति श्रम-विभाजन के द्वारा विशेषज्ञता प्राप्त करते हैं। श्रम-विभाजन का अन्तिम रूप भौगोलिक श्रम-विभाजन या स्थानानुसार श्रम-विभाजन है। इसके अन्तर्गत एक नगर या जिला या प्रदेश किसी विशेष वस्तु के उत्पादन में विशेषज्ञता प्राप्त कर लेता है और इस कारण वह अन्य वस्तु का उत्पादन कम कर उसी वस्तु का उत्पादन करने लगता है। इस प्रकार की भौगोलिक विशेषज्ञता के अनेक उदाहरण हैं। इंगलैंड में लंकाशायर सूती कपड़े के उत्पादन में बहुत प्रसिद्ध है और शेफील्ड ने काँटे-छुरी बनाने के कार्य में विशेष ख्याति प्राप्त करली है। भारत में बंगाल जूट के उत्पादन के लिये बहुत प्रसिद्ध है और बम्बई तथा अहमदाबाद में सूती कपड़े के कारखाने अधिक पाये जाते हैं। उत्तर प्रदेश तथा बिहार में चीनी के कारखाने अधिक मात्रा में केन्द्रित हैं और टाटानगर लोहे तथा स्पात के उद्योग के लिये प्रसिद्ध है।

१· स्थानीयकरण का अर्थ

(Meaning of Localisation)

किसी स्थान में किसी विशेष उद्योग के केन्द्रित होने की प्रवृत्ति को स्थानीयकरण कहते हैं। अन्य शब्दों में कारखानों की इस प्रवृत्ति को, कि एक ही प्रकार के सब कारखाने किसी विशेष स्थान पर केन्द्रित हो जायँ, स्थानीयकरण कहते हैं।

२. स्थानीयकरण के कारण

(Causes of Localisation)

प्रश्न यह उठता है कि एक ही प्रकार के कारखानों की किसी विशेष स्थान पर केन्द्रित हो जाने की प्रवृत्ति क्यों होती है ? आखिर ऐसा क्यों है कि भारत में जूट की अधिकांश मिलें बंगाल में केन्द्रित हैं, सूती कपड़े की मिलें बम्बई और अहमदाबाद में हैं, चीनी की मिलें उत्तर-प्रदेश तथा बिहार में, बर्तन बनाने का काम मुरादाबाद में अधिक होता है और ज़री के काम के लिये बनारस प्रसिद्ध है। यह

ठीक है कि उत्पादन आरम्भ करने के पहिले प्रबन्धक को यह सोचना पड़ता है कि वह उद्योग कहाँ पर स्थापित करे जिससे उत्पादन कम से कम मूल्य पर हो सके। सही निर्णय पर पहुँचने के लिये उसे अनेक बातें ध्यान में रखनी होती हैं जैसे कच्चे माल की प्राप्ति, अनुकूल जलवायु, शक्ति के साधनों की प्राप्ति, बाजार की निकटता, यातायात तथा सन्देश-वाहक साधनों की उन्नति आदि। इन सभी बातों के सामूहिक प्रभाव को ध्यान में रखकर ही वह यह निर्णय करता है कि किस स्थान पर उद्योग स्थापित करे।*

(१) **कच्चे माल की प्राप्ति**—उद्योगपति वहीं पर उद्योग स्थापित करते हैं जहाँ कच्चा माल सुगमता से तथा पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो। अतः जिन स्थानों पर कच्चा माल पाया जाता है उद्योग-धन्धे वहीं पर केन्द्रित हो जाते हैं। उदाहरण के लिये कलकत्ता में जूट की मिलों का केन्द्रित होने का मुख्य कारण यही है कि बंगाल में कच्चा जूट (पटसन) अधिक मात्रा में पैदा होता है। टाटा-नगर में स्पात का कारखाना इसी कारण खुला बम्बई तथा अहमदाबाद में रुई की अधिक उपलब्धि के कारण ही वहाँ सूती कपड़े के कारखाने हैं। जिन उद्योगों में ऐसा कच्चा माल प्रयोग में लाया जाता है जो वजन में भारी होता है और जिसका मूल्य वजन के हिसाब से कम होता है, वह उद्योग-धन्धे कच्चे माल की प्राप्ति के स्थानों पर ही केन्द्रित होते हैं। इसका कारण यह है कि यदि कच्चे माल को किसी दूसरे स्थान पर ले जाया जाय तो अधिक वजन होने के कारण यातायात-व्यय बहुत अधिक पड़ जायगा।

ऐसे उद्योग भी जिनमें ऐसे कच्चे माल का प्रयोग होता है जिसे दूसरे स्थान को हटाया नहीं जा सकता कच्चे माल की प्राप्ति के स्थान पर ही केन्द्रित होते हैं। उदाहरण के लिये मछली पकड़ने का काम, लकड़ी काटने का उद्योग या

*"Localisation of industry depends upon the distance relations of all places with reference to natural resources and consumers' markets and the transportability of various goods"—Dr. P. S. Loknathan, *Iudustrial Organisation in India*, p. 55

डाक्टर रिचार्ड ने यही विचार निम्न शब्दों में रखे हैं। "An industry may be attracted to a certain district because of some natural advantage, such as easy access to raw-materials, or the possibilities of obtaining cheap power in the form of water or coal, or suitable climatic conditions. Other reasons may be the nearness of markets the, prospects of establishing a new market, cheap labour and good transport facilities"—Dr. R. D. Richards, *Groundwork of Economics*, p. r. 47-8.

खान खोदने का काम ले लीजिए। यह काम उसी स्थान पर हो सकते हैं जहाँ पर मछली या लकड़ी पाई जाती हैं या जहाँ खानें पाई जाती हैं।

(२) शक्ति के साधन की प्राप्ति—उद्योग उस स्थान पर भी केन्द्रित हो जाते हैं जहाँ शक्ति के साधन पर्याप्त मात्रा में, सुगमता से, तथा कम मूल्य पर मिल सकें। प्रारम्भ में शक्ति लकड़ी जलाकर प्राप्त की जाती थी। अतएव उद्योग-धन्धे जंगलों के पास केन्द्रित होते थे। इसके पश्चात् पानी का शक्ति के रूप में प्रयोग होने लगा। उस समय उद्योग-धन्धे नदियों तथा झरनों के आसपास केन्द्रित होते थे। जबसे कोयले का प्रयोग शक्ति के रूप में होने लगा है, उद्योग-धन्धे कोयले की खानों के आसपास ही केन्द्रित होने लगे हैं। आजकल जल-विद्युत् शक्ति (Hydro-Electric Power) का प्रयोग बहुत अधिक होने लगा है। अतएव उद्योग-धन्धे उन स्थानों पर ही अधिक पाये जाते हैं जहाँ जल-विद्युत्-शक्ति पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो। अब यह आवश्यक नहीं रहा कि उद्योग जल-विद्युत् के उत्पादन क्षेत्र के पास ही केन्द्रित हों क्योंकि तारों द्वारा यह शक्ति दूर-दूर तक भेजी जा सकती है। परन्तु उद्योग उसी स्थान पर केन्द्रित होंगे जहाँ जल-विद्युत् शक्ति प्राप्त हो।

(३) अनुकूल जलवायु—कुछ उद्योगों का केन्द्रित होना जलवायु पर भी निर्भर रहता है। उदाहरण के लिये सूती कपड़े का उद्योग उसी स्थान पर केन्द्रित हो सकता है जहाँ का जलवायु नम हो अन्यथा सूत के टूट जाने का डर लगा रहता है। इसी कारण सूती कपड़े का उद्योग इंगलैंड में लंकाशायर में और भारत में बम्बई राज्य में केन्द्रित है। वार्निश या पेन्टिंग का उद्योग वहीं पर स्थापित हो सकता है जहाँ धूप अच्छी तरह से निकलती हो। फोटोग्राफी के उद्योग के लिये अधिक गर्म जलवायु हानिकारक होता है। अतएव यह उद्योग अधिक गर्म प्रदेशों में स्थापित नहीं हो सकता। बहुत अधिक गर्म जलवायु या बहुत अधिक ठंडी जलवायु भी मनुष्य को कठिन परिश्रम करने नहीं देती। अतएव उद्योग-धन्धे उन्हीं स्थानों पर अधिक पाये जाते हैं जहाँ का जलवायु शीतोष्ण हो।

(४) बाजार की निकटता—उद्योग उन्हीं स्थानों पर केन्द्रित होते हैं जहाँ पर वस्तु की माँग होती है। प्राचीन समय में उद्योग राजधानियों के समीप स्थापित हुआ करते थे क्योंकि उन्हीं स्थानों पर वस्तुओं की बिक्री अधिक होती थी। आजकल बड़े शहरों की संख्या काफी बढ़ गई है। अतएव इस बात का ध्यान रखा जाता है कि उद्योग-धन्धे उन्हीं स्थानों पर स्थापित किये जायँ जहाँ बाजार पास हो जिससे यातायात का व्यय अधिक न पड़े।

शीघ्र नाशवान वस्तुओं का उत्पादन करने वाले बाजार की निकटता का विशेष ध्यान रखते हैं, क्योंकि उनकी वस्तु अधिक दूर स्थान तक नहीं भेजी जा सकती।

इसी कारण शहरों के आसपास ही दूध के डेरी फार्म पाये जाते हैं और शहरों के पास के गाँवों में साग-तरकारियों का उत्पादन अधिक किया जाता है।

(५) कुशल श्रम की उपलब्धि—जो उद्योग श्रमिकों की कुशलता पर निर्भर रहते हैं वे ऐसे स्थानों पर केन्द्रित होते हैं जहाँ कुशल श्रमिक अधिक मात्रा में पाये जाते हों। उदाहरण के लिए चूड़ी बनाने का काम ले लीजिए। इस काम में मशीन का प्रयोग अधिक नहीं होता और काँच का रंग, चूड़ी की सुन्दरता, चूड़ी की डिजाइन आदि श्रमिकों की कार्य-कुशलता पर निर्भर रहती हैं। अतएव यह उद्योग उन्हीं स्थानों पर केन्द्रित होता है जहाँ कुशल श्रमिक मिल जाते हैं। इसी कारण फरुखाबाद कपड़ों की छपाई के लिए, अलीगढ़ तालों के लिए, मुरादाबाद बर्तनों के लिए और बनारस रेशमी साड़ी तथा ज़री के काम के लिए प्रसिद्ध हैं।

(६) यातायात तथा संदेशवाहक साधनों की अधिक उन्नति—जिन स्थानों पर यातायात तथा संदेशवाहक साधनों की सुविधा है तथा ये साधन अच्छी और उन्नतिशील दशा में पाये जाते हैं, उद्योग-धन्धे वहीं केन्द्रित हो जाते हैं। यातायात के साधन यदि पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं तो कच्चा माल तथा मशीनों के मँगाने में और बना हुआ माल भेजने में बड़ी सुविधा रहती है। फिर यातायात-व्यय भी कम पड़ता है जिससे उत्पादन-लागत कम हो जाती है। यह बड़ा भारी लाभ है। उद्योगों के स्थानीयकरण के लिए स्थान चुनते समय प्रबन्धक केवल यही देखता है कि किस स्थान पर उत्पादन-लागत सबसे कम पड़ेगी।* डाक्टर लोकनाथन (Dr. P. S. Loknathan) ने इस बात पर बड़ा जोर दिया है और इसी कारण इन्होंने स्थानीयकरण के लिए आवश्यक बातों में यातायात तथा संदेशवाहक साधनों के सस्तेपन को बड़ा प्रमुख स्थान दिया है।

भारत में आप कलकत्ता तथा बम्बई के बन्दरगाहों को ले लीजिए। यहाँ पर उद्योगों का स्थानीयकरण बहुत शीघ्र ही प्रारंभ हो गया था और आजकल यहाँ अनेक उद्योग केन्द्रित हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि बन्दरगाह होने के कारण यहाँ विदेशों से मशीनों का आयात सुगमता से हो जाता है और बना हुआ माल भी देश के विभिन्न भागों में तथा विदेशों को सुगमता से भेजा जा सकता है।

(७) शीघ्र प्रारंभ का आवेग—कभी कभी कुछ स्थानों पर किसी आकस्मिक कारण से उद्योग-धन्धे खुल जाते हैं और फिर अन्य धन्धे भी वहीं पर केन्द्रित होने लगते हैं। किसी एक उद्योग के केन्द्रित हो जाने पर उस स्थान में यातायात,

* प्रसिद्ध अर्थशास्त्री अल्फ्रेड वैबर (Alfred Weber) जिनका स्थानीयकरण का सिद्धान्त अब भी सही माना जाता है, यातायात-व्यय पर विशेष महत्व देते हैं।

बैंक-संबन्धी, श्रम तथा शक्ति की सुविधायें प्राप्त होने लगती हैं। इन सुविधाओं के कारण अन्य उद्योगों का वहाँ पर केन्द्रित हो जाना लाभप्रद रहता है।

(८) **सहायक उद्योग**—जब कोई प्रमुख उद्योग किसी स्थान पर केन्द्रित हो जाता है तो अन्य सहकारी उद्योग भी उसी स्थान पर स्थापित हो जाते हैं। उदाहरण के लिये जहाँ पर सूती कपड़े की मिल होती हैं, वहीं पर रँगाई, धुलाई, छपाई आदि के उद्योग भी प्रारंभ हो जाते हैं। जहाँ पर जूतों का उद्योग होता है वहाँ पर डिब्बे बनाने का उद्योग भी केन्द्रित हो जाता है। जहाँ पर स्पात का कारखाना होता है वहीं पर सीमेन्ट (Cement) का उद्योग भी स्थापित हो जाता है।

(९) **श्रम, भूमि तथा पूँजी का सस्तापन**—स्थानीयकरण को प्रोत्साहन देने वाले अन्य अनेक कारण भी हैं जैसे सरकार की कर-संबन्धी नीति, श्रमिकों की सस्ती मजदूरी, भूमि और पूँजी का सस्तापन आदि।* यदि किसी एक स्थान पर उत्पादन-कर अधिक है और किसी दूसरे स्थान पर कम, तो उद्योग वहीं पर स्थापित होते हैं जहाँ टैक्स कम है। द्वितीय महासमर के पहिले (अर्थात् सन् १९३६-३९ के बीच) ब्रिट्रिश भारत से अनेक उद्योग उठकर देशी राजाओं के राज्यों में स्थापित हो गये थे क्योंकि वहाँ उत्पादन-कर कम था, श्रम तथा भूमि भी सस्ते थे, और सरकार पूँजी से उद्योगों की सहायता भी करती थी।

ऊपर स्थानीयकरण के जो कारण बताए गये हैं उन्हें दो भागों में बाँटा जा सकता है: (१) प्राकृतिक कारण, तथा (२) अन्य कारण। प्राकृतिक कारणों के अन्तर्गत उन सब प्राकृतिक तथा भौगोलिक सुविधाओं को ले लिया जाता है जिन पर स्थानीयकरण निर्भर है। बाकी के जितने भी कारण हैं उन्हें दूसरे विभाग में रखा जाता है। इस प्रकार स्थानीयकरण के कारणों का विभाजन निम्न प्रकार किया जा सकता है।

स्थानीयकरण के कारण

(अ) भौगोलिक कारण	(ब) अन्य कारण
१. कच्चे माल की प्राप्ति	१. बाजार की निकटता
२. शक्ति के साधन	२. यातायात तथा संदेशवाहक साधनों की उन्नति
३. जलवायु	३. शीघ्र प्रारंभ का आवेग
४. कुशल श्रमिकों की उपलब्धि	४. सहायक उद्योग
	५. श्रम, भूमि तथा पूँजी का सस्तापन

*"The location of industry depends.........upon the competition for labour, land, and capital within the area"—Dr. A. cairncross, *Introduction of Economics*, p. 58

३· स्थानीयकरण से लाभ

(Advantages of Localisation)

स्थानीयकरण से अनेक लाभ हैं। उन्हें नीचे बताया गया है :

(१) **कुशलता की वृद्धि**—जब कोई उद्योग किसी स्थान पर केन्द्रित हो जाता है तो वहाँ के श्रमिकों को उस उद्योग से सम्बन्धित सभी बातों का ज्ञान अच्छी प्रकार से हो जाता है। पीढ़ियों तक एक ही काम करते रहने के कारण श्रमिकों की कुशलता पैतृक हो जाती है। श्रमिकों के बच्चे छोटी उम्र से ही काम को देखते रहते हैं और उस कार्य की विभिन्न प्रणालियों तथा बारीकियों से पूर्णरूप से परिचित हो जाते हैं। इस प्रकार वह छोटी सी ही उम्र में उद्योग के सभी पहलुओं से पूर्णरूप से परिचित हो जाते हैं और इस प्रकार उनकी कुशलता में बहुत वृद्धि हो जाती है।

(२) **आविष्कारों की संभावना**—स्थानीयकरण के कारण उद्योग-धन्धों के अनेक विशेषज्ञ एक ही स्थान पर एकत्रित हो जाते हैं। वह सभी उसी उद्योग के सम्बन्ध में बातें करते हैं और उद्योग की उन्नति की बात करते रहते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि नये नये आविष्कारों की बात उन्हें सूझती है। उसी स्थान पर उद्योग सम्बन्धी सभी कार्य के विशेषज्ञों के होने के कारण आविष्कारों का प्रयोग बड़ी शीघ्रता से होने लगता है और इससे उद्योग को बड़ा लाभ होता है।

(३) **अवशिष्ट पदार्थों का प्रयोग**—स्थानीयकरण से एक लाभ यह भी है कि उस स्थान पर अनेक सहायक उद्योग-धन्धे भी स्थापित हो जाते हैं। सहायक उद्योग-धन्धों से हमारा तात्पर्य उन उद्योगों से है जिनमें किसी अन्य उद्योग का अवशिष्ट पदार्थ (Waste-product) कच्चे माल की भाँति प्रयोग में लाया जाता है। उदाहरण के लिये स्पात के कारखानों का अवशिष्ट पदार्थ जिसे 'स्लैग' (Slag) कहते हैं सीमेन्ट के उद्योग में कच्चे माल की भाँति प्रयोग में लाया जाता है। इसी प्रकार चीनी की मिलों से निकले हुए गन्ने के छिलके कागज़ बनाने की मिलों में कच्चे माल की भाँति प्रयोग में आते हैं। इस कारण स्पात के कारखानों के पास सीमेन्ट के कारखाने, चीनी की मिलों के पास कागज की मिलें और माँस के उद्योग के पास दवाइयों के उद्योग केन्द्रित हो जाते हैं।

पूरक उद्योगों की स्थापना—स्थानीयकरण के कारण पूरक (Supplementary) उद्योग-धन्धों की स्थापना हो जाती है। उदाहरण के लिये लोहे के कारखानों के आस-पास कीलें, पेच, कब्जे, आदि बनाने के उद्योग स्थापित हो जाते हैं। ऐसे उद्योग-धन्धों के पास जिनमें मनुष्य काम करते हैं, कुछ ऐसे उद्योग-धन्धे स्थापित हो जाते हैं जिनमें स्त्रियाँ और बालक काम कर सकते हैं। उदाहरण के लिये लोहे के कारखानों के पास रेशमी कपड़े का उद्योग स्थापित हो जाता है।

(४) ख्याति—स्थानीयकरण के कारण वह स्थान जहाँ अनेक उद्योग केन्द्रित हैं बहुत प्रसिद्ध हो जाता है और धीरे धीरे उस स्थान की ख्याति इतनी अधिक फैल जाती है कि मनुष्य बिना जाँच-पड़ताल किये उस स्थान का बना माल खरीदने लगते हैं। उदाहरण के लिये अलीगढ़ ने तालों के बनाने में विशेष ख्याति पाली है। हाथरस चाकू बनाने के लिये प्रसिद्ध है। फरूखाबाद के बने रजाई के पर्त दूर दूर तक प्रसिद्ध हैं। मिर्जापुर के कालीन संसार भर में प्रसिद्ध हैं। अतएव इन स्थानों की बनी हुई ये चीजें व्यक्ति बड़ी सुगमता से खरीद लेते हैं।

(५) व्यापारिक यन्त्रों की उन्नति—जिस स्थान पर कई उद्योग केन्द्रित हो जाते हैं वहाँ पर यातायात के साधन जैसे बैंक, बीमा कम्पनियाँ तथा सन्देश-वाहक साधन आदि भी स्थापित हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि स्थानीय-करण के कारण उस स्थान पर सामान का आना जाना बहुत बड़ी मात्रा में होने लगता है। व्यापारिक यन्त्रों की उन्नति के कारण उद्योग-धन्धों को बड़ा लाभ होता है।

(६) उद्योगपतियों में सहयोग—अनेक उद्योगों के एक ही स्थान पर केन्द्रित होने के कारण अनेक उद्योगपति एक ही स्थान पर बस जाते हैं और उनमें संपर्क तथा सहयोग बढ़ जाता है। इस सहयोग के कारण उनमें प्रायः विचार विनिमय हुआ करता है जिससे उद्योग के संगठन को सुधारने में तथा श्रमिकों की समस्यायें सुलझाने में बड़ी सहायता मिलती है।

(७) पूँजी की सुविधा—एक ही स्थान पर अनेक उद्योगों के केन्द्रित हो जाने के कारण वहाँ अनेक पूँजीपति भी आकर बस जाते हैं। इन पूँजीपतियों के कारण उद्योगपतियों को पूँजी की कमी प्रतीत नहीं होती और इस कारण उद्योग की प्रगति नहीं रुकती। इस प्रकार उस स्थान पर पूँजी बड़ी सरलता तथा सुविधा से मिलने लगती है।

४. स्थानीयकरण से हानियाँ

(Disadvantages of Localisation)

स्थानीयकरण से कुछ हानियाँ भी हैं। उन्हें नीचे बताया गया है:

(१) कुशलता का ह्रास—स्थानीयकरण के कारण एक स्थान पर केवल एक ही प्रकार के उद्योग-धन्धे स्थापित होते हैं और इस कारण केवल एक ही प्रकार की योग्यता रखने वाले श्रमिकों की माँग वहाँ होती है। अतएव श्रमिक और सब काम भूलकर केवल एक ही काम करने में लग जाते हैं। इससे उनका विकास एकांगी हो जाता है और उन्हें अपनी बुद्धि और कुशलता का पूरा-पूरा विकास करने का अवसर

नहीं मिल पाता। कार्यशीलता के एकांगी विकास के कारण श्रमिकों की कुशलता कम हो जाती है।

(२) अत्यधिक निर्भरता—स्थानीयकरण के कारण एक क्षेत्र एक ही उद्योग पर पूर्ण रूप से निर्भर रहता है। जब तक उस उद्योग की आर्थिक स्थिति अच्छी रहती है, उस क्षेत्र भर की आर्थिक दशा ठीक रहती है। परन्तु यदि किसी कारण उस उद्योग में संकट आ जाय तो उस उद्योग पर आश्रित रहने वाले सभी उद्योग-धन्धों की दशा बिगड़ जाती है और इस प्रकार पूरे के पूरे क्षेत्र में भारी आर्थिक संकट छा जाता है। किसी एक उद्योग पर इतनी अधिक मात्रा में निर्भर रहना आर्थिक दृष्टि से उचित नहीं है।

(३) औद्योगिक नगरों के दोष—स्थानीयकरण के कारण उस क्षेत्र में बहुत सी मिलें खुल जाती हैं और उनमें काम करने के लिये हजारों लाखों मनुष्य वहाँ आकर बस जाते हैं। शहर की आबादी बढ़ जाने के कारण वहाँ का वातावरण बड़ा गन्दा हो जाता है और श्रमिक भी अनेक बुराइयाँ सीख जाते हैं। यही नहीं लोगों का स्वास्थ्य भी बहुत खराब हो जाता है।

(४) आक्रमण का भय—वर्तमान समय में लड़ने वाले देश इस बात का प्रयास करते हैं कि वह दूसरे की उत्पादन शक्ति का अन्त कर दें। इसका कारण स्पष्ट है। जब उत्पादन ही नहीं होगा तो वह देश युद्ध भी नहीं चला सकेगा। उत्पादन शक्ति को नष्ट करने के लिये औद्योगिक क्षेत्रों में बम गिराये जाते हैं और इस कारण ऐसे स्थानों पर जहाँ कई उद्योग केन्द्रित हैं आक्रमण का विशेष डर लगा रहता है।

स्थानीयकरण से होने वाले हानि तथा लाभों को देखने के उपरान्त यह कहा जा सकता है कि इससे लाभ अधिक तथा हानियाँ कम हैं। अतएव स्थानीयकरण लाभप्रद है।

५. उद्योगों का विकेन्द्रीयकरण

(Decentralisation of Industries)

आजकल के समय में कुछ लोगों की यह धारणा हो रही है कि उद्योगों का अधिक मात्रा में स्थानीयकरण अच्छा नहीं है क्योंकि जब एक ही स्थान पर बहुत से उद्योग-धन्धे केन्द्रित हो जाते हैं तो वहाँ ऐसी अनेक असुविधायें उत्पन्न हो जाती हैं कि लाभ के स्थान पर हानि अधिक होने लगती है। उदाहरण के लिये भारत में बम्बई तथा कलकत्ता जैसे बड़े-बड़े शहरों को ले लीजिए। यहाँ सड़कों पर चलना और सामान भेजना इतना कठिन हो जाता है कि मोटरों के आने-जाने में भी घंटों लग जाते हैं। मकानों की कमी इतनी हो जाती है कि लोगों को रहने के लिये मकान

नहीं मिलते। बम्बई में एक कोठरी में औसतन १५ व्यक्ति रहते हैं और कई लाख मनुष्य तो सड़कों की पटरियों पर ही सोते हैं। अधिक माँग के कारण श्रमिकों का वेतन अधिक बढ़ जाता है। साथ ही पूँजी की कमी भी प्रतीत होने लगती है। इस प्रकार अधिक स्थानीयकरण से लाभ के स्थान पर हानियाँ अधिक होती हैं। इसी कारण आजकल विकेन्द्रीयकरण (Decentralisation) की बात चल निकली है।

विकेन्द्रीयकरण स्थानीयकरण का ठीक उल्टा है। इसमें उद्योगों को अलग-अलग स्थानों पर केन्द्रित होने के लिये प्रोत्साहित किया जाता है। विकेन्द्रीयकरण की धारणा को निम्न बातों से प्रोत्साहन मिला है।

(१) विद्युत्-शक्ति का प्रयोग—उद्योगों में विद्युत्-शक्ति के प्रयोग के कारण यह आवश्यक नहीं रहा है कि शक्ति के प्राप्त होने के स्थान पर ही उद्योग केन्द्रित हों। जल-विद्युत्-शक्ति दूर-दूर तक भेजी जा सकती है और इस कारण उद्योग विभिन्न स्थानों पर स्थापित हो सकते हैं।

(२) राजनैतिक कारण—युद्ध के समय में देश की औद्योगिक शक्ति बनाये रखने के कारण यह आवश्यक समझा जाने लगा है कि उद्योग भिन्न-भिन्न स्थानों पर केन्द्रित हों जिससे यदि एक स्थान नष्ट कर दिया जाय तो दूसरे स्थान पर उत्पादन होता रहे।

(३) व्यापारिक यंत्रों की उन्नति—आजकल कुछ ऐसी प्रकृति चली है कि देश के कोने-कोने में यातायात, बैंक, बीमा आदि की सुविधायें बढ़ गई हैं। अतएव उद्योग कहीं भी स्थापित हो सकते हैं।

६. भारतीय उद्योगों का स्थानीयकरण
(Localisation of Indian Industries)

जूट का उद्योग—भारत में जूट की अधिकांश मिलें कलकत्ते में स्थापित हैं। इसका कारण यह है कि जूट बंगाल में अधिक पैदा होता है, कलकत्ते शहर में व्यापारिक यन्त्र काफी उन्नतिशील दशा में हैं, कोयला झरिया की खानों से आ जाता है, कलकत्ते के बन्दरगाह से मशीनों का आयात सुगमता से हो जाता है और कलकत्ते में ही कुशल श्रमिक भी प्राप्त हैं।

सूती कपड़े का उद्योग—भारत में सूती कपड़े का उद्योग उन्हीं स्थानों पर केन्द्रित है जहाँ रुई उगाई जाती है। इसका कारण यह है कि रुई बहुत हल्की होती है और काफी स्थान घेरती है। अतएव उसके भेजने में यातायात व्यय बहुत अधिक पड़ता है। इसी कारण भारत में काली मिट्टी वाले क्षेत्र में और मद्रास के आस पास कपड़े की बहुत अधिक मिलें पाई जाती हैं।

ध्यान रखने की बात है कि केवल कानपुर को छोड़कर बाकी के सब स्थानों की जलवायु नम है। कानपुर में भी कृत्रिम साधनों से मिलों की जलवायु नम रक्खी जाती है।

कपड़े की कुछ मिलें उन स्थानों पर भी केन्द्रित हो गई हैं जहाँ कपड़े की माँग अधिक है। उदाहरण के लिये कानपुर, देहली, अमृतसर आदि शहरों को ले लीजिये।

चीनी का उद्योग—भारत में चीनी की अधिकांश मिलें उत्तर प्रदेश तथा बिहार राज्यों में पाई जाती हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि ईख सस्ती परन्तु अधिक वजनी वस्तु है और इसको भेजने में यातायात-व्यय बहुत अधिक पड़ जाता है। इस कारण उद्योग वहीं पर केन्द्रित हो सकते हैं जहाँ पर ईख पैदा की जाती हो।

फौलाद तथा स्पात का उद्योग—बिहार राज्य में स्थित टाटानगर (Tatanagar) इस उद्योग के लिये विशेष प्रसिद्ध है। टाटा स्टील कम्पनी गुरुमुहसानी नामक खान से लोहा मँगाती है जो जमशेदपुर से ५० मील दूर है, कोयला झरिया की खान से मँगाती है जो १०० मील दूर है चूना तथा डीलोमाइट पास ही मिल जाते हैं, स्वर्णरेखा नदी पास ही से बहती है और उसका पानी लोहा ठंडा करने के काम में आता है। इस प्रकार इस उद्योग के स्थापन के लिये सभी सुविधायें प्राप्त हैं।

भारत में कुछ ऐसे उद्योग भी हैं जिनका स्थानीयकरण वैज्ञानिक ढंग से उचित स्थान पर नहीं हुआ है। परन्तु बड़े पैमाने के अधिकांश उद्योग-धन्धे उचित स्थान पर ही केन्द्रित हैं।

परीक्षा-प्रश्न

उत्तर-प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—उद्योगों के स्थानीयकरण से आप क्या समझते हैं? उन कारणों का विवेचन कीजिये जिनसे यह उत्पन्न होता है? (१९५३)

२—धन्धों के स्थानीयकरण के कारण, लाभ और हानि समझा कर लिखिये। (१९५१, १९४७)

उत्तर प्रदेश इन्टर कामर्स

३—उद्योग-धन्धों के केन्द्रीयकरण के क्या कारण हैं? इसके मुख्य लाभों और शक्तियों को दर्शाइये। (१९५१)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

४—उद्योग-धन्धों के स्थानीयकरण के कारण, लाभ व हानि बताइये। (१९५३)

५—उद्योग-धन्धों के स्थानीकरण के कारण बताइये। बम्बई में सूती कपड़े के उद्योग के संदर्भ में अपना उत्तर दीजिये। (१९५१)

६—उद्योगों के स्थानीयकरण के कारण तथा इससे होने वाले हानि-लाभ बताइये। भारतीय उद्योग का उदाहरण दीजिये। (१९४७)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर कामर्स

७—उद्योगों के स्थानीयकरण के कारण बताइये और इसके मुख्य लाभ-हानि का वर्णन कीजिये। (१९५२)

८—उद्योगों के स्थानीयकरण पर एक टिप्पणी लिखिये। (१९४९)

९—उद्योग-धन्धों के स्थानीयकरण से आप क्या अर्थ लेते हैं? उन बातों की परीक्षा कीजिये जिनसे उद्योगों का स्थानीयकरण होता है। (१९४६)

सागर इन्टर आर्ट्स

१०—बिहार में महत्वपूर्ण उद्योगों के स्थापित होने के स्थानों को बताइये। वह इन स्थानों पर क्यों स्थापित हुए हैं? (१९५२)

पटना इन्टर कामर्स

50 ✓११—उद्योग-धन्धों के स्थानीयकरण के साधन बताइये और साथही भारत के दो उद्योग धन्धों का, जिनका स्थानीयकरण हो गया है, उदाहरण दीजिए। (१९५२)

सागर इन्टर आर्ट्स

१२—उद्योग-धन्धों के स्थानीयकरण से आप क्या समझते हैं? उसके क्या कारण हैं? स्थानीयकरण के मुख्य लाभों का वर्णन कीजिये। (१९४८)

सागर इन्टर कामर्स

१३—किसी एक उद्योग का स्थानीयकरण किन बातों पर निर्भर है? (१९४८)

———

उन्चासवाँ अध्याय

उत्पादन की मात्रा

(Scale of Production)

प्राचीन समय में जब मशीनों का प्रयोग अधिक व्यापक नहीं हुआ था और उद्योगपति श्रम-विभाजन तथा विशेषीकरण से होने वाले लाभों से परिचित न थे, उत्पादन छोटी मात्रा में ही होता था। थोड़ी सी पूँजी लगाकर, स्वयं मेहनत कर तथा अपने परिवार के व्यक्तियों के सहयोग से व्यक्ति उत्पादन करते थे। इस प्रकार उत्पादन थोड़ा सा ही होता था। परन्तु वस्तु की माँग भी कम थी। अतएव माँग तथा पूर्ति के संतुलन में कठिनाई नहीं होती थी। परन्तु जैसे-जैसे मनुष्य ने प्रगति करना प्रारम्भ किया, उसकी आवश्यकताएँ बढ़ने लगीं और इस कारण वस्तुओं की माँग बढ़ गई। इस बढ़ी हुई माँग को सन्तुष्ट करने के लिए यह आवश्यक था कि उत्पादन भी बड़ी मात्रा में हो। औद्योगिक क्रान्ति के कारण मशीनों का प्रयोग बढ़ा। धीरे धीरे * उद्योगपति श्रम-विभाजन का महत्व समझने लगे और मशीनों के अधिक प्रयोग से वह और भी अधिक व्यापक हो गया। श्रम-विभाजन का अंतिम रूप स्थानीयकरण है जिसमें व्यक्ति ही नहीं, वरन् स्थान भी विशेषज्ञता प्राप्त कर लेते हैं। यातायात तथा व्यापार के अन्य साधनों की उन्नति के फलस्वरूप पूँजी का आना-जाना भी सुगम हो गया और उत्पादन बड़े-पैमाने पर होने लगा। आजकल स्थिति यह है कि सभी व्यक्ति बड़े पैमाने पर ही उत्पादन करना चाहते हैं और जहाँ तक संभव हो सकता है बड़े से बड़े पैमाने पर उत्पादन करते हैं। इसका कारण बड़ी मात्रा में उत्पादन करने से होने वाले अनेक लाभ हैं।

१. बड़ी मात्रा में उत्पादन

(Large-Scale Production)

अर्थ

बड़ी मात्रा के उत्पादन से हमारा तात्पर्य केवल यही नहीं है कि उत्पादन थोड़ा सा न होकर बहुत अधिक हो। परन्तु जब उत्पादन के सभी साधनों को एक बड़ी मात्रा में एकत्रित कर उत्पादन किया जाता है, तो इस उत्पादन-प्रणाली को बड़ी मात्रा का उत्पादन कहते हैं। अन्य शब्दों में बहुत सा कच्चा माल इकट्ठा कर, बहुत सी पूँजी लगाकर, बड़ी बड़ी मशीनों को एकत्रित कर और अनेक कुशल

संगठनकर्त्ताओं के सहयोग से जब उत्पादन किया जाता है तो उसे बड़ी-मात्रा का उत्पादन कहते हैं।

बड़ी मात्रा में उत्पादन के कारण

प्रश्न यह उठता है कि मनुष्य बड़ी मात्रा में उत्पादन क्यों करना चाहते हैं? इसके प्रमुख तीन कारण हैं :—(१) आर्थिक कारण, (२) एकाधिकारी कारण तथा (३) शक्ति का कारण। इनके बारे में नीचे बताया गया है।

आर्थिक कारण—बड़ी मात्रा में उत्पादन से उत्पादन-व्यय कम हो जाता है। इसका कारण यह है कि बड़ी मात्रा में उत्पादन करने से आंतरिक तथा वाह्य मितव्ययताएँ (Internal and external economies) प्राप्त होने लगती हैं और उत्पादन वृद्धिमान उत्पत्ति नियम के अनुसार होने लगती है। उत्पादन-व्यय कम हो जाने पर लाभ अधिक होने लगता है और दूसरे उत्पादकों की प्रतिस्पर्धा के सन्मुख ठहरने की शक्ति भी बढ़ जाती है।

एकाधिकारी कारण—बड़ी मात्रा में उत्पादन करने पर उद्योगपति को इस बात की आशा बनी रहती है कि यदि उसमें प्रतिस्पर्धा की शक्ति अधिक होगी तो वह एकाधिकारी (Monopolist) हो जायगा और इसके पश्चात् वह मनमाना लाभ उठा सकेगा। एकाधिकारी बन बैठने पर उसे दूसरे उत्पादकों का डर नहीं रहता और फिर उत्पादन में अधिक मेहनत करने की आवश्यकता भी नहीं रहती।

शक्ति का कारण—बड़ी मात्रा में उत्पादन करने का एक कारण शक्ति प्राप्त करना भी होता है। उत्पादन बढ़ने के साथ साथ बाजार में शक्ति भी बढ़ती जाती है और साथ ही साथ धाक भी। यदि उत्पादक एकाधिकारी हो जाता है तब तो उसकी शक्ति बहुत बढ़ जाती है। हम एक बड़े भारी उद्योग का प्रबन्ध करते हैं इस विचार से ही मनुष्य को बड़ा आनन्द मिलता है और साथ ही उसे अपनी कुशलता दिखलाने का भी अवकाश मिल जाता है।*

२. बड़ी मात्रा के उत्पादन से लाभ

(Advantages of Large Scale Production)

उद्योगपति बड़ी मात्रा में उत्पादन इसलिए करते हैं कि इससे अनेक लाभ हैं। बड़ी मात्रा के उत्पादन से होने वाले लाभों को एक वाक्य द्वारा बताया जा

* "Control of a large business is flattering to a man's sense of importance; he has scope for his energies, and freedom to plan and speculate and build after his own heart"—A. Cairncross, *Introduction to Economics*, p. 114

सकता है और वह है—उत्पादन प्रयत्नों की बचत।* बड़ी मात्रा में उत्पादन करने से निश्चित परिणाम कम प्रयत्न करके प्राप्त किये जा सकते हैं। अन्य शब्दों में बड़ी-मात्रा में उत्पादन करना अधिक मितव्ययतापूर्ण (economical) है।

बड़ी मात्रा में उत्पादन करने से उत्पादन-व्यय इस कारण कम पड़ता है क्योंकि उद्योगपतियों को दो प्रकार की मितव्ययताएँ प्राप्त होती हैं। यह हैं :

(१) वाह्य मितव्ययताएँ (External Economies)

(२) आंतरिक मितव्ययताएँ (Internal Economies)

वाह्य मितव्ययताएँ—वाह्य मितव्ययताओं के हमारा तात्पर्य उन बचतों से हैं जो सम्पूर्ण उद्योगों के व्यापक विकास के कारण उत्पन्न होती हैं और किसी उद्योग विशेष की भीतरी व्यवस्था या संगठन से उनका संबंध नहीं होता। अतएव यह बचतें उस स्थान पर स्थापित सभी उद्योगों को समान रूप से प्राप्त होती हैं।† इस प्रकार वाह्य मितव्ययताओं की दो विशेषताएँ हैं : (१) यह सभी उद्योगों को प्राप्त होती हैं और सभी उद्योग इनसे समान रूप से लाभ उठा सकते हैं। (२) यह किसी उद्योग की आंतरिक व्यवस्था पर निर्भर नहीं है।

वर्तमान समय विशेषीकरण का है। अतएव किसी सुविधाजनक स्थान पर अनेक उद्योग स्थापित हो जाते हैं। बहुत से उद्योगों के एक स्थान पर केन्द्रित हो जाने के कारण वहाँ यातायात के साधन अधिक उन्नतिशील हो जाते हैं और अन्य व्यावसायिक यंत्र जैसे बैंक, बीमा कम्पनी, संदेश-वाहक साधन आदि भी बढ़ जाते हैं। साथ ही मशीनों की मरम्मत की दुकानें, अवशिष्ट पदार्थों से नई-नई वस्तुओं को बनाने के काम आदि भी वहाँ खुल जाते हैं। इन सबके कारण उद्योगों को बड़ा लाभ होता है। इन सब कारणों से होने वाली बचतों को वाह्य मितव्ययताएँ कहते हैं।

आंतरिक मितव्ययताएँ—आंतरिक मितव्ययताओं से हमारा तात्पर्य उन मितव्ययताओं से है जो किसी एक फर्म की व्यवस्था के कारण उसी फर्म को प्राप्त

---

* "The advantages of the large scale industry may be summed up in the one phrase—saving of productive effort, that is, through it a given result can be obtained with less effort—or, in other words, at less cost"—Sir, T. H. Penson *Elements of Everyday Life*, p. 69

† "The external economies are those in which all businesses in an industry can share"—Sir Sydney Chapman, *Outline of Political Economy*, p. 104. Prof. S. E. Thomas ने इसकी निम्न परिभाषा दी है—"External Economies are those which arise from Localisation of Industries, and are at the disposal of all firms in the sime industry—S. E. Thomas, *Elements of Economics*, p. 128

होती हैं। आंतरिक मितव्ययताओं की विशेषता यह है कि यह (१) किसी एक फर्म को ही प्राप्त होती हैं। (२) इनके प्राप्त होने का कारण फर्म की अच्छी व्यवस्था है। किसी फर्म के अच्छे प्रबन्ध, और निर्माण तथा वितरण की सुव्यवस्था के कारण यह प्राप्त होती हैं।*

ऊपर बताये गये वाह्य तथा आंतरिक मितव्ययताओं के भेद से यह स्पष्ट हो गया होगा कि वाह्य मितव्ययताएँ स्थानीयकरण से होने वाले लाभों के कारण प्राप्त होती हैं और आंतरिक मितव्ययताएँ वस्तु की (१) उत्पादन संबंधी तैयारी, (२) वस्तु का निर्माण, तथा (३) उसके वितरण में प्राप्त होने वाली बचतों के कारण मिलती हैं।† इस प्रकार बड़े पैमाने के उत्पादन से होने वाली बचतों को निम्न प्रकार दिखलाया जा सकता है।

बड़ी मात्रा के उत्पादन की मितव्ययताएँ

मितव्ययता का प्रकार	मितव्ययता का कारण	मितव्ययता से लाभ
१. वाह्य मितव्ययताएँ	(अ) उद्योगों का स्थानीयकरण	(१) स्थानीयकरण से लाभ
२. आंतरिक मितव्ययताएँ	(अ) उत्पादन की तैयारी	(१) कच्चे माल के क्रय में बचत (२) शक्ति तथा ईंधन में बचत (३) मशीन तथा औजारों से बचत (४) यातायात व्यय में बचत
	(ब) वस्तु का निर्माण	(१) श्रम-विभाजन के सभी लाभ (२) उप-उत्पत्ति के प्रयोग से लाभ

* "The internal Economies of a business are those economies which are peculiar to it"—Sir Sydney Chapman, Outlines of Political Economy, p. 104. प्रोफेसर टामस (S. E. Thomas) का कहना है कि "Internal Economies are the Economies in the administrative, technical and commercial organisation of a business, and are peculiar to individual firms"—S. E. Thomas, *Elements of Economics*, p. 128

† देखिये प्रोफेसर पेन्सन की पुस्तक, Economics of Everyday life, पृष्ठ ७१। उन्होंने उत्पादन-व्यय को तीन भागों में विभक्त कर प्रत्येक भाग से होने वाली बचतों को अच्छी प्रकार बताया है।

मितव्ययता का प्रकार	मितव्ययता का कारण	मितव्ययता से लाभ
		(३) अवशिष्ट पदार्थों के प्रयोग से लाभ (४) वृद्धिमान उत्पादन नियम की प्राप्ति (५) पैकिंग व्यय में कमी (६) उत्पादन-विधि का प्रमाणीकरण
	(स) वस्तु का विक्रय	(१) विक्रय में यातायात-व्यय की बचत (२) अधिक विज्ञापन से लाभ (३) अधिक एजेन्टों की नियुक्ति से लाभ
	(द) अन्य	(१) खोज तथा आविष्कारों की सुविधा (२) प्रतिस्पर्धा सहने की शक्ति (३) बाजारी ऊँच-नीच से बचने की शक्ति

(१) **उद्योगों का स्थानीयकरण**—बड़ी मात्रा में उत्पादन करने से स्थानीयकरण से प्राप्त होने वाले सभी लाभ उस उद्योग को मिलने लगते हैं। उदाहरण के लिए उस स्थान पर व्यापारिक यंत्रों की अच्छी प्रकार से उन्नति हो जाती है, अवशिष्ट पदार्थों के प्रयोग के लिये अनेक उद्योग स्थापित हो जाते हैं, पूरक उद्योग-स्थापित हो जाते हैं और पूँजी तथा उत्पादन के अन्य साधन भी उस स्थान पर मिलने लगते हैं। इससे उत्पादन में बड़ी सुविधा हो जाती है।*

(२) **कच्चे माल के क्रय में बचत**—बड़े पैमाने पर उत्पादन करने से उद्योगपति बड़ी मात्रा में कच्चे माल को खरीदते हैं। बड़ी मात्रा में कच्चा माल खरीदने के कारण उन्हें थोक दामों पर सामान मिल जाता है। यही नहीं, सामान बेचने वाले विशेष रियायत कर देते हैं और इस प्रकार उन्हें कम मूल्य पर कच्चा माल मिल जाता है।

* स्थानीयकरण के सभी लाभ विस्तार से बताने चाहिये।

यही नहीं कि उत्पादकों को सस्ते मूल्य पर कच्चा माल मिल जाता है, दूसरा लाभ यह भी है कि बड़े-बड़े उद्योगपतियों का एक अलग क्रय-विभाग (Purchase Department) होता है और इस विभाग की देख-रेख एक ऐसा सुयोग्य व्यक्ति करता है जिसे बाजार संबंधी सभी बातों का पूर्ण ज्ञान होता है। वह यह जानता है कि कौन सी वस्तु किस स्थान पर और किस समय सस्ती मिलती है और वह इसी बात का ध्यान रख वस्तुओं का क्रय करता है। इसके कारण वस्तुएँ बहुत ही सस्ती पड़ती हैं

(३) शक्ति तथा ईंधन में बचत—बड़े पैमाने पर उत्पादन करने से शक्ति तथा ईंधन (Power) के क्रय तथा प्रयोग में बड़ी बचत होती है। उदाहरण के लिये मान लीजिये कि किसी उद्योग में कोयले का प्रयोग शक्ति के साधन के रूप में हो रहा है। यदि कोयला बड़ी मात्रा में खरीदा जाता है तो वह सस्ते मूल्य पर मिल जायगा। दूसरे उसको लाने में भी व्यय कम पड़ेगा। तीसरे; शक्ति के साधन की बर्बादी कम होगी और शक्ति बेकार नहीं जायगी। जब उत्पादन कम मात्रा में होता है तो शक्ति की बहुत बर्बादी भी होती है जो बड़ी मात्रा में उत्पादन करने के कारण बच जाती है। यदि उद्योग विद्युत्-शक्ति से चलता है तो जितनी अधिक मात्रा में शक्ति उत्पन्न की जायगी, प्रति इकाई उत्पादन-व्यय उतना ही कम हो जायगा।

(४) मशीन तथा औजारों से बचत—बड़ी मात्रा में उत्पादन करने के लिए बड़ी-बड़ी मशीनों का प्रयोग करना पड़ता है। मशीनों के प्रयोग के कारण मशीनों से मिलने वाले सभी लाभ उद्योग को प्राप्त होने लगते हैं। इससे उद्योग को अनेक लाभ होते हैं, परन्तु सबसे बड़ा लाभ यह है कि उत्पादन-व्यय कम हो जाता है।

यही नहीं, उद्योग में नई-नई मशीनों तथा औजारों का प्रयोग होने लगता है। छोटे उद्योग-धन्धों में अच्छी और बड़ी मशीनों का प्रयोग इस कारण नहीं हो पाता क्योंकि वहाँ उत्पादन छोटी मात्रा में होता है और इस कारण बड़ी मशीनों का प्रयोग आर्थिक दृष्टि से हितकर नहीं होता।*

(५) यातायात-व्यय में कमी—बड़ी मात्रा में उत्पादन करने के कारण उद्योगपति बड़ी मात्रा में वस्तुओं का क्रय करते हैं। अधिक वस्तुओं को मँगाने का औसतन व्यय बहुत कम पड़ जाता है। उदाहरण के लिए रेल से सामान भेजने के

*"A small concern is handicapped owing to its inability to obtain or use the most efficient machinery in its line. This is not necessarily due to lack of capital, but often times to insufficient output"—H. P. Shermen, *Practical Economics*, p. 106

लिए यदि एक पूरे डिब्बे (Wagon) को कर लिया जाय तो उत्पादन-व्यय कम पड़ेगा। परन्तु यदि एक-एक पारसल बनाकर सामान भेजा जाय तो व्यय बहुत अधिक पड़ेगा। मोटर वाले भी अधिक सामान होने पर विशेष रिआयत कर देते हैं। इस प्रकार यातायात-व्यय में कमी हो जाती है।

(६) **श्रम-विभाजन के सभी लाभ**—बड़ी मात्रा में उत्पादन करने के कारण उद्योगपति के लिए यह संभव हो जाता है कि वह श्रम-विभाजन ठीक से और अधिक समझ-सोचकर करे। श्रमिकों के काम को अनेक उप-विभागों में बाँटकर वह उनकी योग्यता और निपुणता बढ़ा देता है जिससे उत्पादन मात्रा में अधिक तथा सस्ते मूल्य पर होने लगता है। यही नहीं, श्रम-विभाजन से मिलने वाले अन्य लाभ भी उद्योग को प्राप्त होने लगते हैं।*

(७) **उप-उत्पत्ति का प्रयोग**—बड़े पैमाने पर जब उत्पादन किया जाता है तो बच रहने वाले पदार्थों से अनेक मामूली वस्तुएँ बना ली जाती हैं जिन्हें उप-उत्पत्ति (Bye-products) कहते हैं। जब उत्पादन छोटे पैमाने पर होता है तो छोटा सा सामान जो बचता है उसे फेंक दिया जाता है। परन्तु बड़े पैमाने पर उत्पादन होने पर बचा हुआ सामान फेंका नहीं जाता, वरन् उसे काम में लाने की बात सोची जाती है। उदाहरण के लिए चीनी उद्योग में निकला हुआ शीरा (Molasses) शराब (Alcohol) बनाने के काम में ले लिया जाता है। इस प्रकार शराब, चीनी उद्योग की उप-उत्पत्ति है।

(८) **अविशिष्ट पदार्थों का प्रयोग**—यही नहीं, जब उत्पादन बड़ी मात्रा में होता है तो उत्पादन का जो अवशिष्ट पदार्थ (Waste-product) होता है उसका भी उचित प्रयोग होने लगता है। छोटे पैमाने के उत्पादन में अवशिष्ट पदार्थ फेंक दिया जाता है, परन्तु बड़े पैमाने के उत्पादन के समय उसे काम में ले आया जाता है। उदाहरण के लिए चीनी उद्योग में ईख के छिलके कागज बनाने के काम में ले आए जाते हैं। इसी प्रकार स्पात के कारखानों से निकला हुआ अवशिष्ट पदार्थ जिसे 'स्लैग' (Slag) कहते हैं सीमेंट बनाने के काम में ले आया जाता है।†

* श्रम-विभाजन के सभी लाभों को यहाँ बताना चाहिये।

† "One of the most interesting features of industrial progress of recent years has been the remarkable manner in which industry with the magic wand of science has changed its waste into useful products. Slag heaps have been transformed into concrete bridges and buildings, out of the offal of the slaughter house have come all sorts of things from violin strings to rare medicines, even the smoke from the furnace has been arrested in mid-air and made to yield dyes, perfumes and powerful explo-ves. Millions have been saved which were before lost"—Henry P. Sherman, *Practical Economics*, p. 113

(९) वृद्धिमान-उत्पत्ति नियम की प्राप्ति—बड़े पैमाने के उत्पादन से एक लाभ यह भी है कि उद्योग से वृद्धिमान उत्पत्ति (Increasing Returns) प्राप्त होने लगती है। किसी एक विन्दु तक जैसे-जैसे मशीनों का प्रयोग अधिक बढ़ाया जाता है और उद्योग के संगठन को सुधारा जाता है, उद्योग-धन्धे से वृद्धिमान उत्पत्ति प्राप्त होती हैं। खोज, यातायात, बीमा आदि पर व्यय उतना नहीं बढ़ता जितनी मात्रा में उत्पादन बढ़ता है। अविभाज्य पूँजी से प्राप्त होने वाली बचतों के कारण ही बड़ी मात्रा का उत्पादन लाभदायक है।*

(१०) पैकिंग व्यय में कमी—बड़ी मात्रा में उत्पादन करने वाली कंपनियाँ अपना एक अलग पैकिंग विभाग खोल देती हैं। वहाँ पर कटाई, सिलाई, डिब्बे बनाने आदि के कामों के लिए विभिन्न मशीनों का प्रयोग होता है। लेबिल लगाने तथा छापने का काम भी मशीनों द्वारा ही होता है। इस कारण काम शीघ्र तथा कम व्यय पर हो जाता है।

(११) उत्पादन-विधि का प्रमाणीकरण—बड़ी मात्रा के उत्पादन का एक बड़ा लाभ यह भी है कि विभिन्न उत्पादन विधियों में से वह एक ऐसी विधि को चुन लिया जाता है जो सबसे अच्छी तथा सस्ती होती है। साथ ही उत्पादन के सभी विभागों पर एक व्यक्ति का नियंत्रण रहता है और वह विभिन्न विभागों को एक-सूत्र में बाँधकर उन्हें एक ही नीति का अनुसरण करने को कहता है। विभिन्न विभागों के एक ही औद्योगिक विधि और नीति पर चलने से उत्पादन अच्छा और सस्ता होता है।

(१२) विक्रय में यातायात-व्यय की बचत—उत्पादन बड़े पैमाने पर करने से विक्रय के समय यातायात व्यय कम पड़ता है। जब अधिक मात्रा में सामान बाजारों को विकने के लिए भेजा जाता है तो रेल तथा मोटरों का भाड़ा कम पड़ जाता है। इसका कारण यह है कि रेलों में सामान यदि डिब्बे (Wagon) के हिसाब से लादा जाय तो वह सस्ता पड़ता है। मोटर वाले भी अधिक सामान होने पर रियायती दर पर सामान ढोते हैं।

(१३) अधिक विज्ञापन से लाभ—बड़ी मात्रा में उत्पादन करने वाला उद्योगपति विज्ञापन पर अधिक व्यय करने की शक्ति रखता है। वह हजारों अखबारों में विज्ञापन देता है जो जनता को उस वस्तु के गुण बताते हैं और इस प्रकार बाजार की माँग बढ़ाते हैं। छोटी मात्रा में उत्पादन करने वाला व्यक्ति विज्ञापन पर अधिक व्यय नहीं कर सकता। अतएव विज्ञापन के अभाव में छोटे उत्पादकों की वस्तुओं

*"Economy of fixed capital is one of the greatest advantages of production on a large scale"—S. E. Thomas, *Elements of Economics*, p. 128

का ज्ञान उपभोक्ताओं को न होने के कारण उनकी वस्तु की माँग अधिक नहीं बढ़ने पाती।

(१४) अधिक एजेन्टों की नियुक्ति—बड़ी मात्रा में उत्पादन करने वाला हजारों-लाखों एजेन्टों को रख लेता है जो शहर-शहर और गाँव-गाँव जाकर उसकी वस्तु के बारे में उपभोक्ताओं को बताते रहते हैं। यह एजेन्ट दुकानदारों से मिलते हैं और उनसे आर्डर लेते हैं। इस प्रकार इनकी बिक्री बहुत बढ़ जाती है।

यही नहीं, यदि बड़ी मात्रा में उत्पादन करने वाला उद्योगपति बहुत-सी वस्तुओं का उत्पादन करता है तो वह प्रत्येक के लिए अलग-अलग एजेन्ट नियुक्त न कर केवल एक विज्ञापन-एजेन्सी बना लेता है और उसी एजेन्सी के द्वारा सभी वस्तुओं का विज्ञापन होता है। इसमें बड़ी बचत हो जाती है।* उदाहरण के लिए भारत में गोदरेज कंपनी लोहे की अल्मारियाँ, कुर्सियाँ, सेफ, साबुन, तेल, ताले आदि बनाती है। इन सबका विज्ञापन अलग-अलग न कर वह एक साथ करती है। उसका एजेन्ट जहाँ जाता है वह इन सब वस्तुओं के दुकानदारों से मिलकर उनका आर्डर ले लेता है। इस प्रकार विज्ञापन का व्यय बहुत बच जाता है।

(१५) खोज तथा आविष्कारों की सुविधा—बड़ी मात्रा में उत्पादन करने वाला उद्योगपति खोज (Research) तथा आविष्कारों (Inventions) पर काफी अधिक रुपया व्यय करने की शक्ति रखता है। वह अनेक कुशल व्यक्तियों को काम पर लगाकर बराबर खोज कराता रहता है। इन खोजों और आविष्कारों के परिणामस्वरूप वह अपनी उत्पादन-विधि में आवश्यक परिवर्तन करता रहता है जिससे उसके उत्पादन का व्यय कम हो जाता है। छोटी मात्रा में उत्पादन करने वाले उद्योगपतियों के पास इस कार्य पर व्यय करने के लिए पैसा नहीं होता।

(१६) प्रति-स्पर्धा सहने की शक्ति—बड़ी मात्रा में उत्पादन करने वाले उद्योगों के पास काफी अधिक पूँजी होती है। अतएव वह अन्य उद्योगपतियों से प्रतिस्पर्धा सहने की शक्ति रखते हैं। यदि उन्हें थोड़े समय तक हानि भी होती रहे तो भी वह फिक्र नहीं करते। परन्तु छोटी मात्रा में उत्पादन करने वाला छोटा व्यापारी अधिक प्रतिस्पर्धा के सामने नहीं ठहर सकता और हानि के भय से उत्पादन छोड़कर भाग जाता है।

(१७) बाजारी ऊँच-नीच से बचने की शक्ति—बड़ी मात्रा में उत्पादन करने वाले उद्योगपति अत्यन्त कुशल व्यक्तियों के हाथ में प्रबन्ध देते हैं। यह

*"The chief saving is not by any means in the reduction of salesman...but in the unification and formation of one centralized sales office under the direction of a picked sales manager"—H. P. Shermen, *Economics, Practical* p. 111

प्रबन्धक इतने निपुण होते हैं कि बाजारी ऊँच-नीच (Fluctuations) तथा भविष्य में होने वाले बाजारी परिवर्तनों का यह सही सही अनुमान लगा लेते हैं और उसी अनुमान के हिसाब से अपना औद्योगिक उत्पादन घटाते-बढ़ाते रहते हैं। साथ ही बड़ी मात्रा में उत्पादन करने वाले व्यक्तियों के पास ही इतनी सुविधा रहती है कि बाजार की दशा खराब होने पर वह उत्पादित वस्तु को कुछ समय तक जोड़कर रख लेते हैं, और बाजारी दशा अच्छी होने पर ही माल बेचते हैं।

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि बड़ी मात्रा के उत्पादन से अनेक लाभ हैं। अतएव वर्तमान समय में बड़ी मात्रा में उत्पादन करने की एक प्रथा-सी चल निकली है। छोटे-छोटे उद्योग भी आपस में मिलकर एक होते जा रहे हैं जिससे वह भी बड़ी मात्रा के उत्पादन से होने वाले लाभों का फायदा उठा सकें।

३. बड़ी मात्रा के उत्पादन से हानियाँ
(Disadvantages of Large Scale Production)

बड़ी मात्रा के उत्पादन से केवल लाभ ही लाभ नहीं हैं। इससे कुछ हानियाँ भी हैं जिन्हें नीचे बताया गया है।

(१) मशीनों के प्रयोग से हानियाँ—बड़ी मात्रा के उत्पादन में मशीनों का प्रयोग अधिक होता है। अतएव मशीनों के प्रयोग से जो भी हानियाँ होती हैं वह सब बड़ी मात्रा में उत्पादन करने पर भी प्रकट होने लगती हैं।

(२) श्रम-विभाजन से हानियाँ—बड़ी मात्रा के उत्पादन में श्रम-विभाजन अत्यन्त आवश्यक है। अतएव श्रम-विभाजन के कारण होने वाली हानियाँ भी बड़ी मात्रा के उत्पादन में मिलती हैं।

(३) एकाधिकारी-संस्थाओं की स्थापना—बड़ी मात्रा में उत्पादन करने के कारण अनेक संस्थाएँ आपस में मिल जाती हैं जिससे बड़ी-बड़ी एकाधिकारी संस्थाओं का जन्म हो जाता है जैसे ट्रस्ट, कार्टेल आदि। ये संस्थाएँ अत्यन्त बलवती होती हैं और बाजार पर इनका एकाधिकार होने के कारण उपभोक्ताओं से ये मन-माना मूल्य वसूल कर लेती हैं।

(४) अत्यधिक उत्पादन का डर—बड़ी मात्रा में उत्पादन के कारण सभी उत्पादक अधिक मात्रा में वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। फलतः वस्तुओं की पूर्ति माँग से अधिक हो जाती है। इस कारण व्यापारिक मंदी (depression) आदि बाधाएँ आती हैं और उद्योगों को भारी हानि उठानी पड़ती है।

(५) श्रमिक तथा उद्योगपतियों में संघर्ष—बड़ी मात्रा में उत्पादन से श्रमिक तथा उद्योगपतियों में आपस में सहयोग नहीं रहता। प्रबन्धक उद्योग संबंधी

बड़ी-बड़ी नीतियों के निर्धारण में ही लगे रहते हैं और श्रमिकों की देख-भाल का काम फोरमैन आदि पर रहता है। इस कारण प्रबन्धक श्रमिकों की वास्तविक दशा से अपरिचित रहते हैं और उनकी माँगों पर उचित रूप से विचार नहीं कर पाते। इससे उद्योगपति और श्रमिकों में संघर्ष बढ़ जाता है जिससे दोनों को हानि होती है।

(६) युद्ध की सम्भावना—बड़ी मात्रा में उत्पादन करने वाले उद्योगपति केवल अपने देश के बाजार से ही संतुष्ट नहीं हो जाते, वे अन्य देशों के बाजारों पर भी अपना अधिकार करना चाहते हैं। इस कारण विभिन्न देशों के उद्योगपतियों में संघर्ष बढ़ जाता है जिससे प्रायः युद्ध भी हो जाते हैं।

(७) पूँजी का असमान वितरण—बड़ी मात्रा में उत्पादन करने के कारण पूँजी कुछ थोड़े से व्यक्तियों के हाथ में ही आ जाती है और शेष व्यक्ति गरीब हो जाते हैं। उत्पादन की मात्रा जितनी ही बड़ी होती जाती है, उतना ही थोड़े से व्यक्तियों के हाथ में पूँजी का संग्रह होता जाता है। इस प्रकार पूँजी का वितरण असमान (unequal) हो जाता है।

४· बड़ी मात्रा के उत्पादन की सीमाएँ
(Limitations of Large-Scale Production)

बड़ी मात्रा में उत्पादन करना किसी एक सीमा तक तो लाभकर है, परन्तु इसके पश्चात् उत्पादन की मात्रा नहीं बढ़ानी चाहिए अन्यथा हानि होने की संभावना हो जाती है। उत्पादन की मात्रा किस सीमा तक बढ़ानी चाहिये और कितनी नहीं यह अनेक बातों पर निर्भर है। उन्हें नीचे बताया गया है :

(१) व्यवसाय का स्वभाव—उत्पादन की मात्रा व्यवसाय के स्वभाव पर भी निर्भर रहती है। कुछ व्यवसाय इस प्रकार के होते हैं कि वे बड़ी मात्रा के उत्पादन के लिए सवर्था अनुपयुक्त होते हैं। उदाहरण के लिए उन व्यवसायों को ले लीजिए जो कारीगर की व्यक्तिगत कुशलता पर निर्भर हैं। जैसे जरी का काम, कसीदा काढ़ना आदि। इन कामों को बड़े पैमाने पर नहीं किया जा सकता क्योंकि इनकी विशेषता यही है कि इनकी डिजाइनें नहीं मिलतीं। इसी प्रकार उन उद्योगों को ले लीजिए जो उपभोक्ताओं की व्यक्तिगत रुचि पर चलते हैं। उदाहरण के लिए फर्नीचर बनाने वाले का काम या दर्जी का काम ले लीजिए। प्रत्येक व्यक्ति अपनी रुचि के अनुसार फर्नीचर बनवाता है। इसी प्रकार हर एक व्यक्ति की रुचि कपड़ों के बारे में भिन्न-भिन्न होती है। अतएव इनका काम बड़े पैमाने पर हो ही नहीं सकता। इसी प्रकार कुछ ऐसे उद्योग भी हैं जो साहसी के व्यक्तिगत निरीक्षण पर ही चलते हैं। उदाहरण के लिए सिल्क का काम या बहुत महीन सूती कपड़ा का काम ले लीजिए। इनको भी बड़ी मात्रा में उत्पादन द्वारा तैयार नहीं किया जा सकता।

(२) बाजार का विस्तार—बड़ी मात्रा में उत्पादन करना लाभकर है या नहीं, यह इस बात पर निर्भर रहता है कि वस्तु की माँग कितनी है या उसका बाजार कितना विस्तृत है। वस्तु की माँग जितनी अधिक होगी, उत्पादन उतने ही बड़े पैमाने पर हो सकता है। और माँग जितनी कम होगी उत्पादन की मात्रा उतनी ही कम करनी होगी। उदाहरण के लिए बाटा कंपनी बड़ी मात्रा में उत्पादन कर जूते तैयार करती है क्योंकि उसके जूतों की माँग बहुत अधिक है। परन्तु इसके विपरीत एक साधारण मोची छोटी मात्रा में ही उत्पादन करता है क्योंकि वह बहुत कम जूते बेच पाता है।

(३) प्रबंधक की योग्यता—उत्पादन बड़ी मात्रा में हो सकता है या नहीं यह प्रबन्धक की योग्यता पर भी निर्भर रहता है। बड़ी मात्रा में उत्पादन करने के लिए सुयोग्य प्रबंधकों की आवश्यकता होती है। उन्हें कच्चे माल के क्रय, उत्पादन, तथा माल के बेचने के संबंध में अनेक बातों का ध्यान रखना पड़ता है। वह अपने काम में कहाँ तक सफल होंगे यह इस बात पर निर्भर रहता है कि वह कितने योग्य हैं और काम की देखभाल कितनी कर सकते हैं। बड़ी मात्रा के उत्पादन की समस्याओं को हल करना एक साधारण व्यक्ति की शक्ति के बाहर है। कुछ व्यक्ति हजारों श्रमिकों के कामों की देखभाल साधारणतया कर सकते हैं और कुछ इतनी जल्दी घबड़ा जाते हैं कि वह केवल साधारण काम ही कर सकते हैं। अतएव व्यवस्थापक की योग्यता पर भी उत्पादन की मात्रा निर्भर रहती है।

५. छोटी मात्रा का उत्पादन

(Small Scale Production)

छोटी मात्रा के उत्पादन से हमारा तात्पर्य उस उत्पादन से है जिसमें थोड़ी-सी पूँजी लगाकर और बहुत कम मशीनों की सहायता से उत्पादन किया जाता है।

छोटी मात्रा के उत्पादन से लाभ

छोटी मात्रा के उत्पादन से निम्न लाभ हैं।

(१) अच्छा उत्पादन—छोटी मात्रा का उत्पादन किस्म में बहुत अच्छा होता है। इसका कारण यह है कि साहसी उत्पादन की प्रत्येक क्रिया की उचित रूप से देखभाल करता है। व्यक्तिगत निरीक्षण के कारण वस्तु खराब नहीं बनती।

(२) कलात्मक वस्तुओं का निर्माण—कलात्मक (Artistic) वस्तुएँ जिनके बनाने में बड़ी कारीगरी की आवश्यकता पड़ती है, छोटे पैमाने पर ही बन सकती हैं। उदाहरण के लिये हाथीदाँत के खिलौने, आबनूस के खिलौने आदि को ले लीजिये।

(३) व्यक्तिगत रुचियों के अनुसार उत्पादन—छोटे पैमाने पर उत्पादन करने में व्यक्तियों की विशेष रुचियों का उचित रूप से ध्यान रखा जा सकता है। उनकी रुचि के अनुसार डिजाइन को बदला जा सकता है। बड़ी मात्रा में उत्पादन करते समय सभी वस्तुएँ एक ही प्रकार की बनती हैं, उनमें विशेष रुचियों का ध्यान नहीं रखा जाता।

(४) व्यक्तिगत निरीक्षण—छोटी मात्रा के उत्पादन में प्रबन्धक सभी बातों की स्वयं देखभाल करता है। वह सस्ती से सस्ती जगह से सामान क्रय करता है, कारीगरों की उचित देख-भाल करता है, कच्चे माल को नष्ट नहीं होने देता, सामान अच्छा बनवाता है और उसे महँगे से महँगे दाम पर बेचने का प्रयास करता है।

(५) साहसी तथा श्रमिकों के घनिष्ठ संबन्ध—छोटी मात्रा के उत्पादन में साहसी और श्रमिक एक साथ मिलकर काम करते हैं। दोनों का सम्पर्क बड़ा घनिष्ठ होता है और उनमें ऊँच-नीच का विचार नहीं होता। दोनों एक-दूसरे की समस्याओं को जानते हैं और इस कारण उनमें मन-मुटाव बहुत कम होता है।

(६) काम की स्वतन्त्रता—जो मनुष्य स्वतन्त्र रह कर काम करना चाहते हैं और जिन्हें किसी दूसरे का शासन पसन्द नहीं आता, उनके लिए छोटे पैमाने पर अपने सम्बन्धियों के साथ मिलकर काम करने के अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं है। इस प्रकार स्वतन्त्रता-प्रेमियों के लिये छोटी मात्रा का उत्पादन ही एक मात्र सहारा है।

छोटी मात्रा के उत्पादन से हानियाँ

छोटी मात्रा के उत्पादन से अनेक हानियाँ भी हैं। उन्हें नीचे बताया गया है।

(१) बड़े कारखानों की स्पर्धा न सह सकना—छोटी मात्रा में उत्पादन करने वाले बड़े कारखानेदारों की स्पर्धा के सामने नहीं ठहर पाते। बड़े कारखानेदार कम लागत पर उत्पादन कर लेते हैं, परन्तु छोटी मात्रा के उत्पादकों का व्यय अधिक पड़ता है और इस कारण उनकी स्पर्धा के सामने ठहरना उनके लिए संभव नहीं है।

(२) उत्पादन में प्रमाणीकरण का अभाव—छोटी मात्रा के उत्पादन में एक बड़ी कठिनाई यह भी है कि उत्पादन एकसा नहीं हो पाता। प्रमाणीकरण (Standardisation) के अभाव के कारण वस्तुओं की बिक्री अधिक नहीं हो पाती।

(३) अधिक उत्पादन लागत—छोटी मात्रा के उत्पादकों की उत्पादन लागत अधिक पड़ती है क्योंकि उन्हें सामान अधिक मूल्य पर खरीदना पड़ता है और उन्हें आंतरिक तथा वाह्य मितव्ययताएँ प्राप्त नहीं हो पातीं।

छोटी तथा बड़ी मात्रा का उत्पादन

छोटी तथा बड़ी मात्रा के गुण-दोषों को देखने से यह स्पष्ट है कि बड़ी मात्रा का उत्पादन सस्ता पड़ता है और छोटी मात्रा का उत्पादन उसकी प्रतिस्पर्धा में नहीं ठहर सकता। फिर भी किसी भी देश में सभी वस्तुओं का उत्पानन केवल बड़े पैमाने पर नहीं हो सकता।

परीक्षा-प्रश्न

उत्तर प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—वाह्य और आन्तरिक बचत (मितव्ययताएँ) पर एक संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९५३, १९४७)

२—बड़ी मात्रा में उत्पादन के लाभ बताइये। आपके विचार से उत्तर-प्रदेश में कौन से बड़े पैमाने के उद्योग चलाये जा सकते हैं। (१९४५)

३—वाह्य और आन्तरिक मितव्ययता का अन्तर स्पष्ट कीजिये। ये कारखानों का उत्पादन किस प्रकार बढ़ाते हैं ? (१९४०)

४—बड़ी मात्रा की उत्पत्ति के क्या गुण-दोष हैं ? इसकी क्या सीमायें हैं ? (१९३९, १९३५)

उत्तर-प्रदेश इन्टर कामर्स

५—आन्तरिक तथा वाह्य मितव्यियता पर नोट लिखिये। (१९५२)

६—अधिक परिमाण के उत्पादन के मुख्य लाभ तथा हानि की विवेचना कीजिये। इसकी क्या सीमायें होती हैं ? (१९५०)

७—आन्तरिक तथा वाह्य बचत पर नोट लिखिये। (१९४९)

८—बड़ी मात्रा में उत्पादन के लाभ बताइये। (१९४१)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

९—बड़े पैमाने की उत्पत्ति से क्या लाभ हैं ? इसकी सीमाओं को दृष्टि में रखते हुए इन्हें पूर्णतया स्पष्ट कीजिये ? (१९५२)

१०—आन्तरिक तथा वाह्य बचत पर नोट लिखिये। (१९५२, १९५०, १९४९, १९४४)

११—बड़ी मात्रा के उत्पादन के लाभों तथा हानियों को बताइये। (१९५०, १९४२)

१२—बड़ी मात्रा के उत्पादन का क्या अर्थ है। भारत में बड़ी मात्रा के उत्पादन के विकास में कौन-कौन सी बाधायें हैं ? बताइये। (१९४९, १९४६)

१३—बड़ी मात्रा के उत्पादन की क्या सीमायें हैं ? अपना उत्तर कृषि का उदाहरण लेकर दीजिये। (१९४३)

१४—किसी उद्योग में एक साहसी जिन आन्तरिक स्रोतों से मितव्ययताएँ प्राप्त करता है उन्हें बताइये। वह किस सीमा पर अपने उद्योग को चलाने के लिये वाह्य मितव्ययताओं पर निर्भर रहता है ? स्पष्ट कीजिये। (१९४२)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर कामर्स

१५—बड़ी मात्रा के उत्पादन के क्या लाभ और क्या सीमायें हैं ? भारतीय उदाहरण लेकर उत्तर दीजिये। (१९५०, १९४८)

१६—बड़ी तथा छोटी मात्रा के उद्योगों पर एक संक्षिप्त नोट लिखिये। (१६४७)

१७—ऐसा क्यों है कि संसार भर में कृषि का उद्योग छोटे पैमाने पर ही किया जाता है? (१६४५)

पटना इन्टर कामर्स

१८—बड़ी मात्रा तथा छोटी मात्रा के उत्पादन के हानि तथा लाभ बताइये। बड़ी मात्रा के उत्पादन की क्या सीमायें हैं? स्पष्टतया बताइये। (१६५१)

१९—बड़ी मात्रा के उत्पादन के लाभ बताइये। (१६५१, १६४७)

सागर इन्टर आर्ट्स

२०—भारत में बड़ी मात्रा के उत्पादन के हानि-लाभ बताइये। (१६५०)

सागर इन्टर कामर्स

२१—बड़ी मात्रा के उत्पादन के हानि तथा लाभ बताइये। (१६५१)

२२—बड़ी मात्रा का उत्पादन तथा श्रम-विभाजन का संबन्ध बताइये। उदाहरण दीजिये। (१६४८)

पचासवाँ अध्याय

साहस

(Enterprise)

साहस या जोखिम उत्पत्ति का पाँचवाँ तथा एक अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन है क्योंकि वर्तमान समय में जोखिम के बिना उत्पादन हो ही नहीं सकता। उत्पादन चाहे छोटे पैमाने पर हो या बड़े पैमाने पर, सभी में जोखिम(Risk) रहता है और इस कारण साहसी की आवश्यकता रहती है।

साहस का अर्थ

जोखिम उठाने का नाम ही साहस है और जो व्यक्ति जोखिम उठाता है उसे साहसी कहते हैं। व्यवसाय में जोखिम इस कारण होता है क्योंकि भविष्य अनिश्चित है। पता नहीं माँग और पूर्ति की दशा क्या हो जाय और जो माल तैयार हो रहा है वह बिकने भी पावे या नहीं। भविष्य की इस अनिश्चितता के कारण इस बात का अंदेशा बना रहता है कि उद्योग में पता नहीं लाभ होगा या हानि। जो व्यक्ति इस बात की जिम्मेदारी ले लेते हैं कि उद्योग में हानि होने पर वह उसे पूरा करेंगे और लाभ होने पर उसे ले लेंगे उन्हें साहसी कहा जाता है। इस प्रकार साहस का अर्थ अनिश्चितता के कारण उत्पन्न जोखिम को उठाना है।*

साहसी के कार्य

ऊपर के कथन से यह स्पष्ट हो गया होगा कि साहसी का केवल एक ही कार्य है और वह है जोखिम उठाना। उत्पादन में वह कोई दूसरा काम नहीं करता। जोखिम की जिम्मेदारी लेने के कारण उसके मन में बड़ी चिन्ता बनी रहती है। उसे यह डर लगा रहता है कि पता नहीं क्या होगा—लाभ या हानि। इसी मानसिक चिन्ता को उठाने के कारण उसे उत्पादन में श्रमिक या पूँजीपतियों की भाँति कुछ प्रतिफल मिलता है जिसे लाभ कहा जाता है।

कुछ अर्थशास्त्रियों ने साहसी के छैः कार्य बताए हैं† जैसे उद्योग का निर्णय, वस्तुओं का निर्णय, उत्पादन के पैमाने का निर्णय, उत्पादन के साधनों को उचित

---

*"Production always involves some risk. There must be some one to bear the losses arising from this risk. The man who does this is called the enterpreneur"—J. K. Mehta and other, *Fundamentals of Eonomics*, p. 115 (second Edition)

† देखिए Benham, *Economics*, p. 115

अनुपात में जुटाने का निर्णय तथा उत्पादन स्थान का निर्णय। परन्तु यह सब कार्य प्रबन्धक के हैं न कि साहसी के। जो व्यक्ति प्रबन्धक तथा साहसी में भेद नहीं करते, वही ऐसा कहते हैं।

साहसी तथा प्रबन्धक का भेद

साहसी का कार्य जोखिम उठाना है और प्रबन्धक का व्यवसाय संबन्धी नीति निर्धारण करना है। प्रबन्धक नीति निर्धारित करता है और उस नीति के कारण जो हानि-लाभ होता है उसका जिम्मेदार साहसी होता है।

प्रबन्धक को अपने काम के लिये वेतन (Salary) मिलता है। उत्पादन क्रिया में भाग लेने तथा मेहनत करने का उसका यह प्रतिफल है। उसको मिलने वाला वेतन पहले से ही निश्चित होता है और उसमें व्यापारिक परिवर्तनों के कारण घट-बढ़ नहीं होती। परन्तु साहसी के प्रतिफल के संबन्ध में अनिश्चितता रहती है। यदि उसे लाभ हो गया तब तो ठीक है, अन्यथा उसे अपने पास से भी कुछ दे देना पड़ता है।

एक सीमित उत्तरदायित्व वाली कंपनी के हिस्सेदार (Share-holders) साहसी हैं क्योंकि उन्हें हानि-लाभ की जिम्मेदारी लेनी पड़ती है। परन्तु उस कंपनी के मैनेजर आदि प्रबन्धक हैं।

जब तक सीमित-उत्तरदायित्व वाली कंपनियों का चलन आरंभ नहीं हुआ था, उस समय तक एक ही व्यक्ति जोखिम उठाता था और वही व्यवसाय का प्रबन्ध भी करता था। इस कारण जोखिम तथा प्रबंध का भेद स्पष्ट नहीं था और उस समय तक अर्थशास्त्री साहसी के दो कार्य बताते थे: (१) जोखिम उठाना, तथा (२) प्रबन्ध करना। परन्तु सीमित उत्तरदायित्व वाली कंपनियों के प्रारम्भ के समय से इन दोनों कार्यों का भेद स्पष्ट हो गया और इन्हें करने वाले भी भिन्न-भिन्न मनुष्य हो गये। अतएव यह आवश्यक है कि इन दोनों का भेद ठीक से समझ कर इनके कार्यों को भी अलग-अलग समझ लिया जाय।

परीक्षा-प्रश्न

उत्तर प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—आदर्श जोखिम उठाने वाले के क्या लक्षण हैं? भारत और अमरीका के कुछ सफल जोखिम उठाने वालों के नाम बताइये। (१९४६)

२—आधुनिक उद्योग में साहसी के क्या काम होते हैं? भारत का ग्रामीण कारीगर इन कामों को किस प्रकार करता है? (१९३८)

उत्तर प्रदेश इन्टर कामर्स

३—आधुनिक उद्योग में साहसी के कार्यों को बताइये। (१९४२)

राजपूताना इन्टर आर्ट्स

४—आधुनिक उद्योग में साहसी के क्या कार्य हैं ? भारतीय शिल्पकार यह कार्य कहाँ तक करता है ? (१९५१)

५—आधुनिक उद्योग में साहसी के क्या कार्य हैं ? (१९४८)

सागर इन्टर आर्ट्स

६—साहसी पर सूक्ष्म टिप्पणी लिखिये। (१९५०)

७—साहसी द्वारा किये जाने वाले कार्यों को वर्तमान भारतीय उद्योगों के संदर्भ में बताइये। (१९५०)

८—साहसी कौन होता है ? उसके क्या कार्य हैं ? (१९४८)

सागर इन्टर कामर्स

९—आधुनिक उत्पादन प्रणाली में साहसी के कार्यों को बताइये। उसके कौन-कौन से कार्य हैं ? (१९५१)

१०—आधुनिक उद्योग में साहसी के कार्यों को स्पष्टतया बताइये। (१९५०)

इक्यावनवाँ अध्याय

औद्योगिक संगठन

(Industrial Organisation)

यदि हम विभिन्न उद्योगों के ऊपर दृष्टि डालें तो हमें पता चलेगा कि उनका संगठन विभिन्न प्रकार से हुआ है। संगठन से हमारा तात्पर्य उद्योगों के प्रबन्ध तथा जोखिम उठाने के ढंग से है। उद्योग किन-किन ढंगों से संगठित हो सकते हैं, इसके बारे में नीचे बताया गया है।

१. वैयक्तिक स्वामित्व

(Individual Ownership)

औद्योगिक संगठन का यह पहला रूप है। जब व्यक्तियों ने उत्पादन करना प्रारम्भ किया था, उस समय वह अपने आय का अपने परिवार की सहायता से ही उत्पादन करते थे।

वैयक्तिक स्वामित्व में एक ही मनुष्य पूँजी प्रदान करता है, वही उद्योग का प्रबन्ध करता है और वही जोखिम भी उठाता। हो सकता है कि वह कभी पूँजी उधार भी ले ले, परन्तु प्रायः वह स्वयं की पूँजी लगाकर ही उद्योग चलाता है।

लाभ—इस प्रणाली का सबसे बड़ा गुण यह है कि उसको बड़ी सुगमता से स्थापित किया जा सकता है। दूसरे, एक व्यक्ति को अपनी कार्य-कुशलता तथा अपनी चतुराई को प्रगट करने का पूर्ण अवसर मिल जाता है। तीसरे, व्यक्ति लाभ उठाने के लालच से तथा प्रसिद्ध पाने के उद्देश्य से बड़ी मेहनत से काम करते हैं। चौथे, व्यक्ति काम की बड़े अच्छे ढंग से देखभाल करते हैं और इस कारण काम अच्छा तैयार होता है। पाँचवें, कार्य में निर्णय बड़ी शीघ्रता से होते हैं; क्योंकि व्यक्ति को किसी दूसरे के आदेशों के लिये रुकना नहीं पड़ता।

दोष—इस प्रणाली का सबसे बड़ा दोष यह है कि व्यक्ति का उत्तरदायित्व अपरिमित होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि उद्योग में हानि हो जाने पर, व्यापार में लगी पूँजी से ही नहीं वरन् व्यक्ति की सम्पूर्ण सम्पत्ति से हानि वसूल की जा सकती है। फिर भी यदि पूरा रुपया अदा नहीं हुआ तो उसे जेल भी भेजा जा सकता है। दूसरे, एक व्यक्ति के पास अधिक पूँजी नहीं होती। इस कारण वह बड़े पैमाने पर उद्योग नहीं चला सकता। तीसरे, एक व्यक्ति उत्पादन के सभी कार्यों की

देख-रेख ठीक से नहीं कर सकता। इस कारण उद्योग का नियन्त्रण ठीक से नहीं हो पाता।

२. साझेदारी

(Partnership)

जब उत्पादन में पूँजी की अधिक आवश्यकता प्रतीत होने लगी और जब वैयक्तिक स्वामित्व द्वारा वस्तु की माँग पूरा होना कठिन हो गया, तो वैयक्तिक स्वामित्व के स्थान पर साझेदारी प्रथा का चलन आरंभ हो गया।

साझेदारी प्रथा में दो से लेकर बीस* मनुष्य तक मिलकर उत्पादन करते हैं। जहाँ वैयक्तिक स्वामित्व में केवल एक मनुष्य काम की देख-रेख करता था, वहाँ साझेदारी में २ से लेकर २० साझेदार मिलकर उद्योग का प्रबन्ध करते हैं तथा जोखिम उठाते हैं।

लाभ—साझेदारी प्रथा से निम्न लाभ हैं :

(१) साझेदार कई व्यक्ति होने के कारण, उद्योग को अधिक पूँजी मिलने लगती है और इस कारण उत्पादन बड़े पैमाने पर होने लगता है।

(२) एक व्यक्ति के स्थान पर अब कई मनुष्य प्रबन्ध करते हैं। इस कारण प्रबन्ध अच्छा होता है।

(३) साझेदारी स्थापित करना बड़ा आसान होता है और संयुक्त पूँजी वाली संस्थाओं की भाँति इनको स्थापित करते समय अधिक कानूनी झंझट नहीं उठाना पड़ता।

(४) क्योंकि साझेदारों का उत्तरदायित्व अपरिमित होता है, इस कारण सभी साझेदार बड़ी होशियारी से काम करते हैं।

दोष—साझेदारी प्रथा की अनेक खराबियाँ हैं। उन्हें नीचे बताया गया है :

(१) साझेदारी का सबसे बड़ा दोष यह है कि इसमें साझेदारों का उत्तरदायित्व अपरिमित होता है। इस अपरिमित उत्तरदायित्व के कारण, उद्योग में नुकसान हो जाने पर किसी एक साझेदार से पूरा का पूरा रुपया वसूल किया जा सकता है। इस कारण अमीर लोग गरीबों के साथ साझेदारी करने में डरते हैं। प्रायः साझेदारी उन्हीं लोगों में होती है जो एक ही स्थिति के होते हैं। अतएव एक होशियार मनुष्य यदि गरीब है तो उसे साझेदार आसानी से नहीं मिलता।

* भारतीय साझेदारी विधान, १९३२ के अनुसार एक साधारण कंपनी में साझेदारों की संख्या २० से अधिक नहीं हो सकती और एक बैंक संबंधी फर्म में १० से अधिक नहीं हो सकती।

(२) साझेदारी में इतनी अधिक पूँजी इकट्ठी नहीं हो पाती कि उत्पादन बड़े पैमाने पर हो सके।

(३) साझेदारी अधिक दिन तक नहीं चल पाती। साझेदारों में थोड़ा सा मतभेद होने पर साझेदारी समाप्त हो जाती है।

(४) किसी भी एक साझेदार के मर जाने पर या हट जाने पर साझेदारी तोड़नी पड़ती है।

३. संयुक्त पूँजी की कम्पनी

(Joint Stock Companies)

उत्पादन बड़े पैमाने पर करने के लिये अधिक पूँजी की आवश्यकता पड़ती है। जब लोगों ने यह देखा कि साझेदारी में अधिक पूँजी इकट्ठी नहीं हो पाती तो संयुक्त पूँजी वाली कम्पनियों का चलन आरम्भ हो गया।

मुख्य लक्षण—संयुक्त पूँजी वाली कम्पनियों में हिस्सेदारों की संख्या २० से अधिक होती है।* यदि कम्पनी बैंक संबंधी कार्य करती है, तो हिस्सेदारों की संख्या १० से अधिक होनी चाहिये।

(२) हिस्सेदारों का उत्तरदायित्व परिमित होता है। परिमित उत्तरदायित्व का अर्थ यह है कि जितने रुपये के हिस्से एक हिस्सेदार के पास होते हैं उससे अधिक के नुकसान का वह जिम्मेदार नहीं होता।

(३) कम्पनी स्थायी (Permanent) होती है। एक हिस्सेदार के हट जाने पर या न रहने पर कम्पनी को तोड़ देने की आवश्यकता नहीं होती।

(४) कम्पनी के हिस्से बाजार में बिकते हैं और कोई भी आदमी उन्हें खरीद सकता है।

कम्पनियों के प्रकार—संयुक्त पूँजी वाली कम्पनियाँ दो प्रकार की होती हैं—(१) व्यक्तिगत लिमिटेड कम्पनियाँ (Private Limited Companies), और (२) सार्वजनिक लिमिटेड कम्पनियाँ (Public Limited Companies)। इन दोनों प्रकार की कम्पनियों में भेद यह है कि व्यक्तिगत कम्पनियों के हिस्सेदार जान पहचान वाले या मेल के ही आदमी होते हैं और इनके हिस्से बाजार में नहीं बिकते। इसके विपरीत सार्वजनिक कम्पनियों के हिस्से बाजार में बिकते हैं और उन्हें कोई भी खरीद सकता है।

पूँजी—इन कम्पनियों की पूँजी हिस्से (Shares) बेच कर प्राप्त की जाती है। पूँजी की वह अधिकतम मात्रा जिस तक के हिस्से कम्पनी बेच सकती है, अधिकृत

* भारतीय समझौता कानून के अनुसार नियम ऐसा ही है।

पूँजी (Authorised Capital) कहलाती है। उदाहरण के लिये यदि किसी कम्पनी को ४० लाख रुपये के हिस्से बेचने की आज्ञा मिली है, तो उस कम्पनी की अधिकृत पूँजी ४० लाख कहलावेगी। प्रायः कम्पनियाँ अधिकृत पूँजी के बराबर के हिस्से नहीं बेचतीं। वह थोड़ी सी पूँजी के हिस्से बेचती है और आवश्यकता पड़ने पर बाद में बाकी की पूँजी के हिस्से बेचती है। पूँजी की वह मात्रा जिसके हिस्से कम्पनियाँ निकालती हैं निर्गमित पूँजी (Issued Capital) कहलाती है। परन्तु निर्गमित पूँजी का वह भाग जिसके हिस्से जनता खरीद लेती है, प्रार्थित पूँजी (Subscribed Capital) कहलाती है। उदाहरण के लिये यदि किसी कम्पनी की ३० लाख निर्गमित पूँजी है और जनता २० लाख रुपये के हिस्से खरीदती है तो २० लाख प्रार्थित पूँजी कहलावेगी। कम्पनी के लिये यह आवश्यक नहीं है कि जनता ने जितने रुपयों के हिस्से खरीदे हैं, उन सब रुपयों को एक साथ माँग ले। उदाहरण के लिये यदि १० रुपये का एक हिस्सा है और यदि कम्पनी चाहे तो वह ५ रुपये प्रति हिस्से के हिसाब से पूँजी माँग सकती है। इस प्रकार माँगी गई पूँजी आहूत पूँजी (Called-up Capital) कहलाती है।

सीमित उत्तरदायित्व का अर्थ—संयुक्त पूँजी वाली कंपनियों के हिस्सेदारों का उत्तरदायित्व (Liability) सीमित (Limited) होती है जब कि वैयक्तिक स्वामित्व तथा साझेदारी में उत्तरदायित्व अपरिमित (Unlimited Liability) होता है। सीमित उत्तरदायित्व का अर्थ यह है कि जितने मूल्य के हिस्से किसी व्यक्ति ने खरीदे हैं उससे अधिक रुपया उससे नहीं लिया जा सकता, भले ही कंपनी को कितनी भी हानि क्यों न हो। उदाहरण के लिए मान लीजिये श्याम ने किसी कंपनी के एक हजार रुपये के मूल्य के हिस्से खरीदे हैं। मान लीजिये उस कंपनी को दस लाख रुपये की हानि हो गई है। परन्तु श्याम एक हजार रुपये से अधिक की हानि देने का जिम्मेदार नहीं होगा।

वैयक्तिक स्वामित्व तथा साझेदारी में हानि हो जाने पर किसी एक व्यक्ति से पूरा का पूरा रुपया लिया जा सकता है। उदाहरण के लिये मान लीजिए राम के पास एक लाख रुपये की संपत्ति है। वह दस हजार की पूँजी लगाकर एक व्यापार प्रारंभ करता है और उस व्यापार में तीस हजार का घाटा हो जाता है। यह तीस हजार रुपया राम की संपत्ति बेचकर वसूल किया जा सकता है। परन्तु यदि राम ने संयुक्त पूँजी वाली किसी कंपनी के एक हजार रुपये के हिस्से खरीदे होते, तो उसे एक हजार से अधिक रुपया देने के लिए वाध्य नहीं किया जा सकता था। इस प्रकार संयुक्त पूँजी वाली कंपनियों में उत्तरदायित्व उस मात्रा तक सीमित है जितने के हिस्से कोई व्यक्ति खरीदता है। इससे लाभ यह है कि जितने रुपयों की जोखिम उठाने के लिए व्यक्ति तैयार होते हैं, उतने मूल्य के हिस्से वह खरीद लेते हैं।

हिस्से—कंपनी के हिस्से तीन प्रकार के होते हैं—(१) रियायती हिस्से (Preference Shares), (२) साधारण हिस्से (Ordinary Shares), और (३) विलम्बित हिस्से । (Deferred Shares) रियायती हिस्से वे हिस्से हैं जिन पर एक निश्चित लाभांश प्रतिवर्ष अनिवार्य रूप से देना होता है । लाभ होने पर इन हिस्सेदारों को सबसे पहले रुपया मिलता है । इनको लाभ मिल जाने पर साधारण हिस्सों के मालिकों में लाभ बँटता है । बाद में जो कुछ बचता है वह विलम्बित हिस्से के मालिकों को मिलता है ।

संचालन—कंपनी के जितने भी हिस्सेदार हैं वे सबके सब कंपनी के मालिक होते हैं । कंपनी का प्रबन्ध करने के लिये वह वोटों के आधार पर अपने में से कुछ व्यक्तियों को चुन लेते हैं और उन्हें संचालक (Directors) कहते हैं । इनमें से एक प्रबन्ध-संचालक (Managing Director) कहलाता है ।

इनके गुण—मिश्रित पूँजी वाली कंपनियों से निम्न लाभ हैं :

(१) क्योंकि इनके हिस्सेदारों की संख्या बहुत अधिक होती है, अतएव यह बहुत बड़ी मात्रा में पूँजी इकट्ठा कर लेती हैं ।

(२) अधिक पूँजी के कारण उत्पादन बड़े पैमाने पर हो सकता है ।

(३) उत्तरायित्व परिमित होने के कारण मनुष्य सुगमता से हिस्से खरीद लेते हैं क्योंकि इसमें हानि का भय सीमित है ।

(४) कंपनी का जीवन स्थायी होता है और कुछ हिस्सेदारों के बदल जाने के कारण इसका जीवन समाप्त नहीं होता ।

(५) कंपनी के पास साधन अधिक होते हैं । इस कारण यह विशेष योग्यता वाले मनुष्यों को प्रबन्ध करने के लिये नियुक्त कर सकती है ।

(६) कंपनी खोज (Researches) कराने के लिये बड़े-बड़े विशेषज्ञों और टैक्नीशियनों को भी रख सकती है ।

हानियाँ—मिश्रित पूँजी वाली कंपनियों के निम्न दोष हैं :

(१) कंपनियों को स्थापित करते समय बहुत सी कानूनी कार्यवाहियाँ करनी पड़ती हैं और इस कारण संचालकों को भी बहुत सी कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं ।

(२) कंपनी के संचालक अनेक बेईमानियाँ करते हैं और अनुचित रूप से लाभ उठाते हैं ।

(३) कंपनी के हिस्सेदार बहुत दूर दूर फैले हुए होते हैं और इस कारण कंपनी के प्रबन्ध में सतर्कता से भाग नहीं ले पाते । इस उदासीनता के कारण प्रबन्ध प्रायः खराब हो जाता है ।

(४) इन कंपनियों का प्रबन्ध वेतन पाने वाले कर्मचारियों के हाथ में सौंप दिया जाता है और साहसी अधिक देख-रेख नहीं करते। इस कारण भी प्रबन्ध खराब हो जाता है।

(५) इन कंपनियों में साहसी तथा श्रमिकों में संपर्क नहीं रहता। इससे मजदूर तथा मालिकों के झगड़े बहुत बढ़ जाते हैं।

४. एकाधिकार

(Monopoly)

पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली प्रतिस्पर्धा (Compotition) पर आधारित है। मिश्रित पूँजीवाली कंपनियाँ बड़े पैमाने पर उत्पादन करती हैं और इस कारण उनमें प्रतिस्पर्धा भी बहुत अधिक होती है। घातक प्रतिस्पर्धा के कारण उद्योग-पतियों को भारी हानि उठानी पड़ती है। इस घातक प्रतिस्पर्धा को कम करने के लिये संसार में कुछ नये प्रकार के संगठनों का प्रादुर्भाव हुआ है। इनका उद्देश्य एकाधिकार स्थापित करना है। इस कारण इन संगठनों को एकाधिकार (monopoly) कहते हैं।

जब किसी उत्पादक को किसी वस्तु के उत्पादन, वितरण और क्रय-विक्रय में किसी प्रतिद्वन्दी का सामना नहीं करना पड़ता तो उत्पादक को एकाधिकारी (Monopolist) कहा जाता है और इस अवस्था को एकाधिकार कहते हैं।

एकाधिकार पूर्ण हो सकता है या आंशिक। जब किसी उत्पादक को किसी भी प्रतिद्वन्दी से प्रतिस्पर्धा नहीं सहनी होती, तो उसे पूर्ण एकाधिकारी (Absolute Monopolist) कहते हैं। परन्तु यदि उस वस्तु के उत्पादन करने वाले अन्य और भी व्यक्ति होते हैं जिसके कारण उत्पादक को कुछ प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है तो इस स्थिति को आंशिक एकाधिकार (Quasi-Monopoly) कहते हैं। एकाधिकार के कई रूप होते हैं। उसके कुछ महत्वपूर्ण रूपों के बारे में नीचे बताया गया है।

ट्रस्ट (Trust)

ट्रस्ट का चलन अमरीका में ही अधिक हुआ है। इसका प्रमुख उद्देश्य घातक प्रतिस्पर्धा का अन्त करना है। इसके अनुसार किसी एक वस्तु के उत्पादक आपस में मिलकर एक ट्रस्ट बना लेते हैं और यह ट्रस्ट (Trust) वस्तु के उत्पादन तथा मूल्य के संबंध में जो नीति निर्धारित करता है उस पर सभी सदस्य-उत्पादकों को चलना पड़ता है। इस प्रकार यह उत्पादकों का एक सहयोग है। किन्हीं कारणों से अमरीका की सरकार ने इसे गैर-कानूनी घोषित कर दिया है।

कार्टल (Cartel)

इनका चलन सर्वप्रथम जर्मनी में हुआ। इनके अन्तगत किसी एक वस्तु के सभी उत्पादक आपस में मिलकर एक कंपनी खोल लेते हैं जिसे कार्टल कहा जाता है और जिसका काम उत्पादकों द्वारा तैयार की गई वस्तुओं की बिक्री का प्रबन्ध करना है। अर्थात् सभी उत्पादक वस्तु तैयार कर इस कंपनी को दे देते हैं और यह कंपनी जिस मूल्य पर चाहे और जहाँ चाहे सामान बेचती है।

संघ (Combination)

इसके अन्तर्गत एक वस्तु के सभी उत्पादक अपने माल को एक स्थान पर एकत्रित कर लेते हैं और फिर वहां से उसके बेचने का प्रबन्ध किया जाता है। इससे लाभ यह है कि उत्पादकों में प्रतिस्पर्धा समाप्त हो जाती है।

५. सहकारिता
(Co-Operation)

व्यावसायिक संगठन का एक नया रूप जो आजकल बहुत अधिक प्रचलित है सहकारिता है।

सहकारिता का उद्देश्य सहयोग द्वारा अपनी भलाई करना है। समान उद्देश्य वाले मनुष्य आपस में मिलकर अपनी भलाई के कार्य करते हैं। बीच के नफाखोरों का अन्त कर यह अपनी भलाई करते हैं।

सहकारिता के कई रूप हो सकते हैं। उत्पादक सहयोग द्वारा उत्पादन कर सकते हैं। उपभोक्ता सहयोग द्वारा अपनी भलाई के लिये उपभोक्ता सहाकारी समितियों का निर्माण करते हैं। वस्तुओं के क्रय-विक्रय के लिये भी सहकारी समितियाँ खुलती हैं। ऋण के लिये, सामाजिक भलाइयों के लिये तथा धार्मिक कार्यों के लिये भी सहकारी समितियों का निर्माण होता है। इस प्रकार, सूक्ष्म में, उत्पादन, उपभोग, विनिमय, ऋण, तथा सामाजिक और धार्मिक कार्यों के लिये सहकारिता का सहारा लिया जा सकता है।

सहकारिता से सबसे बड़ा लाभ यह है कि प्रत्येक मनुष्य का आदर्श एक होता है और क्योंकि वह अपनी भलाई के लिये मिलकर कार्य करते हैं, इस कारण काम बड़ा अच्छा होता है।

परन्तु सहकारिता आन्दोलन गरीबों का आन्दोलन है और उन्हीं के लिये यह बना है। अतएव पूँजी की कमी सहकारी समितियों को हमेशा बनी रहती है और इस कारण कोई भी काम ठीक से नहीं हो पाता। इन समितियों का प्रबन्ध और संचालन भी ठीक से नहीं होता।

६. राज्य द्वारा उत्पादन

(State Enterprise)

व्यक्तिगत उत्पादकों के कारण उत्पादन-क्षेत्र में अनेक बुराइयाँ फैली हुई हैं। इसका कारण यह है कि यह सब उत्पादक अपने व्यक्तिगत लाभ का ही अधिक ध्यान रखते हैं और इस कारण देश की या उपभोक्ताओं के हितों की तनिक भी फिक्र नहीं करते। इसी बुराई को दूर करने के लिए देश की सरकारें अनेक वस्तुओं का स्वयं उत्पादन करने लगी हैं।

जो सरकारें समाजवादी (Socialist) विचार-धारा को सही मानती हैं वह तो लगभग सभी उत्पादन कार्य अपने हाथ में ले लेती हैं। परन्तु पूँजीवादी देशों की सरकारें भी अब जनोपयोगी कार्यों (Public Utility Services) को अपने आप करने लगी हैं। जनोपयोगी कार्यों में रेलें, बिजली कम्पनियाँ, पोस्ट आफिस, तार-घर आदि आ जाते हैं।

लाभ—सरकार द्वारा उत्पादन से लाभ यह है कि जनता को सामान कम मूल्य पर मिलने लगता है। यदि सरकार लाभ भी करती है तो वह रुपया जनता की भलाई पर पुनः व्यय कर दिया जाता है और इस प्रकार जनता को बड़ा लाभ होता है। साथ ही, सामान भी अच्छा तैयार होता है।

हानि—परन्तु यदि सरकार उत्पादन के सभी कार्य करने लगती है तो इससे हानि यह है कि व्यक्तियों की योग्यता का पूर्ण रूप से विकास नहीं हो पाता। दूसरे, वस्तुओं का प्रमाणीकरण (Standardisation) हो जाता है और सरकार एक ही प्रकार की वस्तुयें बनाने लगती है। इस कारण मनुष्यों को निर्णय (Choice) का अवसर नहीं रहता।

परीक्षा-प्रश्न

उत्तर-प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—मिश्रित पूँजी वाली कम्पनियों पर एक नोट लिखिये। (१९५२)

२—सहकारी उत्पादन पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। (१९५०)

३—साझेदारी पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। (१९४९)

४—असीमित उत्तरदायित्व के सिद्धान्त पर संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९४८)

पटना इन्टर आर्ट्स

५—मिश्रित पूँजी वाली कम्पनियों का संगठन बताइये। मिश्रित पूँजी वाली कम्पनियाँ आज-कल क्यों अधिक पसन्द की जाने लगी हैं? (१९४९)

६—सीमित उत्तरदायित्व से आप क्या समझते हैं? इसके कारण साझेदारी की अपेक्षा मिश्रित पूजी वाली कम्पनी को क्या अधिक लाभ प्राप्त होते हैं? (१९४७)

पटना इन्टर कामर्स

७—व्यावसायिक संगठन के क्या विभिन्न रूप हैं ? प्रत्येक के हानि-लाभ को बताइये। (१९५१)

सागर इन्टर आर्ट्स

८—मिश्रित पूँजी वाली कम्पनी की विशेषताओं को बताइये। इसके लाभ बताइये। (१९५१, १९४८)

९—मिश्रित पूँजी वाली कम्पनी की विशेषतायें और उसके महत्वपूर्ण लाभ बताइये। (१९५०)

१०—व्यावसायिक संगठन के क्या विभिन्न प्रकार हैं ? किसी भी एक को विस्तार से बताइये। (१९४९)

११—मिश्रित पूँजी वाली कम्पनी पर सूक्ष्म नोट लिखिये। (१९४९)

बावनवाँ अध्याय

उत्पत्ति के नियम

(Laws of Returns)

यह तो स्पष्ट है कि उत्पादन के परिणामस्वरूप उपयोगिता की वृद्धि होती है। यदि उपयोगिता की वृद्धि न हो तो फिर उत्पादन करेगा ही कौन ? हानि उठाने के लिये कोई उत्पादन थोड़े ही करता है।

जब कोई साहसी उत्पाद करता है तो वह उत्पादन के साधनों की मात्रा बढ़ाता जाता है और इसका परिणाम यह होता है कि कुल उत्पादन बढ़ जाता है। उदाहरण के लिये यदि उत्पादन के साधनों की एक इकाई प्रयोग में लाने पर उत्पादन १०० होता है तो साधनों की दो इकाइयाँ प्रयोग में लाने पर कुल उत्पादन बढ़कर २०० हो सकता है। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि साधनों की मात्रा दुगनी करने पर कुल उत्पादन आवश्यक रूप से दुगना हो जाय। हो सकता है कि साधनों की मात्रा दुगुनी करने पर कुल उत्पादन १८० ही हो या २२० हो जाय। कहने का अर्थ यह है कि जिस गति से साधनों की मात्रा बढ़ाई जाती है, हो सकता है उत्पादन भी उसी गति से बढ़े या उससे अधिक तेज गति से बढ़े या उससे कम गति से बढ़े। जब उत्पत्ति की मात्रा कम गति से बढ़ती है तो यह कहा जाता है कि उत्पादन क्रिया से हमें ह्रासमान उत्पत्ति (Diminishing Returns) प्राप्त हो रही है और यदि उत्पत्ति की बढ़ने की गति साधनों के बढ़ने की गति से अधिक है तो यह कहा जाता है कि उत्पादन से हमें वृद्धिमान उत्पत्ति (Increasing Returns) प्राप्त हो रही है। जब उत्पादन समान गति से बढ़ता है तो यह कहा जाता है कि उत्पादन से समान-उत्पत्ति (Constant Returns) प्राप्त हो रही है। किस दशा में क्यों और कब ह्रासमान, वृद्धिमान या समान उत्पत्ति प्राप्त होती हैं इसको बताने वाले नियमों को क्रमशः ह्रासमान-उत्पत्ति-नियम (Law of Diminishing Returns), वृद्धिमान-उत्पत्ति-नियम (Law of Increasing Returns) तथा सम-उत्पत्ति-नियम (Law of Constant Returns) कहते हैं। इन तीनों नियमों को मिलाकर उत्पत्ति का नियम (Laws of Returns) कहा जाता है। इस अध्याय में इन्हीं नियमों के बारे में बताया जायगा।

१. ह्रासमान-उत्पत्ति-नियम*

(Law of Diminishing Returns)

अँग्रेजी अर्थशास्त्रियों में जे० एस० मिल (J. S. Mill) प्रथम अर्थशास्त्री हैं जिन्होंने इस नियम का उल्लेख किया है। आगे चलकर मार्शल (Marshall) ने इस नियम को अधिक स्पष्ट किया।

परिभाषा

मार्शल ने इस नियम की परिभाषा देते हुए कहा है कि "यदि भूमि पर खेती करनें के लिये पूँजी और श्रम की मात्रा बढ़ाई जाय तो उससे प्राप्त होने वाली उपज की मात्रा सामान्यतः कम होती जायगी, जब तक कि खेती करने के ढंग में कोई सुधार न किया जाय।"†

नियम का स्पष्टीकरण

मार्शल का कहना है कि भूमि के किसी टुकड़े पर यदि उत्पत्ति के साधनों की मात्रा बढ़ाई जाय परन्तु न तो उत्पादन-विधि में ही परिवर्तन किया जाय और न खेत की उर्वरता (Fertility) को हीं सुधारा जाय तो खेत से प्राप्त होने वाली उपज की मात्रा क्रमशः कम होती जायगी। इसका कारण स्पष्ट है। जब भूमि पर कोई एक फसल उगाई जाती है तो भूमि की उर्वरा-शक्ति कुछ कम हो जाती है। फसल को पैदा करने में भूमि की कुछ शक्ति का ह्रास हो जाता है और इस कारण पहले जितनी उसकी उर्वरता नहीं रहती। इस कारण जब दूसरी इकाई लगाई जाती है तो सीमान्त उत्पादन पहले से कम होता है। यदि खेत में खाद नहीं डाली जाती और किसी अन्य प्रकार से भी उसकी उर्वरता नहीं बढ़ाई जाती तो तीसरी इकाई लगाकर फसल उगाने पर सीमान्त उत्पादन दूसरी बार से भी कम हो जायगा। इसी प्रकार उत्पादन के साधनों की हर नई इकाई व्यय करने पर सीमान्त उत्पादन घटता जायगा। ध्यान रखने की बात है कि कुल उत्पादन तो बढ़ेगा, परन्तु सीमान्त उत्पादन कम होता जायगा।

---

*इस नियम को कुछ पुस्तकों में क्रमागति-उत्पत्ति-ह्रास-नियम कहा गया है। परन्तु इसे ह्रासमान-उत्पत्ति-नियम कहना ही अधिक उचित है क्योंकि एक तो यह अँग्रेजी के 'Law of Diminishing Returns' का सही रूपान्तर है और दूसरे उपभोग के अन्तर्गत आने वाले क्रमागति उपयोगिता ह्रास नियम से समानता न होने के कारण कोई भ्रम नहीं होता।

† "An increase in the capital and labour employed in the cultivation of land causes, in general, a less than proportionate increase in the amount of produce raised, unless it happens to coincide with an improvement in the art of agriculture"—Marshall, *Practical*, Book IV. III. I.

ध्यान रखने योग्य बातें

नियम को स्पष्ट करते हुए जो कुछ कहा गया है उसमें तीन बातें विशेषतः ध्यान रखने योग्य हैं :

(१) खेती के ढंग में परिवर्तन न होना,
(२) भूमि की उर्वरता (Fertility) न बढ़ना,
(३) पूँजी और श्रम की मात्रा बढ़ाना,

(१) खेती के ढंग में परिवर्तन न होना—नियम तभी लागू होगा जब कृषि के तरीके में कोई परिवर्तन न किया जाय। किसी खेत में कितनी पैदावार होती है यह इस बात पर भी निर्भर रहता है कि खेत को किस प्रकार जोता-बोया तथा काटा जा रहा है, खेती के लिये किस प्रकार के बीजों को प्रयोग में लाया जाता है, किस प्रकार के औजारों तथा मशीनों का प्रयोग किया जा रहा है आदि। मार्शल का कहना है कि कृषि की विधि को किसी भी प्रकार से सुधारा न जाय। यदि कृषि-विधि में सुधार हो गया तो स्पष्ट है कि सीमान्त उत्पादन भी बढ़ जायगा। अतएव ह्रासमान उत्पत्ति तभी प्राप्त होगी जब खेती के तरीके को सुधारा न जाय।

(२) भूमि की उर्वरा-शक्ति न बढ़ाना—दूसरी बात जो मार्शल कहते हैं वह यह है कि भूमि की उर्वरता को भी नहीं बढ़ाना चाहिये। जमीन को परती छोड़कर या उसमें खाद डालकर या फसलों को हेर-फेर करके बोने से भूमि की उर्वरता बढ़ जाती है। इनमें से किसी भी काम को नहीं करना चाहिये अन्यथा उत्पादन घटने के स्थान पर बढ़ जायगा।

(३) पूँजी तथा श्रम की मात्रा बढ़ाना—मार्शल नियम की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि खेत के किसी टुकड़े पर यदि श्रम तथा पूँजी की मात्रा बढ़ाई जाय तो ह्रासमान उत्पत्ति प्राप्त होगी। ध्यान रखने की बात है कि वह भूमि के टुकड़े को नहीं बढ़ाते। भूमि भी उत्पादन का एक साधन है। मार्शल भूमि को छोड़कर बाकी सभी साधनों के बढ़ाने की बात करते हैं। यदि उत्पादन के अन्य साधनों के साथ भूमि को भी बढ़ाया गया तो ह्रासमान उत्पत्ति नहीं प्राप्त होगी। यह बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है।

उदाहरण

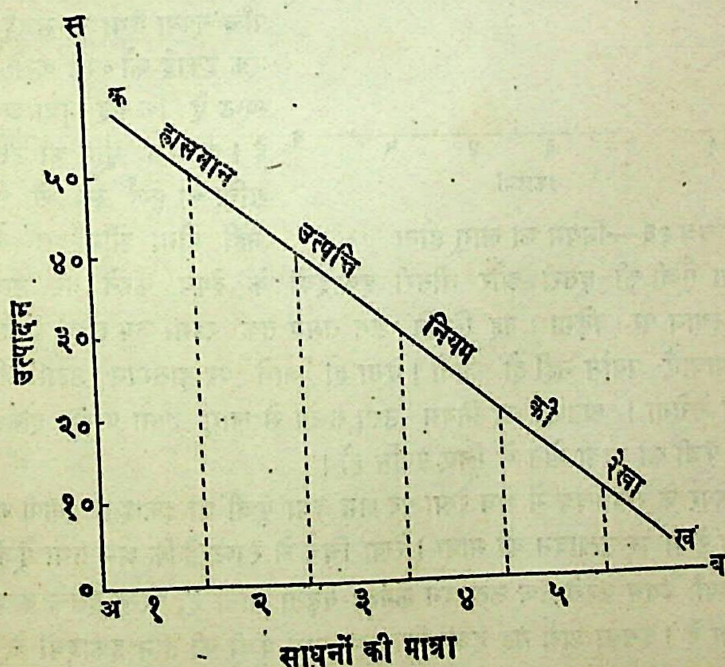
इस नियम को एक उदाहरण द्वारा भी समझाया जा सकता है। मान लीजिये भूमि के किसी एक टुकड़े पर खेती की जा रही है। उस टुकड़े पर श्रम तथा पूँजी की एक इकाई प्रयोग में लाने पर उत्पादन ५० मन होता है। श्रम तथा पूँजी की दो इकाइयाँ प्रयोग में लाने पर कुल उत्पादन बढ़कर ९० मन, तीन इकाइयाँ प्रयोग में लाने पर १२० मन, चार इकाइयाँ काम में लाने पर १४० मन, और पाँच

इकाइयाँ प्रयोग में लाने पर १५० मन हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि ज्यों-ज्यों साधनों की मात्रा बढ़ाई जाती है कुल उत्पादन तो बढ़ता है, परन्तु उसके बढ़ने की गति इतनी तीव्र नहीं है जितनी कि साधनों के बढ़ने की गति। यह बात सीमान्त उत्पादन (प्रति इकाई बढ़ने वाला उत्पादन) देखने से स्पष्ट हो जाती है। यह निम्न तालिका में दिखलाया गया है।

साधनों की मात्रा	कुल उत्पादन (मनों में)	सीमान्त उत्पादन (मनों में)
१	५०	५०
२	९०	४०
३	१२०	३०
४	१४०	२०
५	१५०	१०

रेखाचित्र

इस नियम को एक रेखाचित्र द्वारा भी दिखलाया जा सकता है। हमने ऊपर वाले उदाहरण को ही रेखाचित्र द्वारा दिखलाया है।



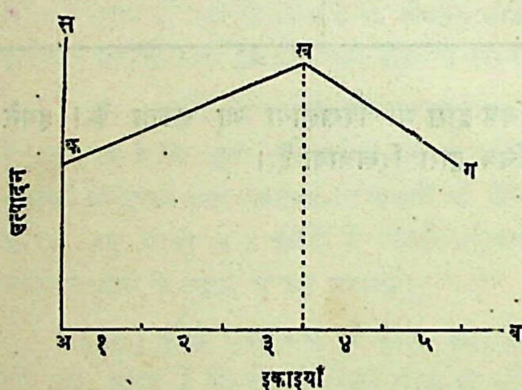
चित्र ६५—ह्रासमान उत्पत्ति नियम की रेखा

रेखाचित्र में अ ब रेखा पर साधनों की मात्रा दिखलाई गई है और अ स रेखा पर उत्पत्ति की मात्रा। क ख रेखा ह्रासमान उत्पादन नियम की रेखा है। यह क से आरंभ होकर ख की ओर जाती है। इस प्रकार इसकी गति ऊपर से नीचे की ओर है। फलतः यह ह्रासमान-वृद्धि-गति की द्योतक है।

नियम की सीमाएँ (Limitatirons)

नियम की चार सीमाएँ हैं : (१) कृषि-कला में परिवर्तन न करना, (२) खेत की उर्वरता न बढ़ाना, (३) श्रम तथा पूँजी की मात्रा बढ़ाना परन्तु भूमि को न बढ़ाना, और (४) नियम का सामान्यतः लागू होना। इनमें से पहली तीनों सीमाओं का अर्थ समझाया जा चुका है। 'सामान्यतः' शब्द का तात्पर्य नीचे बताया जाता है।

सामान्यतः—मार्शल का कहना है कि यह नियम सामान्यतः लागू होता है, हमेशा नहीं। अर्थात् कभी-कभी ऐसा होता है कि यह नियम लागू नहीं होता। ऐसा उस समय होता है जब श्रम तथा पूँजी की इकाइयाँ खेत के लिए अपर्याप्त हों। उदाहरण के लिये यदि आप दस एकड़ के किसी एक खेत पर केवल पाँच रुपया तथा २ मजदूरों की एक इकाई को व्यय करते हैं तो स्पष्ट है कि यह मात्रा अपर्याप्त है। अतएव भूमि की उत्पादन शक्ति का पूर्ण रूप से शोषण नहीं होगा और इस कारण श्रम तथा पूँजी की दूसरी और तीसरी इकाइयों के व्यय करने पर उत्पादन घटने के स्थान पर बढ़ेगा। यह स्थिति उस समय तक रहेगी जब तक पूँजी तथा श्रम की मात्राएँ पर्याप्त नहीं हो जातीं। ऐसा हो जाने पर ह्रासमान उत्पत्ति नियम लागू होने लगेगा। अतएव यह नियम उसी समय से लागू होना प्रारंभ होगा जब श्रम तथा पूँजी की मात्रा खेत के लिए पर्याप्त हो।



चित्र ९६—नियम का लागू होना

ऊपर के रेखाचित्र में अब रेखा पर श्रम तथा पूँजी की इकाइयाँ नापी गई हैं और अ स रेखा पर उत्पादन की मात्रा। रेखा चित्र से स्पष्ट है कि श्रम तथा पूँजी की तीन इकाइयाँ व्यय करने तक उत्पादन क्रमशः बढ़ता जाता है, परन्तु इसके बाद वह घटता जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि श्रम तथा पूँजी की तीन इकाइयों के बाद ही ह्रासमान उत्पत्ति नियम लागू होता है।

नियम का क्षेत्र

मार्शल का कहना था कि यह नियम कृषि में विशेष रूप से लागू होता है। परन्तु उन सब उद्योगों में भी जहाँ प्रकृति (Nature) का हाथ अधिक होत है, यह नियम लागू होता है। उदाहरण के लिये मछली पकड़ना, खान खोदना, मकान बनाना आदि ले लीजिए।

(१) मछली पकड़ना

मछली पकड़ने वाले उद्योग में भी यह नियम लागू होता है। ज्यों-ज्यों अधिक श्रम तथा पूँजी लगाकर मछलियों को पकड़ा जायगा, मछलियों की मात्रा कम होती जायगी और मछलियों की पकड़ भी कम हो जायगी। जब किसी तालाब या झील में मछलियाँ बहुत होती हैं तो थोड़ी सी मेहनत के बाद ही बहुत मछलियाँ पकड़ी जा सकती हैं। परन्तु यदि मछलियों की संख्या कम हो जाय तो पकड़ में आने वाली मछलियों की मात्रा भी कम हो जायगी। अतः, यह कहा जा सकता है कि मछली व्यवसाय में यह नियम लागू होता है।

(२) खान खोदना

खान खोदने में भी यह नियम लागू होता है। ज्यों-ज्यों खान अधिक गहरी खोदी जाती है, उसके खोदने का व्यय बढ़ता जाता है। खान की मिट्टी बाहर लाने में, खान से निकली हुई धातु ऊपर तक लाने में, खान खोदने वालों को आवश्यक सुविधायें पहुँचाने आदि में इतना अधिक व्यय हो जाता है कि प्रति इकाई उत्पादन व्यय बढ़ने लगता है और नियम लागू हो जाता है।

(३) मकान बनवाना

मकान बनवाने में भी यह नियम लागू होता है। यदि किसी मकान पर नई-नई मंजिलें बनाई जायँ तो मिट्टी, चूना, ईंट आदि ले जाने का व्यय बढ़ता जायगा। अतएव मकान बनाने का व्यय क्रमशः बढ़ता जायगा और यह नियम लागू हो जायगा।

(४) मिट्टी के बर्तन बनाना

मिट्टी के बर्तन बनाने में भी यह नियम लागू होता है। मिट्टी के बर्तन बनाने के लिये ज्यों-ज्यों अधिक मिट्टी की आवश्यकता पड़ेगी, यह आवश्यक हो जायगा कि मिट्टी का गड्ढ़ा गहरा खोदा जाय और गहरा गड्ढ़ा खोदने तथा वहाँ से मिट्टी बाहर लाने का व्यय बढ़ता जायगा। इस प्रकार यह नियम मिट्टी के बर्तन बनाते समय भी लागू होता है।

यही नहीं यह नियम जंगलों से लकड़ी काटने, जंगलों से रबड़ इकट्ठा करने तथा जंगलों से जड़ी-बूटी इकट्ठा करने में भी लागू होता है।

नियम का आधुनिक रूप

ऊपर ह्रासमान उत्पत्ति-नियम की मार्शल (Marshall) द्वारा दी गई परिभाषा बताई गई है तथा उसका स्पष्टीकरण किया गया है। आधुनिक अर्थशास्त्री अब मार्शल के मत को ठीक नहीं मानते। अतएव अब इस नियम के आधुनिक रूप को सूक्ष्म में बताया जाता है।

यह नियम कृषि में विशेषतः लागू नहीं होता—आधुनिक अर्थशास्त्रियों का कहना है कि मार्शल का यह कहना कि ह्रासमान-उत्पत्ति-नियम भूमि (Land) पर विशेष रूप से लागू होता है, ठीक नहीं है। मार्शल इस गलत परिणाम पर इसलिए पहुँचे क्योंकि उन्होंने उत्पादन के साधनों को बढ़ाते समय भूमि की मात्रा नहीं बढ़ाई। यदि अन्य साधनों के साथ-साथ भूमि को भी बढ़ाया जाय अर्थात् यदि उत्पादन के सभी साधनों को समान गति से बढ़ाया जाय तो हमें उत्पादन से कभी भी ह्रासमान उत्पत्ति प्राप्त नहीं होगी। उत्पादन की किसी भी क्रिया में यदि उत्पादन के किसी भी एक साधन की मात्रा स्थिर रखी जाती है तो उत्पादन क्रमशः कम होता जायगा। अतएव ह्रासमान उत्पत्ति प्राप्त होने का कारण उत्पादन के किसी एक साधन का स्थिर (Fixed) हो जाना है, न कि यह कि उत्पादन भूमि पर हो रहा है।

ह्रासमान उत्पत्ति नियम का लागू होना—आधुनिक अर्थशास्त्रियों का मत है कि उत्पादन का जब एक भी साधन स्थिर हो जाता है अर्थात् जब उसकी मात्रा नहीं बढ़ पाती, तभी उत्पादन की क्रिया से ह्रासमान उत्पत्ति प्राप्त होने लगती है। उत्पादन के किसी एक साधन के स्थिर हो जाने का कारण चाहे यह हो सकता है कि उत्पादक उसकी मात्रा नहीं बढ़ाता, चाहे यह कि बाजार में वह उपलब्ध नहीं है और चाहे यह कि उत्पादन के अन्य साधनों के साथ मिलकर उसको प्रयोग नहीं किया जा सकता। कारण कुछ भी हो, जैसे ही एक भी साधन स्थिर हो जाता है, ह्रासमान-उत्पत्ति नियम लागू होने लगता है। चाहे आप कृषि को लें या उत्पादन की किसी अन्य क्रिया को, यह नियम सभी में समान रूप से लागू होता है।

२. वृद्धिमान उत्पत्ति नियम

(Law of Increasing Returns)

आचार्य मार्शल का कहना था कि वृद्धिमान उत्पत्ति नियम विशेष रूप से उद्योगों में लागू होता है। उनका विचार था कि उद्योगों में जैसे-जैसे मशीनों का प्रयोग बढ़ता जाता है, उत्पादन की लागत कम होती जाती है और यह नियम लागू होने लगता है। जहाँ ह्रासमान-उत्पत्ति नियम विशेषतः कृषि में लागू होता है, वृद्धिमान-उत्पत्ति नियम उद्योगों में लागू होता है।

परिभाषा

यदि उद्योगों में श्रम तथा पूँजी की मात्राएँ क्रमशः बढ़ाई जायँ तो प्रति इकाई उत्पादन भी बढ़ता जायगा। मार्शल के अनुसार "श्रम तथा पूँजी की वृद्धि से संगठन सामान्यतः अच्छा हो जाता है जिसके फलस्वरूप श्रम तथा पूँजी की कार्यक्षमता बढ़ जाती है।"*

नियम का स्पष्टीकरण

जब किसी उद्योग में अधिक पूँजी का प्रयोग किया जाता है तो इसका परिणाम यह होता है कि नई-नई मशीनों का प्रयोग बढ़ जाता है। मशीनों के प्रयोग के कारण उत्पादन बड़े पैमाने पर होने लगता है। बड़े पैमाने के उत्पादन से दो प्रकार की मितव्ययताएँ प्राप्त होने लगती हैं जिन्हें आंतरिक तथा वाह्य बचतें कहा जाता है। इन बचतों के कारण उत्पादन-व्यय कम होने लगता है। इस प्रकार वृद्धिमान-उत्पत्ति नियम के लागू होने का मुख्य कारण मशीनों का अधिक मात्रा में प्रयोग है।

उदाहरण

एक उदाहरण लेकर इस नियम को सुगमता से समझाया जा सकता है। मान लीजिए किसी एक कारखाने में कपड़ा तैयार किया जा रहा है। पूँजी तथा श्रम की एक इकाई व्यय करने पर, मान लीजिये, कुल उत्पादन ५०० गज है। इकाइयाँ बढ़ाकर दो कर देने पर कुल उत्पादन बढ़कर ११०० गज हो जाता है। श्रम तथा पूँजी की तीन, चार तथा पाँच इकाइयाँ व्यय करने पर कुल उत्पादन क्रमशः १८००, २६०० तथा ३५०० गज हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि उत्पादन के क्रमशः बढ़ने की गति श्रम तथा पूँजी को बढ़ाने की गति से अधिक तेज है।

तालिका

ऊपर दिये गये उदाहरण को एक तालिका द्वारा भी दिखलाया जा सकता है। यह तालिका नीचे दी गई है :

(उत्पादन गजों में)

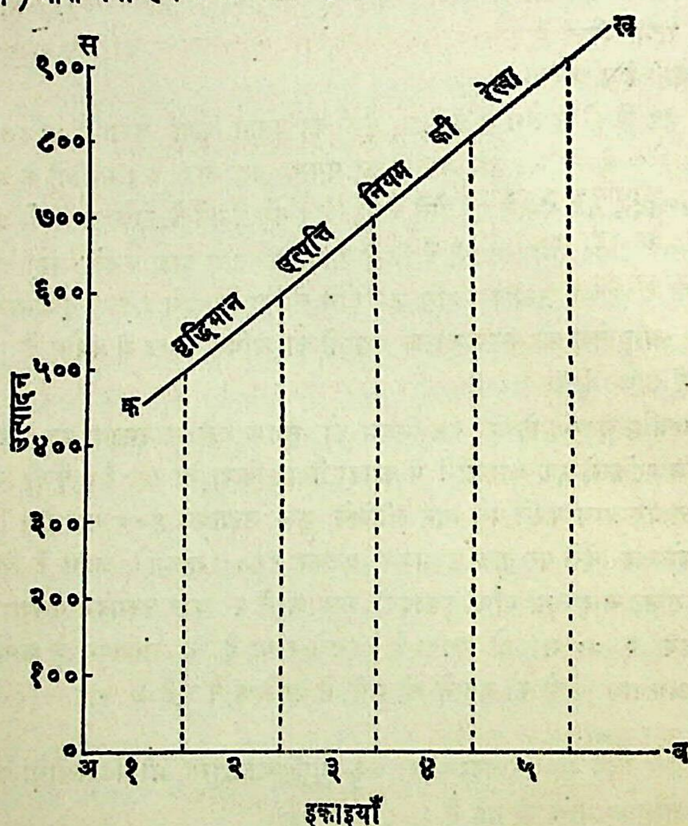
इकाइयाँ	कुल उत्पादन	सीमान्त उत्पादन
१	५००	५००
२	१,१००	६००
३	१,८००	७००
४	२,६००	८००
५	३,५००	९००

*"An increase of labour and capital leads generally to improved organisation which increases the efficiency of the work of labour and capital"—Marshall, *Principles of Economics*,

रेखाचित्र

उपर्युक्त तालिका को नीचे एक रेखाचित्र द्वारा दिखलाया गया है :

इस रेखाचित्र में अ ब रेखा पर इकाइयाँ तथा अ स रेखा पर उत्पादन (गजों में) नापा गया है। क ख रेखा वृद्धिमान उत्पत्ति-नियम की रेखा है। यह



चित्र ६७—वृद्धिमान उत्पत्ति-नियम

क से आरंभ होकर ख की ओर जाती है। क्योंकि यह उत्तरोत्तर ऊँची होती चली गई है इससे पता चलता है कि उत्पादन क्रमशः बढ़ रहा है।

ध्यान रखने योग्य बातें

आचार्य मार्शल ने वृद्धिमान उत्पत्ति-नियम की जो व्याख्या की है उसमें निम्न बातें ध्यान रखने योग्य हैं :

(१) यह नियम कारखानों तथा उद्योगों में ही लागू होता है, कृषि में नहीं लागू होता।

(२) इस नियम के लागू होने का मुख्य कारण यह है कि श्रम तथा पूँजी की मात्राएँ बढ़ाने पर मशीनों का प्रयोग अधिक व्यापक हो जाता है

जिससे दोनों प्रकार की मितव्ययताएँ प्राप्त होने लगती हैं और उत्पादन-व्यय कम हो जाता है।

(३) उद्योगों में प्रकृति का कोई महत्वपूर्ण हाथ नहीं होता। वहाँ मनुष्य अपने विवेक से अधिक काम ले सकता है। परन्तु कृषि में मनुष्य को प्रकृति पर निर्भर रहना पड़ता है। प्रकृति पर निर्भर रहने के कारण ही कृषि से ह्रासमान उत्पत्ति प्राप्त होती है।

नियम का आधुनिक रूप

आधुनिक अर्थशास्त्री आचार्य मार्शल के उपर्युक्त विचारों से सहमत नहीं हैं। न तो वह यही मानते हैं कि यह नियम विशेषतः. उद्योगों में लागू होता है और न वह उन कारणों से ही सहमत हैं जिनसे यह नियम लागू होता है।

आधुनिक अर्थशास्त्रियों का मत है कि यदि उत्पादन क्रिया में उत्पत्ति का कोई भी साधन स्थिर (fixed) न हो, अर्थात् सभी साधन बदलते रहें तो हमें वृद्धिमान उत्पत्ति-नियम प्राप्त हो सकता है। उत्पत्ति के साधन कुछ सीमा तक एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग में लाए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए आप चाहें तो प्रत्येक दर्जी को एक मशीन देकर कपड़े सिलवाएँ या चार-पाँच दर्जियों के बीच एक मशीन देकर काम करावें। इस प्रकार उत्पादन के विभिन्न साधनों को भिन्न-भिन्न मात्रा में मिलाकर उतना ही उत्पादन किया जा सकता है। उत्पत्ति के साधन एक सीमा तक एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग में लाए जा सकते हैं अर्थात् उनका प्रतिस्थापन (substitute) किया जा सकता है। प्रतिस्थापन के कारण ही उत्पादन की क्रिया से वृद्धिमान उत्पत्ति प्राप्त होती है।

३. सम-उत्पत्ति-नियम

(Law of Constant Returns)

मार्शल ने ह्रासमान तथा वृद्धिमान उत्पत्ति-नियमों के अतिरिक्त सम-उत्पत्ति नियम की भी व्याख्या की है। यह नियम दोनों नियमों के बीच की स्थिति का द्योतक है।

परिभाषा

जब उत्पत्ति के साधनों में वृद्धि करने से कुल उत्पत्ति समानुपातिक गति से बढ़ती है तो यह कहा जाता है कि उत्पादन क्रिया से सम-उत्पत्ति नियम प्राप्त हो रहा है। अन्य शब्दों में उत्पत्ति के साधनों की मात्रा जिस गति से बढ़ाई जाती है यदि उत्पादन भी उसी गति से बढ़े तो यह कहा जायगा कि उत्पादन से सम-उत्पत्ति-नियम प्राप्त हो रहा है।

नियम का स्पष्टीकरण

मार्शल का कहना है कि यह नियम उस समय लागू होता है जब ह्रासमान तथा वृद्धिमान उत्पत्ति-नियमों का आपस में संतुलन हो जाता है। अन्य शब्दों में जब इन दोनों नियमों की पारस्परिक विरोधी प्रवृत्तियाँ समान शक्ति से काम करती हैं, तो इन दोनों शक्तियों का संतुलन हो जाता है और फलतः उत्पादन से सम-उत्पत्ति-नियम प्राप्त होने लगता है। उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति ईख की खेती करता है और साथ ही चीनी की मिल भी चलाता है तो उसे ईख की खेती से ह्रासमान उत्पत्ति प्राप्त होगी और चीनी के कारखाने से वृद्धिमान उत्पत्ति। यदि इन दोनों को मिला दिया जाय तो उसे ईख तथा चीनी के उत्पादन से सम-उत्पत्ति प्राप्त होगी।

उदाहरण

उदाहरण के लिए मान लीजिए एक व्यक्ति कपास की खेती करता है और उससे कपड़ा भी तैयार करता है। श्रम तथा पूँजी की पहली इकाई व्यय करने पर कपड़े का उत्पादन, मान लीजिए, १०० गज होता है। साधनों की दो इकाइयाँ व्यय करने पर उत्पादन बढ़ कर २०० गज हो जाता है। साधनों की तीन, चार तथा पाँच इकाइयाँ व्यय करने पर उत्पादन क्रमशः ३००, ४०० तथा ५०० गज होता है। इससे स्पष्ट है कि उत्पादन समान गति से बढ़ रहा है।

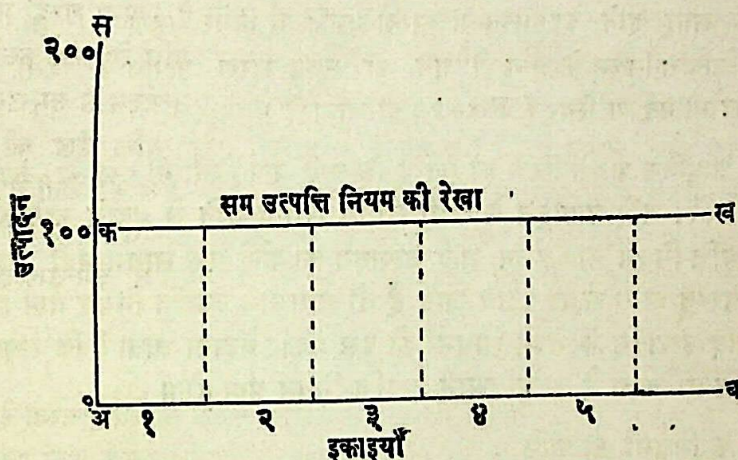
तालिका

ऊपर वाले उदाहरण को एक तालिका द्वारा भी दिखलाया जा सकता है। तालिका नीचे दी गई है :

इकाइयाँ	कुल उत्पादन	सीमान्त उत्पादन
१	१००	१००
२	२००	१००
३	३००	१००
४	४००	१००
५	५००	१००

रेखाचित्र

ऊपर दी गई तालिका को एक रेखाचित्र द्वारा भी दिखलाया जा सकता है। इस रेखाचित्र में अ ब रेखा पर साधनों की इकाइयाँ नापी गई हैं और अ स रेखा पर



चित्र ६८—सम-उत्पत्ति-नियम

उत्पादन की मात्रा। क ख रेखा सम-उत्पत्ति-नियम की रेखा है। यह रेखा सीधी रेखा है जिससे पता चलता है कि उत्पादक को समान उत्पत्ति प्राप्त हो रही है।

४ प्रकृति तथा उत्पादन के नियम

(Nature and the Law of Production)

यह बताया जा चुका है कि मार्शल का कहना था कि भूमि से हमें ह्रासमान उत्पत्ति नियम इस कारण प्राप्त होता है क्योंकि भूमि पर प्रकृति (Nature) का गहरा प्रभाव पड़ता है। खेती करते समय किसानों को वर्षा, धूप आदि के लिये प्रकृति पर निर्भर रहना पड़ता है। सिंचाई के साधनों को चाहे कितना ही क्यों न बढ़ाया जाय और मनुष्य चाहे कितनी ही वैज्ञानिक उन्नति क्यों न करले, खेती करते समय उसे प्रकृति पर निर्भर रहना ही पड़ेगा। प्रकृति पर निर्भर रहने के कारण ही भूमि से ह्रासमान उत्पत्ति नियम प्राप्त होता है। इसके विपरीत बड़े पैमाने के उद्योगों में प्रकृति का हाथ नहीं रहता। मनुष्य अपनी बुद्धि द्वारा नये नये सुधार कर सकता है, नई नई मशीनों का प्रयोग कर सकता है और उद्योग का संगठन सुधार सकता है। इसी कारण उद्योगों से वृद्धिमान उत्पत्ति प्राप्त होती है। मार्शल का कहना था कि "उत्पादन में जहाँ प्रकृति का हाथ होता है ह्रासमान उत्पत्ति प्राप्त होती है और जहाँ मनुष्य का हाथ होता है, वृद्धिमान उत्पत्ति प्राप्त होती है।" *

---

* " The part which nature plays in production shows a tendeney to diminishing returns, the part which man plays shows a tendedcy to increasing returns"—Marshall, *Principles of Economics.*

आधुनिक अर्थशास्त्री इस मत से सहमत नहीं है। उनका कहना है कि न तो कृषि से हमें सदैव ह्रासमान उत्पत्ति-नियम ही प्राप्त होता है और न उद्योगों से सदैव वृद्धिमान उत्पत्ति-नियम ही। यह कहना भी ठीक नहीं है कि ह्रासमान उत्पत्ति-नियम के लागू होने का एकमात्र कारण प्रकृति पर निर्भर रहना है। वास्तव में ह्रासमान उत्पत्ति-नियम के लागू हो जाने का मुख्य कारण उत्पत्ति के किसी एक साधन का सीमित या स्थिर (Fixed) हो जाना है।

आधुनिक अर्थशास्त्रियों का मत है कि चाहे आप किसी भी वस्तु का उत्पादन क्यों न करें, यदि उत्पादन के सभी साधन समान गति से बढ़ाये जाते हैं तो सम-उत्पत्ति-नियम प्राप्त होगा, यदि उत्पादन का कोई एक साधन नहीं बढ़ाया जाता, परन्तु अन्य सभी बढ़ाये जाते हैं तो ह्रासमान उत्पत्ति नियम प्राप्त होगा और यदि उत्पादन के सभी साधनों को इस प्रकार बढ़ाया जाता है कि उत्पादन व्यय कम हो जाता है तो वृद्धिमान उत्पत्ति नियम प्राप्त होगा।

उत्पत्ति के नियमों की प्राप्ति

आधुनिक अर्थशास्त्री यह भी कहते हैं कि सभी प्रकार के उत्पादन में आरम्भ में वृद्धिमान उत्पत्ति-नियम लागू होता है, इसके बाद सम-उत्पत्ति-नियम और अंत में ह्रासमान उत्पत्ति-नियम। इसका कारण यह है कि जब उत्पादन आरंभ होता है तो उत्पादक साधनों के विभिन्न मेलों (Combinations) को प्रयोग में लाता है। किसी एक साधन के स्थान पर किसी दूसरे साधन का प्रयोग कर वह अपना उत्पादन-व्यय कम करने का प्रयास करता है। इस क्रिया को प्रतिस्थापन (Substitution) कहते हैं। प्रतिस्थापन के कारण ही वृद्धिमान उत्पत्ति-नियम लागू होता है। अतएव आरंभ में वृद्धिमान उत्पत्ति-नियम लागू होता है। परन्तु प्रतिस्थापन थोड़े समय तक ही होने पाता है, इस कारण थोड़े समय बाद सम-उत्पत्ति-नियम प्राप्त होने लगता है। इसके पश्चात् उत्पादन का कोई एक साधन स्थिर हो जाता है जिससे ह्रासमान उत्पत्ति नियम प्राप्त होने लगता है।

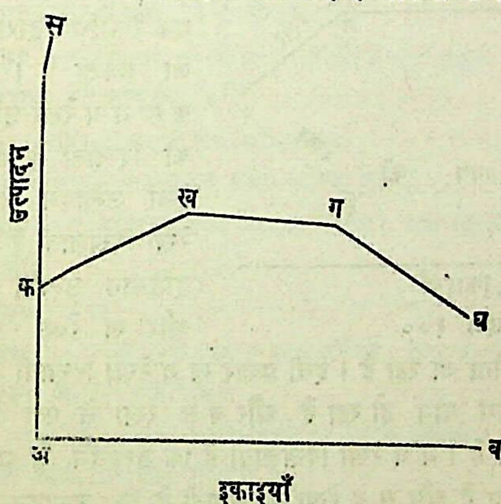
उदाहरण

इस कथन को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिये एक किसान खेती करता है और विभिन्न इकाइयाँ व्यय करने पर उसका उत्पादन निम्न प्रकार बढ़ता है :—

इकाइयाँ	कुल उत्पादन	सीमान्त उत्पादन	
१	५५	५५	वृद्धिमान-उत्पत्ति
२	१२०	६५	
३	१९०	७०	
४	२६०	७०	सम-उत्पत्ति
५	३३०	७०	
६	३८०	५०	ह्रासमान-उत्पत्ति
७	४२०	४०	
८	४४०	२०	

रेखाचित्र

ऊपर की तालिका को एक रेखाचित्र द्वारा भी दिखलाया जा सकता है। इस रेखाचित्र में अ ब रेखा पर इकाइयाँ नापी गई हैं और अ स रेखा पर उत्पादन



चित्र ९९—उत्पत्ति के तीनों नियम

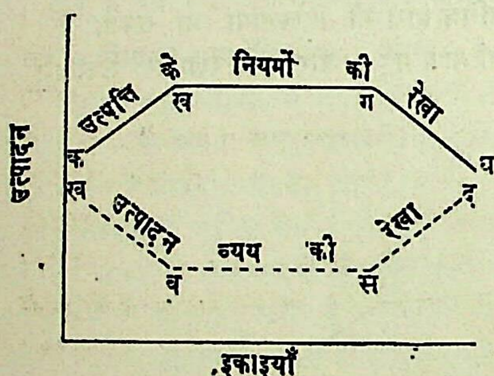
की मात्रा। क ख ग घ उत्पादन के नियम की रेखा है। इसमें क ख तक वृद्धिमान उत्पत्ति-नियम, ख ग तक सम-उत्पत्ति-नियम और ग घ तक ह्रासमान उत्पत्ति-नियम दिखलाया गया है।

५. उत्पत्ति के नियम तथा उत्पादन-व्यय

(Laws of Production and Cost of Production)

उत्पत्ति के नियमों को उत्पादन-व्यय द्वारा भी बतलाया जा सकता है।

उत्पत्ति के नियमों का उत्पादन-व्यय से गहरा सम्बन्ध है। वृद्धिमान उत्पत्ति-नियम का अर्थ यह होता है कि उत्पादन-व्यय कम होता जा रहा है और ह्रासमान उत्पत्ति-नियम का अर्थ होता है कि उत्पादन-व्यय बढ़ता जा रहा है। सम-उत्पत्ति के समय उत्पादन-व्यय भी समान रहता है। उदाहरण के लिये मान लीजिये श्रम तथा पूँजी की एक इकाई का मूल्य १० रुपया है। श्रम तथा पूँजी की एक इकाई व्यय करने पर मान लीजिये उत्पादन २० इकाई है। साधनों की दो इकाइयाँ व्यय करने पर कुल उत्पादन ५० इकाई हो जाता है। हम कहेंगे कि उत्पादन से हमें वृद्धिमान उत्पत्ति-नियम प्राप्त हो रहा है। इसी बात को हम यों भी कह सकते हैं कि १० रुपये व्यय करने पर उत्पादन २० इकाई है और २० रुपया व्यय करने पर उत्पादन बढ़कर ५० इकाई हो जाता है। अर्थात् १० रुपया व्यय करने पर प्रति इकाई उत्पादनव्यय-८ आना पड़ता है और २० रुपया व्यय करने पर प्रति इकाई उत्पादन-व्यय ६$\frac{2}{5}$ आना हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि वृद्धिमान उत्पत्ति प्राप्त होने पर प्रति इकाई उत्पादन-व्यय घटता जाता है। इन दोनों का पारस्परिक संबन्ध एक रेखाचित्र द्वारा भी दिखलाया जा सकता है। रेखाचित्र में क ख ग घ रेखा उत्पत्ति के नियमों को दिखाती है और ख ब स द रेखा उत्पादन व्यय की। क ख रेखा दिखलाती है कि उत्पादन से वृद्धिमान उत्पत्ति प्राप्त हो रही है और ख रेखा बताती है कि उत्पादन-व्यय कम होता जा रहा है। इसी प्रकार ख ग रेखा दिखाती है कि उत्पादन से सम-उत्पत्ति-नियम प्राप्त हो रहा है और ब स रेखा से पता चलता है कि उत्पादन-व्यय समान है। ग घ रेखा दिखलाती है कि उत्पादन से ह्रासमान उत्पत्ति-नियम प्राप्त हो रहा है और स द रेखा यह बताती है कि उत्पादन-व्यय बढ़ता जा रहा है।



चित्र १००

परीक्षा-प्रश्न

उत्तर-प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—आप उत्पादन के ह्रासमान उत्पत्ति नियम से क्या समझते हैं? समझाकर लिखिये। (१९५२)

२—'वृद्धिमान उत्पत्ति-नियम' की व्याख्या कीजिये। (१९५१)

३—ह्रासमान उत्पत्ति-नियम को समझाते हुए उसकी पूर्ण व्याख्या कीजिये। (१९४७)

४—वृद्धिमान उत्पत्ति-नियम पक्का माल तैयार करने वाले कारखानों में किस प्रकार लागू होता है? बड़े पैमाने का उत्पादन किन दशाओं में मितव्ययता सम्भव करता है? (१९४३)

५—ह्रासमान तथा वृद्धिमान उत्पत्ति के नियमों को विस्तार से स्पष्ट कीजिये। (१९३९)

६—ह्रासमान उत्पत्ति-नियम को स्पष्टतया समझाइये। इसकी कौन सी सीमायें हैं? (१९३१)

उत्तर-प्रदेश इन्टर कामर्स

७—उत्पत्ति के नियम कौन से हैं? प्रत्येक को संक्षेप में समझाइये। इन नियमों के प्रचलन में प्रकृति और मनुष्य का क्या हाथ होता है? (१९५३)

८—ह्रासमान उत्पत्ति-नियम को स्पष्ट रूप से समझाइये। क्या यह कारखाने वाले उद्योगों पर लागू होता है? (१९५२)

९—ह्रासमान उत्पत्ति-नियम की व्याख्या कीजिये। क्या यह खानों (Miner) में, नदी की मछलियों के पकड़ने के व्यापार में, मिट्टी के बर्तनों के निर्माण के व्यापार में लागू होता है,. (१९४९)

१०—ह्रासमान उत्पत्ति-नियम की व्याख्या कीजिये तथा इसे चित्र द्वारा समझाइये। किस प्रकार के उद्योगों में इस नियम के लागू होने की संभावना है? (१९४७)

११—वृद्धिमान उत्पत्ति-नियम की व्याख्या कीजिये। यह पक्का माल तैयार करने के कारखानों में ही विशेषतया क्यों लागू होता है? (१९४६, १९४४)

१२—ह्रासमान उत्पत्ति-नियम की विवेचना कीजिये। (१९३८)

१३—उत्पत्ति के नियमों की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिये। (१९३६)

१४—ह्रासमान उत्पत्ति-नियम की स्पष्ट व्याख्या कीजिये? क्या कोई ऐसी बातें हैं जो इसकी गति में बाधा डालती हैं? (१९३५)

राजपूताना इन्टर आर्ट्स

१५—ह्रासमान उत्पत्ति नियम को पूर्णतया स्पष्ट कीजिये। चित्र भी दीजिये। क्या यह नियम सर्वव्यापी है? इस नियम की क्या सीमायें हैं? (१९५३)

१६—उदाहरण सहित ह्रासमान उत्पत्ति-नियम की व्याख्या कीजिये। यह नियम उद्योग-धंधों की अपेक्षा कृषि में क्यों जल्दी लागू होने लगता है? (१९५१)

१७—ह्रासमान उत्पत्ति-नियम की विवेचना कीजिये। यह उद्योग-धंधों पर किस प्रकार और क्यों लागू होता है? (१९५०)

१८—वृद्धिमान-उत्पत्ति-नियम तथा ह्रासमान उत्पत्ति-नियम की पूर्णतया व्याख्या कीजिये। (१९४९, १९३५)

१९—अ, ब, स भूमि के तीन टुकड़ों पर उत्तरोत्तर श्रम, पूँजी और व्यवस्था की इकाइयों का प्रयोग करने से निम्नलिखित उत्पत्ति प्राप्त होती है :—

मनों में उत्पत्ति

श्रम और पूँजी की इकाइयाँ	अ	ब	स
पहली इकाई	६०	५०	४०
दूसरी इकाई	५०	४०	३०
तीसरी इकाई	४०	३०	२५
चौथी इकाई	३०	२५	२०

यदि एक इकाई पर १२० रुपया व्यय होता है और उत्पत्ति का मूल्य ३ रु० प्रति मन है, तब प्रत्येक भूमि के टुकड़े पर कितना व्यय किया जायगा ? उत्तर को पूर्णतया समझाइये ? (१९४७)

२०—वृद्धिमान उत्पत्ति नियम की विवेचना कीजिये। यह भी समझाइये कि इस नियम के आधार पर ह्रासमान उत्पद्धि नियम किस प्रकार उत्पन्न होता है ? (१९४४)

२१—गहरी और विस्तृत खेती के आधार पर ह्रासमान उत्पत्ति-नियम की व्याख्या कीजिये। खेती में लगने वाली श्रम तथा पूँजी की सीमान्त इकाई से आप क्या अर्थ समझते हैं ? (१९३८)

२२—"श्रम और पूँजी की इकाइयों का प्रतिफल जिसका ह्रासमान उत्पत्ति-नियम जिक्र करता है, उत्पत्ति के परिमाण से नापा जाता है जो उपज के मूल्य के परिवर्तन से पूर्णरूप से स्वतन्त्र होता है।" इस कथन के आधार पर ह्रासमान-उत्पत्ति-नियम की सीमाओं की विवेचना कीजिये। (१९३२)

राजपूताना इन्टर कामर्स

२३—वृद्धिमान उत्पत्ति-नियम की व्याख्या कीजिये। यह क्यों उत्पन्न होता है ? (१९५३)

२४—ह्रासमान उत्पत्ति-नियम को स्पष्टतया समझाइये। इसकी कौन सी सीमायें हैं ? (१९४९, १९४०)

२५—ह्रासमान उत्पत्ति-नियम की विवेचना कीजिये। यह उद्योग-धंधों की अपेक्षा कृषि में अपेक्षाकृत क्यों अधिक लागू होता दीख पड़ता है ? (१९४७)

२६—वृद्धिमान उत्पत्ति-नियम तथा ह्रासमान-उत्पत्ति-नियम की संक्षिप्त में विवेचना कीजिये। वे क्या परिस्थितियाँ हैं जिनमें इन नियमों का क्रियाशील होना रोका या स्थगित किया जा सकता है ? (१९४५)

पटना इन्टर आर्ट्स

२७—ह्रासमान उत्पत्ति-नियम को बताइये और उन परिस्थितियों को बताइये जिनमें इसे लागू होने से रोका जा सकता है। (१९५०)

२८—ह्रासमान उत्पत्ति-नियम को बताइये और समझाइये। इसकी क्या सीमायें हैं ? (१९४८)

पटना इन्टर कामर्स

२९—ह्रासमान उत्पत्ति नियम को बताइये और उसकी व्याख्या कीजिये। क्या यह भूमि के अतिरिक्त अन्य किसी उत्पादन के साधन में लागू होता है ? (१९५२)

३०—ह्रासमान उत्पत्ति-नियम को बताइये और समझाइये। (१९५२)

३१—वृद्धिमान उत्पत्ति-नियम को समझाइये। (१९५०)

३२—ह्रासमान उत्पत्ति-नियम को बताइये और समझाइये। इसकी क्या सीमायें हैं? (१९५०)

३३—ह्रासमान उत्पत्ति-नियम को समझाइये। क्या इसके कुछ अपवाद भी हैं? (१९४८)

३४—ह्रासमान उत्पत्ति-नियम को कृषि के प्रसंग में समझाइये और उन स्थितियों को बताइये जिनमें यह लागू होता है? (१९४४)

३५—ह्रासमान तथा वृद्धिमान उत्पत्ति-नियमों को बताइये और उनकी व्याख्या कीजिये। (१९४२)

सागर इन्टर आर्ट्स

३६—ह्रासमान तथा वृद्धिमान उत्पत्ति-नियमों को उदाहरण देकर समझाइये? (१९५२)

३७—ह्रासमान उत्पत्ति-नियम (जिस प्रकार यह कृषि में लागू होता है) को उदाहरण लेकर समझाइये। (१९५१)

३८—वृद्धिमान उत्पत्ति-नियम को उदाहरण सहित समझाइये। (१९५०)

३९—ह्रासमान उत्पत्ति-नियम को अच्छी तरह से समझाइये। (१९४९)

सागर इन्टर कामर्स

४०—ह्रासमान उत्पत्ति-नियम को समझाइये और उदाहरण दीजिये। (१९५०)

४१—ह्रासमान उत्पत्ति-नियम को अच्छी प्रकार से समझाइये। क्या यह खानों और जंगलों में भी लागू होता है? (१९४९)

त्रेपनवाँ अध्याय

भारतीय कृषि की दशा

(Condition of Indian Agriculture)

भारतवासियों के लिए कृषि हमेशा से एक महत्वपूर्ण उद्योग रहा है। इसका कारण यह है कि देश की लगभग ७० प्रतिशत जनसंख्या अपनी जीविका के लिए कृषि पर निर्भर रहती है।* इतना होते हुए भी कृषि की दशा अच्छी नहीं है। यह बड़ी चिन्ता की बात है क्योंकि कृषि की दशा खराब होने के कारण भारतीयों की आर्थिक दशा भी बहुत खराब है।

कृषि की बुरी दशा का अनुमान निम्न तालिका से लगाया जा सकता है :

प्रति एकड़ उपज (पौंडों में)

देश	गेहूँ	चावल	ईख	कपास
इजिप्ट	११६८	२६६८	७०३०२	५३५
इटली	१३८३	४५६८	—	१७०
अमरीका	८१२	२१८५	४३२७०	२६८
जापान	६८६	२४३३	—	२०४
भारत	६६०	१२४४	३४६४४	८६

सर मैकडूगल का अनुमान है कि यदि गेहूँ की प्रति एकड़ उपज बढ़कर फ्रान्स के बराबर हो जाय तो भारत की आय ५६६ करोड़ पौंड वार्षिक बढ़ जायगी, और यदि उपज इँगलैंड के बराबर हो जाय तो वार्षिक आय १०० करोड़ पौंड बढ़ जायगी। सोचिये कि यदि सभी फसलों की उपज बढ़कर विदेशों के बराबर हो जाय तो भारतीयों की दशा कितनी सुधर जायगी!

* कृषि पर निर्भर रहने वाली प्रतिशत जनसंख्या विभिन्न वर्षों में निम्न रही है :

वर्ष	जन संख्या का प्रतिशत
१६०१	६६
१६११	७२
१६२१	७३
१६४१	७५
१६५१	७०

कृषि की बुरी दशा के कारण

भारतीय कृषि की गिरी दशा के अनेक कारण हैं जैसे खेतों का छोटा तथा छिटका होना, सिंचाई के साधनों की कमी, प्राकृतिक असुविधाएँ, कृषि के पुराने तरीके, पूँजी की कमी, ऋण का बोझ, लगान की प्रणाली, किसानों का बुरा स्वास्थ्य, जानवरों की बुरी दशा आदि। इनमें से कुछ के बारे में नीचे बताया गया है।

खेतों का छोटा तथा छिटका होना—भारत के किसानों के खेत छोटे तथा अलग-अलग हैं। कभी-कभी तो खेत इतने छोटे होते हैं कि उन पर हल भी नहीं घूम सकता। खेतों की इस दशा के कारण उपज कम होती है, निगरानी में बहुत व्यय हो जाता है, मशीनों का प्रयोग नहीं होने पाता, सिंचाई में कठिनाई पड़ती है और झगड़े प्रायः हो जाते हैं। इस बुराई को दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि खेतों की चकबन्दी कर दी जाय।

निम्न तालिका में संसार के प्रमुख देशों में प्रति परिवार औसतन कृषि-भूमि दिखलाई गई है :

देश	प्रति परिवार औसतन कृषि-भूमि
अमरीका	१४८·० एकड़
इंगलैंड	६२·० एकड़
डेनमार्क	४०·० एकड़
जर्मनी	२१·५ एकड़
फ्रान्स	२०·३ एकड़
बेल्जियम	१४·५ एकड़
भारत	५·० एकड़

भारत के विभिन्न राज्यों में एक परिवार के लिये उपलब्ध औसतन कृषि-भूमि निम्न प्रकार है :

राज्य	औसतन कृषि-भूमि (एकड़ में)
बम्बई	१२·२
पंजाब	९·२
मध्य प्रदेश	८·५
मद्रास	४·१
बिहार	३·१
बंगाल	३·१
आसाम	३·०
उत्तर-प्रदेश	२·५

निम्न तालिका में यह दिखलाया गया है कि कितने प्रतिशत किसानों के पास कितनी भूमि है :

कृषि-भूमि की मात्रा	प्रतिशत किसान परिवार
० से १ एकड़ तक	३३
१ से ५ एकड़ तक	२३
५ से १० एकड़ तक	२०
१० एकड़ से अधिक	२४

भूमि का क्षरण—भारत में बरसात का पानी अपने बहाव के साथ भूमि का उपजाऊ भाग बहा ले जाता है। इसे भूमि का क्षरण कहते हैं। इससे सबसे बड़ी हानि यह है कि भूमि का उपजाऊपन कम हो जाता है। इसके लिए आवश्यक है कि खेतों की मेंड़ें ऊँची कर दी जायँ, खेतों में पेड़ लगा दिए जायँ, स्थान स्थान पर रोकें लगा दी जायँ और खेतों का ढाल कम कर दिया जाय।

खेती के पुराने औजार—किसान अभी तक पुराने औजारों की सहायता से ही खेती करते हैं। देशी हल ८-१० इंच से अधिक गहरी भूमि नहीं खोदते। फलतः पैदावार अच्छी नहीं हो पाती।

सरकारी प्रयत्नों के फल-स्वरूप इधर कुछ नये प्रकार के हल बने हैं जिनमें गुर्जर मेस्टन हल तथा राजा हल प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार बीज बोने, फसल माड़ने, भूसा से दाना अलग करने आदि के लिये भी नई नई मशीने बनी हैं। आजकल ट्रैक्टरों का प्रयोग अधिक व्यापक हो गया है।

खराब बीजों का प्रयोग—किसानों द्वारा प्रयोग किये जाने वाले बीज अच्छे नहीं होते। खेत बोते समय वह सस्ते से सस्ते बीज खरीदकर अपना काम चलाते हैं।

निम्न तालिका से यह स्पष्ट हो जायगा कि भारत में कितनी भूमि पर अच्छे बीजों का प्रयोग होता है :

फसलों के नाम	कुल बोई गई भूमि (लाख एकड़)	अच्छे बीज वाली भूमि (लाख एकड़)	अच्छे बीज वाली भूमि (कुल भूमि का प्रतिशत)
ईख	४०.०	३२.२	८०%
जूट	२१.८	११.२	५०%
कपास	२६०.०	५०.४	६.२%
गेहूँ	३३६.१	६६.६	२०.६%
चावल	८३४.३	३५.८	१.३%
मूँगफली	५८.६	२.२	३.४%

खेती का पैमाना—हमारे देश में खेती छोटे पैमाने पर ही अधिक होती है। इसका कारण यह है कि खेत आकार में छोटे हैं और वह अलग अलग भी केन्द्रित हैं। दूसरे, भारत के किसान गरीब हैं और गरीबी के कारण उनके पास इतना धन नहीं है कि वह बड़े पैमाने पर खेती कर सकें। तीसरे, हमारे देश के जमींदार स्वयं खेती नहीं करते और अपने खेतों को भी दूसरों को उठा देते हैं। इस कारण भी बड़े पैमाने पर खेती नहीं होने पाती।

विस्तृत तथा गहरी खेती

विस्तृत और गहरी खेती किसे कहते हैं यह पहले बताया जा चुका है। भारत में गहरी खेती का ही अधिक चलन है। इसका कारण यह है कि यहाँ आबादी बहुत अधिक है जिसको जीवित रखने के लिये भूमि से अधिक से अधिक उपज प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। कृषि-योग्य भूमि का कोई भी टुकड़ा बेकार नहीं पड़ा है और इस कारण गहरी खेती करना संभव ही नहीं है।

परीक्षा-प्रश्न

उत्तर-प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—विस्तृत तथा गहरी खेती पर एक संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९५०)

२—विस्तृत तथा गहरी खेती का वर्णन कीजिये। गहरी खेती भारत में किस सीमा तक काम में लाई जा रही है? भारत में इसके प्रयोग में मुख्य कठिनाइयाँ कौन कौन सी हैं? (१९४८)

३—भारत में उपजाऊ भूमि, अच्छी वर्षा, बड़ी मात्रा में श्रम पर्याप्त पूँजी है। आप खेती का पुनर्संगठन किस प्रकार से करेंगे जिससे भारतीय कृषि की उपज बढ़ जाय। (१९४५)

४—खेतों के छिटके होने से आप क्या समझते हैं ? इसकी बुराइयाँ बताते हुए सुधार के उपाय भी बताइये। (१९४१)

उत्तर-प्रदेश इन्टर कामर्स

५—विस्तृत तथा गहरी खेती पर संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९५०)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर कामर्स

६—गहरी तथा विस्तृत खेती पर एक संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९४९)

७—छोटी मात्रा की कृषि से होने वाले हानि तथा लाभ बताइये। भारत में छोटे खेत क्यों अधिक श्रेयकर हैं ? (१९४५)

सागर इन्टर आर्ट्स

८—भारत में अकाल के क्या प्रमुख कारण है ? अकालों को किस प्रकार से रोका जा सकता है ? (१९५१))

९—भारतीय कृषि के पिछड़े हुए होने के क्या क्या कारण हैं ? (१९५०

१०—विस्तृत तथा गहरी खेती पर सूक्ष्म नोट लिखिये। (१९५०)

पटना इन्टर आर्ट्स

११—भारतीय कृषि की खराबियों को बताइये। इनको आप किस प्रकार दूर करेंगे ? (१९५२)

———

चौवनवाँ अध्याय

भारत के उद्योग-धन्धे

(Industries of India)

भारत में पाये जाने वाले उद्योग-धन्धों को दो भागों में बाँटा जा सकता है— (१) छोटे पैमाने के उद्योग, तथा (२) बड़े पैमाने के उद्योग। छोटे पैमाने के उद्योगों को कुटीर उद्योग भी कहा जाता है।

१· घरेलू या कुटीर उद्योग-धन्धे

(Cottage Industries)

परिभाषा

घरेलू या कुटीर उद्योग-धन्धों की परिभाषा के संबंध में अर्थशास्त्रियों में बड़ा मतभेद है। इस मतभेद का कारण यह है कि वर्गीकरण का आधार विभिन्न अर्थ-शास्त्रियों ने भिन्न-भिन्न माना है। कुछ विद्वानों का मत है कि घरेलू उद्योग-धन्धे वह हैं जिनमें कोयला या भाप या बिजली की शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाता। परन्तु ऐसा कहना उपयुक्त नहीं है क्योंकि आजकल अनेक देशों में गाँव-गाँव में सस्ती बिजली प्राप्त होने लगी है और वहाँ बिजली का प्रयोग शिल्पी करते हैं। कुछ अन्य विद्वानों का मत है कि कुटीर उद्योग-धन्धे वह हैं जिनमें मशीनों का प्रयोग नहीं किया जाता। परन्तु ऐसा कहना भी उचित नहीं है क्योंकि चर्खा भी एक प्रकार की मशीन है और सुई, जिससे दर्जी सिलाई करता है, एक मशीन है। कुछ विद्वानों का मत है कि घरेलू उद्योग-धन्धे वह हैं जिनमें दस व्यक्तियों से कम काम करते हैं क्यों-कि जहाँ दस या अधिक व्यक्ति काम करते हैं वह फैक्टरी कानून के अनुसार फैक्टरी के अन्तर्गत आ जाते हैं। परन्तु ध्यान में रखने की बात है कि दस व्यक्तियों की यह संख्या किसी आर्थिक सिद्धान्त पर आधारित नहीं है। किसी कारण से यह संख्या फैक्टरी विधान में रख दी गई है। बम्बई सरकार द्वारा नियुक्त आर्थिक तथा औद्यो-गिक कमिटी ने ऊपर की तीनों बातों को मिलाकर घरेलू उद्योग की एक परिभाषा दी है। उसका कहना है कि कुटीर उद्योग-धन्धों से हमारा आशय उन उद्योग-धन्धों से है "जहाँ शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाता, और जहाँ सामान्यतः वस्तु का

निर्माण शिल्पी द्वारा अपने ही घर पर छोटे-छोटे कारखानों में किया जाता है और जहाँ नौ से अधिक व्यक्ति काम नहीं करते हैं।"*

इस परिभाषा में तीन बातें महत्त्वपूर्ण हैं :—(१) शक्ति का प्रयोग न होना, (२) शिल्पी द्वारा स्वयं अपने आप अपने घर पर वस्तुओं का निर्माण करना, और (३) काम करने वालों की संख्या नौ से अधिक न होना। स्पष्ट है कि सैद्धान्तिक दृष्टि से यह परिभाषा पूर्णतः उचित नहीं है। मोटे रूप से हम यह कह सकते हैं कि **जब उत्पादन छोटी मात्रा में, कम पूँजी लगाकर और थोड़े से व्यक्तियों द्वारा किया जाता है तो उसे छोटे पैमाने के उत्पादन को कुटीर उद्योग कहते हैं।**

कुटीर और घरेलू उद्योग में भेद

कुछ अर्थशास्त्री कुटीर उद्योग और घरेलू उद्योगों में भेद करते हैं और कुछ नहीं करते। जिस उद्योग में उत्पादक अपना पूरा समय लगाता है और जो उसकी रोजी के एकमात्र साधन हैं, उन उद्योगों को कुटीर उद्योग कहते हैं। परन्तु जिनमें उत्पादक अपना पूरा समय नहीं लगाता और जो उसकी रोजी के अनेक साधनों में से एक होता है, तो उसे घरेलू उद्योग-धन्धा कहते हैं। घरेलू उद्योगों में उत्पादक स्वयं तथा अपने परिवार के व्यक्तियों की सहायता से काम करता है और कुटीर उद्योग में वह अन्य श्रमिकों की सहायता से उत्पादन करता है।

कुटीर उद्योगों की आवश्यकता

प्रश्न यह उठता है कि भारत में कुटीर तथा घरेलू उद्योग-धन्धों की क्या आवश्यकता है? यह क्यों आवश्यक है कि इनकी उन्नति की जाय? इन उद्योगों के पक्ष में निम्न तर्क दिये जा सकते हैं।

(१) **जनसंख्या की वृद्धि**—भारत में कुटीर उद्योग-धन्धों की उन्नति की आवश्यकता इस कारण है क्योंकि कृषि-योग्य भूमि पर जनसंख्या का भार बढ़ता जा रहा है और इस कारण किसानों की आय बहुत कम हो गई है। इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि किसान कोई और भी कार्य करने लगें जिससे उसकी आय बढ़ जाय। कुटीर उद्योग एक ऐसा कार्य है जिसमें किसानों को सुगमता से लगाया जा सकता है।

बेकार समय का उपयोग—हमारे देश के किसान वर्ष में ६-८ महीने बेकार रहते हैं क्योंकि उस समय उन्हें खेती संबंधी कोई कार्य नहीं रहता। इस

* "Those industries where no power is used and the manufacturing is carried on generally speaking, in the home of the artisan himself and occassionally in the small karkhanas where not more than nine workers are employed, are called cottage industries"—The Bombay Economic and Industrial Supply Committee Report.

बेकार समय के सदुपयोग के लिये यह आवश्यक है कि गाँव में कुटीर उद्योग-धन्धे बढ़ाये जायँ।

(३) आमदनी का एक नया साधन—हमारे देश के किसान बहुत गरीब हैं। इस कारण उनकी आर्थिक दशा बहुत दयनीय है और अर्थाभाव के कारण वह खेती की भी उन्नति नहीं कर पाते। कुटीर उद्योग-धन्धों के विकास से उनकी आमदनी बढ़ जायगी जिससे उनका जीवन-स्तर ऊँचा होगा और कृषि की दशा में सुधार हो जायगा।

(४) पूँजी का सदुपयोग—द्वितीय महायुद्ध के कारण एक ऐसी नवीन परिस्थिति उत्पन्न हो गई है जिससे कुटीर उद्योग-धन्धों की उन्नति वांछनीय है। द्वितीय महायुद्ध के कारण किसान अधिक संपन्न हो गये हैं। किसानों के पास जो रुपया है उसे वह बेकार कार्यों में व्यय न कर दें, यह आवश्यक है कि इस धन को उत्पादक धन्धों में पूँजी के रूप में लगाने का उन्हें अवसर मिले। इसके लिये कुटीर उद्योग-धन्धों की उन्नति से अच्छा और सरल उपाय कोई दूसरा नहीं है।

कुटीर उद्योग धन्धों-का महत्व तथा इनसे लाभ

ऊपर हम कुटीर उद्योग धन्धों की उन्नति की आवश्यकता पर प्रकाश डाल चुके हैं। अब हम इस उद्योग से मिलने वाले लाभों पर प्रकाश डालेंगे। इनको पढ़-कर कुटीर उद्योगों के महत्त्व को समझा जा सकता है।

(१) आर्थिक लाभ—कुटीर उद्योगों की उन्नति सें सबसे बड़ा आर्थिक लाभ यह होगा कि किसान तथा शिल्पियों की आमदनी बढ़ जायगी। इससे यह लोग अपना जीवन-स्तर ऊँचा करने में सफल हो जायँगे और साथ ही देश को भी बड़ा लाभ होगा।

(२) उत्पादन बढ़ जाना—कुटीर उद्योगों के विकास से देश का उत्पादन बढ़ जायगा। अभी तक हमारे देश में अनेक वस्तुओं की कमी है जिसके कारण उन वस्तुओं के मूल्य अधिक हैं। साथ ही, शहर के रहने वाले तो उन वस्तुओं का उपभोग कर पाते हैं परन्तु गाँव के लोगों को वह वस्तुएँ प्राप्त नहीं हो पातीं। कुटीर उद्योग-धन्धों के विकास से वस्तुओं के मूल्य भी कम हो जायँगें और गाँव के रहने वालों को भी वह मिलने लगेंगी।

(३) बड़े उद्योगों की बुराइयों से बचत—कुटीर उद्योग-धन्धों में न तो श्रमिकों का शोषण ही होता है और न उनका स्वास्थ्य ही खराब होने पाता है। साथ ही यंत्रीकरण के दोष भी इसमें नहीं आ पाते। बड़े-बड़े उद्योग पतियों में और आगे चलकर राष्ट्रों में जो घातक प्रतिस्पर्धा होती है उसके कारण विश्व-व्यापी युद्ध छिड़ जाते हैं। कुटीर उद्योगों से इस बात की कोई आशंका नहीं है।

(४) कुटीर उद्योग मनुष्यों के स्वभाव के अनुकूल होते हैं—कुटीर उद्योगों में श्रमिकों के ऊपर अधिक अनुशासन नहीं होता। क्योंकि मालिक मजदूरों की तरह ही और उनके साथ मिलकर काम करता है और काम करने वाले अधिकांश व्यक्ति उसके ही घर के लोग होते हैं, इस कारण श्रमिक पर अधिक अनुशासन नहीं होता जैसा कि बड़ी-बड़ी फैक्टरियों में होता है।

(५) धन का समान वितरण—इन उद्योगों में न तो उद्योग-पतियों को बहुत अधिक लाभ होता है और न अधिक श्रमिकों को काम पर ही लगाया जाता है। इस कारण श्रमिकों का अधिक शोषण नहीं हो पाता और मालिक तथा मजदूर का भेद अधिक विषम नहीं हो पाता।

(६) उद्योगों का विकेन्द्रीयकरण—कुटीर उद्योग-धन्धों से लाभ यह भी है कि किसी एक स्थान पर बहुत अधिक उद्योग केन्द्रित नहीं हो पाते और इस कारण स्थानीयकरण तथा केन्द्रीयकरण से उत्पन्न हानियाँ इसमें नहीं होतीं।

भारत में कुटीर उद्योगों का इतिहास तथा वर्तमान दशा

अठारहवीं शताब्दी तक हमारे देश के कुटीर उद्योग-धन्धे बड़ी उन्नतिशील दशा में थे। संसार के सभी देशों में उनकी बनी वस्तुओं की माँग थी और चीन, जापान, ग्रेट ब्रिट्रेन आदि देशों को उनका निर्यात होता था। परन्तु धीरे-धीरे इनका ह्रास हो गया। देश में विदेशी सरकार के आ जाने से और उसके द्वारा इनकी अवनति के लिए किये गये प्रयत्नों से तथा संसार में बड़ी-बड़ी मशीनों तथा नये शक्ति के साधनों के प्रयोग से और मशीनों द्वारा बनी सस्ती वस्तुओं की प्रतिस्पर्धा से यह उद्योग अधिक न पनप सके और इनका ह्रास हो गया। यह दशा बहुत समय तक चलती रही और 'मशीन युग' से प्राप्त होने वाले लाभों के कारण सभी व्यक्ति बड़े पैमाने के उद्योगों की प्रगति के बारे में ही सोचते थे और कुटीर उद्योगों की उन्नति की ओर से सभी का ध्यान हट गया। सभी के मन में यह बात बैठ गई थी कि मशीनों की प्रतिस्पर्धा के सन्मुख कुटीर उद्योग ठहर नहीं ही सकते और इस कारण इनकी प्रगति या पुनर्उद्धार की बात सोचना ही बेकार है। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय किसान और शिल्पियों की दशा बड़ी दयनीय हो गई। जब महात्मा गांधी ने किसानों की उन्नति की ओर ध्यान दिया तो उन्होंने कुटीर उद्योगों के पुनर्उद्धार की बात सोची। सौभाग्य से इन उद्योगों की कला का ह्रास पूर्णतः नहीं हुआ था और गाँधी जी के प्रयत्नों से तथा 'स्वदेशी आन्दोलन' के प्रचार के कारण इनकी दशा सुधरी। जब से प्रान्तों में काँग्रेसी सरकारें बनी हैं, उनका ध्यान इनकी ओर बराबर रहा है और सरकारी प्रोत्साहन के फलस्वरूप इनकी उन्नति हो रही है। पहले की अपेक्षा इनकी दशा अब काफी अच्छी है। परन्तु फिर भी इनकी दशा पर्याप्त मात्रा में नहीं सुधर पाई है और इनकी दशा सुधारने के लिए लगातार प्रयत्न करने आवश्यक हैं।

कुटीर उद्योगों के मार्ग में कठिनाइयाँ

कुटीर उद्योगों की आशातीत उन्नति नहीं हो पाई है इसके कई कारण हैं। इन्हें नीचे बताया गया है :

(१) सस्ता कच्चा माल—कुटीर उद्योगों को चलाने वालों को कच्चा माल समय पर तथा कम मूल्य पर नहीं मिल पाता। एक तो वैसे ही गाँवों में आवश्यक पदार्थ सुगमता से नहीं मिलते और दूसरे उनका मूल्य भी अधिक होता है। धनाभाव के कारण किसान या तो माल थोड़ी सी मात्रा में खरीदते हैं और या उधार लेते हैं। इन दोनों ही अवस्थाओं में उन्हें अधिक मूल्य देने पड़ते हैं।

(२) विपणन की कठिनाई—कुटीर उद्योग चलाने वालों की दूसरी कठिनाई माल के विपणन (Marketing) की है। एक तो वह यह नहीं जानते कि उनके बने माल का बाजार कहाँ अच्छा है और दूसरे उनमें इतनी व्यापारिक समझ-बूझ नहीं है कि वह दुकानदारों से व्यापारिक संबंध स्थापित कर लें। यातायात के साधनों की कमी के कारण वह अपना माल बाजार में सुगमता से नहीं भेज पाते। लाचार होकर उन्हें गाँव के महाजन के हाथ सस्ते मूल्य पर वस्तु बेचनी पड़तीं हैं।

(३) उचित मशीन तथा औजारों की कमी—गरीब किसान तथा शिल्पकारों के पास काम करने के लिए आवश्यक औजार तथा मशीनों की कमी है। न तो उनके पास इनको खरीदने के लिए साधन ही हैं और न उन्हें इतना ज्ञान ही है कि किन नई-नई मशीनों का आविष्कार हो रहा है और किन मशीनों का उन्हें प्रयोग करना चाहिये। पुनः कुटीर उद्योगों में प्रयोग होने वाली मशीनों का आविष्कार भी कम हुआ है और इस कारण भी शिल्पकार सस्ती वस्तुएँ नहीं बना पाते।

(४) उचित प्रोत्साहन का अभाव—शिल्पियों के सन्मुख एक और कठिनाई यह है कि उन्हें अपने काम में सरकार या जनता द्वारा उचित प्रोत्साहन नहीं मिलता। जब तक देश में अंग्रेजी सरकार थी, वह तो बराबर यह प्रयत्न करती रही कि घरेलू उद्योग धन्धे पनपने न पावें। परन्तु उसके बाद भी उन्हें सरकार से यथेष्ठ सहायता नहीं मिल पाई है।

(५) बड़े पैमाने के उत्पादन से स्पर्धा—घरेलू उद्योगों को बड़े पैमाने के उद्योगों से भारी प्रतिस्पर्धा सहन करनी पड़ती है। बड़े पैमाने के उद्योगों से उत्पन्न वस्तुएँ सस्ती पड़ती हैं और कुटीर उद्योगों की वस्तुएँ मँहगी पड़ती हैं। अतएव इन्हें इन सस्ती वस्तुओं की प्रतिस्पर्धा के सामने ठहरना पड़ता है जो सहल काम नहीं है।

(६) साख का अभाव—कुटीर उद्योगों द्वारा उत्पादन करते समय पर्याप्त साख (Credit) नहीं मिलता। देश के बैंक शिल्पियों तथा किसानों को रुपया उधार नहीं देते। अतएव उन्हें रुपया उधार लेने के लिए महाजन के पास ही जाना पड़ता है जो बहुत अधिक सूद लेते हैं।

घरेलू उद्योगों की उन्नति के उपाय

देश में घरेलू उद्योगों की उन्नति करना अत्यन्त आवश्यक है। परन्तु ऐसा तभी हो सकता है जब इनको सुव्यवस्थित तथा सुसंगठित किया जाय। इसके लिए निम्न उपाय आवश्यक हैं :

(१) कच्चे माल की प्राप्ति—इनकी उन्नति के लिये सबसे आवश्यक बात यह है कि इनको कच्चा माल बराबर प्राप्त होता रहे और वह सस्ता भी मिले। साथ ही कच्चा माल अच्छे क़िस्म का हो। इसके लिये यदि सहकारी समितियाँ खोली जायँ तो बहुत ही अच्छा होगा। सरकार को भी इस काम में सहायता करनी चाहिये और उन्हें यह बताना चाहिये कि कहाँ से सामान खरीदना अच्छा पड़ेगा।

(२) शिक्षा—कारीगरों को काम की उचित शिक्षा देना अत्यन्त आवश्यक है। अभी तक कारीगर पुरानी पद्धति के अनुसार ही काम करते रहे हैं और संसार में होने वाले सुधारों को वह नहीं जानते। विशिष्ट शिक्षा (Technical Education) द्वारा ही वह अच्छा ज्ञान प्राप्त करने में सफल हो सकते हैं। सरकार को अधिक व्यावसायिक (Vocational) स्कूल तथा निर्माणशालायें (Workshops) खोलनी चाहिये जहाँ शिल्पियों को अच्छी शिक्षा मिल सके।

(३) मशीन तथा औजारों की व्यवस्था—इस बात की भी बड़ी आवश्यकता है कि काम करने के लिये मशीन तथा औजारों का अच्छा प्रबन्ध हो। शिल्पी अभी तक पुराने औजारों का ही प्रयोग करते हैं जिससे वस्तु अच्छी तथा अधिक नहीं बन पातीं। इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि अच्छी-अच्छी तथा सस्ती मशीनों का प्रयोग इनमें बढ़ाया जाय। इसके लिये सरकारी सहायता की बड़ी आवश्यकता है।

(४) विपणन की व्यवस्था—शिल्पियों को अपनी वस्तुओं के उचित मूल्य मिल सकें इसके लिये यह आवश्यक है कि उनके बने सामान को बेचने का उचित प्रबन्ध किया जाय। अभी तक शिल्पी अपना सामान महाजनों के हाथ ही बेच देते हैं क्योंकि महाजनों से ही वह रुपया उधार लेते हैं। परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि सहकारी विपणन (Marketing) समितियों को स्थापित कर सामान बेचने का प्रबन्ध किया जाय।

(५) पूँजी और ऋण की व्यवस्था—शिल्पियों को उत्पादन के लिये पूँजी उधार मिल सके, इस बात की भी व्यवस्था होनी चाहिये। अभी तक वह महाजनों पर ही निर्भर रहते हैं। परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि सहकारी साख समितियों को खोला जाय या किराया-बिक्री प्रणाली (Hire-Purchase System) के अनुसार इन्हें वस्तुयें दिलवाई जायँ।

(६) उद्योगों का संगठन—इस बात की भी बड़ी आवश्यकता है कि इन उद्योगों का संगठन ठीक प्रकार से हो। शिल्पियों को औद्योगिक संगठन का उचित ज्ञान नहीं है। प्रत्येक राज्य में पाये जाने वाले उद्योग-संचालक (Director of Industries) को इस ओर ध्यान देना चाहिये और शिल्पियों को इस बात का ज्ञान कराना चाहिये।

(७) स्वदेशी-भावना—इस बात की भी बड़ी आवश्यकता है कि देश के नागरिकों में स्वदेशी की भावना (Spirit of Swadeshi) बढ़ाई जाय अर्थात् उन्हें स्वदेश का माल पहनने तथा उपभोग करने के लिये प्रोत्साहित किया जाय। हमारे देश के कुटीर उद्योग इसी भावना के कारण पनपे हैं और इसी भावना के कारण इनकी प्रगति होगी।

(८) सरकारी सहायता—घरेलू उद्योगों की उन्नति बिना सरकारी सहायता तथा प्रोत्साहन के नहीं हो सकती। सरकार को सबसे पहले यह निश्चित कर देना चाहिये कि देश की अर्थ-व्यवस्था में कुटीर उद्योगों का क्या हाथ होगा? यदि कोई उत्पादन छोटे तथा बड़े दोनों प्रकार के पैमानों द्वारा हो सकता है तो सरकार को यह निश्चित कर देना चाहिये कि दोनों का क्षेत्र और सीमाएँ क्या-क्या होंगी। इसके पश्चात् सरकार को उनकी उन्नति के लिये प्रयत्न करने चाहिंये। केन्द्रीय सरकार ने सन् १६५० में एक कुटीर उद्योग बोर्ड (Cottage Industries Board) की स्थापना की है। इस प्रकार के बोर्ड प्रत्येक राज्य में होने चाहिये और उनके कर्मचारियों को हर संभव तरीके से शिल्पियों की सहायता करनी चाहिये।

(६) सहकारी समितियाँ—कुटीर उद्योगों के नवनिर्माण में सहकारी समितियाँ बड़ी सहायता दे सकती हैं। इनके द्वारा साख तथा विपणन की समस्यायें सुगमता से सुलझ हो सकती हैं। अतएव सहकारी समितियाँ खोलकर इन दोनों कार्यों में उनकी सहायता लेनी चाहिये।

बड़े पैमाने के उद्योग बनाम घरेलू उद्योग (Cottage Versus Large Scale Industries)

सभी देशों में यह प्रश्न बड़े महत्व का है कि कुटीर और बड़े पैमाने के उद्योगों में से किसको बढ़ाया जाय और क्यों? बड़े पैमाने के उद्योगों के पक्ष में यह कहा जा सकता है कि इनके द्वारा उत्पादन अधिक होता है, माल सस्ता बनता है, उत्पादन-व्यय कम पड़ता है और दूसरे देशों में बने माल से यही प्रतिस्पर्धा कर सकते हैं। परन्तु इनका सबसे बड़ा दोष यह है कि इनमें मशीनों का प्रयोग अधिक होता है जिससे देश में बेकारी बढ़ती है। साथ ही इनके कारण अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष भी बढ़ता है। छोटे पैमाने के उद्योगों से लाभ यह है कि इनके द्वारा व्यक्ति अपने बेकार के समय में काम कर अपनी आय बढ़ा सकता है। दिन में किसी भी समय दो-एक

घंटे देकर वह काम कर सकता है और अपनी आय बढ़ा सकता है। साथ ही इनके द्वारा उत्पादन होने पर अधिक व्यक्ति काम पर लगे रहते हैं।

भारत में जनसंख्या का आधिक्य है। देश के काफी अधिक व्यक्ति बेकार हैं। किसान भी वर्ष में ४-६ महीने बेकार रहते हैं। इन सबको कुटीर उद्योगों के द्वारा ही लाभ पहुँच सकता है। अतएव भारत में कुटीर उद्योग धंधे बढ़ाने चाहिये।

परन्तु प्रश्न यह उठता है कि कुटीर उद्योगों को कितना बढ़ाना चाहिये? क्या बड़े पैमाने के उद्योगों का अन्त कर देना चाहिये? नहीं। कुछ उद्योग ऐसे हैं जो केवल बड़े पैमाने पर ही चल सकते हैं जैसे स्पात (Steel) का काम, मशीन बनाने का काम, हवाई जहाज बनाने का काम, समुद्री जहाज बनाने का काम, और गोला-बारूद, बन्दूक आदि बनाने का काम। इन सबको बड़े पैमाने के उद्योगों द्वारा ही करना चाहिये। परन्तु कुछ ऐसे काम हैं जो कुटीर उद्योगों द्वारा ही अच्छे हो सकते हैं जैसे रस्सी बटना, चटाई बनाना, चिक बनाना, मधु-मक्खी पालना, बर्तन बनाना आदि। इनको कुटीर उद्योगों द्वारा ही करना चाहिये। अब कुछ ऐसे उद्योग बच जाते हैं जो दोनों प्रकार से हो सकते हैं जैसे सूती कपड़ा बनाना, जूते बनाना, रेशमी कपड़े बनाना आदि। इन उद्योगों में सरकार को एक नीति द्वारा यह निश्चित कर देना चाहिये कि किस प्रकार का सामान कुटीर उद्योगों द्वारा बनेगा और किस प्रकार का बड़े पैमाने पर। ऐसा कर देने पर कुटीर तथा बड़े पैमाने के उद्योगों में संघर्ष नहीं रहेगा।

प्रमुख कुटीर उद्योग धंधे

हमारे देश में अनेक प्रकार के कुटीर उद्योग-धंधे पाये जाते हैं। उनके बारे में नीचे बताया गया है।

(१) कपड़े का उद्योग—हमारे देश तथा गाँवों का सबसे महत्वपूर्ण कुटीर उद्योग-धंधा कपड़ा बनाने का है। साथ ही यह काम बड़ा पुराना भी है और सदियों से भारतीय नारियाँ यह काम घर पर करती चली आईं हैं। कपड़ा सूती, ऊनी तथा रेशमी सभी प्रकार का तैयार किया जाता है। रेशमी कपड़ा अधिकांशतः करघों द्वारा ही तैयार किया जाता है। देश के लगभग १५ लाख व्यक्ति इस काम में लगे हुये हैं और देश के कपड़े के कुल उत्पादन का लगभग $\frac{1}{4}$ भाग कुटीर उद्योग-धंधों द्वारा प्राप्त होता है।

यह एक ऐसा उद्योग है जो गाँवों में बड़ी सुगमता से फैल सकता है। हमारे देश में स्त्रियाँ पहले चर्खा चलाकर सूत कातती थीं। इससे उनका स्वास्थ्य भी ठीक रहता था। साथ ही बेकार समय का भी उपयोग हो जाता था। गरीब तथा विधवा स्त्रियों के लिये यह आमदनी का एक अत्यन्त सुगम साधन था। चर्खा खरीदने में १०-१२ रुपये से अधिक नहीं लगते और इसको चलाने में कोई हुनर सीखने की भी आवश्यकता नहीं है। यदि कोई सात-आठ घंटे प्रतिदिन चर्खा चलाये तो वह

आसानी से अपनी रोटी कमा सकता है। इसी कारण महात्मा गाँधी ने इस उद्योग की उन्नति के लिये विशेष जोर दिया था। काँग्रेस संस्था द्वारा और काँग्रेसी सरकारों द्वारा इस उद्योग को विशेष प्रोत्साहन मिला है और आशा की जाती है कि भविष्य में भी इनके हाथों इस उद्योग की उन्नति होती रहेगी।

(२) चमड़े का उद्योग—भारत में पशु बहुत अधिक पाये जाते हैं और उनके मर जाने पर उनकी खाल से चमड़े का सामान तैयार किया जाता है। भारत के हर गाँव में यह उद्योग पाया जाता है और जूते, चप्पल, चरस, घोड़े की जीन और लगाम आदि चीजें गाँव-गाँव में तैयार की जाती हैं। इस उद्योग के संबंध में दो प्रमुख कठिनाइयाँ हैं। एक तो यह कि इस काम को ऊँची जाति के लोग करना पसन्द नहीं करते और इस कारण केवल नीची जाति के लोग ही इसे करते हैं। दूसरे, देश में चमड़ा पक्का करने के साधन प्राप्त नहीं हैं और इस कारण पक्का करने के लिये चमड़ा विदेश भेजा जाता है। गाँव के बने जूते भी अच्छे नहीं होते और पढ़े-लिखे लोग उन्हें पहनना पसन्द नहीं करते। इन कारणों से यह उद्योग अधिक उन्नति नहीं कर पाया है।

(३) मिट्टी के बरतन बनाने का काम—गाँव में कुम्हार मिट्टी के बरतन और खिलौने बनाने का काम करते हैं। यह काम अत्यन्त प्राचीन है और सभी स्थानों पर इस काम के करने वाले पाये जाते हैं। हमारे देश में शादी-ब्याह पर और उत्सवों पर मिट्टी के बरतनों का बहुत अधिक प्रयोग होता है और इस कारण मिट्टी के बरतनों की माँग बराबर रहती है। परन्तु आजकल धातु के बरतनों का चलन अधिक व्यापक हो चला है। इस कारण इस उद्योग के करने वालों को काफी कठिनाई हो गई है। साथ ही यह उद्योग केवल उन महीनों में किया जा सकता है जब बादल साफ रहते हैं और धूप काफी निकलती है। इस कारण इस काम को करने वालों के लिये बरसात के दिनों में कोई अन्य उद्योग ढूँढ़ना पड़ता है।

(४) तेल पेरने का काम—यह एक महत्वपूर्ण उद्योग है क्योंकि भारत में तेल का प्रयोग भोजन पकाने, मालिश करने और बालों में डालने के लिये बहुतायत से होता है। गाँवों में तेल निकालने के लिये लकड़ी के कोल्हुओं का प्रयोग होता है। आजकल तेल निकालने के लिये बड़े पैमाने के कारखाने भी खुल गये हैं और लोहे के कोल्हू भी चल गये हैं जो बिजली से चलते हैं। परन्तु फिर भी लकड़ी के कोल्हू से निकला तेल अधिक अच्छा माना जाता है क्योंकि तेल लोहे से स्पर्श नहीं हो पाता। विद्वानों का मत है कि लोहे से स्पर्श हो जाने पर तेल के गुण नष्ट हो जाते हैं। इस कारण तेल पेरने का काम अब भी चालू है यद्यपि यह अधिक महत्वपूर्ण नहीं रहा है।

(५) लकड़ी का उद्योग—प्रत्येक गाँव में बढ़ई पाये जाते हैं जो लकड़ी

का काम करते हैं। कृषि के विभिन्न औजारों में यह लकड़ी का बेंट या हत्था डालने का काम करते हैं और साथ ही खाट तथा अन्य फर्नीचर भी बनाते हैं। आजकल के समय में फर्नीचर की माँग बहुत बढ़ गई है। इस कारण इस उद्योग का भविष्य उज्ज्वल है। इस उद्योग के सीखने में अधिक समय भी नहीं लगता और इस कारण सरकार को चाहिये कि इस उद्योग के करने वालों को उचित प्रोत्साहन दे।

(६) लुहारगीरी—गाँवों में किसानों को लोहे के बने कृषि के विभिन्न औजारों की बराबर आवश्यकता पड़ती रहती है। इनको बनाने का काम लुहार करते हैं। गाँव के लुहारों द्वारा बनी वस्तुएँ अधिक मजबूत नहीं होतीं और कारखानों की बनी येही वस्तुएँ सस्ती तथा अच्छी पड़ती हैं। इस कारण इस उद्योग का महत्व कम होता जा रहा है।

(७) गुड़ बनाने का उद्योग—भारत में गन्ना बहुतायत से पाया जाता है। गाँव वाले गन्ने का रस निकाल कर उससे गुड़ बनाते हैं। यह काम उत्तर-प्रदेश के पश्चिमी जिलों में, विशेष कर सहारनपुर और मेरठ के जिलों में, बहुतायत से किया जाता है। ईख के अतिरिक्त ताड़ से भी गुड़ बनाया जा सकता है। ताड़ का गुड़ गन्ने के गुड़ से कहीं अधिक लाभदायक होता है। आजकल इसी गुड़ का उत्पादन अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। ग्राम-उद्योग संघ की वार्षिक रिपोर्ट में लिखा है कि यदि ताड़ के १५ पेड़ों से गुड़ निकाला जाय तो व्यक्ति १०० रु० माहवार तक कमा सकता है।

(८) मधु-मक्खियाँ-पालन—गाँव वाले यह काम भी बड़ी सुगमता से कर सकते हैं। लकड़ी के बाक्सों में मक्खियों को पालकर शहद निकाला जा सकता है। शहद निकालने के लिये अब मक्खियों को मारने या उनका छत्ता तोड़ने की आवश्यकता नहीं है। अब तो ऐसी तरकीबें निकल आई हैं कि शहद सुगमता से निकल आता है। इस काम के करने में केवल एक काठ के सन्दूक का ही व्यय है। मधु-मक्खी का पालना बड़ी सुगमता से सीखा जा सकता है।

(९) लाख की खेती—पलाश, पीपल, कुसुम, बेर आदि के पेड़ों में लाख के कीड़े घर बना लेते हैं। कीड़ों के उड़ जाने पर पेड़ों की छाल को छील कर उससे तरह-तरह की कीमती वस्तुएँ बनाई जा सकती हैं। लाख ग्रामोफोन रिकार्ड, रंग, खिलौने, चूड़ियाँ, मोमबत्ती, बटन आदि बनाने के काम में आती है। आजकल लाख छोटा नागपुर, उड़ीसा तथा मध्य प्रान्त में ही इकट्ठी की जाती है। इसको हमारे प्रान्त के गाँवों में भी इकट्ठा किया जा सकता है और इससे गाँव वालों को आमदनी भी अच्छी हो जावेगी।

(१०) हाथ से कागज बनाना—यह धन्धा हमारे गाँवों में पुराने समय से चला आया है। परन्तु मिलों के कागज के कारण गाँव वालों को कागज बनाना लाभ-

दायक नहीं रहा है। परन्तु हमारे यहाँ कागज की बहुत कमी है। इसलिये गाँव वाले यदि कागज बनावें तो उसकी माँग अवश्य होगी।

(११) घी, दूध, मक्खन आदि का काम—गाँव वालों के पास दूध देने वाले जानवर तो होते ही हैं। वे दूध से घी, मक्खन, खोया आदि बनाते हैं। कभी-कभी वे दूध भी वेचते हैं और इससे आमदनी भी करते हैं। दुर्भाग्य से गाँव वालों का सफाई की तरफ ध्यान नहीं है। उनके चौपाये गन्दी जगह में पड़े रहते हैं जिसके कारण उनको अनेक बीमारियाँ हो जाती हैं। दूध निकालते समय दूध को हाथ से छूते हैं और दूध में अनेकों प्रकार के कीड़े पड़ जाते हैं। मक्खन और घी निकालते समय भी वह गन्दगी दूर करने की तरफ ध्यान नहीं देते। यह अत्यन्त आवश्यक है कि गाँव वाले दूध, घी तथा मक्खन को अधिक से अधिक सफाई के साथ निकालें।

२. बड़े पैमाने के उद्योग

(Large-Scale Industries)

बड़े पैमाने के उद्योग-धन्धों से हमारा आशय उन उद्योगों से है जिनमें अधिक पूँजी लगती है, बड़ी-बड़ी मशीनों का प्रयोग किया जाता है और जहाँ दस से अधिक श्रमिक मिलकर काम करते हैं। हमारे देश में जनसंख्या का तीन प्रतिशत भाग बड़े पैमाने के उद्योगों में लगा हुआ है। यह बहुत कम है और इस बात की आवश्यकता है कि देश में बड़े पैमाने के उद्योग बढ़ें जिससे भूमि के ऊपर से जनसंख्या का भार कम हो जाय।

इतिहास

हमारे देश में बड़े पैमाने के उद्योगों की भारी कमी है। फिर भी जो कुछ विकास अभी तक हुआ है उसका प्रारंभ प्रथम महायुद्ध के समय से हुआ। युद्ध-कालीन परिस्थितियों के कारण विदेशों से सामान आना बन्द हो गया और देश में माँग बढ़ती गई। फलतः उद्योगपतियों ने अपना काम बढ़ाया और उद्योग-धन्धे पनपे। परन्तु १६२१ की मंदी (depression) के समय इनकी स्थिति पुनः खराब हो गई। १६३१ के बाद से स्थिति कुछ सुधरी और १६३८ में द्वितीय महायुद्ध आरंभ हो जाने पर इन्होंने भारी प्रगति की। सरकार ने भी नये-नये उद्योग खोले जिससे उसे युद्ध लड़ने के लिए सामान मिलता रहे और बढ़े हुए लाभ के प्रलोभन से उद्योगपतियों ने भी उत्पादन बढ़ाया। युद्ध के बाद भी इनकी प्रगति बराबर हो रही है। अब भारत सरकार ने एक पंच-वर्षीय योजना बनाई है और उसमें बड़े पैमाने के उद्योगों की उन्नति की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। सरकार ने योजना बना ली है और उस योजना के अनुसार यदि उद्योगों की प्रगति हुई तो देश को काफी लाभ होगा। भारत में बड़े पैमाने के निम्न महत्वपूर्ण उद्योग हैं।

(१) सूती कपड़े का उद्योग—यह देश का सबसे महत्व पूर्ण उद्योग है और

देश में स्थापित होने वाले संगठित उद्योगों में सबसे पहले स्थापित हुआ था। प्रथम महासमर के समय इस उद्योग ने अच्छी उन्नति की। सन् १८८० में देश में ५६ मिलें थी। १६१४ में उनकी संख्या बढ़कर २७१ हो गई। १६२६ में इनकी संख्या ३३४ हो गई और १६३६ में ३८६। इस समय (सन् १६५०-५१ में) देश में सूती कपड़ों की मिलों की संख्या ४२० है और उनका कुल उत्पादन ३०० करोड़ गज के लगभग है। देश में कुटीर उद्योग-धन्धों से ७५ करोड़ गज कपड़ा प्राप्त होता है। परन्तु फिर भी हमारी पूरी आवश्यकता की संतुष्टि नहीं हो पाती और हमें विदेशों से कपड़ा आयात करना पड़ता है। सन् १६४६-५० में हमें ७ करोड़ ३० लाख गज कपड़ा बाहर से मँगाना पड़ा।

देश में कपड़े की अधिकांश मिलें बम्बई, अहमदाबाद, सूरत आदि स्थानों में पाई जाती हैं। यद्यपि हमारा वस्त्र उद्योग देश की कपड़े की माँग को काफी मात्रा में पूरा कर लेता है, फिर भी देश में कपड़े का प्रति व्यक्ति औसत उपभोग बहुत कम है। इस उद्योग का भविष्य उज्ज्वल है। आवश्यकता इस बात की है कि देश में नई-नई मशीनों का आयात हो और अच्छी कपास देश में पैदा की जाय। पंचवर्षीय योजना में १६५६ तक कपड़े के उत्पादन का लक्ष्य ४७० करोड़ गज रखा गया है। इस लक्ष्य को प्राप्त करना कठिन नहीं है क्योंकि सन् १६४३-४४ में ही हमारे देश में ४४१ करोड़ गज कपड़ा तैयार हुआ था। खेद है कि बाद में उत्पादन कम हो गया। लेकिन थोड़े से ही प्रयास से उत्पादन बढ़ सकता है।

(२) जूट-उद्योग—भारत में जूट-उद्योग का दूसरा स्थान है। यह उद्योग सूती वस्त्र उद्योग से भी अधिक संगठित है। सन् १६१४-१५ में देश में ७२ जूट की मिलें थीं। सन् १६३६-४० में इसकी संख्या बढ़कर ११० हो गई। देश के विभाजन के समय भारत में ६६ जूट की मिलें थीं और १६५०-५१ में उनकी संख्या १०६ थी।

देश के विभाजन के समय से कच्चे जूट का मिलना कठिन हो गया है जिसके कारण मिलें पूरे समय तक काम नहीं कर पातीं। सन् १६४६ की तुलना में केवल सन् १६४८ को छोड़कर जूट का उत्पादन प्रतिवर्ष घटता ही रहा है। सन् १६५१ में जूट का उत्पादन १६४८ की तुलना में केवल ८०% ही था। इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि देश में अधिक कच्चा जूट पैदा किया जाय। देश की सरकारें इस ओर बराबर प्रयत्न कर रही हैं और उत्तर प्रदेश, उड़ीसा तथा बिहार में जूट की खेती का क्षेत्र बढ़ा दिया गया है। आशा की जाती है कि शीघ्र ही देश जूट के उत्पादन में आत्मनिर्भर हो जायगा। इस समय जूट-उद्योग में २७ करोड़ रुपये से अधिक की अचल पूँजी लगी हुई है और इसमें ३ लाख से भी अधिक श्रमिक काम करते हैं।

(३) लोहा और स्पात का उद्योग—यह उद्योग अधिक पुराना नहीं है और इसका इतिहास सन् १६११ से शुरू होता है। सन् १६११ में पहली बार टाटा

आयरन एन्ड स्टील कम्पनी के कारखानें में कच्चा लोहा तैयार हुआ और १९१३ में पहली बार स्पात। प्रथम महायुद्ध के समय इस उद्योग की बड़ी उन्नति हुई और सन् १९२४ में इसे संरक्षणता मिल गई। इस कारण इस उद्योग ने काफी प्रगति की। सन् १९४९ में कच्चे लोहे का मासिक औसत उत्पादन १२७ हजार टन था और स्पात का ११० हजार टन के लगभग। यह आधार उद्योग (Basic Industry) है और इसी की उन्नति पर देश की भावी आर्थिक उन्नति निर्भर है। अतएव यह आवश्यक है कि देश में नये-नये कारखाने खुलें तथा लोहे और स्पात का उत्पादन अधिक हो। भारत सरकार ने अभी जर्मनी के फर्म से एक समझौता किया है जिसके फलस्वरूप लोहे के उत्पादन के लिये एक बड़ा सा कारखाना खुलने वाला है। इस समय ६१ करोड़ रुपये की पूँजी इस उद्योग में लगी हुई है और ६० हजार से अधिक मजदूर इसमें काम करते हैं।

(४) चीनी का उद्योग—भारत के संरक्षित उद्योगों में चीनी के उद्योग का स्थान बड़ा महत्वपूर्ण है। यों तो हमारे देश में १९०३ में ही चीनी की मिलें खुल गई थीं, परन्तु १९३१ तक हमारा देश पूर्णरूप से विदेशों पर चीनी के आयात के लिये निर्भर था। पहली अप्रैल १९३१ को चीनी उद्योग को संरक्षणता मिल गई और तब से इसकी उन्नति काफी जोरों से हुई। १८ वर्षों के बाद सन् १९५० में इस उद्योग को मिलने वाली संरक्षणता हटा ली गई है। परन्तु फिर भी इसकी प्रगति में बाधा नहीं आई है। सन् १९५०-५१ में देश में १३९ चीनी की मिलें थीं और चीनी का कुल उत्पादन ११०० हजार टन था।

(५) सीमेन्ट उद्योग—भारत में इस उद्योग का इतिहास प्रथम महासमर के साथ आरंभ होता है। सन् १९१२-१३ में देश में पहली बार सीमेंट की मिलें खुलीं और तब से इस उद्योग ने काफी प्रगति की है। सन् १९४७ में विभाजन के समय देश की २४ मिलों में से ५ मिलें पाकिस्तान में चली गईं। परन्तु फिर भी उत्पादन में कमी नहीं आई और जहाँ सन् १९४७-४८ में सीमेन्ट का उत्पादन १५ लाख टन था, वहाँ १९५१-५२ में यह बढ़कर ३३ लाख टन के लगभग हो गया। इस समय देश में सीमेन्ट की २३ मिलें हैं।

(६) कागज का उद्योग—भारत में बड़े पैमाने पर कागज बनाने का उद्योग १८६७ में प्रारम्भ हुआ। परन्तु इस उद्योग ने अधिक प्रगति नहीं की है और अभी तक कुल १७ मिलें ही देश में हैं। देश में कागज की बहुत अधिक माँग है और साक्षरता के बढ़ने के साथ-साथ कागज की माँग और भी अधिक बढ़ेगी। अतएव इस उद्योग की उन्नति की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

परीक्षा-प्रश्न

उत्तर प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—भारत के घरेलू उद्योग-धन्धों के महत्व पर सूक्ष्म नोट लिखिये। (१९५२)

२—उत्तर-प्रदेश के घरेलू उद्योग-धन्धों पर सूक्ष्म नोट लिखिये। (१९५१, १९४४)

३—उत्तर-प्रदेश के प्रमुख घरेलू उद्योग-धन्धे कौन-कौन से हैं। उनमें सुधार के कुछ सुझाव बताइये। (१९४६, १९३७)

४—जिस छोटी या बड़ी मात्रा में उत्पादन करने वाले उद्योग धन्धे को आपने देखा हो उसका वर्णन कीजिये। (१९४५)

५—घरेलू उद्योग का आप क्या अर्थ समझते हैं? उदाहरण दीजिये। भारत के कुटीर उद्योग-धन्धों का विकास करने के लिये उपाय बताइये। (१९४१)

६—ग्रामीण उद्योगों की व्यवस्था से संबंधित समस्याओं का वर्णन कीजिये (१९३५)

७—"भारत में अत्यधिक प्राकृतिक स्रोत, पर्याप्त श्रम की पूर्ति और एक बहुत बड़ी मात्रा में अक्रिय पूँजी है"। विस्तार से उदाहरण सहित बताइये कि एक साहसी के लिये भारत में उत्पत्ति-स्रोतों के प्रयोग करने के लिये क्या अवसर प्राप्त हैं? (१९३५)

८—आप अपने देश में किस प्रकार की उत्पत्ति-प्रणाली में विकास चाहेंगे और क्यों? (१९३३)

९—फैक्ट्री और घरेलू उत्पत्ति प्रणाली के तुलनात्मक गुण-दोष बताइये। इन दोनों प्रकार की उत्पत्ति प्रणालियों को भारतीय उदाहरण से स्पष्ट कीजिये। (१९३१)

उत्तर प्रदेश इन्टर कामर्स

१०—छोटे पैमाने के उद्योग-धन्धे पर नोट लिखिये। (१९५३)

११—भारत एक निर्धन देश है। इस निर्धनता के क्या आर्थिक कारण हैं? भारतीय निर्धनता को दूर करने के लिये कुछ उपाय बताइये। (१९४४)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

१२—भारतीय आर्थिक जीवन में कुटीर-धन्धों का क्या महत्व है? राजस्थान में इन धन्धों के विकास के लिये अपने सुझाव रखिये। (१९५२)

१३—कुटीर-धन्धों के जीवित रहने के क्या कारण हैं? उन तरीकों को बताइये जिनसे इन धन्धों की सम्पन्नता बढ़ाई जा सकती है? (१९४७)

१४—वह क्या बातें हैं जिन पर किसी देश का भौतिक सुख निर्भर रहता है? इसी सन्दर्भ में भारतीय निर्धनता के भी कारण बताइये। (१९४३)

सागर इन्टर आर्ट्स

१५—भारत के प्रमुख फैक्ट्री उद्योगों का वर्णन सूक्ष्म में कीजिये। (१९५०)

१६—मध्य प्रदेश के प्रमुख घरेलू उद्योगों का नाम बताइये। इनकी बाधाओं को बताइये और इनको दूर करने के उपाय बताइये। (१९५०)

पटना इन्टर आर्ट्स

१७—भारत में घरेलू उद्योगों को जीवित रखने में क्या कठिनाइयाँ और संभावनायें हैं? (१९५२)

१८—बिहार में किन्हीं के उद्योगों की वर्तमान दशा को बताइये। (१९५०)

विनिमय

EXCHANGE

मैं इस बात से सहमत हूँ कि मुद्रा की
तुलना में अन्य कोई भी विषय
इतना महत्वपूर्ण नहीं है ।

—विन्सटन चर्चिल

०य यह केन्द्र है जिसके चारों
ओर अर्थशास्त्र का विज्ञान
फैला है ।

—एल्फ्रेड मार्शल

विषय-सूची

अध्याय	पृष्ठ संख्या
५५—विनिमय	१—१३
५६—बाजार	१४—२८
५७—माँग और पूर्ति	२९—५०
५८—अर्घ-सिद्धान्त या मूल्य-निर्धारण... ...	५१—५९
५९—स्पर्धा और एकाधिकार में मूल्य निर्धारण ...	६०—७८
६०—द्रव्य	७९—९१
६१—धात्विक तथा पत्र-मुद्रा	९२—१०१
६२—द्राव्यिक मान	१०२—१०८
६३—द्रव्य का अर्घ	१०९—११६
६४—ग्रेशम का नियम	११७—१२०
६५—भारतीय मुद्रा तथा चलन प्रणाली ...	१२१—१३१
६६—साख	१३२—१३८
६७—साख-पत्र	१३९—१५०
६८—बैंक तथा बैंकिंग	१५१—१५९
६९—भारतीय बैंक व्यवस्था	१६०—१७७
७०—ग्रामीण-ऋण की समस्या	१७८—१८२

पचपनवाँ अध्याय

विनिमय

(Exchange)

१. विनिमय का अर्थ तथा लाभ

(Meaning and Advantages of Exchange)

विनिमय का उदय

प्राचीन समय में प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकता की सभी वस्तुएँ स्वयं उत्पन्न करता था और उन्हें उपभोग कर अपनी आवश्यकताएँ पूरी कर लिया करता था। इस प्रकार उस समय व्यवस्था का रूप स्वावलम्बी तथा व्यक्तिगत था। उस समय मनुष्य की आवश्यकताएँ मात्रा में सीमित थीं और इस कारण अन्य व्यक्तियों पर निर्भर रहे बिना ही उसका काम चल जाता था।

परन्तु जैसे-जैसे सभ्यता का विकास हुआ, मनुष्यों में पारस्परिक संपर्क बढ़ा और सामाजिक जीवन का क्षेत्र विस्तीर्ण हुआ, मनुष्यों की आवश्यकताएँ बढ़ने लगीं। इन बढ़ी हुई आवश्यकताओं को केवल अपने ही प्रयत्नों द्वारा संतुष्ट करना किसी एक मनुष्य के लिये सम्भव न रहा और इस कारण आत्म-निर्भरता का स्थान विशिष्टीकरण (Specialisation) ने ले लिया। मनुष्यों की समझ में यह आ गया कि कुछ वस्तुएँ बनाने की उनमें विशेष योग्यता होती है और सभी वस्तुओं को वह उसी योग्यता से नहीं बना सकते। अतएव प्रथा यह चल निकली कि जो मनुष्य जिस कार्य के करने में निपुण होता था वह उसी कार्य को करने लगा। उदाहरण के लिये जो व्यक्ति खेती करने में होशियार होते थे वह खेती करने लगे, जो कपड़ा बनाने में निपुण होते थे वह कपड़ा बनाने लगे और जो युद्ध-कला में निपुण होते थे वह फौज में भर्ती होकर सैनिक बन गये। परन्तु विशिष्टीकरण को सफल बनाने के लिये विनिमय का चलन आवश्यक था। मनुष्य केवल एक वस्तु का ही उत्पादन करते थे और विनिमय द्वारा उस वस्तु के बदले में आवश्यकता की अन्य सभी वस्तुएँ ले लिया करते थे। उदाहरण के लिये किसान गेहूं देकर कपड़ा, घी, तरकारी, खुरपी, फड़ुआ आदि प्राप्त कर अपनी आवश्यकताएँ सन्तुष्ट करते थे। जुलाहे कपड़ा देकर अन्न, जूते, घी, दूध, तरकारी आदि प्राप्त कर लेते थे। एक वस्तु देकर आवश्यकता: की अन्य वस्तुएँ प्राप्त करने की प्रथा को ही विनिमय कहते हैं। इस प्रकार सभ्यता के विकास के कारण विशिष्टीकरण प्रारम्भ हुआ और विशिष्टीकरण को सफल बनाने के लिये विनिमय का उदय हुआ।

विनिमय का अर्थ

किसी एक वस्तु को देकर उसके बदले में अन्य वस्तुएँ प्राप्त करने को विनिमय कहते हैं। अन्य शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि सम्पत्ति या वस्तुओं की अदला-बदली का ही नाम विनिमय है।

परन्तु प्रत्येक प्रकार की अदला-बदली को विनिमय नहीं कहा जा सकता। केवल वही अदला-बदली जो (१) कानूनन मान्य हो और (२) जो दोनों पक्षों की स्वेच्छा से की गई हो, विनिमय कहलाती है। इस प्रकार विनिमय के लिये तीन बातें आवश्यक हैः (१) वस्तुओं की अदला-बदली, (२) अदला-बदली कानूनन मान्य हो, और (३) वह दोनों पक्षों की स्वेच्छा से की गई हो।

विनिमय के लिये आवश्यक है

१. वस्तुओं की अदला-बदली
२. वह कानूनन मान्य हो
३. दोनों पक्षों की स्वेच्छा से हो

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि विनिमय दो पक्षों के बीच में होने वाले सम्पत्ति के कानूनी, (legal) स्वेच्छा से किये गये (voluntary) तथा पारस्परिक परिवर्तन को कहते हैं।

उदाहरण

विनिमय का अर्थ एक उदाहरण द्वारा समझाया जा सकता है। मान लीजिये राम अपनी पुरानी पुस्तक किसी दुकानदार को दो रुपये में बेच देता है। यह अदला बदली विनिमय है क्योंकि (१) राम ने अपनी पुस्तक दी है और दुकानदार ने बदले में दो रुपये दिये हैं, (२) दोनों ने अपनी स्वेच्छा से यह अदला-बदली की है और (३) यह अदला-बदली कानून की दृष्टि से उचित है।

एक दूसरा उदाहरण लीजिये। मान लीजिये एक चोर श्याम का कलम चुरा कर ले जाता है। इसमें कलम का मालिक अब श्याम नहीं रहा लेकिन चोर हो गया है। इस प्रकार कलम का स्वामित्व अब बदल गया है। परन्तु यह क्रिया विनिमय की क्रिया नहीं है क्योंकि (१) न तो यह क्रिया कानूनन मान्य है, (२) न श्याम की इच्छा से हुई है और (३) न श्याम की कलम के बदले में ही कुछ मिला है।

मान लीजिये आप के पिताजी को प्रतिवर्ष २०० रुपया कर (tax) के रूप में सरकार को देने होते हैं। इस क्रिया में (१) रुपये का स्वामित्व बदल जाता है, और (२) यह क्रिया कानूनन मान्य भी है। फिर भी इस क्रिया को विनिमय नहीं कहा जा सकता है क्योंकि (१) आपके पिता जी ने सरकार को अपनी इच्छा से रुपये नहीं दिये हैं और (२) न आपके पिता जी को उन रुपयों के बदले में सरकार से कुछ प्राप्त ही हुआ है।

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट हो गया होगा कि प्रत्येक अदला-बदली विनिमय की क्रिया नहीं होती। जब तक दोनों पक्षों को एक वस्तु के बदले में दूसरी कुछ वस्तु या सम्पत्ति प्राप्त न हो, जब तक यह अदला-बदली अपनी इच्छा से न की गई हो और, जब तक यह कानूनन मान्य न हो तब तक इसे विनिमय नहीं कहेंगे।

विनिमय कब सम्भव हो सकता है ?

विनिमय उसी समय सम्भव हो सकता है जब वस्तुओं की अदला-बदली करने के लिये कम से कम दो व्यक्ति तैयार हों, (१) उनके पास दो विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ हों, (२) दोनों एक दूसरे की वस्तु लेने के लिये इच्छुक हों, और (३) दोनों को विनिमय की क्रिया से लाभ हो। जब तक यह चारों बातें नहीं होंगी, विनिमय नहीं हो सकता।

विनिमय के लिये चाहिये



१. दो या अधिक व्यक्ति
२. दो या अधिक वस्तुएँ
३. वस्तुओं की पारस्परिक इच्छा
४. विनिमय से दोंनों पक्षों को लाभ

(१) विनिमय के लिये दो व्यक्तियों या दो पक्षों का होना अत्यन्त आवश्यक है। जब तक दो व्यक्ति नहीं होंगे तो अदला-बदली होगी किनमें ? केवल एक व्यक्ति ही अपने आपको एक वस्तु देकर बदले में दूसरी वस्तु भला किस प्रकार ले सकता है। अतएव विनिमय की क्रिया के लिये कम से कम दो व्यक्ति अवश्य हों।

(२) साथ ही यह भी आवश्यक है कि इन दोनों व्यक्तियों के पास दो विभिन्न वस्तुएँ हों या दो विभिन्न किस्म की वस्तुएँ हों। जब तक दो विभिन्न वस्तुएँ या दो विभिन्न किस्म की वस्तुएँ नहीं होंगीं तब तक विनिमय संभव नहीं हो सकता। कोई व्यक्ति एक वस्तु देकर बदले में वही या उसी किस्म की वस्तु थोड़े, ही चाहेगा ? अतएव विनिमय के लिये दो वस्तुओं का होना आवश्यक है।

(३) इसके साथ यह भी आवश्यक है कि दोनों व्यक्तियों को एक दूसरे की वस्तु लेने की इच्छा हो। आप अपनी वस्तु देकर बदले में दूसरी वस्तु लेने को तभी तैयार होंगे जब आप को वह दूसरी वस्तु पसन्द हो। उदाहरण के लिये आप गेहूं के बदले में चना या दूध के बदले में घी लेने को तभी तैयार होंगे जब आप को चना या घी की इच्छा हो। इस प्रकार विनिमय करने वाले दोनों पक्षों को एक दूसरे की वस्तु की इच्छा होनी चाहिये।

(४) इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि विनिमय से दोनों पक्ष के व्यक्तियों को लाभ होना चाहिये। यदि विनिमय से लाभ न होगा तो कोई भी व्यक्ति विनिमय करने के लिये तैयार नहीं होगा। साथ ही जैसे ही किसी पक्ष को हानि होने लगेगी विनिमय बन्द हो जायगा। इसका कारण स्पष्ट है। व्यक्ति अपनी वस्तु से दूसरी वस्तु बदलने के लिये इसलिये तैयार हो जाते हैं क्योंकि दूसरी वस्तु से उन्हें अधिक उपयोगिता मिलती है। यदि विनिमय से हानि हो तो कोई भी व्यक्ति विनिमय करने के लिये तैयार ही क्यों होगा ? अतएव विनिमय से दोनों पक्षों को लाभ होना आवश्यक है।

विनिमय से लाभ (Advantages of Exhcange)

विनिमय से अनेक लाभ हैं। उनमें निम्नलिखित विशेष महत्वपूर्ण हैं:—

(१) **निपुणता बढ़ जाना**— विनिमय के कारण प्रत्येक व्यक्ति एक ही वस्तु का उत्पादन लगातार करता रहता है। इससे लाभ यह होता है कि उस वस्तु के उत्पादन में वह विशेष रूप से निपुण हो जाता है। उस वस्तु के उत्पादन को विभिन्न उप क्रियाओं से भी वह पूर्ण रूप से परिचित हो जाता है जिसके कारण उसकी निपुणता बढ़ जाती है।

(२) **उत्पादन अधिक होना**—विनिमय के कारण उत्पादन अधिक मात्रा में होने लगता है। साथ ही जो वस्तु उत्पन्न होती है वह किस्म और डिजाइन में बहुत अच्छी होती है। वस्तु के उत्पादन का व्यय भी कम होता है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक उत्पादक अपने काम में बड़ा निपुण होता है।

(३) **बड़े पैमाने पर उत्पादन**—विनिमय के कारण उत्पादन बड़े पैमाने पर होने लगता है। क्योंकि एक व्यक्ति एक ही वस्तु का उत्पादन करता है इस कारण

वह बड़े से बड़े पैमाने पर उस वस्तु को उत्पन्न करता है। बड़े पैमाने पर उत्पादन करने के कारण आन्तरिक और बाह्य मितव्ययताएँ प्राप्त होती हैं जिससे उत्पादन-लागत कम हो जाती है।

(४) श्रम विभाजन सम्भव होना--विनिमय के कारण श्रम-विभाजन सम्भव हो जाता है। फलतः श्रम-विभाजन से मिलने वाले सभी लाभ उत्पादक को प्राप्त होने लगते हैं।

(५) प्राकृतिक साधनों का समुचित प्रयोग—विनिमय के कारण देश के प्राकृतिक साधनों का प्रयोग उचित रूप से होने लगता है। न तो कोई साधन बेकार पड़ा रहता है और न किसी साधन की बर्बादी ही होती है। जितनी माँग होती है उसी के अनुसार वस्तुओं का उत्पादन होता है और इस प्रकार कोई वस्तु बेकार नहीं जाती।

(६) देश में उत्पन्न न होने वाली वस्तुओं का उपभोग—विनिमय के कारण ऐसी वस्तुओं का उपभोग भी संभव हो जाता है जिन्हें हम देश में उत्पन्न नहीं करते। उदाहरण के लिये हवाई जहाजों को ले लीजिये। अभी तक हमारे देश में हवाई जहाज नहीं बनते। परन्तु विनिमय द्वारा हम इन्हें प्राप्त कर लेते हैं और इनका उपभोग करते हैं। इस प्रकार की हजारों ऐसी वस्तुएँ हैं जिनका प्रयोग विनिमय के कारण सम्भव हो जाता है।

(७) अधिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि—विनिमय के कारण मनुष्य के लिये यह सम्भव हो जाता है कि वह अपनी बहुत सी आवश्यकताओं को सुगमता से सन्तुष्ट कर ले। उस स्थिति की तुलना में जब मनुष्य आवश्यकता की सभी वस्तुएँ स्वयं तैयार करता था, विनिमय के द्वारा मनुष्य बहुत अधिक मात्रा में वस्तुओं का उपभोग कर लेता है।

(८) विनिमय द्वारा दोनों पक्षों को उपयोगिता का लाभ है—विनिमय से सबसे बड़ा लाभ यह है कि दोनों पक्षों को उपयोगिता का लाभ होता है। यह बात कुछ अनोखी प्रतीत होगी। परन्तु गहराई से सोचने पर यह स्पष्ट हो जायगा कि यह कथन सर्वथा सच है।

यह तो आप जानते ही हैं कि विनिमय में मनुष्य उसी वस्तु को देता है जिसका वह उत्पादन करता है और अतएव जो उसके पास अधिक मात्रा में होती है। सीमान्त उपयोगिता-ह्रास नियम हमें यह बताता है कि जिस वस्तु की मात्रा अधिक होती है उससे हमें कम उपयोगिता मिलती है। अतएव यह कहा जा सकता है कि जिस वस्तु को मनुष्य बदले में देता है उसकी प्रति इकाई से उसे काफी कम उपयोगिता प्राप्त होती है।

इसके विपरीत मनुष्य उसी वस्तु को बदले में लेता है जो उसके पास नहीं होती। सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम हमें यह बताता है कि जिस वस्तु की मात्रा हमारे पास कम होती है उसकी प्रति इकाई से हमें अधिक उपयोगिता मिलती है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मनुष्य जिस वस्तु को देता है उसकी प्रति इकाई की उपयोगिता उसे बहुत कम होती है और जिस वस्तु को वह बदले में लेता है उसकी प्रति इकाई से उसे कहीं अधिक उपयोगिता मिलती है। यह बात विनिमय करने वाले सभी व्यक्तियों के बारे में लागू होती है और इस कारण विनिमय करने वाले सभी व्यक्तियों को विनिमय की क्रिया से लाभ होता है।

यह बात एक उदाहरण द्वारा समझाई जा सकती है। मान लीजिये राम और श्याम दो व्यक्ति हैं और राम ने गेहूं तथा श्याम ने चावल पैदा किये हैं। क्योंकि राम के पास गेहूं की मात्रा अधिक है, अतएव गेहूं से उसे कम उपयोगिता प्राप्त होगी और क्योंकि उसके पास चावल नहीं है इस कारण चावल से उसे अधिक उपयोगिता प्राप्त होगी। इसके विपरीत श्याम को चावल से कम उपयोगिता मिलेगी और गेहूं से अधिक क्योंकि उसके पास चावल है और गेहूं की उसे आवश्यकता है। मान लीजिये दोनों को गेहूं और चावल से मिलने वाली उपयोगिता निम्न प्रकार है :—

वस्तुओं की इकाई	प्राप्त होने वाली उपयोगिता	
	गेहूं	चावल
१	१००	९५
२	९०	८५
३	७०	६५
४	६०	६०
५	४५	५०
६	४०	४१
७	२५	३०
८	२०	२५

राम गेहूं की एक इकाई श्याम को देगा और बदले में श्याम चावल की एक इकाई राम को देगा। श्याम को गेहूं की पहली इकाई से १०० उपयोगिता मिलेगी और चावल की एक इकाई देने से उसे २५ इकाई की हानि होगी। इस प्रकार एक इकाई चावल देकर बदले में एक इकाई गेहूं लेने में उसे १००-२५ = ७५ इकाई का लाभ होगा। विनिमय की इसी क्रिया से राम को चावल की पहली इकाई से ९५ उपयोगिता

मिलेगी और बदले में उसे जो गेहूं देना होगा उससे उसे २० इकाई की हानि होगी। इस प्रकार राम को इस विनिमय से ७५ इकाई का लाभ होगा। राम और श्याम को चावल और गेहूं की विभिन्न इकाइयों के विनिमय से कितना-कितना लाभ होगा यह निम्न तालिका से स्पष्ट हो जायगा :—

वस्तुओं की इकाई	वस्तुओं की इकाई से प्राप्त होने वाला लाभ	
	गेहूं से (श्याम को)	चावल से (राम को)
१	१००–२५ = ७५	९५–२० = ७५
२	९०–३० = ६०	८५–२५ = ६०
३	७०–४१ = २९	६५–४० = २५
४	६०–५० = १०	६०–४५ = १५
५	४५–६० = १५	५०–६० = १०

इस उदाहरण से यह स्पष्ट है कि राम और श्याम अपनी वस्तुओं की केवल चार-चार इकाइयों का ही विनिमय करेंगे क्योंकि पाँचवीं इकाई का विनिमय दोनों पक्षों के लिये हानिकारक है।

२. विनिमय के प्रकार

(Kinds of Exchange)

विनिमय दो प्रकार से किया जा सकता है। या तो यह हो सकता है कि आप २० सेर चावल देकर बदले में ५ सेर घी ले लें या यह हो सकता है कि आप चावल को बाजार में बेचकर द्रव्य प्राप्त कर लें और फिर उस द्रव्य की सहायता से घी खरीद लें। पहली प्रकार की क्रिया जिसमें एक वस्तु के बदले में दूसरी वस्तु प्राप्त की जाती है, वस्तु परिवर्तन या अदल-बदल (Barter) कहलाती है। दूसरी प्रकार की क्रिया जिसमें द्रव्य की सहायता से विनिमय किया जाता है, क्रय विक्रय (Purchase and Sale) कहलाता है। विनिमय के यही दो भेद हैं—(१) वस्तु परिवर्तन और (२) क्रय विक्रय।

विनिमय

अदल-बदल | क्रय-विक्रय

३. वस्तु-परिवर्तन या अदल-बदल
(Barter)

मानवीय प्रगति के प्रारम्भिक दिनों में, जब मनुष्य जंगलों में रहते थे और फल-फूल खाकर अपना पेट भरते थे उस समय विनिमय का कोई नाम भी नहीं जानता था। परन्तु जैसे-जैसे आवश्यकतायें बढ़ती गईं और मनुष्य निपुण होता गया, मनुष्य सभी वस्तुओं का उत्पादन त्याग कर केवल एक वस्तु के उत्पादन में लग गया और उस वस्तु के बदले में अन्य वस्तुएँ प्राप्त करने लगा। वस्तु-परिवर्तन का यहीं से प्रारम्भ हुआ।

वस्तु परिवर्तन प्रणाली में द्रव्य के माध्यम के द्वारा वस्तुओं का आदान-प्रदान नहीं होता। संसार में वस्तु-परिवर्तन प्रणाली उस समय अधिक व्यापक थी जब द्रव्य का प्रारम्भ नहीं हुआ था। इसी कारण इस प्रणाली में एक वस्तु के बदले में दूसरी वस्तु लेने-देने की प्रथा है।

वस्तु-परिवर्तन प्रणाली का चालू रहना

ऊपर बताया जा चुका है कि संसार में वस्तु-परिवर्तन प्रणाली उसी समय तक चालू रही जब तक द्रव्य का चलन नहीं हुआ था और मनुष्य ने अधिक प्रगति नहीं की थी। यह प्रणाली निम्न अवस्थाओं में ही चालू रह सकती हैं:—

(१) सीमित आवश्यकतायें—वस्तु-परिवर्तन प्रणाली उसी समय तक चालू रह सकती है जब तक मनुष्य की आवश्यकतायें मात्रा में सीमित रहें। इसका कारण यह है कि वस्तु-परिवर्तन में ऐसे दो मनुष्यों की आवश्यकता होती है जिनमें एक के द्वारा दी जाने वाली वस्तु दूसरे को और दूसरे द्वारा दी जाने वाली वस्तु पहले को लेनी स्वीकार हो। उदाहरण के लिये यदि एक मनुष्य के पास गेहूं तथा दूसरे मनुष्य के पास चावल हों तो उन दोनों में वस्तु परिवर्तन तभी हो सकता है, जब गेहूं वाला चावल लेने को तैयार हो और चावल वाला गेहूं लेने को। क्योंकि इस प्रकार के मनुष्य सुगमता से नहीं मिलते, इस कारण जब तक आवश्यकतायें कम होती हैं तभी तक वस्तु-परिवर्तन चालू रहता है।

(२) सीमित क्षेत्र—वस्तु परिवर्तन के लिये यह भी आवश्यक है कि क्षेत्र सीमित हो जिससे वहाँ के रहने वाले सभी व्यक्तियों की आवश्यकताओं का सभी को उचित ज्ञान हो। क्योंकि एक छोटे से क्षेत्र में ही विभिन्न मनुष्यों की आवश्यकताओं का पारस्परिक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, इस कारण वस्तु-परिवर्तन के लिये क्षेत्र का सीमित होना आवश्यक है।

(३) द्रव्य का होना—वस्तु परिवर्तन उसी समय तक चालू रह सकता है, जब देश में कोई भी वस्तु द्रव्य की भाँति मूल्यांकन तथा वस्तु के क्रय-विक्रय के लिये

काम में न लाई जाय। एक पिछड़े हुए देश में ही द्रव्य का चलन नहीं होता। अतएव यह कहा जा सकता है कि वस्तु-परिवर्तन एक ऐसे देश में ही चालू रह सकता है जो इतना पिछड़ा हुआ हो कि उसमें द्रव्य का चलन प्रारम्भ न हुआ हो।

ऊपर के कथन से यह स्पष्ट हो गया होगा कि संसार में वस्तु-परिवर्तन उसी समय तक चालू रहा जब तक मनुष्य ने अधिक प्रगति न की थी। परन्तु प्रगति के साथ मनुष्य की आवश्यकताएँ बढ़ने लगीं और उसे वस्तु-परिवर्तन में अनेक कठिनाइयाँ प्रतीत होने लगीं। इन कठिनाइयों या असुविधाओं के कारण द्रव्य के माध्यम के द्वारा विनिमय होने लगा और वस्तु-परिवर्तन लगभग समाप्त ही हो गया।

वस्तु-परिवर्तन की असुविधाएँ (Inconveniences of Barter)

प्रश्न यह उठता है कि वस्तु-परिवर्तन की क्या असुविधायें थीं जिनके कारण वस्तु-परिवर्तन संसार से उठ गया। वस्तु-परिवर्तन की तीन प्रमुख असुविधायें हैं जो नीचे बताई गई हैं।

(१) पारस्परिक अनावश्यक वस्तुओं के माँगने वालों का अभाव—वस्तु-परिवर्तन तभी सम्भव हो सकता है जब ऐसे दो व्यक्ति मिल जायँ जिनमें से प्रत्येक को वह वस्तु लेनी स्वीकार हो जो दूसरा देना चाहता है। घी तथा चावल का परिवर्तन तभी सम्भव है जब ऐसे दो व्यक्ति मिल सकें जिनमें से एक चावल के बदले में घी लेना चाहता हो और दूसरा घी देकर चावल लेना चाहता हो। यदि एक को घी के बदले में कपड़ा और दूसरे को चावल के बदले में गेहूँ की आवश्यकता है तो दोनों में वस्तु-परिवर्तन नहीं हो सकता। इस प्रकार के मनुष्यों का मिलना जिनमें आवश्यकता की दोहरी समानता। (Double Coincidence of Want) हो बड़ा कठिन है। इसी कारण वस्तु-परिवर्तन द्वारा विनिमय में बड़ी कठिनाई होती है।

(२) मूल्यांकन के माप का अभाव—वस्तु-परिवर्तन की दूसरी कठिनाई मूल्यांकन के किसी एक सर्वमान्य माप (Common Measure of Value) के अभाव की है। क्योंकि वस्तु-परिवर्तन में वस्तुओं का मूल्य किसी एक वस्तु में नहीं मापा जाता, इसलिये यह आवश्यक हो जाता है कि एक वस्तु का मूल्य अन्य सभी वस्तुओं में मापा जाय। एक तो इस प्रकार की सूची बनाना ही अत्यन्त कठिन काम है और यदि ऐसी सूची बन भी जाय तो फिर उसे याद रखना तो और भी कठिन है। संसार में एक वस्तु के बदले में लाखों-करोड़ों वस्तुएँ प्राप्त की जा सकतीं हैं। अतएव इस प्रकार की सूची बनाना एक असम्भव कार्य है। जब तक वस्तुओं की मात्रा कम थी, तब तक तो वस्तु-परिवर्तन किसी प्रकार चल सका। परन्तु वस्तुओं की मात्रा बढ़ जाने पर मूल्यांकन के आम माप के अभाव के कारण विनिमय में बड़ी असुविधा होने लगी।



(३) वस्तुओं के विभाजन की कठिनाई—वस्तु-परिवर्तन में तीसरी असुविधा वस्तुओं की अविभाज्यता के कारण उत्पन्न हो जाती है। कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं कि उन्हें विभाजित नहीं किया जा सकता जैसे गाय, बैल, बकरी, कोट, पतलून, हीरा, जवाहरात आदि। यदि इनमें से किसी भी वस्तु के टुकड़े कर दिये जायँ तो उस वस्तु का सम्पूर्ण अर्घ समाप्त हो जाता है। अतएव यह आवश्यक होता है कि इन वस्तुओं के टुकड़े किये बिना ही इनको बदला जाय। उदाहरण के लिये मान लीजिये कि एक बकरी के बदले में १५ सेर घी मिल सकता है। परन्तु यदि आपको १० सेर घी की आवश्यकता है तो आप क्या करें? आप बकरी के टुकड़े करके दो तिहाई बकरी तो दे नहीं सकते? अतएव या तो आप बकरी देकर १५ सेर घी लें या विनिमय न करें। इस कारण भी वस्तु-परिवर्तन में असुविधा होती है।

भारत में वस्तु-परिवर्तन का चलन

वैसे तो भारत में बहुत दिनों से द्रव्य का चलन प्रारम्भ हो गया है और वस्तुओं का विनिमय द्रव्य के माध्यम से ही होता है, परन्तु भारत के गाँवों में (जहाँ आधुनिक सभ्यता का चलन अधिक व्यापक नहीं हुआ है) वस्तु-परिवर्तन अब भी चालू है। गाँवों में बढ़ई, लुहार, नाई आदि को अब भी इनकी सेवाओं के बदले में फसल के समय अनाज दिया जाता है। किसान आवश्यकता की अनेक वस्तुएँ वस्तु-परिवर्तन द्वारा ही प्राप्त करते हैं। शहरों में तो वस्तु-परिवर्तन देखने को नहीं मिलता, परन्तु भारत के गाँवों में इसका चलन अब भी है।

वस्तु-परिवर्तन भारतीय गाँवों में अब भी चालू है इसके कई कारण हैं। (१) अशिक्षा—भारतीय किसान अशिक्षित हैं और इस कारण उनके लिये द्रव्य के माध्यम द्वारा क्रय-विक्रय करना सुगम काम नहीं है। पढ़े-लिखे न होने के कारण वह सिक्कों को पहचान भी नहीं पाते और यह भी नहीं समझ पाते कि यह सिक्का अच्छा है या खोटा। इस कारण वह द्रव्य में लेन-देन करने से डरते हैं। (२) सामाजिक रीति-रिवाज—गाँवों में अब भी अनेक सामाजिक रीति-रिवाज प्रचलित हैं जो वस्तु-परिवर्तन प्रणाली पर आधारित हैं। उदाहरण के लिये बढ़ई, लुहार, धोबी, नाई, आदि को उनकी सेवाओं के बदले में अनाज देना सामाजिक रीति-रिवाज पर आधारित है। (३) सीमित आवश्यकतायें—किसानों की आवश्यकतायें मात्रा में सीमित हैं। इस कारण वस्तु-परिवर्तन में उन्हें अधिक कठिनाई नहीं प्रतीत होती। (४) सीमित क्षेत्र—भारत के गाँव छोटे-छोटे हैं और इस कारण वहाँ के सभी मनुष्यों की आवश्यकताओं को जानना कठिन नहीं है। (५) यातायात की कमी—भारत के गाँवों में यातायात के साधनों की भारी कमी है और इस कारण शहरों से उनका सम्पर्क काफी कम है। अतएव वहाँ पुरानी चलन प्रणाली का अब भी जोर है जिससे अदल-बदल द्वारा ही विनिमय होता है।

४. क्रय-विक्रय

(Purchase and Sale)

जब मनुष्यों को वस्तु-परिवर्तन में कठिनाइयाँ प्रतीत होने लगीं तो उन्होंने विनिमय के माध्यम के रूप में कुछ ऐसी वस्तुओं का प्रयोग आरम्भ कर दिया जो सर्वप्रिय थीं। क्योंकि यह वस्तुएँ सर्वप्रिय थीं, इस कारण सभी लोग इन्हें अपनी वस्तुओं के बदले में स्वीकार कर लेते थे। एक ओर तो मनुष्य अपनी वस्तुओं के बदले में इस सर्वप्रिय वस्तु को प्राप्त कर लेते थे और फिर इस सर्वप्रिय वस्तु को देकर आवश्यकता की अन्य वस्तुएँ ले लेते थे। इस प्रकार एक सर्वप्रिय वस्तु का प्रयोग विनिमय के माध्यम के रूप में होने लगा। द्रव्य का यही प्रारम्भ है। ध्यान रखने की बात है कि अपनी सर्वप्रियता के कारण ही वस्तु ने द्रव्य का रूप लिया।

सबसे पहले कुल्हाड़ियाँ द्रव्य के रूप में प्रयोग में लाई गईं। इसके पश्चात् गाय भैंस, बकरी आदि पालतू जानवरों का प्रयोग किया गया। बाद में चमड़ा, अनाज आदि का प्रयोग द्रव्य के रूप में हुआ। परन्तु इन सभी वस्तुओं में असुविधा यह थी कि कुछ समय पश्चात् इनका अर्घ समाप्त हो जाता था, क्योंकि अनाज सड़ जाता था और जानवर बूढ़े हो जाते थे। अतएव वस्तु-द्रव्य (Commodity money) के स्थान पर धात्विक द्रव्य (Metallic money) का चलन आरम्भ हो गया। सम्भवतः सबसे पहले लोहे की धातु का प्रयोग इस कार्य के लिये किया गया। बाद में सोना और चाँदी का प्रयोग द्रव्य के रूप में अधिक व्यापक बन गया।

क्रय तथा विक्रय

द्रव्य का चलन आरम्भ होते ही प्रत्येक वस्तु का मूल्य द्रव्य में आँका जाने लगा और वस्तुओं का विनिमय भी द्रव्य में होने लगा। द्रव्य के माध्यम द्वारा जब विनिमय होता है तो उस क्रिया को क्रय-विक्रय कहते हैं।

क्रय-विक्रय में दो क्रियाएँ आती हैं। वस्तु के बदले में द्रव्य प्राप्त करने की क्रिया को विक्रय (Sale) कहते हैं और द्रव्य देकर किसी वस्तु के प्राप्त करने की क्रिया को क्रय (Purchase) कहते हैं। आजकल संसार में क्रय-विक्रय ही अधिक प्रचलित है क्योंकि यह अत्यन्त सुविधाजनक है।

क्रय-विक्रय

क्रय (Purchase) | विक्रय (Sale)

परीक्षा-प्रश्न

उत्तर-प्रदेश, इन्टर आर्ट्स

१—विनिमय के अर्थ का स्पष्ट अभिप्राय बताओ। विनिमय से उपयोगिता में दोनों पक्षों को किस प्रकार लाभ होता है ? (१९५३)

२—अदल-बदल की असुविधाओं के कारण वस्तुओं का विनिमय क्रय-विक्रय द्वारा कैसे होने लगा ? यह विनिमय किस प्रकार होता है ? उदाहरण दीजिये। (१९५२)

३—अदल-बदल के गुणों और अवगुणों की विवेचना कीजिये। द्रव्य के प्रयोग से अदल-बदल की अड़चनें किस प्रकार दूर हो गई हैं ? (१९५१)

४—अर्थशास्त्र में विनिमय की क्या समस्यायें अध्ययन की जाती हैं ? विनिमय की क्या आवश्यकता है ? बताइये। (१९५०)

५—क्या यह सच है कि विनिमय कम आवश्यक वस्तु का अधिक आवश्यक वस्तु से अदल बदल करने को कहते हैं ? विनिमय के लाभ बताइये। भारत के उदाहरण दीजिये। (१९४८)

६—विनिमय का उदय किस प्रकार हुआ ? क्रय-विक्रय द्वारा विनिमय अदला-बदली से क्यों अच्छा है ? (१९४७)

७—अदल-बदल की कठिनाइयों पर संक्षिप्त नोट लिखिये ? (१९४४)

८—अदल-बदल पर संक्षिप्त नोट लिखिये।
(१९४२, १९४०, १९३९, १९३७, १९३५, १९३४, १९३१)

९—भारत के ग्रामीण भागों में अदल-बदल किस सीमा तक और क्यों प्रचलित है ? इस प्रकार के व्यापार में जो असुविधायें हैं उन्हें बताइये। (१९४१)

१०—विनिमय की क्या दशायें हैं ? एक उदाहरण द्वारा यह स्पष्ट कीजिये कि विनिमय द्वारा दोनों पक्षों को उपयोगिता का लाभ किस प्रकार होता है ? (१९४०)

११—विनिमय की परिभाषा दीजिये। यह स्पष्ट कीजिये कि विनिमय में दोनों पक्षों को उपयोगिता का लाभ होता है। क्या कोई ऐसी परिस्थिति भी हो सकती है जब यह लाभ समाप्त हो जाय ? (१९३४)

उत्तर-प्रदेश इन्टर कामर्स

१२—अदल-बदल जिन परिस्थितियों में संभव है उनकी व्याख्या कीजिये। अदल-बदल के स्थान में धन द्वारा क्रय-विक्रय क्यों होता है ? (१९४९)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

१३—वस्तु-परिवर्तन किसे कहते हैं ? यह भी स्पष्ट कीजिये कि अदल-बदल की असुविधाओं के कारण द्रव्य का प्रादुर्भाव किस प्रकार हुआ। (१९५३, १९४२)

१४—विनिमय की क्या शर्तें हैं ? एक उदाहरण द्वारा बताइये कि विनिमय में दोनों पक्षों को उपयोगिता का लाभ किस प्रकार होता है ? (१९५२)

१५—अदल-बदल प्रणाली को पूर्णतः समझाइये। उन दशाओं की व्याख्या कीजिये जिनमें अदल-बदल प्रणाली संभव है। (१९५१)

१६—अदल-बदल की असुविधाओं पर संक्षिप्त नोट लिखिये।
(१९५१, १९५०, १९४९)

१७—अदल-बदल प्रणाली की व्याख्या कीजिये। क्या यह व्यापार करने का केवल एक प्राचीन ढंग है? (१९४७)

१८—क्या यह कहना सच है कि विनिमय कम आवश्यक वस्तुओं का अधिक वस्तुओं से अदला बदली को कहते हैं? भारतीय उदाहरण देकर विनिमय के लाभों को बताइये। (१९४३)

१९—यह स्पष्ट कीजिये कि मुद्रा के अभाव में हमारी अर्थ-व्यवस्था वर्तमान प्रगति तक किसी प्रकार भी नहीं पहुँच सकती थी। (१९४३)

२०—विनिमय की क्यों आवश्यकता पड़ती है? विनिमय द्वारा दोनों पक्षों को किस प्रकार उपयोगिता का लाभ होता है? (१९४१)

२१—अदल-बदल किसे कहते हैं। इस प्रणाली में क्या असुविधायें हैं? भारत की वर्तमान ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था में अदल-बदल प्रणाली का क्या महत्व है? (१९४०)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर कामर्स

२२—द्रव्य के कार्यों को बताइये। द्रव्य ने अदल-बदल को क्यों हटा दिया है? (१९४८)

२३—विनिमय के लाभ पर नोट लिखिये। (१९४७)

२४—अदल-बदल पर सूक्ष्म नोट लिखिये। (१९४६)

पटना इन्टर आर्ट्स

२५—द्रव्य के अभाव में आपको क्या असुविधायें प्रतीत होंगी? (१९५१)

२६—अदल-बदल की क्या असुविधायें हैं? (१९४८)

२७—अदल-बदल के स्थान पर द्रव्य द्वारा विनिमय करने से क्या लाभ होगा? (१९४६)

छप्पनवां अध्याय

बाजार

(Market)

अर्थशास्त्र में बाजार शब्द अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसका कारण यह है कि अर्थ-सिद्धान्त में इस शब्द का प्रयोग बार-बार किया जाता है। वस्तुओं की माँग और पूर्ति बाजार में होती है और बाजार में ही उनका अर्घ निर्धारित होता है। अतएव बाजार शब्द का अर्थ जानना अत्यन्त आवश्यक है। परन्तु जितना इस शब्द का अर्थ जानना आवश्यक है, उतना ही इसका अर्थ कठिन भी है। इसका कारण यह है कि 'बाजार' एक ऐसा शब्द है जिसका प्रयोग हम दिन-प्रति-दिन सामान्यतः करते रहते हैं और इस बात को भूल जाते हैं कि इस शब्द के सामान्य (General) तथा आर्थिक (Economic) अर्थों में बड़ा भेद है।

१. बाजार शब्द का अर्थ

(Meaning of Market)

सामान्य अर्थ

सामान्य भाषा में बाजार उस विशेष 'स्थान' को कहते हैं जहाँ दुकानदार अपनी अपनी दुकान लगाये बैठे रहते हैं और ग्राहकों को सामान बेचते हैं। सब्जी बाजार, किराना बाजार, जौहरी बाजार, कपड़ा बाजार, गुदड़ी बाजार, आदि इसी प्रकार के बाजारों के नाम हैं।

ध्यान रखने की बात है कि सामान्य अर्थ में बाजार उसी स्थान को कहेंगे जहाँ कई दुकानें किसी एक स्थान पर हों। यदि कहीं एक ही दुकान है तो उस स्थान को बाजार नहीं कहा जाता। इसी प्रकार यदि कोई फेरीवाला आपके घर पर आकर सामान बेच जाय तो यह नहीं कहा जायगा कि आपने बाजार में जाकर सामान खरीदा है। अतएव बाजार शब्द के सामान्य अर्थ में (१) स्थान तथा (२) उस स्थान पर अनेक दुकानों का एक साथ होना अत्यन्त आवश्यक है।

बाजार शब्द का आर्थिक अर्थ

'बाजार' शब्द का आर्थिक अर्थ उसके सामान्य अर्थ से सर्वथा भिन्न है। परन्तु अर्थशास्त्रियों में इस शब्द की परिभाषा पर बड़ा मत-भेद है और विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने इस शब्द की परिभाषा भिन्न-भिन्न अर्थों में की है। अतएव हम इस शब्द की कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाओं का अर्थ बताने के पश्चात् ही इसकी एक उचित परिभाषा देने का प्रयास करेंगे।

कूर्नों की परिभाषा—कूर्नों (Cournot) का कहना है कि बाजार से हमारा आशय "किसी ऐसे बाजारू स्थान से नहीं है जहाँ वस्तुएँ खरीदी तथा बेची जाती हैं, परन्तु उस सम्पूर्ण क्षेत्र से है जहाँ क्रेता तथा विक्रेताओं में इस प्रकार पारस्परिक स्वतन्त्र स्पर्धा है कि एक-सी वस्तु का मूल्य शीघ्रता तथा सुगमता से एकसा हो जाता है"। ※ इस परिभाषा के अनुसार बाजार के लिए (१) क्षेत्र, (२) क्रेता तथा विक्रेता, (३) स्वतन्त्र स्पर्धा, तथा (४) एक मूल्य—इन चार बातों का होना आवश्यक है।

जैवंस की परिभाषा—जैवंस (Jevons) का मत है कि "प्रारंभ में बाजार किसी नगर के उस सार्वजनिक स्थान को कहते थे जहाँ विभिन्न वस्तुएँ बेचने के लिए रखी जाती थीं। परन्तु अब वह शब्द अधिक व्यापक बना दिया गया है और इसका आशय व्यक्तियों के ऐसे समूह से है जिनमें आपस में घनिष्ट व्यापारिक सम्बन्ध है और जो किसी वस्तु के बड़े बड़े सौदे करते हैं।"※※ इस परिभाषा के अनुसार बाजार के लिए (१) व्यक्तियों का एक समूह तथा (२) उनमें घनिष्ट व्यापारिक सम्बन्ध होना आवश्यक है।

सिजविक की परिभाषा—सिजविक (Sidgwick) का कहना है कि "बाजार का आशय व्यक्तियों के एक समूह से है जिनमें इस प्रकार के व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हैं कि प्रत्येक व्यक्ति सुगमता से इस बात का पता लगा लेता है कि विभिन्न वस्तुएँ किस दर से बदली जाती हैं।"* इस परिभाषा के अनुसार बाजार के लिये (१) व्यक्तियों का समूह, (२) घनिष्ट व्यापारिक सम्बन्ध, तथा (३) कीमतों के ज्ञान का होना आवश्यक है। यह परिभाषा जैवंस की परिभाषा से बहुत कुछ मिलती-जुलती है।

सीगर की परिभाषा—सीगर (Seager) के अनुसार "बाजार का अर्थ उस स्थान या यातायात के साधनों के मिलने से है जिसके द्वारा क्रेता तथा विक्रेता आर्थिक माल के विनिमय के लिये एकत्रित हो जाते हैं।" इस परिभाषा के अनुसार बाजार के लिये (१) स्थान, (२) क्रेता तथा विक्रेता और (३) वस्तुओं का विनिमय होना आवश्यक है।

निष्कर्ष—विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा दी गई बाजार की विभिन्न परिभाषाओं को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन परिभाषाओं में आपस में बड़ा मतभेद है। जब

*"Economists understand by the term market, not any particular market place in which things are bought and sold, but the whole of any region in which buyers and sellers are in such free intercourse with one another that prices of the same goods tend to equalise easily and quickly." Quoted by Marshall, *Economics of Industry*, p. 184-5.

**"Originally a market was a public place in a town where provisons and other objects were exposed for sale; but the word has been generalised, so as to mean any body of persons who are in intimate business relations and carry on extensive transactions in any commodity."—Jevons, *Theory of Political Economy*, (1879), p. 91.

* Sidgwick, *Principles of Economics*, p. 110.

सिजविक के लिये कीमतों का ज्ञान बाजार का एक आवश्यक लक्षण है, कूर्नो के लिये यह आवश्यक नहीं है। पुनः, जब कूर्नो तथा सीगर किसी एक 'स्थान' को बाजार कहते हैं, जेवंस इस मत को सही नहीं मानते। इस प्रकार बाजार की परिभाषा में अर्थशास्त्रियों में बड़ा मतभेद है इस शब्द की सही परिभाषा जानने के लिये यह आवश्यक है कि ऊपर बताई गई परिभाषाओं में बाजार के जो आवश्यक लक्षण बताये गये हैं उन्हें एक-एक करके देखा जाय कि उनमें से कौन ठीक है और क्यों?

ऊपर बताई गई परिभाषाओं में बाजार के निम्नलिखित आवश्यक लक्षण बताये गये हैं :—

१. क्षेत्र
२. क्रेता तथा विक्रेता
३. वस्तु
४. प्रतिस्पर्धा
५. एक मूल्य
६. पूर्ण ज्ञान या कीमत का ज्ञान

अब यह देखना है कि इनमें से कौन से सही गुण हैं तथा कौन से नहीं।

(१) क्षेत्र—कुछ विद्वानों का कहना है कि बाजार के लिये एक 'स्थान' या क्षेत्र का होना आवश्यक है जहाँ पर क्रेता तथा विक्रेता आकर मिलें तथा व्यापार करें। परन्तु यह विचार उचित नहीं है। आज कल लिखा-पढ़ी तथा नमूने द्वारा व्यापार अधिकतर होता है। बहुत से व्यापारी दूसरे देशों से सामान मगांते हैं तथा वहाँ भेजते हैं चाहे वह स्वयं उस देश में कभी न गये हों। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार प्रायः लिखा-पढ़ी द्वारा ही तय होता है और क्रेता और विक्रेता किसी एक स्थान पर एकत्रित होकर व्यापार नहीं करते। अतएव क्षेत्र या स्थान बाजार का एक आवश्यक अंग नहीं है।

(२) क्रेता तथा विक्रेता—बाजार के लिये क्रेता तथा विक्रेताओं का होना आवश्यक है। बिना इन दोनों के किसी भी वस्तु का विनियम नहीं हो सकता। परन्तु प्रश्न यह उठता है कि बाजार के लिए कम से कम कितने क्रेता तथा विक्रेता की आवश्यकता है? उत्तर में यह कहा जा सकता है कि इनकी कोई निर्धारित संख्या नहीं है। किसी भी वस्तु के चाहे कितने ही क्रेता या विक्रेता हो सकते हैं, परन्तु इनका होना आवश्यक है।

(३) वस्तु—बाजार के लिये वस्तु का होना अत्यन्त आवश्यक है। परन्तु ध्यान रहे कि प्रत्येक वस्तु का एक अलग बाजार होता है। जितनी वस्तुएँ खरीदी तथा बेची जावेंगी सबका एक अलग बाजार होगा।

(४) प्रतिस्पर्धा—बाजार के लिये प्रतिस्पर्धा का होना आवश्यक नहीं है। यह आप जानते ही होंगे कि कुछ वस्तुओं के उत्पादक पूर्णतया एकाधिकारी होते हैं। ऐसे उत्पादकों को किसी की भी प्रतिस्पर्धा का सामना नहीं करना पड़ता। पुनः, अपूर्ण

प्रतियोगिता की स्थिति में प्रतिस्पर्धा भी अपूर्ण होती है। इससे यह स्पष्ट है कि प्रतिस्पर्धा का होना या न होना बाजार के लिये आवश्यक नहीं है।

(५) एक मूल्य—एक बाजार में वस्तु का एक ही मूल्य होना आवश्यक है। कभी-कभी एकाधिकारी अपनी वस्तु के विभिन्न उपभोक्ताओं से भिन्न-भिन्न मूल्य वसूल करते हैं। परन्तु ऐसी स्थिति में भी एकाधिकारी एक बाजार में वस्तु का एक ही मूल्य वसूल करता है। वह अपने उपभोक्ताओं को विभिन्न बाजारों में विभक्त कर प्रत्येक बाजार में एक मूल्य लेता है। इस कारण बाजार में एक मूल्य का होना आवश्यक है।

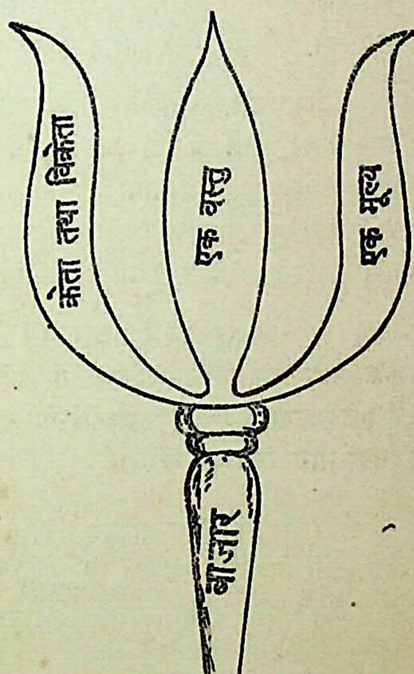
(६) पूर्ण ज्ञान—बाजार के लिए पूर्ण ज्ञान का होना आवश्यक नहीं है। अनेक ऐसी स्थितियाँ होती हैं जब उत्पादकों को कीमतों का पूर्णज्ञान नहीं होता। केवल पूर्ण प्रतियोगिता की ही एक ऐसी स्थिति है जब उत्पादकों को बाजारी स्थिति का पूर्ण ज्ञान होता है। इस कारण यह स्पष्ट है कि पूर्ण ज्ञान बाजार के लिए आवश्यक नहीं है।

निष्कर्ष— ऊपर के अध्ययन से यह निष्कर्ष स्पष्ट है कि बाजार के निम्नलिखित तीन आवश्यक लक्षण हैं :—

१. क्रेता तथा विक्रेता
२. एक वस्तु
३. एक मूल्य

बाजार की उचित परिभाषा

इतना समझ लेने के पश्चात् बाजार की एक सही परिभाषा दी जा सकती है। यह कहा जा सकता है कि बाजार वह स्थिति है जहाँ किसी वस्तु के कुछ विक्रेता तथा क्रेता होते हैं तथा वस्तु का एक मूल्य होता है।



चित्र १—बाजार के अंग

२. बाजारों का वर्गीकरण

(Classification of Markets)

बाजारों का वर्गीकरण विद्वानों ने पाँच विभिन्न प्रकार से किया है—(अ) क्षेत्र के अनुसार, (ब) विक्री के अनुसार, (स) नमूने के अनुसार, (द) समय के अनुसार, (क) प्रतियोगिता के अनुसार और (ख) माँग और पूर्ति के संतुलन के अनुसार। इन विभिन्न वर्गीकरणों के बारे में नीचे बताया गया है।

(अ) क्षेत्र के अनुसार वर्गीकरण

क्षेत्र के अनुसार बाजार को चार भागों में बाँटा जाता है—(१) स्थानीय बाजार, (२) प्रान्तीय बाजार, (३) राष्ट्रीय बाजार, और (४) अन्तर्राष्ट्रीय बाजार।

(१) स्थानीय बाजार (Local Market)—जब वस्तु के क्रेता और विक्रेता किसी स्थान विशेष तक ही सीमित हों तो उस बाजार को स्थानीय बाजार कहते हैं। प्रायः शीघ्र नाशवान (perishble) वस्तुओं का जैसे हरा साग, फल, दूध आदि का बाजार स्थानीय होता है। ऐसा इस कारण होता है क्योंकि शीघ्र नष्ट हो जाने वाली वस्तुएँ दूर-दूर तक नहीं भेजी जा सकतीं। ऐसी वस्तुएँ जो बहुत भारी होती हैं और इस कारण जिनमें वहनीयता नहीं होती उनका बाजार भी स्थानीय होता है। उदाहरण के लिये ईंट, मिट्टी, चूना आदि ले लीजिये। साथ ही ऐसी वस्तुएं जिनकी माँग कम होती है उनका बाजार भी स्थानीय होता है।

आजकल के समय में यातायात के साधन बड़ी उन्नति करते जा रहे हैं और साथ ही वह सस्ते भी होते जा रहे हैं। इस कारण वस्तुओं का एक स्थान से दूसरी थान को भेजना सुगम तथा सस्ता हो गया है। ठण्डे मकानों (Cold-storage) की सुविधा बढ़ जाने के कारण नाशवान वस्तुओं को दूर-दूर तक भेजना भी सुगम हो गया है। इन कारणों से बाजारों का विस्तार बढ़ता जा रहा है।

(२) प्रान्तीय बाजार (Provincial Market)—जिन वस्तुओं के क्रेता और विक्रेता सम्पूर्ण प्रान्त में फैले होते हैं उस बाजार को प्रांतीय बाजार कहते हैं। उदाहरण के लिये इलाहाबाद के अमरूद और हापुड़ के पापड़ों को ले लीजिये। इनकी माँग प्रान्त भर में है।

(३) राष्ट्रीय बाजार (National Market)—जब किसी वस्तु के क्रेता और विक्रेता एक राष्ट्र की सीमा के भीतर तक ही सीमित होते हैं तो उस वस्तु का बाजार राष्ट्रीय बाजार कहलाता है। उदाहरण के लिये धोतियों और काँच की चूड़ियों को ले लीजिये। इन दोनों वस्तुओं का चलन भारत तक ही सीमित है और इस कारण इनका बाजार राष्ट्रीय है।

(४) अनतर्राष्ट्रीय बाजार (International Market)—जब किसी वस्तु के क्रेता और विक्रेता संसार के विभिन्न भागों में फैले होते हैं तो उस वस्तु का बाजार अन्तर्राष्ट्रीय बाजार कहलाता है। उदाहरण के लिये सोना, चाँदी, कपड़ा, गेहूँ, चावल, रेडियो आदि को ले लीजिये। इन वस्तुओं के खरीदने और बेचने वाले संसार के विभिन्न देशों में पाये जाते हैं और इस कारण इनका बाजार अन्तर्राष्ट्रीय बाजार कहलाता है।

(ब) बिक्री के अनुसार वर्गीकरण

बाजार में खरीदी और बेची जाने वाली वस्तुओं के आधार पर बाजारों को दो भागों में बांटा जाता है—(१) मिश्रित बाजार, तथा (२) विशिष्ट बाजार।

(१) मिश्रित बाजार (Mixed Market)—जब किसी बाजार में विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का क्रय-विक्रय होता है तो उस बाजार को मिश्रित बाजार कहते हैं। उदाहरण के लिये यदि एक स्थान पर कपड़ा, अनाज, सोना, चाँदी, किराना, सब्जी आदि की दुकानें हों तो इस प्रकार के बाजार को मिश्रित बाजार कहा जायगा।

प्रायः छोटे-छोटे नगरों में एक ही बाजार होता है और उस बाजार में सभी वस्तुओं की दुकानें होती हैं। अतएव छोटे शहरों के बाजार प्रायः मिश्रित-बाजार होते हैं।

(२) विशिष्ट बाजार (Specialised Market)—जब किसी एक बाजार में एक ही वस्तु की दुकानें होती हैं तो उस बाजार को विशिष्ट बाजार कहते हैं। उदाहरण के लिये सब्जी मण्डी, किराना बाजार, अनाज की मण्डी, कपड़ा बाजार आदि विशिष्ट बाजारों के उदाहरण हैं। इन बाजारों में एक ही वस्तु के दुकानदार एक स्थान पर बैठते हैं।

प्रायः बड़े-बड़े शहरों में ही विशिष्ट बाजार पाये जाते हैं। इसका कारण यह है कि वहाँ पर वस्तुओं के क्रेता और विक्रेता बहुत अधिक संख्या में होते हैं।

(स) नमूनों के अनुसार वर्गीकरण

नमूने के अनुसार बाजार के दो मुख्य भेद हैं—(१) नमूने के अनुसार बाजार, और (२) ग्रेड के अनुसार बाजार।

(१) नमूने के अनुसार बाजार (Marketing by Sample)—जब किसी वस्तु का क्रय-विक्रय उसके नमूने को देखकर किया जाता है तो उस बाजार को नमूने के अनुसार बाजार कहते हैं। आजकल के समय में यह आवश्यक नहीं रहा है कि क्रेता पूरी की पूरी वस्तु देखें और उसके बाद उस वस्तु को खरीदें। आजकल वस्तुएँ मशीनों द्वारा बनती हैं और इस कारण सभी वस्तुएँ एकसी होती हैं। अतएव केवल एक वस्तु को दिखाकर दुकानदार ग्राहकों से आर्डर ले लेते हैं और फिर आवश्यक सामान ग्राहकों के पास भेज देते हैं।

इस प्रकार के बाजार से अनेक लाभ हैं। एक तो दुकानदारों को यह आवश्यक नहीं होता कि वह पूरी की पूरी वस्तु बाजार में ले जायँ। इस प्रकार यातायात का व्यय बच जाता है। दूसरे, सामान को बार-बार इधर-उधर ले जाने की आवश्यकता नहीं रहती जिससे वह खराब होने से बच जाता है। तीसरे, सौदा जल्दी और सुगमता से तय हो

जाता है। चौथे, दुकानदार एक छोटी सी दुकान में बहुत-सी वस्तुओं के नमूने रख लेता है और इस प्रकार उसे बड़ी दुकान लेने की आवश्यकता नहीं रहती।

(૨) ग्रेड के अनुसार बाजार (Marketing by Grade)—जब वस्तुओं का क्रय-विक्रय केवल उनका ग्रेड बताकर ही किया जाता है तो इस बाजार को ग्रेड के अनुसार बाजार कहते हैं। यह बाजार नमूने के अनुसार के बाजार से भी अधिक विकसित होता है और यह उन्हीं स्थानों पर संभव हो सकता है जहाँ पर वस्तुओं को ठीक प्रकार से विभिन्न ग्रेडों में विभाजित कर दिया गया हो। वस्तुओं के ग्रेड सरकार द्वारा या व्यापारिक संस्थाओं द्वारा बनाये जाते हैं और यह सर्वमान्य होते हैं। एक स्वीकृत संस्था अपनी मोहर लगा कर इस बात को प्रमाणित करती है कि अमुक वस्तु इस ग्रेड की है। उदाहरण के लिये भारत में हरी और लाल सील का अगमार्क (Agmark) घी का नाम तो आपने अवश्य सुना होगा। यह सरकार द्वारा प्रमाणित घी के दो ग्रेड हैं।

इस प्रकार के बाजार में वस्तुओं का क्रय-विक्रय और भी सहल हो जाता है। ग्राहकों को वस्तुओं के नमूने देखने की भी आवश्यकता नहीं रहती, वह केवल वस्तु का ग्रेड बताकर उसका भाव तय कर लेते हैं। वस्तुओं का क्रय-विक्रय पत्रों द्वारा ही हो जाता है और क्रेता तथा विक्रेताओं को एक स्थान पर एकत्रित होने की भी आवश्यकता नहीं रहती।

(द) समय के अनुसार वर्गीकरण

समय के अनुसार बाजारों को तीन भागों में बाँटा जाता है—(१) अल्पकालीन बाजार, (२) दीर्घ कालीन बाजार तथा (३) अत्यन्त दीर्घ-कालीन बाजार।

(१) अल्प-कालीन बाजार (Short-Period Market) - अल्प-कालीन बाजार उस बाजार को कहते हैं जिसमें वस्तु की पूर्ति उसकी माँग के बराबर नहीं बढ़ सकती। अल्पकाल में वस्तु की माँग तो बढ़ सकती है परन्तु उसकी पूर्ति उतनी नहीं बढ़ने पाती।

(२) दीर्घ-कालीन बाजार (Long-Period Market)—दीर्घकालीन बाजार उस बाजार को कहते हैं जिसमें वस्तु की पूर्ति उसकी माँग के बराबर हो जाती है। उत्पादक उपलब्ध साधनों के द्वारा ही वस्तु की पूर्ति बढ़ाते हैं।

(३) अत्यन्त दीर्घ-कालीन बाजार (Very Long Period Market)—अत्यन्त दीर्घ-कालीन बाजार उस बाजार को कहते हैं जिसमें उत्पादक नई-नई मशीनों को भी स्थापित कर वस्तु की पूर्ति बढ़ाते हैं।

(क) प्रतियोगिता के अनुसार वर्गीकरण

प्रतियोगिता की दृष्टि से बाजार को दो भागों में बाँटा जाता है—(१) पूर्ण बाजार और (२) अपूर्ण बाजार।

(१) पूर्णबाजार (Perfect Market)—पूर्ण बाजार उस बाजार को कहते हैं जिसमें वस्तु के क्रेता और विक्रेताओं में पूर्ण प्रतिस्पर्धा होती है और इस कारण वस्तु का मूल्य उत्पादन लागत के बराबर होता है।

(२) अपूर्ण बाजार (Imperfect Market)—अपूर्ण बाजार उस बाजार को कहते हैं जिसमें क्रेताओं और विक्रेताओं में अपूर्ण प्रतियोगिता या एकाधिकार होता है।

(ख) माँग तथा पूर्ति के सन्तुलन के अनुसार वर्गीकरण

माँग और पूर्ति के सन्तुलन के अनुसार बाजार के दो भेद हैं—(१) अच्छा बाजार, तथा (२) चोर बाजार।

(१) अच्छा बाजार (Fair Market) – अच्छा बाजार उस बाजार को कहते हैं जिसमें वस्तुओं के मूल्य उनकी माँग और पूर्ति के सन्तुलन विन्दु पर निर्धारित होते हैं। जहाँ पर भी माँग और पूर्ति के प्रभाव द्वारा निर्धारित मूल्य ही ग्राहकों से वसूल किये जाते हैं वह बाजार अच्छा बाजार कहा जाता है।

(२) चोर बाजार (Black Market)—चोर बाजार उस बाजार को कहते हैं जहाँ वस्तु-विक्रेता वस्तुओं को चुरा-छिपाकर सरकार द्वारा निर्धारित मूल्य से अधिक मूल्य पर वेचते हैं। इस प्रकार के बाजार उस अवस्था में उत्पन्न हो जाते हैं जब देश में किसी वस्तु की कमी होती है। युद्ध के समय जब देश में आवश्यकता की अनेक वस्तुएँ प्राप्त नहीं होती थीं और दुकानदार उन्हें सरकार द्वारा निर्धारित मूल्य पर वेचने को तैयार नहीं होते थे, उस समय देश में चोर बाजार का चलन बहुत बढ़ गया था। परन्तु आजकल वस्तुओं की पूर्ति पुनः काफी बढ़ गई है और इस कारण चोर बाजार समाप्त हो गया है।

ध्यान रखने की बात है कि ऊपर बताये गये बाजारों के वर्गीकरण ठीक नहीं हैं क्योंकि उनमें से अधिकांश में 'बाजार' शब्द उसके सामान्य अर्थ में प्रयोग किया गया है और आर्थिक अर्थ में नहीं। परन्तु क्योंकि परीक्षा में इन वर्गीकरण से सम्बन्धित प्रश्न पूछे जाते हैं, इस कारण इन विभिन्न वर्गीकरणों का विवरण दे दिया गया है।

३. विस्तृत बाजार की दशाएँ

(Conditions of a Wide Market)

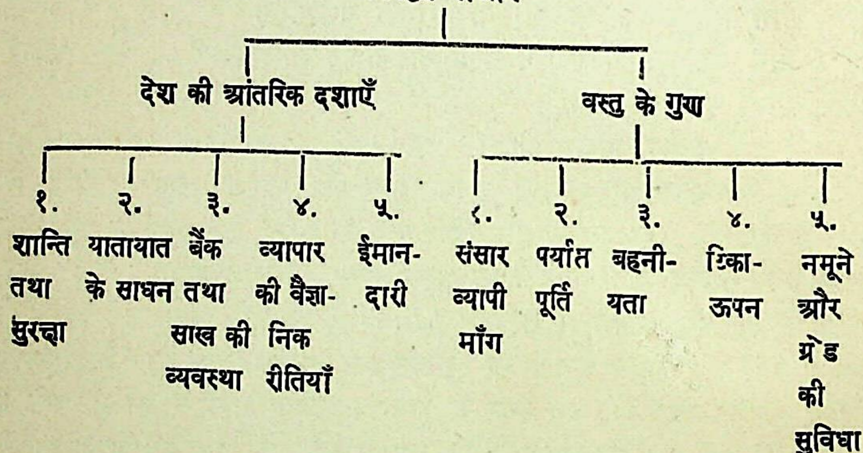
परिभाषा

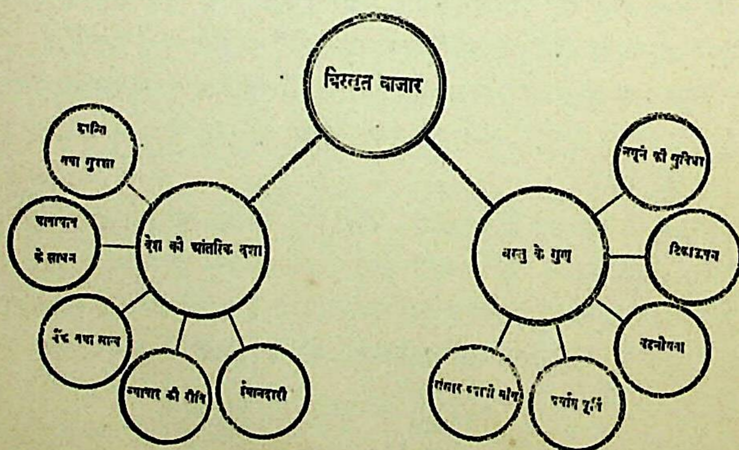
विस्तृत बाजार से हमारा आशय उस बाजार से है जिसमें क्रेता तथा विक्रेता दूर-दूर तक फैले हुए हों। ऐसी वस्तुएँ जिनका बाजार राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय होता है

उन्हें विस्तृत बाजार वाली वस्तुएँ कहा जाता है। विस्तृत बाजार का उल्टा संकीर्ण बाजार (Narrow Market) है। जब किसी वस्तु का बाजार स्थानीय होता है तो यह कहा जाता है कि उसका बाजार संकीर्ण है।

विस्तृत बाजार के लिये आवश्यक बातें

किसी वस्तु का बाजार विस्तृत होगा या संकीर्ण यह अनेक बातों पर निर्भर है। विस्तृत बाजार के लिये आवश्यक गुणों को मुख्य दो भागों में बाँटा जा सकता है—(१) देश की आंतरिक दशाएँ, और (२) वस्तु के गुण। यह प्रत्येक अन्य अनेक बातों पर निर्भर हैं जिन्हें नीचे बताया गया है।





चित्र २—विस्तृत बाजार की आवश्यक बातें

देश की आंतरिक दशा

किसी वस्तु का बाजार तभी विस्तृत हो सकता है जब देश में यातायात के साधन

उन्नतिशील दशा में हों, देश में सुव्यवस्था हो, देश में बैंक और साख की उचित व्यवस्था हो और व्यापार की वैज्ञानिक रीतियों का प्रयोग होता हो।

१. शान्ति, तथा सुरक्षा—किसी देश में व्यापार उसी समय बढ़ेगा जब वहाँ लड़ाई-झगड़े न हों और देश में पूर्ण शान्ति हो। यदि देश में आंतरिक झगड़े होते रहते हैं तो कोई भी बाहर का व्यापारी वहाँ अपना माल नहीं भेजेगा क्योंकि उसे इस बात का संदेह बना रहेगा कि पता नहीं उसका माल नियत स्थान पर पहुँचेगा या नहीं और बदले में उसे धन प्राप्त होगा या नहीं। और जब देश में व्यापार उन्नतिशील दशा में नहीं होगा और वस्तुओं का क्रय-विक्रय नहीं होगा तो फिर वस्तुओं का बाजार भी संकीर्ण हो जायगा।

शान्ति के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि देश का प्रबन्ध सुव्यवस्थित ढंग से हो। देश में चोर-लुटेरे न हों और न्यायालयों में सभी को उचित न्याय मिलता हो। जब तक ऐसा नहीं होगा, वस्तुओं का बाजार विस्तृत नहीं हो सकता।

२. यातायात तथा संदेशवाहक साधन—दूसरी बात यह भी आवश्यक है कि यातायात तथा संदेशवाहक साधन उन्नतिशील दशा में हों। वस्तुओं का एक देश से दूसरे देशों में आना-जाना यातायात के साधनों पर निर्भर रहता है। रेल तथा समुद्री जहाजों के अतिरिक्त आजकल वायुयानों का चलन अधिक व्यापक हो गया है क्योंकि यातायात का यह सबसे अधिक द्रुतगामी साधन है। यह आवश्यक है कि देश के कोने-कोने में रेलें हों और अच्छी सड़कें हों जिन पर मोटरों द्वारा सामान आ जा सके। भारत के गाँवों में यातायात के साधनों का उचित रूप से विकास नहीं हो पाया है। इसका फल यह हुआ है कि गाँवों में उत्पन्न होने वाली अनेक वस्तुएँ देश के विभिन्न भागों तक नहीं पहुँच पातीं और इस कारण उनका बाजार विस्तृत नहीं हो पाता।

साथ ही आवश्यकता इस बात की भी है कि देश में संदेशवाहक साधन उन्नतिशील दशा में हों। सन्देश वाहक साधनों के द्वारा व्यापारी एक स्थान के दूसरे स्थान तक व्यापारिक सन्देश सुगमता से भेज सकते हैं। आजकल के समय में वस्तुओं का क्रय-विक्रय चिट्ठी-पत्री द्वारा या तार या टेलीफोन द्वारा ही होता है। बे-तार के-तार द्वारा विभिन्न देशों के व्यापारी आपस में बात-चीत करके सौदा तय कर लेते हैं। जिन देशों में इस प्रकार की सुविधायें प्राप्त नहीं है वहाँ वस्तुओं का बाजार विस्तृत नहीं हो सकता।

(३) बैंक तथा साख की व्यवस्था—बाजार के विस्तृत होने के लिये यह आवश्यक है कि देश की मुद्रा स्थायी (Stable) हो। यदि मुद्रा का अर्घ बदलता रहता है तो व्यापारियों को बड़ी कठिनाई होगी और देश की मुद्रा में उनका विश्वास नहीं रहेगा जिसके कारण वह व्यापार करने में डरेंगे। इसके साथ ही यह भी आवश्यक

है कि देश में बैंकों की पर्याप्त सुविधा हो और व्यापारियों को उचित साख भी मिलती हो। आजकल का लेन-देन साख पर बहुत अधिक मात्रा में निर्भर रहता है। बैंक साख का क्रय-विक्रय कर व्यापार में बड़ी सहायता पहुँचाते हैं। यह विनिमय बिलों का क्रय-विक्रय कर, उनका बेचान कर और उनको भुनाकर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को भी सहल बना देते हैं। व्यापारियों की आर्थिक अवस्था की सूचना देकर यह व्यापार में बड़ी मदद पहुँचाते हैं। अतएव जिस देश में बैंक तथा साख की सुविधाएँ प्राप्त होती हैं वहाँ व्यापार में बड़ी सुविधा रहती है और इस कारण वस्तुओं का बाजार भी विस्तृत हो जाता है।

(४) व्यापार की वैज्ञानिक रीतियाँ—आजकल का युग विज्ञापन का युग है। जिस देश में विज्ञापन के आधुनिक साधन जैसे रेडियो, सिनेमा, टेलीविजन आदि पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं, वहाँ के व्यापारियों को अपनी वस्तुओं का विज्ञापन करना बड़ा सहल हो जाता है। विज्ञापन से सबसे बड़ा लाभ यह है कि वस्तुओं की मांग बढ़ जाती है और उपभोक्ताओं को वस्तुओं के बारे में समुचित ज्ञान हो जाता है। सामान्यत: यह कहा जा सकता है कि जिस वस्तु का जितना अधिक विज्ञापन होता है, उसकी मांग उतनी अधिक बढ़ जाती है और वस्तुओं का विज्ञापन इस बात पर निर्भर रहता है कि विज्ञापन की सुविधायें देश में किस सीमा तक प्राप्त हैं।

(५) ईमानदारी—वस्तुओं का बाजार विस्तृत है या नहीं यह इस बात पर भी निर्भर रहता है कि देश के व्यक्ति और व्यापारी कितने ईमानदार हैं। जिस देश के लोग अधिक ईमानदार होते हैं और जहाँ पर धोखा (fraud) नहीं होता, उस देश से व्यापार करने में किसी को भी हिचकिचाहट नहीं होती। परन्तु जब व्यापारी धोखेबाज होते हैं तो उनसे लेन-देन करने में सभी को डर लगता है। विदेशी व्यापार में तो यह बात विशेष रूप से लागू होती है। अतएव जब तक देश के लोग ईमानदार नहीं होते तब तक वस्तुओं का बाजार विस्तृत नहीं होता। ईमानदारी व्यापार की सबसे अच्छी नीति है।*

वस्तु के गुण

देश में पाये जाने वाली सुविधाओं के अतिरिक्त वस्तुओं के गुणों पर भी बाजार की सीमा निर्भर रहती है। जिस वस्तु की माँग और पूर्ति अधिक व्यापक होती है, जिस वस्तु में वहनीयता होती है और जो वस्तु टिकाऊ होती है उसका बाजार अधिक विस्तृत होता है।

(१) विश्वव्यापी मांग—जिस वस्तु की माँग संसार के सभी देशों में होती है उस वस्तु का बाजार भी विस्तृत होता है। उदाहरण के लिये सोना, चांदी, लोहा, कपड़ा, कोयला, कपास, ऊन आदि वस्तुओं की माँग सभी देशों को होती है और इस कारण इन वस्तुओं का बाजार विस्तृत होता है। इसके विपरीत ईंट, पत्थर, मिट्टी, चूना आदि का

* Honesty is the best policy.

बाजार संकीर्ण होता है क्योंकि इनकी माँग स्थानीय होती है। धोती, टोपी, चूड़ी आदि की मांग विश्वव्यापी नहीं है। इस कारण इनका बाजार भी अधिक विस्तृत नहीं है।

(२) पर्याप्त पूर्ति—वस्तु का बाजार विस्तृत होने के लिये यह भी आवश्यक है कि उसकी पूर्ति काफी अधिक हो। यदि उपभोक्ताओं के माँगने पर वस्तु नहीं मिलती तो धीरे-धीरे कर वह अन्य वस्तुओं से अपनी माँग पूरी करने लगते हैं और वस्तु का बाजार संकीर्ण हो जाता है। उदाहरण के लिये दुर्लभ और अप्राप्य कला की वस्तुओं को ले लीजिये। क्योंकि इन वस्तुओं की पूर्ति सीमित होती है, इस कारण इनका बाजार अधिक विस्तृत नहीं होता।

(३) वहनीयता (Portability)—वस्तु का बाजार विस्तृत होने के लिये यह आवश्यक है कि वस्तु ऐसी हो कि उसे सुगमता से एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजा जा सके। उसके लिये यह आवश्यक है कि वस्तु ऐसी हो कि वह हल्की हो और उसका मूल्य अधिक हो। जो वस्तुएँ मूल्यवान होती हैं और साथ ही हल्की भी होती हैं उनमें पर्याप्त वहनीयता होती है। वह यातायात का व्यय सुगमता से उठा लेती हैं और इस कारण उन्हें दूर-दूर तक भेजा जा सकता है। अतएव ऐसी वस्तुओं का बाजार विस्तृत हो जाता है। उदाहरण के लिये सोना, चाँदी, रेडियो, हीरा, जवाहरात आदि को ले लीजिये। इन सबका बाजार विस्तृत है। परन्तु ईंट चूना, मिट्टी आदि वस्तुएँ सस्ती और भारी होती हैं और इस कारण यह यातायात का व्यय सहन करने की शक्ति नहीं रखतीं। फलतः, इस प्रकार की वस्तुओं का बाजार संकीर्ण होता है।

(४) टिकाऊपन (Durability)—वस्तु का बाजार उसी दशा में विस्तृत हो सकता है जब वह शीघ्र नाशवान न हो और कुछ समय तक सुगमता से रखी जा सके। साग, तरकारी, दूध आदि ऐसी वस्तुएँ हैं जो अधिक दिन तक नहीं रखी जा सकतीं। इस कारण इनका बाजार विस्तृत नहीं होता। परन्तु इसके विपरीत लोहा, कपड़ा, सीमेन्ट आदि ऐसी वस्तुएँ हैं जो बहुत दिनों तक रखी जा सकती हैं और फिर भी खराब नहीं होतीं। अतएव इस प्रकार की वस्तुओं का बाजार विस्तृत होता है।

आजकल द्रुतगामी यातायात के साधनों के विकास तथा ठन्डे मकानों (cold storage) के अधिक प्रयोग के कारण शीघ्र नाशवान वस्तुएँ भी दूर तक भेजी जाने लगी हैं। फिर भी क्योंकि यह सुविधाएँ बहुत अधिक व्यापक नहीं हुई हैं इस कारण विस्तृत बाजार के लिए वस्तु का टिकाऊ होना अत्यन्त आवश्यक है।

(५) नमूने और ग्रेड की सुविधा—वस्तु का बाजार उसी दशा में विस्तृत होता है, जब वह ऐसी हो कि नमूना दिखाकर उसका क्रय-विक्रय किया जा सके और उसको उपयुक्त ग्रेडों में विभाजित किया जा सके। इस प्रकार की वस्तुओं के नमूने दिखलाकर या उनका ग्रेड बताकर उनका क्रय-विक्रय सुगमता से हो जाता है और इस

कारण इन वस्तुओं की माँग विश्व-व्यापी होती है। परन्तु जब वस्तुएँ ऐसी होती हैं कि न तो उनको विभिन्न ग्रेडों में ही बांटा जा सकता है और न उनका नमूना दिखाकर उनका आर्डर ही प्राप्त किया जा सकता है तो विदेशों में ऐसी वस्तुओं का बेचना बड़ा कठिन हो जाता है और इस कारण उनका बाजार अधिक विस्तृत नहीं हो पाता।

परीक्षा-प्रश्न

उत्तर-प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—पारिभाषिक शब्द 'बाजार' से तुम क्या समझते हो ? वे कारण क्या क्या हैं जो किसी वस्तु के बाजार के विस्तार पर प्रभाव डालते हैं ? (१९५३)

२—'बाजार, से आप क्या समझते हैं ? किसी वस्तु का पूर्ण बाजार किन दशाओं में होता है ? (१९५२)

३—किसी वस्तु के बाजार का विस्तार किन कारणों पर निर्भर रहता है ? विस्तृत बाजार को पाने के लिये किसी वस्तु को किन गुणों की आवश्यकता होती है ? (१९४९, १९४३)

४—बाजार शब्द की परिभाषा दीजिये। पूर्ण बाजार का अर्थ समझाइये। चोर बाजार या ब्लैक मार्केट किसे कहते हैं ? (१९४७)

५—"सामान मूल्य आर्थिक बाजार का लक्षण भी है और उसकी परीक्षा भी है।" इस कथन को समझाइये और बाजारों को विस्तृत करने वाले कारणों का वर्णन कीजिये। (१९४५)

६—चोर बाजार पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। (१९४५)

७—अन्तर्राष्ट्रीय बाजार पर एक नोट लिखिये। (१९४४)

८—अल्प कालीन और दीर्घ कालीन बाजारों पर एक नोट लिखिये। (१९४३)

९—कारण सहित बताइये कि भारत में उत्पन्न होने वाली निम्नलिखित वस्तुओं के बाजारों की सीमा क्या स्थानीय या प्रान्तीय या राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय है ? आम, फर्नीचर, साड़ी, ईंट और चाय। (१९४२)

उत्तर-प्रदेश इन्टर कामर्स

१०—बाजार शब्द की परिभाषा दीजिये। 'चोर बाजार' से आप क्या समझते हैं ? चोर बाजार से आपको क्या आपत्ति है ? (१९५२)

११—बाजार क्या होता है ? वस्तुओं के विस्तृत व्यापार के क्या कारण हैं ? (१९५०)

१२—चोर बाजार से आप क्या समझते हैं ? कोई वस्तु चोर बाजार में क्यों जाती है ? (१९४७)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

१३—चोर बाजार का क्या अर्थ है ? अनाज और कपड़े में चोर बाजार पर रोक लगाने के लिये भारतीय सरकार ने क्या-क्या कदम उठाये हैं ? (१९५३)

१४—पूर्ण और अपूर्ण बाजार पर संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९५३)

१५—'बाजार' की परिभाषा दीजिये। ऐसे कौन से कारण हैं जो किसी वस्तु के बाजार को विस्तृत बना देते हैं ? ऐसी तीन-तीन वस्तुओं को बताइये जिनका बाजार विस्तृत तथा संकीर्ण है। (१९५३, १९५२, १९४२)

१६—पूर्ण बाजार से आप क्या समझते हैं ? चोर बाजार किसे कहते हैं ? चोर बाजार की बुराइयों को दूर करने के लिये आप क्या सुझाव रख सकते हैं ? (१६५१)

१७—पूर्ण और अपूर्ण बाजार में भेद बताइये। कारण सहित बताइये कि क्या निम्नलिखित वस्तुओं तथा सेवाओं का बाजार पूर्ण होता है ? (अ) वास्तविक जागीर (आ) रुपयों का ऋण (इ) श्रम सेवाएँ (ई) उपभोग की वस्तुएँ। (१६५२)

१८—बाजार किसे कहते हैं ? अन्तर्राष्ट्रीय और स्थानीय बाजार में भेद बताइये। उन सब कारणों को भी स्पष्ट कीजिये जो किसी वस्तु के बाजार के विस्तार पर प्रभाव डालते हैं ? (१६५०)

१६—बाजार के मुख्य लक्षण बताइये। सोने व मछली के बाजार के सन्दर्भ में उदाहरण दीजिये। (१६४८)

२०—बाजार शब्द का अर्थ शास्त्र में क्या अर्थ है ? (आ) बाजार के क्या मुख्य लक्षण हैं ? (ब) चोर बाजार किसे कहते हैं ? (१६४५)

राजपूताना तथा अजमेर बोर्ड इन्टर कामर्स

२१—पूर्ण बाजार पर एक नोट लिखिये। (१६५३)

२२—अर्थशास्त्र में बाजार की परिभाषा बताइये। बाजार को विस्तृत करने की दशाएँ भी बताइये। (१६५०)

२३—बाजार की परिभाषा दीजिये और यह भी बताइये कि मूल्य का निर्धारण किस प्रकार होता है ? (१६४८)

२४—"किसी वस्तु में एक प्रतियोगिता मूलक मूल्य इसका लक्षण भी है और उसकी परीक्षा भी"। इस कथन को समझाइये और उन कारणों को बताइये जो वस्तु के बाजार को विस्तृत करते हैं ? (१६४६)

पटना इन्टर आर्ट्स

२५—अर्थशास्त्र में बाजार शब्द का क्या अर्थ है ? वर्तमान समय में बाजार का क्षेत्र बढ़ने के कौन-कौन से कारण हैं ? (१६५०, १६४८)

पटना इन्टर कामर्स

२६—बाजार शब्द की परिभाषा दीजिये और उन साधनों को बताइये जिसके कारण किसी वस्तु का बाजार विस्तृत हो जाता है। (१६५१)

२७—अन्तर्राष्ट्रीय बाजार पर एक सूक्ष्म नोट लिखिये। (१६५१)

२८—अर्थशास्त्र में बाजार शब्द का क्या अर्थ है ? किसी एक वस्तु का बाजार किन दशाओं में विस्तृत होगा ? (१६५०)

सागर इन्टर आर्ट्स

२६—बाजार की परिभाषा दीजिये। बाजार के विस्तृत होने की क्या दशाएँ हैं ? निम्नलिखित चीजों के बाजार का विस्तार कहाँ तक है:—

आम, हिन्दी में लिखी पुस्तकें, भारतीय सरकार की प्रतिभूतियाँ ? (१६५२)

३०—बाजार क्या है ? किसी चीज के बाजार के विस्तृत होने के लिये क्या गुण होने चाहिये ? (१६५०)

३१—बाजार क्या है ? निम्नलिखित के सम्बन्ध में बाजार के विस्तार के बारे में आपके क्या विचार हैं। (अ) नारंगियाँ (ब) शुद्ध दूध (स) सोना और चाँदी (द) ईंटें (इ) रुई ? (१६४७)

३२—बाजार क्या है ? बाजार के क्षेत्र को बढ़ाने के कौन-कौन से साधन हैं ? (१९४६)

सागर इन्टर कामर्स

३३—बाजार की परिभाषा दीजिये। किसी चीज के बाजार को विस्तृत होने के लिये कौन कौन से गुण होने चाहिये ? (१९५१)

३४—बाजार की परिभाषा दीजिये। आजकल बाजार का क्षेत्र बढ़ने के क्या-क्या कारण हैं ? (१९४६)

सत्तावनवाँ अध्याय

माँग तथा पूर्ति

(Demand and Supply)

अर्थशास्त्र में माँग तथा पूर्ति नामक शब्द अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। यह शब्द अर्थशास्त्रियों के मुँह में हमेशा रहते हैं। किसी भी अर्थशास्त्री से आप बात कीजिये थोड़े समय के बाद आप उसे यह शब्द प्रयोग करते अवश्य ही सुन लेंगे। इसका कारण यह है कि अर्थशास्त्र में अनेक समस्याएँ माँग तथा पूर्ति के पारस्परिक सम्बन्ध पर निर्भर रहती हैं। अर्थशास्त्र में सबसे महत्वपूर्ण समस्या वस्तुओं तथा उत्पादन के साधनों के मूल्यों की है। यह माँग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित किये जाते हैं। अतएव माँग तथा पूर्ति के नियमों का उचित ज्ञान अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

१. माँग

(Demand)

माँग का अर्थ

अर्थशास्त्र में 'माँग' शब्द का प्रयोग दो विभिन्न अर्थों में किया जाता है। इन दोनों अर्थों को नीचे बताया गया है।

१. माँग प्रभावपूर्ण इच्छा है—एक अर्थ के अनुसार माँग प्रभावपूर्ण इच्छा है।* किसी वस्तु की माँग हमें उसी समय होगी जब हमारे पास निम्न तीन बातें हों।

१. वस्तु को पाने की इच्छा,

२. वस्तु क्रय करने के साधन,

३. वस्तु पाने के लिये द्रव्य व्यय करने की इच्छा।

हमारी कोई इच्छा माँग का रूप उसी समय लेगी जब उस माँग को पूरा करने के लिये हमारे पास पर्याप्त धन हो और उस धन को हम व्यय करने को तैयार हों। एक कंजूस करोड़पति के पास मोटर खरीदने के लिये पर्याप्त साधन हो सकते हैं। परन्तु क्योंकि वह मोटर के लिये धन व्यय करने के लिये तत्पर नहीं है, इस कारण उसकी इच्छा माँग नहीं कहला सकती।**

---

* "Demand is effective desire"—Penson, *Economics of Everyday Life*, p. 107.

** "Demand implies three things :—(1) desire to possess a thing, (2) means of purchasing it, and (3) willingness to use those means for purchasing it"—Penson, *Economics of Everyday Life*, Vol. I, p. 107.

२. माँग किसी मूल्य पर माँगी गई मात्रा है—दूसरे अर्थ में माँग वह मात्रा है जो किसी मूल्य पर माँगी जाती है। मनुष्यों को अपनी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिये वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है। इन्हें वह बाजार से खरीद कर प्राप्त करते हैं। वह कितनी मात्रा में वस्तु खरीदेंगे यह इस बात पर निर्भर रहता है कि वस्तु का कितना मूल्य है। जब वस्तु का मूल्य बहुत अधिक होता है, तो केवल अमीर लोग ही वस्तु को खरीदने की शक्ति रखते हैं। परन्तु यदि उसका मूल्य कम हो जाता है तो अन्य बहुत से व्यक्ति भी वस्तु खरीद लेते हैं। इस प्रकार विभिन्न मूल्यों पर वस्तु की माँग भिन्न-भिन्न होती है। जिस मूल्य पर वस्तु जितनी माँगी जाती है, उसी को वस्तु की माँग कहते हैं।*

माँग का मूल्य से सम्बन्ध

ध्यान रखने की बात है कि वस्तु की माँग उसके मूल्य के अनुसार बदलती रहती है। अतएव यह आवश्यक है कि जब कभी हम किसी वस्तु को माँग बताएँ हम यह भी बता दें कि किस मूल्य पर इतनी माँग है। बिना मूल्य बताए माँग बताना कोई महत्व नहीं रखता।** जिस प्रकार यदि हम यह कहें कि एक व्यक्ति के पास १० लाख रुपया है तो इसका कोई अर्थ नहीं होता जब तक कि हम यह न बता दें कि किस व्यक्ति के पास इतना रुपया है, ठीक इसी प्रकार जब तक हम यह न बता दें कि किस मूल्य पर माँग १०० या १,००० है, तब तक इसका कुछ भी अर्थ नहीं निकाला जा सकता।

जब हम मूल्य-निर्धारण के प्रश्न पर विचार करते हैं तो हमें माँग शब्द का प्रयोग दूसरे अर्थ में ही करना चाहिये। वस्तु के मूल्य-निर्धारण के समय माँग से हमारा आशय उस मात्रा से होता है जो किसी एक मूल्य पर माँगी जाती है।

---

*"Demand for coal does not mean the amount of coal which people need, or would like to have, but the *effective* demand, the amount which people are willing to buy at some specified price."—Dr. A. cairncross, *Introduction Economics*, P. 151.

"The demand for a commodity will consist of a number of different amounts which buyers will purchase at different prices"—H. P. Shearman, *Practical Economics*, p. 127.

**"Demand does not mean mere amount of a commodity that will be purchased irrespective of the price. There is no such amount but several varying with the price asked..............To speak of the demand of a commodity in the sense of the mere amount that will be Purchased, without reference to any price is meaningless"—H. P. shearman, *Practical Economics*, pp. 127-8.

माँग और आवश्यकता

ऊपर बताई गई माँग की परिभाषा से यह स्पष्ट हो जाता है कि माँग तथा आवश्यकता (Want) में कोई अन्तर नहीं है। दोनों एक दूसरे के पर्यायवाची शब्द हैं।

यद्यपि 'माँग' तथा 'आवश्यकता' शब्द एक दूसरे के पर्यायवाची शब्द हैं, परन्तु इनके व्यक्त करने में भेद अवश्य है। किसी वस्तु को आवश्यकता बताते समय हमें यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि वस्तु के किस मूल्य पर इतनी 'आवश्यकता' है। उदाहरण के लिये यह कहना कि श्याम को १० पेन्सिलों की आवश्यकता है गलत न होगा। परन्तु माँग का उल्लेख करते समय हमें मूल्य का बताना आवश्यक होता है। बिना मूल्य बताये हम माँग नहीं बता सकते।

२. माँग का नियम
(Law of Demand)

नियम क्या है ?

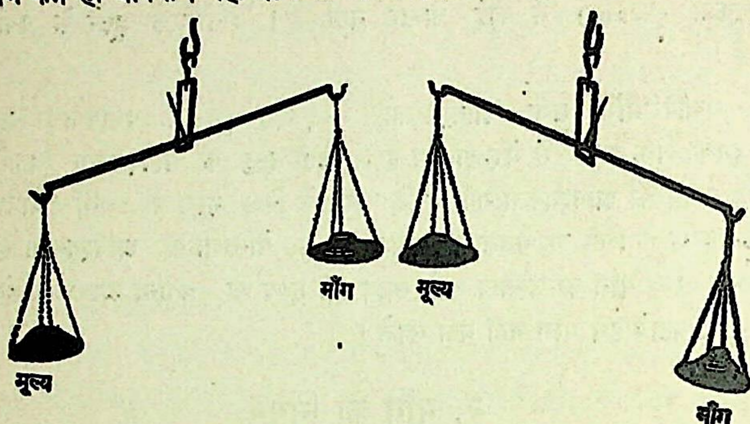
माँग का नियम यह कहता है कि वस्तु के मूल्य घटने पर उसकी माँग बढ़ जाती है और मूल्य बढ़ने पर माँग घट जाती है। अन्य शब्दों में मूल्य के घटने-बढ़ने से माँग बढ़-घट जाती है।

नियम का स्पष्टीकरण

वस्तु की माँग उपभोक्ताओं को होती है। उपभोक्ता वस्तुओं को इसलिये माँगते हैं क्योंकि वह उनका उपभोग करना चाहते हैं। परन्तु वस्तुओं के उपभोग के समय उन्हें-सीमान्त उपयोगिता-ह्रास नियम (Law of Diminishing Utility) प्राप्त होने लगता है। उपभोक्ता वस्तु की अधिक इकाइयों का ज्यों ज्यों उपभोग करते जाते हैं, उन्हें प्राप्त होने वाली उपयोगिता क्रमशः कम होती जाती है।

कोई एक व्यक्ति किसी वस्तु के लिए अधिक से अधिक उतना ही धन देगा जितनी उसे उस वस्तु से उपयोगिता मिलती है। उदाहरण के लिये यदि किसी पेन्सिल से श्याम को ३० उपयोगिता मिलती है तो वह पेन्सिल के लिये अधिक से अधिक ३० इकाई मूल्य देगा। अतः, जब किसी वस्तु की उपयोगिता कम हो जाती है तो उसके लिए मनुष्य कम ही धन व्यय करेगा। अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि ज्यों-ज्यों किसी वस्तु की मात्रा बढ़ती जाती है, उस वस्तु के उपभोक्ता कम मूल्य देने को ही तत्पर होते हैं। अतएव यदि कोई व्यक्ति किसी वस्तु को अधिक मात्रा में बेचना चाहता है तो उसके लिए यह आवश्यक है कि वह वस्तु का मूल्य घटा दे।

कीमत घटाने पर ही वस्तु की माँग अधिक हो सकती है। इसके विपरीत मूल्य बढ़ाने पर माँग कम हो जायगी। यही माँग का नियम है।



चित्र ३—मूल्य और माँग का सम्बन्ध

उदाहरण

माँग का नियम एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिये श्याम आम खरीदना चाहता है। उसके लिये आम की माँग विभिन्न मूल्यों पर निम्न प्रकार हैं।

मूल्य	माँग
१ आना	५०
२ आने	३०
३ आने	१५
४ आने	१०
५ आने	५

माँग की इस सारिणी * (Demand Schedule) को देखने से यह

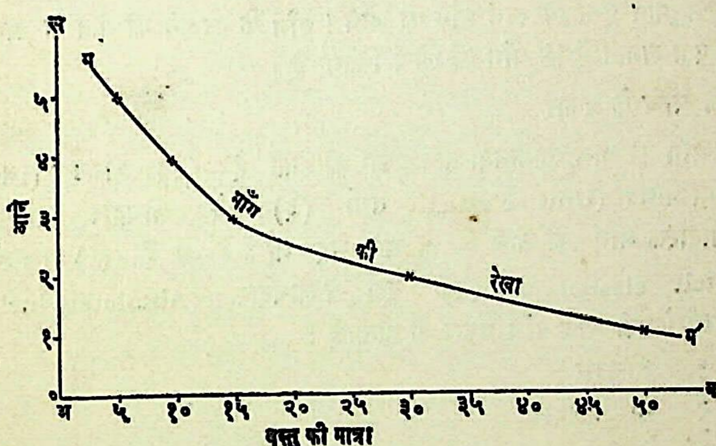
* माँग की सारणी (Demand schedule) से हमारा तात्पर्य एक ऐसी तालिका से होता है जिसमें विभिन्न मूल्य पर किसी एक वस्तु की माँग दिखलाई जाती है। यह सारणी किसी एक समय तथा विशेष स्थान पर माँग तथा मूल्य का सम्बन्ध बताती है। सारणी किसी एक व्यक्ति की माँग के लिये हो सकती है या सम्पूर्ण बाजार की। पहली दशा में इसे व्यक्तिगत माँग की सारिणी और दूसरी दशा में बाजारी माँग की सारिणी कहा जाता है। सब उपभोक्ताओं की व्यक्तिगत माँग की सारिणिओं का योग ही बाजारी माँग की सारिणी है।

स्पष्ट हो जाता है कि मूल्य के बढ़ने से माँग घटती जा रही है। यदि इसे नीचे से पढ़ा जाय तो यह कहा जा सकता है कि मूल्य के घटने से माँग बढ़ती जाती है।

रेखाचित्र

ऊपर वाले उदाहरण को नीचे एक रेखाचित्र द्वारा दिखलाया गया है :—

इस रेखाचित्र में अ ब रेखा पर वस्तु का मूल्य नापा गया है और अ स रेखा पर वस्तु की मात्रा। म म' माँग वक्र है। यह वक्र म बिन्दु से आरम्भ होकर म' बिन्दु



चित्र ४—माँग की रेखा

की ओर आता है। यह रेखा गिरती हुई रेखा है। इससे स्पष्ट है कि मूल्य के कम होने से माँग बढ़ती जाती है।

३. माँग की लोच
(Elasticity of Demand)

माँग के नियम को बताते समय हमने यह बताया था कि वस्तुओं के मूल्यों के घट-बढ़ के कारण वस्तु की माँग भी बढ़ती-घटती रहती है। परन्तु ध्यान रखने की बात है कि वस्तुओं के मूल्यों में परिवर्तन होने के कारण उनकी माँग में जो परिवर्तन होते हैं वह हमेशा एकसे नहीं होते। मूल्य थोड़ा सा ही कम होने पर किसी वस्तु की माँग बहुत अधिक बढ़ जाती है और किसी दूसरी वस्तु की माँग में बहुत कम परिवर्तन होता है। मूल्यों में परिवर्तनों के कारण विभिन्न वस्तुओं की माँग में कितना परिवर्तन होता है इसका अध्ययन नीचे किया गया है।

माँग की लोच की परिभाषा

वस्तुओं के मूल्यों में घट-बढ़ हो जाने के कारण उनकी माँग में परिवर्तन आ जाने की क्षमता को माँग की लोच कहते हैं।*

कुछ अर्थशास्त्री इसकी एक भिन्न परिभाषा करते हैं। उनका कहना है कि माँग की लोच उस गति को (Rate) कहते हैं जिस पर माँग घटती-बढ़ती है। उदाहरण के लिए डाक्टर केर्नक्रास (Cairncross) का कहना है कि "किसी वस्तु की माँग की लोच वह गति है जिस पर माँगी गई वस्तु की मात्रा मूल्य के आधार पर बदलती है।"** परन्तु यह परिभाषा उचित नहीं है क्योंकि माँग के बदलने की गति माँग की लोच का माप या अनुमान है न कि स्वयं माँग की लोच। माँग के बदलने की गति के आधार पर हम यह पता लगाते हैं कि माँग की लोच कितनी है।

माँग की लोच के प्रकार

माँग की लोच सामान्यतः तीन प्रकार की होती है—(१) लोचदार (Elastic), (२) सम-लोचदा (Unit elastic) तथा (३) बे लोचदार (Inelastic) इनके अतिरिक्त माँग की लोच के दो अन्य भेद भी हैं। वह हैं—(१) पूर्ण-लोचदार (Infinitely elastic) तथा (२) पूर्ण -बे लोचदार (Absolutely inelastic) इस प्रकार माँग की लोच पाँच प्रकार की होती है :

१. लोचदार
२. सम-लोचदार
३. बे-लोचदार
४. पूर्ण-लोचदार
५. पूर्ण-बे-लोचदार

(१) लोचदार माँग—मूल्य में होने वाले परिवर्तन के कारण वस्तु की माँग में जो परिवर्तन होता है यदि वह कीमत में होने वाले परिवर्तन के अनुपात से अधिक है तो माँग लोचदार कहलावेगी।

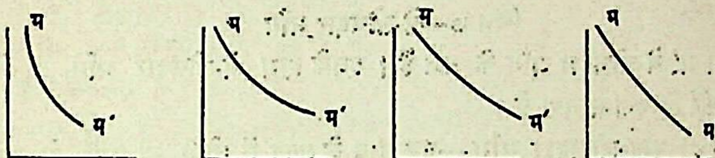
उदाहरण के लिए मूल्य में १० प्रतिशत परिवर्तन होने पर यदि माँग में १० प्रतिशत से अधिक अर्थात् १५, २०, २५, या ५० प्रतिशत परिवर्तन हो जाय, तो इस

* "कीमत में न्यूनतम परिवर्तत होने पर ही, माँग को परिवर्तित हो जाने की क्षमता को माँग की लोच कहते हैं"—प्रोफेसर जे० के० मेहता, 'अर्थशास्त्र के मूलाधार', पृष्ठ ६६।

"Elasticity of demand is the capacity of demand to change with least change in price"—S. K. Rudra, *Fundamentals of Economics*, p. 84 (Second Editon.)

**"The elasticity of demand for a commodity is the rate at which the quantity bought changes as the price changes"—Dr. A. cairncross, *Introduction to Economics*, p. 155.

माँग को लोचदार माँग कहते हैं। प्रायः विलासिता की वस्तुओं की माँग लोचदार होती है। इसका कारण यह है कि इन वस्तुओं का उपभोग आवश्यक नहीं होता और अतएव मूल्य के थोड़े से बढ़ जाने पर ही इनकी माँग में भारी कमी आ जाती है और मूल्य थोड़ा कम हो जाने पर इनकी माँग बहुत बढ़ जाती है।।

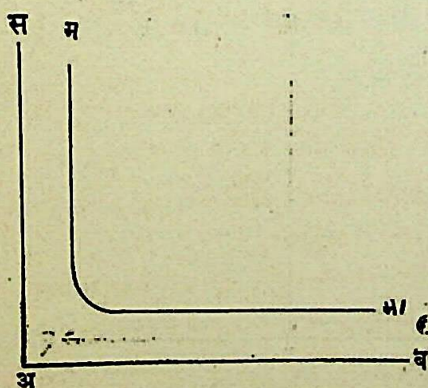


चित्र ५—लोचदार माँग

ऊपर के रेखाचित्रों द्वारा लोचदार माँग दिखलाई गई है। इन चित्रों से यह बात स्पष्ट हो गई होगी कि लोचदार माँग भी कई श्रेणी की होती है। उदाहरण के लिए मूल्य १० प्रतिशत बढ़ने पर हो सकता है माँग १५, या २०, ४०, ५०, या ८० प्रतिशत घट जाय। इस परिवर्तन के हिसाब से इनका वक्र भिन्न हो जायगा। परन्तु प्रत्येक अवस्था में माँग लोचदार ही कहलावेगी।

(२) सम-लोचदार मांग—वस्तु के मूल्य में परिवर्तन होने पर यदि उसकी माँग भी उसी अनुपात में घटे-बढ़े जिस अनुपात में मूल्य में बढ़-घट हुई है, तो इस प्रकार की माँग को सम-लोचदार माँग कहते हैं। इस प्रकार की वस्तुओं पर व्यय किया गया कुल रुपया प्रत्येक दशा में समान रहता है।

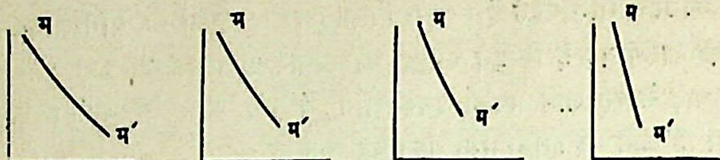
उदाहरण के लिए यदि मूल्य दस प्रतिशत घटा है और माँग भी दस प्रतिशत बढ़ी है या मूल्य २० प्रतिशत बढ़ा है और माँग भी २० प्रतिशत घटी है, तो माँग की लोच सम लोचदार कहलावेगी।



चित्र ६—सम-लोचदार माँग

म म' सम-लोचदार माँग की लोच वक्र है।

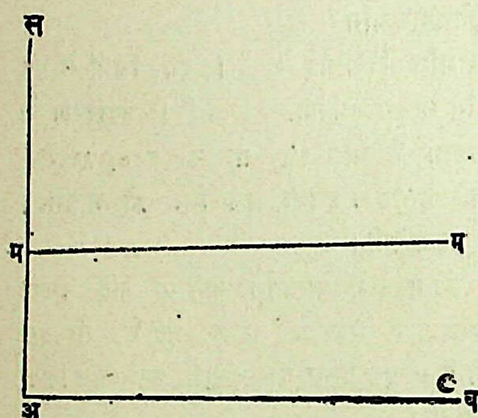
(३) बे-लोचदार माँग—वस्तु की कीमत में परिवर्तन हो जाने पर यदि उसकी माँग कीमत में होने वाले परिवर्तन से कम अनुपात में परिवर्तित हो, तो माँग बे-लोचदार कहलावेगी। उदाहरण के लिए, यदि मूल्य १० प्रतिशत घटे और माँग केवल ३ या ६, या ८ प्रतिशत (अर्थात् १० प्रतिशत से कम) बढ़े तो माँग बे-लोचदार कहलाती है। प्रायः आवश्यक आवश्यकताओं की माँग बे-लोचदार होती है।



चित्र ७—बे-लोचदार माँग

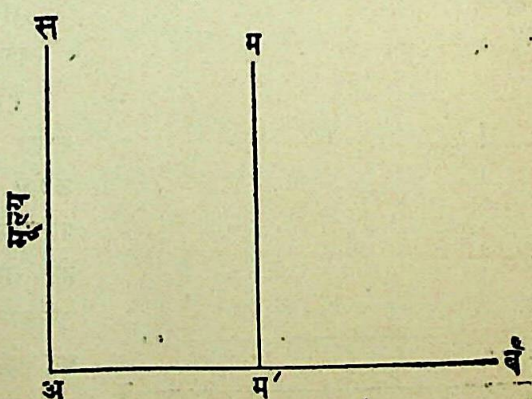
म म′ बे-लोचदार माँग के वक्र हैं। इनके द्वारा बे-लोचदार माँग की विभिन्न श्रेणियों को दिखलाया गया है।

(४) पूर्ण-लोचदार माँग—जब वस्तु के मूल्य में थोड़ी सी कमी हो जाने पर उसकी माँग बढ़कर असीमित (infinite) हो जाती है और मूल्य थोड़ा सा बढ़ जाने पर माँग घटकर शून्य हो जाती है तो माँग पूर्ण-लोचदार कहलाती है। इस प्रकार की माँग एक कल्पना मात्र है और किसी भी वस्तु की माँग पूर्ण लोचदार नहीं होती। इस प्रकार की माँग का वक्र अनुभूमिक (horizontal) होता है। यह चित्र में दिखलाया गया है। म म′ पूर्ण लोचदार माँग का वक्र है।



चित्र ८—पूर्ण लोचदार माँग

(५) पूर्ण-बे-लोचदार माँग—जब वस्तु के मूल्यों में चाहे कितनी ही घट-बढ़ क्यों न हो, परन्तु उसकी माँग में कोई भी अन्तर नहीं आता तो वस्तु की माँग पूर्णतः बे-लोचदार कहलाती है। उदाहरण के लिए यदि किसी वस्तु का मूल्य १० रुपया होने पर उसकी माँग १०० है, तो मूल्य बढ़कर ५० रुपया हो जाने पर भी उसकी माँग १०० ही रहेगी।



चित्र ९—पूर्ण बे-लोचदार माँग

पूर्ण बे-लोचदार माँग भी एक कल्पना की बात है क्योंकि संसार में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जिसकी माँग पूर्णतः बे-लोचदार हो।

माँग की लोच का माप

माँग की लोच का पता लगाने का एक बड़ा सरल सा तरीका है।

$$\text{माँग की लोच} = \frac{\text{माँग में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{मूल्य में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

इसको समझने के लिए यह उदाहरण लिया जा सकता है। मान लीजिए किसी समय वस्तु की माँग विभिन्न मूल्यों पर निम्न प्रकार है।

वस्तु का मूल्य	वस्तु की माँग
५ आने	५०
६ आने	३०

इस उदाहरण में वस्तु की कीमत बढ़ जाने पर माँग ५० से घटकर ३० रह गई है। अर्थात् उसमें कुल २० इकाई का परिवर्तन हुआ है। इसी को हम कह सकते हैं कि उसमें $\frac{२०}{५०}$ इकाई का आनुपातिक परिवर्तन हुआ है। इसी प्रकार कीमत कुल १ आना बढ़ी या उसमें $\frac{१}{५}$ आनुपातिक परिवर्तन हुआ।

$$\text{अतः माँग की लोच} = \frac{\frac{२०}{५०}}{\frac{१}{५}} = \frac{२० \times ५}{५० \times १} = २$$

इस उदाहरण में माँग की लोच २ आती है। इस कारण माँग बहुत लोचदार कहलावेगी। अर्थशास्त्रियों का कहना है कि यदि माँग की लोच १ है तो उसे सम लोचदार माँग कहना चाहिये, यदि वह एक से कम है तो उसे बे-लोचदार माँग कहना चाहिये और यदि वह एक से अधिक है तो उसे लोचदार माँग कहना चाहिये।

माँग की लोच का माप

माँग की लोच	उसका माप
सम लोचदार	लो० = १
लोचदार	लो > १
बे-लोचदार	लो < १
पूर्ण-बे-लोचदार	लो = ०
पूर्ण-लोचदार	लो = ∞

माँग की लोच तथा वस्तु

कुछ विद्वानों का मत है कि आवश्यक आवश्यकता की वस्तुओं की माँग बे-लोचदार होती हैं, आराम-संबन्धी वस्तुओं की माँग सम-लोचदार होती है तथा विलासिता की वस्तुओं की माँग बहुत लोचदार होती है। पूर्ण बे-लोचदार और पूर्ण लोचदार तो कल्पना की वस्तुएँ हैं।

इस प्रकार माँग की लोच के भेदों को निम्न-लिखित तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है:—

माँग की किस्म	किस वस्तु की माँग ऐसी होती है	माँग की लोच का माप	माँग की लोच का रेखा चित्र
(१) सम-लोचदार	आराम सम्बन्धी	लो = १	
(२) लोचदार	विलासिता सम्बन्धी	लो > १	
(३) पूर्ण-लोचदार	काल्पनिक	लो = ४	
(४) बेलोचदार	आवश्यक आवश्यकता	लो ∠ ।	
(५) पूर्ण-बे-लोचदार	काल्पनिक	लो = ०	

माँग की लोच की निर्भरता

माँग की लोच की किस्में जान लेने के पश्चात् हमारे मन में यह जानने की एक

स्वाभाविक इच्छा हो उठती है कि माँग की लोच किन-किन बातों पर निर्भर है ? उसे नीचे बताया गया है।

(१) अनेक प्रयोग वाली वस्तु—वह वस्तु जिसको कई कामों में लगाया जा सकता है उसकी माँग अधिक लोचदार होती है। इसका कारण यह है कि यदि वस्तु की कीमत घट जाय तो सभी कामों में उसे अधिक मात्रा में लगाया जाना आरम्भ हो जायगा और उसकी माँग सभी कामों में थोड़ी-थोड़ी बढ़ने पर उसकी पूरी माँग बहुत बढ़ जायगी। इसके विपरीत यदि उसकी कीमत बढ़ जाय तो सभी कामों में उसकी माँग थोड़ी-थोड़ी कम होने पर उसकी सम्पूर्ण माँग बहुत कम हो जावेगी। इस कारण कई प्रयोगों में लाई जाने वाली वस्तुओं की माँग लोचदार होती है।

(२) स्थानापन्न वस्तुएँ—जिन वस्तुओं को दूसरी वस्तुओं से प्रतिस्पर्धा सहन करनी पड़ती है क्योंकि उसकी कई स्थानापन्न (Substitutes) वस्तुएँ हैं उनकी माँग भी लोचदार होती है। इसका कारण यह है कि यदि वस्तु की कीमत बढ़ जाय तो व्यक्ति अन्य स्थानापन्न वस्तुओं का उपभोग आरम्भ कर देंगे और वस्तु की माँग बहुत कम हो जायगी। इसके विपरीत यदि उसकी कीमत घट जाय तो व्यक्ति अन्य सभी स्थानापन्न वस्तुओं का उपभोग बन्द कर इसी वस्तु का उपभोग आरम्भ कर देंगे। इस कारण ऐसी वस्तुओं की माँग अधिक लोचदार होती है।

(३) शौक या आदत—जिन वस्तुओं की माँग मनुष्य के शौक या आदत पर निर्भर है उनकी माँग बे-लोचदार होती है। इसका कारण यह है कि जिस व्यक्ति को जो वस्तु उपभोग करने की आदत पड़ गई है वह उसी वस्तु का उपभोग करता रहेगा भले ही उस वस्तु की कीमत कितनी ही घट-बढ़ क्यों न जाय। यदि किसी को लिप्टन चाय पीने की आदत है और उसके स्वाद को पसन्द करता है तो चाहे लिप्टन चाय का दाम कितना ही क्यों न बढ़ जाय वह दूसरी चाय पसन्द नहीं करेगा। इसी कारण ऐसी वस्तुओं की माँग बे-लोचदार होती है।

(४) अधिक आय—जिन वस्तुओं पर व्यक्तियों की आय का एक बहुत बड़ा भाग व्यय होता है उनकी माँग लोचदार होती है। इसका कारण यह है कि व्यक्ति उस व्यय के लिये सदैव सतर्क रहते हैं और वस्तुओं के मूल्यों में परिवर्तन होते ही वह अपनी माँग को पुनः नियोजित करते हैं। परन्तु जिस किसी वस्तु पर आय का एक सूक्ष्म सा भाग व्यय होता है, उसके लिये मनुष्य सतर्क नहीं रहते और ऐसी वस्तुओं की माँग बे-लोचदार होती है। उदाहरण के लिये आप दियासलाई पर होने वाला व्यय ले लीजिये। दियासलाई पर व्यक्तियों का बहुत कम व्यय होता है। अतः दियासलाई की माँग बे-लोचदार होती है। परन्तु कपड़ा, जूता आदि की माँग लोचदार होती है।

(५) समाज तथा वर्ग की माँग—यदि सम्पूर्ण समाज की माँग को ध्यान में रखा जाय तो यह कहा जा सकता है कि बहुत अधिक तथा बहुत कम मूल्यों वाली वस्तुओं की माँग बे-लोचदार होती है और बीच के मूल्य वाली वस्तुओं की माँग अधिक

लोचदार होती है। इसका कारण यह है अधिक मूल्य वाली वस्तुओं को केवल धनी व्यक्ति ही खरीद पाते हैं, और उन व्यक्तियों को उस प्रकार की वस्तुएँ खरीदने की आदत पड़ जाती है। यदि उन वस्तुओं की कीमत थोड़ी घट या बढ़ जाय तो उनकी माँग में अन्तर नहीं आता। उदाहरण के लिये आप मोटर-कार की माँग को ले लीजिये। मोटर-कारों के मूल्य में एक हजार या पाँच सौ रुपये का अन्तर पड़ जाय तो भी कारों की माँग लगभग वही रहेगी। इसी प्रकार बहुत कम मूल्य वाली वस्तुएँ केवल निर्धन लोग ही खरीदते हैं। यदि उन वस्तुओं के मूल्य में थोड़ा सा परिवर्तन आ जाय तब भी उनकी माँग वही रहेगी। परन्तु बीच के मूल्य वाली वस्तुओं की माँग लोचदार होती है।

परन्तु यदि किसी विशेष वर्ग की माँग को लिया जाय तो यह कहा जा सकता है कि अधिक मूल्यवान वस्तुओं की माँग की लोच अधिक होती है, बीच के मूल्यों की सम-लोचदार और बहुत कम मूल्यों की बे-लोचदार होती है*। इसका कारण स्पष्ट है। यदि किसी वर्ग के लिये किसी वस्तु की कीमत अधिक है तो उसकी माँग बहुत घट जायगी। बहुत कम मूल्य पर व्यक्ति उस वस्तु को खरीदते रहेंगे और माँग बे-लोचदार हो जावेगी। बीच के मूल्यों पर माँग न अधिक लोचदार होगी और न बे-लोचदार अर्थात् वह सामान्य लोचदार होगी।

(६) **आवश्यकता आराम तथा विलासिताएँ**—आवश्यक आवश्यकता की वस्तुओं की माँग बे-लोचदार होती है, सुखद वस्तुओं की माँग सामान्य लोचदार होती है तथा विलासिता की वस्तुओं की माँग बहुत लोचदार होती है। इसका कारण यह है कि आवश्यक आवश्यकता की वस्तुओं का उपभोग सभी व्यक्ति करेंगे चाहे उनके मूल्य में कितना ही परिवर्तन क्यों न आ जाय। उपभोग न करने का अर्थ है कि व्यक्तियों का जीवित रहना कठिन हो जायगा। विलासिता की वस्तुओं का उपभोग आवश्यक नहीं होता। जब व्यक्तियों के पास पैसा व्यर्थ व्यय करने को होता है तभी इनका उपभोग किया जाता है। यदि इनकी कीमत बढ़ जाय तो इनका प्रयोग बहुत कम हो जावेगा। सुखद वस्तुएँ इन दोनों के बीच आती हैं। अतः इनकी माँग सामान्य लोचदार होती है।

(७) **सम्पत्ति का विवरण**—यदि समाज में सम्पत्ति का वितरण एक सा है तो वस्तु की माँग लोचदार होगी। परन्तु यदि वितरण-असमान है तो माँग उतनी ही अधिक बे-लोचदार होगी जितना वितरण असमान है। इसका कारण स्पष्ट है। जब सम्पत्ति का वितरण समान होगा तो सभी व्यक्तियों की आय कम होगी। जब मनुष्यों के पास धन कम होगा तो वह समझ-सोचकर और सतर्कता के साथ धन व्यय करेंगे। साथ ही एक-सी क्रय-शक्ति होने के कारण सब मूल्य पर परिवर्तन का एक सा प्रभाव

* देखये Marshall, *Prinicples of Economics*, p. 103.

पड़ेगा। फलतः ऐसी अवस्था में माँग लोचदार हो जायगी। परन्तु जब वितरण असमान है तो कोई अमीर होगा और कोई गरीब। इस कारण मूल्य परिवर्तन का विभिन्न वर्गों पर भिन्न-भिन्न प्रभाव पड़ेगा। किसी वर्ग के लिए कोई वस्तु अधिक आवश्यक होगी तो किसी के लिए कम आवश्यक। अतएव किसी के लिये माँग वे-लोचदार होगी तो किसी दूसरे के लिये लोचदार। इस प्रकार सम्पत्ति के वितरण का प्रभाव माँग की लोच पर भी पड़ता है।

४. पूर्ति

(Supply)

पूर्ति का अर्थ

वस्तु की वह मात्रा जो किसी एक समय, किसी एक मूल्य पर बाजार में बिकने को आती है, उस वस्तु की पूर्ति कहलाती है।* उदाहरण के लिए यदि किसी एक मूल्य पर बाजार में किसी वस्तु की १,००० इकाइयाँ बिकने को आती हैं, तो वस्तु की पूर्ति १,००० मानी जायगी।

पूर्ति तथा स्टाक

पूर्ति तथा स्टाक (Stock) शब्दों में अन्तर है। दुकानदारों के पास स्टाक (कुल माल) बहुत होता है। परन्तु वह अपना पूरा माल उस समय तक बेचना पसन्द नहीं करते जब तक उन्हें उसके लिए उचित मूल्य न मिल जाय। कुछ दुकानदार कम लाभ पर ही अपना माल बेचने को तैयार हो जाते हैं और कुछ बहुत अधिक लाभ चाहते हैं। अतएव वस्तु के किसी मूल्य पर कुछ मात्रा में माल बिकने के लिए बाजार में आता है और किसी दूसरे मूल्य पर कुछ अन्य मात्रा में। परन्तु वस्तु का स्टाक हर स्थिति में एक ही रहता है। हम यह कह सकते हैं कि पूर्ति कुल स्टाक का वह भाग है जो किसी एक मूल्य पर दुकानदार बेचने को तैयार होते हैं।

एक उदाहरण द्वारा यह भेद स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिए किसी समय दुकानदारों के पास कुल १,००० पेन्सिलें स्टाक में हैं। जब पेन्सिलों के दाम १ आना प्रति पेन्सिल है तो दुकानदार केवल १०० पेन्सिलें ही बेचने को तैयार होते हैं। पेन्सिलों का मूल्य ३ आने होने पर, दुकानदार ८०० पेन्सिलें बेचने को तैयार हो

*"Supply means the quantity offered for sale by producers. ....The supply of coal does not mean the amount of coal lying under ground waiting to be mined.........it means the amount of coal which coal owners are willing to put on the market at some specified price"—Dr. A. (Cairncross, *Introduction to Economics*, p. 151.

जाते हैं। पेन्सिलों का मूल्य ४ आने होने पर दुकानदार ६५० पेन्सिलें बेचने को तैयार हो जाते हैं। इस प्रकार प्रत्येक स्थिति में पेन्सिलों का स्टाक १,००० ही रहा परन्तु मूल्य १ आना होने पर उनकी पूर्ति १०० थी, मूल्य ३ आने होने पर पूर्ति बढ़कर ८०० हो गई और मूल्य ४ आने होने पर पूर्ति ६५० हो गई। इस प्रकार मूल्य के अनुसार पूर्ति भी परिवर्तित होती रहती है।

पूर्ति तथा मूल्य

क्योंकि विभिन्न मूल्यों पर वस्तु की पूर्ति भिन्न-भिन्न होती है, अतएव यह आवश्यक है कि जब भी किसी वस्तु की पूर्ति की बात कही जाय यह अवश्य बताया जाय कि किस मूल्य पर इतनी पूर्ति है। बिना मूल्य बताये पूर्ति बताना कोई अर्थ नहीं रखता।

पूर्ति-मूल्य

जिस मूल्य पर वस्तु की एक निश्चित मात्रा बिकने को आती है उसे पूर्ति-मूल्य (Supply-price) कहते हैं।* उदाहरण के लिए यदि पेन्सिलों का मूल्य तीन आने प्रति पेन्सिल होने पर ८०० पेन्सिलें बिकने को आती हैं, तो जब बाजार में ८०० पेन्सिलें बिकने को आती हैं तो यह कहा जायगा कि इनका पूर्ति-मूल्य ३ आने हैं।

५. पूर्ति का नियम

(Law of Supply)

परिभाषा—पूर्ति का नियम यह कहता है कि किसी वस्तु का मूल्य ज्यों ज्यों बढ़ता जायगा, उसकी पूर्ति भी त्यों-त्यों बढ़ती जायगी और जैसे-जैसे कीमत घटेगी, वस्तु की पूर्ति भी कम होती जायगी। इस प्रकार मूल्य तथा पूर्ति का सम्बन्ध सीधा (direct) है।

मूल्य के बढ़ने पर पूर्ति भी बढ़ जाती है और मूल्य के घटने पर पूर्ति भी घट जाती है।

नियम का स्पष्टीकरण

किसी वस्तु की पूर्ति उत्पादक करते हैं। वस्तु का उत्पादन करते समय उत्पादकों का प्रमुख उद्देश्य लाभ (Profit) कमाना होता है। अतएव वह यही प्रयास करते हैं कि वस्तु अधिक से अधिक मूल्य पर बिके। इसी कारण जब वस्तु का मूल्य अधिक

---

* Supply price is a "price which may be expected to call forth a supply of each particular amount in a unit of time"—Marshall, *Economics of Industry*, p. 197.

होता है तो दूकानदार अधिक मात्रा में सामान वेचने को तैयार हो जाते हैं और जब मूल्य कम होते हैं तो वह बहुत कम सामान वेचने को तैयार होते हैं। अतएव अधिक मूल्य पर अधिक पूर्ति होती है और कम मूल्य पर कम।

उदाहरण—पूर्ति के नियम को एक उदाहरण द्वारा समझाया जा सकता है। मान लीजिए बाजार में किसी समय मूल्यों पर पेन्सिलों की पूर्ति निम्न प्रकार है :

पेन्सिलों का मूल्य २ आने होने पर उसकी पूर्ति ५०० है, ३ आने होने पर ८०० और ४ आने होने पर ६०० है। जब पेन्सिलों का मूल्य बढ़कर ६ आने हो जाता है तो पूर्ति बढ़कर १५०० हो जाती है और मूल्य ८ आने होने पर पूर्ति बढ़कर ४००० हो जाती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि मूल्य बढ़ने के साथ-साथ पूर्ति भी बढ़ती जाती है।

तालिका

ऊपर वाले उदाहरण जो एक तालिका द्वारा भी दिखलाया जा सकता है। एक ऐसी तालिका जिसमें किसी समय, किसी स्थान विशेष पर मूल्य तथा पूर्ति का सम्बन्ध दिखलाया गया हो, पूर्ति की सारिणी (Supply Schedule) कहलाती है। एक काल्पनिक पूर्ति की सारिणी का नमूना नीचे दिया गया है।

पेन्सिलों की पूर्ति की सारिणी

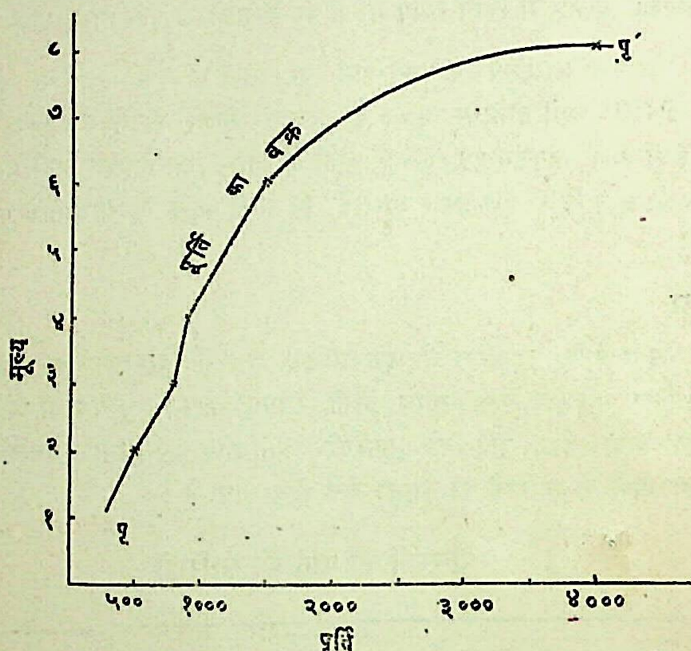
मूल्य (आनों में)	पूर्ति
२	५००
३	८००
४	६००
६	१,५००
८	४,०००

स्थान —इलाहाबाद
समय — ११ बजे दिन
तिथि—११-१२-५३

रेखाचित्र

उपर्युक्त उदाहरण को एक रेखाचित्र द्वारा भी दिखलाया जा सकता है। यह नीचे दिया गया है।

इसमें अ ब रेखा पर वस्तु की पूर्ति और अ स रेखा पर वस्तु का मूल्य मापा गया है। पू पू' पूर्ति की रेखा है। पूर्ति की वक्र रेखा को ध्यान से देखने से पता चलता है कि यह नीचे से ऊपर की ओर चढ़ती है। इसका अर्थ यह हुआ कि मूल्य बढ़ने पर पूर्ति भी बढ़ती जाती है।



पूर्ति की लोच

माँग की भाँति पूर्ति की लोच के भी तीन भेद हैं—

१. लोचदार (Elastic)
२. सम-लोचदार (Equal-Elastic)
३. बे-लोचदार (Inelastic)

यदि मूल्य में परिवर्तन के कारण पूर्ति में परिवर्तन मूल्य से अधिक अनुपात में हो तो पूर्ति लोचदार कहलाती है, यदि परिवर्तन उसी अनुपात में हो तो पूर्ति सम-लोचदार कहलाती है और यदि कम अनुपात में हो तो पूर्ति बे-लोचदार कहलाती है।

माँग और पूर्ति की लोच के अध्ययन का महत्व

माँग और पूर्ति की लोच का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसका कारण यह है कि वस्तुओं के मूल्यों का निर्धारण माँग और पूर्ति की लोच के हिसाब से ही होता है। एक एकाधिकारी (monopolist) अपनी वस्तुओं का मूल्य निश्चित करते समय

माँग तथा पूर्ति की लोचों का विशेष रूप से अध्ययन करता है। सरकार भी कोई कर (tax) लगाते समय यह देखती है कि इसका प्रभाव वस्तु की माँग पर क्या पड़ेगा। माँग को लोच के अध्ययन द्वारा इसका पता लगा लिया जाता है।

६. माँग तथा पूर्ति का नियम

(Law of Demand and supply)

हमने अभी तक माँग तथा पूर्ति के नियम अलग २ बताए हैं। यदि इन दोनों को मिला दिया जाय तो जो नियम बनता है उसे माँग तथा पूर्ति का नियम कहते हैं।

माँग तथा पूर्ति का नियम

नियम यह कहता है कि वस्तु का मूल्य बढ़ जाने पर उसकी पूर्ति बढ़ जाती है और माँग कम हो जाती है। इसके विपरीत मूल्य घट जाने पर पूर्ति घट जाती है और माँग बढ़ जाती है। इस प्रकार मूल्य का सम्बन्ध पूर्ति से सीधा और माँग से उल्टा है.

उदाहरण

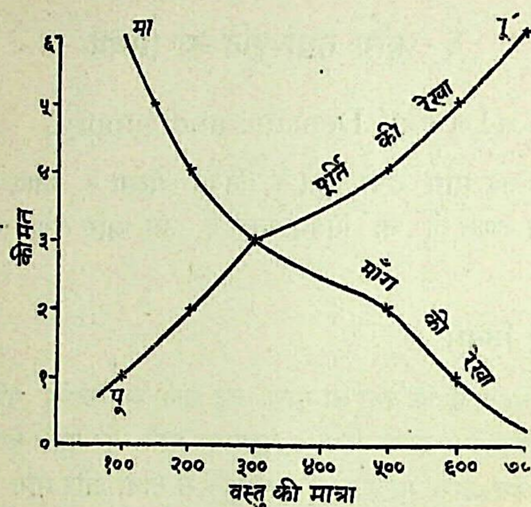
मान लीजिए किसी समय किसी एक बाजार में विभिन्न मूल्यों पर पेन्सिलों की माँग तथा पूर्ति निम्न प्रकार है।

मूल्य (रुपयों में)	पूर्ति	माँग
१	१००	६००
२	२००	५००
३	३००	३००
४	५००	२००
५	६००	१५०
६	७००	१००

स्पष्ट है कि मूल्य बढ़ने पर पूर्ति बढ़ती है परन्तु माँग घटती जाती है और मूल्य घटने पर पूर्ति घटती है परन्तु माँग बढ़ती जाती है।

रेखाचित्र

उपर्युक्त उदाहरण को एक रेखाचित्र द्वारा भी दिखलाया जा सकता है। यह नीचे दिया गया है।



चित्र ११—माँग तथा पूर्ति का नियम

इस रेखाचित्र में अ ब रेखा पर वस्तु की मात्रा तथा अ स रेखा पर वस्तु का मूल्य नापा गया है। म म′ माँग की रेखा है और पू पू′ पूर्ति की रेखा है।

परीक्षा प्रश्न

उत्तर प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—माँग की लोच का क्या अर्थ है, समझाकर लिखिये। उसके महत्व को भी समझाइये। (१९५२)

२ - माँग के नियम को समझाइये। (१९५३)

३—माँग के नियम को समझाइये। पूर्ण प्रतियोगिता में मूल्य किस प्रकार स्थिर होता है? (१९५४, १९४६)

४—माँग और पूर्ति के कोष्टक और रेखाओं पर टिप्पणी लिखिये। अर्थशास्त्र के अध्ययन में इनका क्या लाभ है?

(१९५४, १९४७, १९४६, १९४३, १९४०, १९३८, १९३७, १९३३, १९३४, १९३७

५—माँग की लोच का क्या अर्थ है? कुछ वस्तुओं की माँग अन्य वस्तुओं की माँग से क्यों) अधिक लोचदार होती है? विस्तार से समझाइये। (१९४७, १९४३, १९३०)

६—कुछ वस्तुओं की माँग लोचदार और दूसरों को बे-लोचदार क्यों होती है? पिछले युद्ध में सीमित और ऊँचे मूल्य की वस्तुओं पर क्या प्रभाव पड़ा? उदाहरण द्वारा समझाइये। (१९४५, १९३४)

७—लोचदार और बे-लोचदार माँग पर नोट लिखिये।
(१९४४, १९३९, १९३८, १९३४)

८—माँग की लोच का क्या अर्थ है? 'माँग की लोच ऊँचे मूल्य पर बहुत अधिक, मध्यम मूल्य पर अधिक या बहुत परन्तु ज्यों-ज्यों मूल्य कम होता जाता है या कम होती जाती है और यदि गिरते-गिरते तृप्ति केबिन्दु तक पहुँच जाय, तब यह पूर्णतया समाप्त हो जाती है। रेखा द्वारा इस कथन को विस्तार से स्पष्ट कीजिये। (१९३२)

९—'माँग' और 'पूर्ति' की परिभाषा दीजिये। 'माँग की तालिका' तथा पूर्ति की तालिका' का परिभाषा दीजिये। माँग का वक्र रेखाएँ निम्नांकित तालिका के अनुसार खींचिये।

गेहूँ का बाजार

माँग	मूल्य			पूर्ति
मन	रु०	प्रति	मन	मन
३०	१४	,,	,,	१००
४२	१०	,,	,,	६०
७०	६	,,	,,	३०
२१०	२	,,	,,	१०

उत्तर-प्रदेश, इन्टर कामर्स

१०—माँग की लोच से क्या अभिप्राय है? अन्य वस्तुओं की अपेक्षा कुछ वस्तुओं की माँग अधिक लोचदार क्यों होती है? इसकी पूर्ण विवेचना कीजिये। (१९५०)

११—आवश्यकता और माँग का अर्थ बताइये। इस अन्तर का किसी वस्तु के मूल्य पर क्या प्रभाव पड़ता है? (१९४४)

१२—किसी वस्तु की माँग को लोचदार और बे-लोच बनाने वाली दशाओं का वर्णन कीजिये।
(१९४३, १९४१)

१३—माँग की लोच क्या होती है? माँग की लोच निम्नलिखित दशाओं में क्या होगी। (१) आवश्यक पदार्थ, (२) विलासिता-सम्बन्धी पदार्थ, (३) अनेक कामों में प्रयुक्त होने वाली वस्तु और (४) जब कोई वस्तु बहुत अधिक या बहुत कम मूल्य पर बेची जाय? (१९४०)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

१४—माँग की लोच का क्या अर्थ है? किन-किन बातों पर यह लोच निर्भर होती है? उदाहरण दीजिये। (१९५३)

१५—लोचदार और बे लोचदार माँग पर नोट लिखिये। (१९५२, १९५०, १९४०)

१६—लोचदार और बे लोचदार माँग में क्या भेद है? कुछ वस्तुओं की मांग दूसरी वस्तुओं की अपेक्षा क्यों अधिक लोचदार होती है? (१९५१)

१७—माँग की लोच का अर्थ समझाइये। आप इसे किस प्रकार मापेंगे। उदाहरण सहित आप इसके विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिये। (१९५०)

१८—माँग मूल्य और पूर्ति मूल्य के क्या अर्थ हैं? गेहूँ जैसी अपने शहर की उपभोग की सामान्य वस्तु की माँग और पूर्ति की सारिणी बनाइये और उन्हें एक ग्राफ पेपर पर बहुत साफ-साफ तथा शुद्धता से दिखलाइये। (१९४६)

१९—लोचदार और वे लोचदार माँग का भेद बताइये। माँग की लोच पर अ वस्तु के विभिन्न प्रयोग (आ) एक वस्तु के बदले में दूसरी वस्तु के उपभोग की सम्भावना का क्या प्रभाव पड़ता है? भारतीय उदाहरण भी दीजिये। (१९४६)

२०—पूर्ति के मूल्य पर एक संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९४२)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर कामर्स

२१—माँग की लचक की व्याख्या कीजिये और बताइये क्या कोयला, चाय, नमक तथा हीरों की माँग लोचपूर्ण होता है? (१९५२)

२२—निम्नलिखित की माँग लोचदार है या वे लोचदार?—(अ) एक ऐसी वस्तु जो जीवन रक्षक है (आ) एक प्रतिस्थापन्ना की वस्तु (इ) एक ऐसो वस्तु जिसके अनेकों उपयोग हो सकते हैं। (१९४९)

२३—माँग को लचक का क्या अर्थ है? कुछ वस्तुओं को माँग दूसरी वस्तुओं की अपेक्षा क्यों अधिक लोचदार होता है? पूर्णतया स्पष्ट कीजिये। (१९४९, १९४६)

२४—माँग की लोच पर संक्षिप्त नोट लिखिये। (१९४८, १९५०)

२५—माँग के नियम की व्याख्या कीजिये और व्यक्तिगत तथा बाजार की माँग के अन्तर समझाइये। माँग के नियम की क्या सीमाएँ हैं? (१९४४)

२६—मांग की लोच का क्या अर्थ है? निम्नलिखित वस्तुओं की मांग का स्वभाव बताइये—(क) अनिवार्यताएँ (ख) विलासिताएँ (ग) ऐसी वस्तु जिसके कई उपयोग हों (घ) वस्तु का बहुत ऊँचा या बहुत नीचा मूल्य।

पटना इन्टर आर्ट्स

२७—व्यक्तिगत माँग तथा बाजारी माँग में क्या सम्बन्ध है? निर्धारित मूल्य पर माँग के प्रभाव की परीक्षा कीजिये। (१९५२)

२८—माँग की तालिका को स्पष्ट कीजिये। (१९५४)

२९—माँग की लोच से आप क्या अर्थ समझते हैं? उन साधनों को बतलाइये जो कि किसी चीज के लिये मांग की लोच निर्धारित करते हैं। (१९५

३०—मांग की लोच को स्पष्टतया समझाइये। क्या इस नियम में अपवाद भी हैं? (१९५१

३१—वे कौन सी दशायें हैं जिसमें किसी चीज की माँग बढ़ती है जब मूल्य भी बढ़ता है? (१९५०)

३२—किसी वस्तु की माँग बढ़ने से उसके मूल्य पर क्या तात्कालिक तथा अन्यतः क्या प्रभाव पड़ते हैं? (१९४९)

३३—बताइये कि किसी वस्तु के मूल्य गिर जाने से उसकी बिक्री क्यों बढ़ जाती है? (१९४९)

३४—माँग के लोच के नियम को बतलाइये और समझाइये। अपना उत्तर उदाहरण लेकर और चित्रों द्वारा समझाइये। (१९४८)

३५—माँग के लोच के नियम को समझाइये और लोचदार और वे लोचदार माँग के उदाहरण दीजिये। (१९४६)

३६—वह कौन सी दशायें हैं जिसमें मूल्य के बढ़ जाने से वस्तु की माँग बढ़ जाती है? (१९४६

पटना इन्टर कामर्स

३७—उन बातों को बताइये जिनके कारण किसी वस्तु की मांग में, मूल्य से स्वतन्त्र रूप में परिवर्तन आ जाता है। (१६५२)

३८—माँग के नियम को बताइये और समझाइये। क्या इस नियम की कोई सीमाएँ हैं? (१६५२, १६५०)

३६—मांग की सारिणी पर एक नोट लिखिये। (१६५०)

४०—माग की लोच से आप क्या समझते हैं? उन दशाओं को बताइये जिन पर किसी वस्तु की मांग की लोच निर्भर रहती है। (१६५०)

४१—पूर्ति की सारिणी पर एक नोट लिखिये। (१६५०)

४२—मांग से आप या समझते हैं? मांग और अर्थ में क्या सम्बन्ध है? (१६४६)

४३—मांग व सूक्ष्म नोट लिखिये। (१६४८)

४४—मांग की से आप क्या समझते हैं? लोचदार तथा बेलोचदार मांग का भेद समझाइये। क्या किसी वस्तु की मांग की लोच समय तथा व्यक्तियों के वर्ग के अनुसार बदलती रहती है? (१६४८)

४५—जितनी अधिक मांग होती है, मूल्य उतना ही अधिक होता है और मूल्य जितना अधिक होता है, मांग उतनी ही कम होती है। बताइये ऐसा क्यों है? (१६४८)

गर इन्टर आर्ट्स

४६—मांग की लोच का क्या अर्थ है? किन्हीं वस्तु की मांग किन्हीं दूसरी वस्तुओं की अपेक्षा अधिक लोचदार क्यों होती है। (१६५२)

४७—मांग के नियम को समझाइये। उसकी सीमाओं को बताइये। (१६५२)

४८—माँग की सारिणी क्या है? एक मांग की सारिणी बताइये जब चीनी का मूल्य ८ आने प्रति सेर से बढ़कर १ रुपया प्रति सेर तक हो जाता है। (१६५१)

४६—मांग की लोच पर सूक्ष्म नोट लिखिये। (१६५१)

५०—मांग की सारिणी, मांग वक्र तथा मांग की लोच पर सूक्ष्म नोट लिखिये। (१६५०)

५१—मांग की लोच क्या है? उन दशाओं को बताइये जो किसी वस्तु की मांग की लोच या बेलोच निर्धारित करती हैं? (१६५०)

५२—बे लोचदार मांग पर सूक्ष्म नोट लिखिये। (१६४६)

५३—किसी वस्तु की मांग की वृद्धि से आप क्या समझते हैं? मांग के नियम को अच्छी तरह से समझाइये और इसे एक चित्र द्वारा निरूपित कीजिये। (१६४६)

५४—मांग की लोच का अर्थ बताइये। किन्हीं वस्तु की मांग किन्हीं अन्य वस्तु की अपेक्षा क्यों अधिक लोचदार होती है? (१६४६)

सागर इन्टर कामर्स

५५—बे लोचदार पूर्ति और बे लोचदार मांग पर सूक्ष्म नोट लिखिये। (१६५२)

५६—किसी वस्तु की मांग लोचदार कब कहलाती है? कारण बताइये कि निम्नलिखित की मांग लोचदार है या बेलोचदारः—

अ—प्रतिष्ठा रक्षक आवश्यकतायें

ब—वह वस्तु जिसके अनेक प्रयोग होते हैं,

स—वह वस्तु जिसकी स्थानापन्न वस्तुएँ होती हैं। (१६५१)

५७—मांग की सारिणी पर सूक्ष्म नोट लिखिये। (१६५०)

५८—मांग क्या है? मांग. के नियम को बताइये तथा समझाइये। इसकी क्या सीमायें हैं? (१६४८)

मध्य भारत इन्टर आर्ट्स

५६—लोचदार तथा बे लोचदार मांग में भेद कीजिये। निम्नलिखित मांग को किस प्रकार प्रभावित करते हैं। (१) विभिन्न प्रयोग, (२) प्रतिस्थापन, और (३) फैशन में परिवर्तन। दैनिक जीवन से उदाहरण दीजिये। (१६५२)

.० १९५६

अठावनवाँ अध्याय

अर्घ-सिद्धान्त या मूल्य-निर्धारण

(Theory of Value or Price Determination)

वर्तमान समय में प्रत्येक वस्तु का क्रय-विक्रय द्रव्य (money) में होता है। अर्थात् किसी वस्तु को खरीदते या बेचते समय उसका भुगतान द्रव्य में किया जाता है। यदि हम किसी वस्तु को लेना चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि उस वस्तु का जो मूल्य हो उसके बराबर द्रव्य दुकानदार को दे दें। बिना वस्तु का मूल्य दिये हमें कोई भी वस्तु नहीं मिल सकती।

परन्तु यहाँ कई प्रश्न उठते हैं। वस्तु के लिये द्रव्य देना क्यों आवश्यक है? दुकानदार द्रव्य क्यों माँगता है? मूल्य किस प्रकार से निर्धारित होता है? क्या मूल्य निर्धारण का कोई नियम है या दुकानदार अपनी मर्जी से मनमाना मूल्य वसूल कर लेता है? सभी दुकानदार एक मूल्य क्यों वसूल करते हैं? मूल्य क्या है? अर्घ और मूल्य में क्या अन्तर है? आदि। इन सब प्रश्नों के उत्तर इस अध्याय में दिये जाँयगे।

१. मूल्य और अर्घ

(Price and Value)

अर्घ क्या है?

किसी एक वस्तु के बदले में अन्य वस्तुएँ प्राप्त करने की शक्ति को अर्घ कहते हैं। उदाहरण के लिए यदि हमें एक सेर घी के बदले में ८ सेर गेहूँ या पाँच सेर चावल मिलते हैं तो हम यह कह सकते हैं कि एक सेर घी का अर्घ आठ सेर गेहूँ या पाँच सेर चावल है। अतः अर्घ को 'विनिमय-शक्ति' कहा जा सकता है।

मूल्य क्या है?

किसी वस्तु के अर्घ को जब द्रव्य में आँका जाता है तो उसे मूल्य कहते हैं। प्रत्येक देश में कोई न कोई वस्तु द्रव्य (money) के रूप में चलती है और उस वस्तु का प्रयोग मूल्यांकन तथा ऋण के परिशोधन के लिए सभी व्यक्ति करते हैं। भारत में 'रुपया' द्रव्य की भाँति चलता है, जब कि इंगलैण्ड में 'पौण्ड' द्रव्य है और अमरीका में 'डालर'। जिस देश में जो वस्तु द्रव्य की भाँति चलती है, उस देश में उसी द्रव्य में सभी वस्तुओं का मूल्यांकन किया जाता है।

ऊपर के कथन से अर्घ तथा मूल्य का भेद स्पष्ट हो गया होगा। अर्घ बताते समय वस्तु की विनिमय-शक्ति किसी भी अन्य वस्तु में आँकी जाती है, परन्तु मूल्य में प्रत्येक वस्तु की विनिमय-शक्ति केवल एक सर्वमान्य वस्तु में (जिसे द्रव्य कहते हैं) आँकी जाती है। अतएव अर्घ का द्रव्य में माप ही मूल्य है।

२. मूल्य का लेना-देना

(Giving and Taking of Price)

मूल्य क्यों लिया जाता है ?

विक्रेता अपनी वस्तु बेचते समय कुछ मूल्य अवश्य वसूल करते हैं और बिना मूल्य लिए वह अपनी वस्तु कभी नहीं बेचते। आखिर ऐसा क्यों है ? विक्रेता अपनी वस्तु के लिए सदैव मूल्य क्यों लेते हैं ?

इसका कारण स्पष्ट है। जब विक्रेता किसी वस्तु को उत्पन्न करते हैं तो उनको कुछ व्यय करना पड़ता है जिसे उत्पादन-लागत कहते हैं। उत्पादन करते समय उन्हें कच्चा माल खरीदना पड़ता है। उसमें उनका व्यय होता है। वह स्वयं मेहनत करते हैं। इसके लिए भी उन्हें प्रतिफल चाहिये। इस प्रकार उत्पादन करने में जितना उनका व्यय होता है और जितनी उनकी मेहनत होती है उस सबके बदले में उन्हें कुछ मूल्य चाहिए अवश्य। इसी कारण वस्तु बेचते समय दुकानदार मूल्य वसूल करते हैं।

उत्पादन लागत (Cost of Production)—ऊपर हम उत्पादन-लागत शब्द का प्रयोग कर चुके हैं। किसी वस्तु को तैयार करने में उत्पादक का जो व्यय होता है उसे उत्पादन-लागत कहते हैं। यह उत्पादन-लागत दो प्रकार की होती है—वास्तविक लागत; तथा (२) द्राव्यिक लागत। इनका भेद नीचे बताया गया है।

वास्तविक-लागत (Real Cost)—किसी वस्तु को उत्पन्न करने में जो बलिदान या परिश्रम करना पड़ता है उसका योग वास्तविक लागत कहलाती है। मार्शल के शब्दों में "किसी वस्तु को बनाने में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से लगने वाले विभिन्न मजदूरों का परिश्रम, साथ में पूँजी के संचय के लिये किया गया निग्रह या प्रतीक्षा; यह सब प्रयत्न और त्याग मिलकर उस वस्तु की वास्तविक लागत कहलाते हैं।" *

द्राव्यिक लागत—किसी वस्तु के उत्पादन में जितना धन या द्रव्य खर्च होता है उसे द्राव्यिक लागत कहते हैं। उदाहरण के लिये यदि एक मेज तैयार करने में ५० रुपये व्यय होते हैं तो मेज की द्राव्यिक लागत ५० रुपये कहलावेगी।

---

* Marshall, *Principles of Economics* pp. 338-39.

इन दोनों प्रकार की लागतों में वास्तविक लागत अधिक महत्वपूर्ण है और इसी के द्वारा हम वस्तु की लागत का सही अनुमान लगा सकते हैं। हो सकता है कि दो विभिन्न काम करने की द्राव्यिक लागत एक ही हो, परन्तु एक काम को करने में परिश्रम या त्याग अधिक करना पड़े और दूसरे में कम। अतएव वास्तविक लागत के द्वारा ही हम व्यक्तियों द्वारा किये गये त्याग का उचित अनुमान लगा सकते हैं। फिर भी, क्योंकि वास्तविक त्याग का मापना सुगम नहीं है, इस कारण मूल्य-निर्धारण में द्राव्यिक-लागत का ही प्रयोग किया जाता है।

सीमान्त तथा औसत लागत—लागत सीमान्त तथा औसत भी हो सकती है। किसी वस्तु की अंतिम इकाई की जो लागत है उसे सीमान्त लागत कहते हैं। उदाहरण के लिये यदि कोई उत्पादक वस्तु की चार इकाइयाँ उत्पन्न कर रहा है तो चौथी इकाई की जो लागत है उसे सीमान्त लागत कहेंगे। परन्तु चारों इकाइयों की लागत का जो औसत होगा उसे औसत-लागत कहेंगे। उदाहरण के लिये यदि चारों इकाइयों की लागत का योग १०० रुपये आता है तो औसत लागत २५ रुपये कहलावेगी।

प्राथमिक (Prime) तथा पूरक (Supplementary) लागत—लागत प्राथमिक तथा पूरक भी हो सकती है। प्राथमिक लागत उस लागत को कहते हैं जो उत्पादन की मात्रा बढ़ने के साथ-साथ बढ़ती है और घटने के साथ-साथ घटती है। इसके विपरीत पूरक लागत वह लागत है जो प्रत्येक दशा में समान रहती है। चाहे उत्पादन कम हो या ज्यादा पूरक लागत वही रहती है।

उदाहरण के लिये कच्चे माल, मजदूरी ईंधन आदि पर व्यय किया गया धन प्राथमिक लागत कहलाता है। जैसे-जैसे उत्पादन अधिक होता है, इन पर व्यय भी बढ़ता जाता है। इसके विपरीत मशीन, मैनेजर का वेतन आदि पर व्यय किया गया धन पूरक लागत कहलाता है क्योंकि यह व्यय उत्पादन कम या अधिक हो जाने पर भी समान रहता है।

मूल्य क्यों दिया जाता है ?

अब प्रश्न यह उठता है कि वस्तु खरीदते समय उपभोक्ता मूल्य देने को क्यों तैयार हो जाते हैं ? इसका कारण यह है कि उपभोक्ता किसी वस्तु को तभी खरीदते हैं जब उस वस्तु की उन्हें आवश्यकता होती है। जब तक उनकी कोई आवश्यकता सन्तुष्ट नहीं होती, वह वस्तु खरीदने को तैयार नहीं होते। वस्तु के लिये उपभोक्ता की आवश्यकता जितनी अधिक तीव्र होती है, उसको उस वस्तु से उतनी ही अधिक उपयोगिता मिलती है। उपभोक्ता वस्तु से प्राप्त होने वाली उपयोगिता के अनुपात में ही वस्तु के लिये मूल्य देते हैं। वस्तु से जितनी अधिक उपयोगिता मिलती है, उतना ही अधिक मूल्य वह वस्तु का देने को तैयार हो जाते हैं।

इस प्रकार मूल्य इसलिये लिया जाता है क्योंकि वस्तु के उत्पादन में कुछ व्यय करना पड़ता है और मूल्य इसलिए दिया जाता है क्योंकि वस्तु से उपयोगिता मिलती है।

३. मूल्य का सामान्य सिद्धान्त
(General Theory of Price)

सिद्धान्त क्या है ?

मूल्य का सिद्धान्त माँग और पूर्ति का सिद्धान्त है। सिद्धान्त यह कहता है कि किसी वस्तु का मूल्य उस स्थान पर निर्धारित होता है जहाँ उसकी माँग और पूर्ति का सन्तुलन हो। सन्तुलन से तात्पर्य यह है कि जहाँ माँग और पूर्ति दोनों बराबर हो जायँ।

मूल्य का माँग तथा पूर्ति वाला सिद्धान्त आचार्य मार्शल (Marshall) द्वारा बताया गया है। उसके पहले कुछ विद्वानों का यह मत था कि वस्तु का मूल्य उसकी माँग पर निर्भर रहता है।† और कुछ अन्य का विचार था कि यह उसकी पूर्ति (या लागत-व्यय) पर निर्भर रहता है।†† परन्तु आचार्य मार्शल ने इन दोनों मतों को गलत सिद्ध कर यह बताया कि वस्तु का मूल्य उसकी माँग तथा पूर्ति के सन्तुलन-बिन्दु (Equilibrium Point) पर निर्धारित होता है। **

नियम का स्पष्टीकरण

वस्तु की माँग तथा उसकी पूर्ति विभिन्न बातों पर निर्भर रहती हैं। उन्हें नीचे बताया गया है।

वस्तु की माँग—वस्तु की माँग उस वस्तु के उपभोक्ताओं को होती है। उपभोक्ताओं को वस्तु की माँग इस कारण होती है क्योंकि उससे उनकी कोई आवश्यकता पूरी होती है। यदि उपभोक्ताओं की कोई आवश्यकता पूरी न हो तो वह उस वस्तु के लिये कुछ भी व्यय करने को तैयार नहीं होंगे।

ध्यान रखने की बात है कि विभिन्न वस्तुओं से उपभोक्ताओं को भिन्न-भिन्न उपयोगिता मिलती है। किसी वस्तु से कम उपयोगिता मिलती हैं तो किसी से अधिक जिस वस्तु से जितनी उपयोगिता मिलती है उतना ही मूल्य वह वस्तु के लिये देने को

† उदाहरण के लिए प्रोफेसर W. S. Jevons का मत देखिये उनकी पुस्तक *Theory of Political Economy*.

†† उदाहरण के लिए प्रोफेसर Adam Smith, Ricardo आदि के विचार देखिये देखिये, Adam Smith की पुस्तक *Wealth of Nations*, Vol. I, p. 26.

** देखिये Dr. A. Marshall की पुस्तक, *Principles of Economics*, p. 348.

तैयार होते हैं। यदि किसी वस्तु से उपभोक्ताओं को १०० इकाई उपयोगिता मिलती है तो उसके लिये वह १०० इकाई से अधिक मूल्य नहीं देंगे ! इस प्रकार किसी वस्तु से प्राप्त होने वाली उपयोगिता से अधिक मूल्य उपभोक्ता कभी नहीं देंगे। अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि वस्तु का अधिक से अधिक मूल्य उसकी उपयोगिता के बराबर हो सकता है। यह मूल्य की अधिकतम सीमा है, इससे अधिक मूल्य कभी नहीं हो सकता।

वस्तु की पूर्ति—वस्तु की पूर्ति उत्पादक करते हैं। उत्पादक जब किसी वस्तु का उत्पादन करते हैं तो उनका कुछ व्यय होता है। कोई भी उत्पादक अपनी वस्तु के बदले में उसके उत्पादन-व्यय से कम मूल्य लेने को तैयार नहीं होता। यदि वस्तु के उत्पादन में १० रु० व्यय हुए हैं, तो उत्पादक उस वस्तु के लिये दस रुपये से कम लेना नहीं चाहेगा। इसका कारण स्पष्ट है। यदि वह उत्पादन-व्यय से कम मूल्य स्वीकार कर लेता है तो उसे हानि (loss) उठानी पड़ेगी और कोई भी उत्पादक हानि उठाने को तैयार नहीं होगा। अतएव यह कहा जा सकता है कि किसी वस्तु की उत्पादन-लागत वह न्यूनतम सीमा है जिससे कम वस्तु का मूल्य नहीं हो सकता। उत्पादक वस्तु की उत्पादन-लागत से अधिक मूल्य लेना प्रसन्नता से स्वीकार कर लेंगे, परन्तु उससे कम मूल्य लेना नहीं चाहेंगे।

माँग तथा पूर्ति का संतुलन

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि वस्तु की माँग उससे मिलने वाली उपयोगिता पर और वस्तु की पूर्ति उत्पादन-लागत पर निर्भर रहती है। वस्तु से मिलने वाली उपयोगिता मूल्य की अधिकतम सीमा है जिससे अधिक वस्तु का मूल्य कभी नहीं हो सकता। और वस्तु की उत्पादन-लागत वह न्यूनतम सीमा है जिससे कम वस्तु का मूल्य नहीं हो सकता। वस्तु का मूल्य इन्हीं दोनों सीमाओं के बीच निर्धारित होता है।

(उपयोगिता) अधिकतम सीमा

(उत्पादन-लागत) न्यूनतम सीमा

(मूल्य की सीमाएँ)

परन्तु प्रश्न यह उठता है कि मूल्य इन दोनों सीमाओं के बीच किस स्थान पर निर्धारित होता है ? उत्तर में यह कहा जा सकता है कि वस्तु का मूल्य उस स्थान पर निर्धारित होता है जहाँ माँग और पूर्ति का सन्तुलन हो।

माँग तथा पूर्ति के नियम हमें यह बताते हैं कि विभिन्न मूल्यों पर वस्तुओं की भिन्न-भिन्न माँग और पूर्ति होती हैं। जब मूल्य अधिक होते हैं तो पूर्ति अधिक होती है, परन्तु माँग कम होती है। इसके विपरीत मूल्य कम होने पर पूर्ति कम होती है और माँग अधिक। इन दोनों सीमाओं के बीच एक ऐसा मूल्य होता है जिस पर

वस्तु की माँग तथा पूर्ति दोनों बराबर होती हैं। यही मूल्य ऐसा है जिस पर बाजार में वस्तु का मूल्य निर्धारित होता है।

बाजार में वस्तुओं के मूल्य मोल-तोल (higgling and bargaining) द्वारा निर्धारित होते हैं।* उपभोक्ता वस्तु के लिए कम से कम मूल्य देना चाहते हैं और उत्पादक अधिक से अधिक मूल्य वसूल करना चाहते हैं। परन्तु न तो अधिक मूल्य पर और न कम मूल्य पर ही वस्तु की कीमत निर्धारित हो सकती है। अतएव उपभोक्ता और उत्पादकों में मोल-तोल होता है और अन्त में मूल्य ऐसे स्थान पर निर्धारित हो जाता है जहाँ माँग तथा पूर्ति दोनों बराबर हों।

उदाहरण

एक उदाहरण से यह नियम स्पष्ट हो जावेगा। मान लीजिए किसी समय किसी बाजार में पेन्सिलों की माँग तथा पूर्ति निम्न प्रकार है :

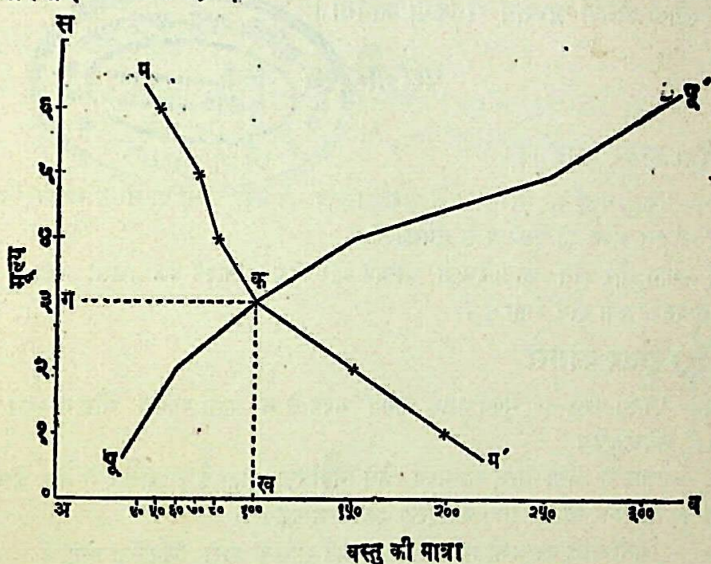
मूल्य (आनों में)	माँग	पूर्ति
१	२००	४०
२	१५०	६०
३	१००	१००
४	०	१५०
५	७०	०
६		३००

उदाहरण से स्पष्ट है कि मूल्य १ आना होने पर माँग २०० तथा पूर्ति ४० है। मूल्य बढ़ने पर उपभोक्ता सोचते हैं "इस वस्तु के दाम बढ़ रहे हैं, रुक कर खरीदें तो अच्छा है। संभव है दाम गिर जायँ।" फलतः माँग कम हो जाती है। इसके विपरीत दुकानदार सोचते हैं "इस समय दाम अच्छे मिल रहे हैं। चलो सामान बेंच दो। अच्छी नफा मिल जायगी।" अतः पूर्ति बढ़ जाती है। धीरे-धीरे एक ऐसी स्थिति आती है जब माँग और पूर्ति दोनों बराबर हो जाते हैं। इस उदाहरण में वह मूल्य ३ आने है। अतएव बाजार में पेन्सिल के दाम तीन आने निर्धारित होंगे।

*देखिये, Marshall की पुस्तक, *Principles of Economics*, पृष्ठ ३४६

रेखाचित्र

उपर्युक्त उदाहरण को एक रेखाचित्र द्वारा भी दिखलाया जा सकता है। निम्न रेखाचित्र में अ ब रेखा पर वस्तु की मात्रा और अ स रेखा पर वस्तु का मूल्य दिखलाया गया है। पू पू' पूर्ति की रेखा तथा म म' माँग की रेखा है। दोनों रेखाएँ क बिन्दु पर मिलती हैं। क ख वस्तु का मूल्य होगा और क ग मात्रा में वस्तु खरीदी तथा बेची जायगी।



चित्र १२—माँग तथा पूर्ति का संतुलन

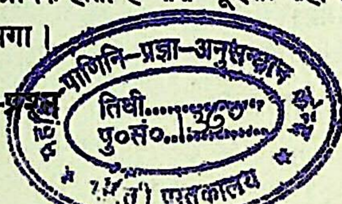
माँग तथा पूर्ति का तुलनात्मक महत्व

कभी-कभी यह प्रश्न पूछा जाता है कि माँग और पूर्ति में से कौन सा अधिक महत्वपूर्ण है? इस प्रश्न का उत्तर आचार्य मार्शल ने बड़े रोचक ढंग से दिया है। उनका कहना है कि यह प्रश्न तो इस प्रकार का है कि कागज काटते समय कैंची का ऊपर का फल कागज काटता है या निचला फल।* जिस प्रकार कागज काटने के लिए कैंची के दोनों फलों का सहयोग आवश्यक है और दोनों फलों के कारण ही कागज कटता है, ठीक उसी प्रकार मूल्य निर्धारण करने में माँग और पूर्ति का सहयोग समान रूप से आवश्यक है।

यद्यपि वस्तु का मूल्य माँग तथा पूर्ति दोनों पर निर्भर रहता है, फिर भी यह कहा जा सकता है कि अल्प-काल में माँग का प्रभाव अधिक महत्वपूर्ण होता है। इसका

* "We might as reasonably dispute it is the upper or the lower blade of a pair of scissors that cuts a piece of paper as whether the value is governed by utility or cost of production"—Marshall, *Principles of Economics.* p. 348.

कारण यह है कि अल्प-काल में वस्तु की पूर्ति में परिवर्तन नहीं आ सकता, परन्तु उसकी माँग में घट-बढ़ हो सकती है। इसके विपरीत दीर्घकाल में पूर्ति का प्रभाव अधिक महत्वपूर्ण होता है। मार्शल का यह कथन कि "सामान्यत: काल जितना अल्प होता है, मूल्य पर माँग का प्रभाव उतना ही अधिक होता है और समय जितना दीर्घ होता है, मूल्य पर लागत का प्रभाव उतना ही अधिक होता है"** पूर्णतः सही है। इसका विस्तृत उल्लेख अगले अध्याय में किया जायगा।



परीक्षा-प्रश्न

उत्तर-प्रदेश इन्टर आर्ट्स

१—"किसी वस्तु का मूल्य उसके उत्पादन-व्यय से बहुत ऊँचा या नीचा स्थायी रूप से नहीं हो सकता।" इस वाक्य को पूर्णरूप से समझाइये। (१९४६)

२—माँग और पूर्ति की परिभाषा दीजिये और यह बतलाइये कि किसी वस्तु के मूल्य के निर्धारण में इनका क्या हाथ होता है? (१९४२)

उत्तर-प्रदेश इन्टर कामर्स

३—"किसी वस्तु का मूल्य उसके लागत मूल्य से न बहुत अधिक और न बहुत कम रह सकता है।" समझाइये। (१९५२)

४—बाजार में किसी वस्तु का मूल्य कैसे निर्धारित होता है? बाजार में माँग और पूर्ति के समीकरण की विवेचना कीजिये तथा उदाहरण देकर समझाइये। (१९५१)

५—"किसी वस्तु का मूल्य माँग और पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है। इस कथन को उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिये। (१९४०)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर आर्ट्स

६—किसी वस्तु के मूल्य से आप क्या समझते हैं? मूल्य का निर्धारण किस प्रकार होता है? (१९५३)

७—संतुलन-मूल्य से आप क्या समझते हैं? प्रतियोगिता की दशा में यह किस प्रकार निर्धारित होता है? (१९५१)

राजपूताना तथा अजमेर इन्टर कामर्स

८—अर्घ की एक परिभाषा दीजिये और उन साधनों को बताइये जिनके द्वारा यह निर्धारित होता है। (१९४६)

९—बाजार की परिभाषा दीजिये और बताइये कि मूल्य किस प्रकार से निर्धारित होता है? (१९४८)

१०—बाजार में किसी एक वस्तु का मूल्य निर्धारित करने वाले कौन-कौन से साधन हैं? पूर्णतया समझाइये। (१९४७)

११—"अर्घ उसी समय हो सकता है जब माँग और कमी (Scarcity) हो"। क्या आप इस कथन से सहमत हैं? कारण बतलाइये। (१९४५)

** Marshall, *op. cit*, p. 350.

पटना इन्टर आर्ट्स

१२—बाजारी तथा व्यक्तिगत माँग में क्या भेद है ? माँग का मूल्य निर्धारण में क्या प्रभाव है ? (१६५२)

१३—माँग की सारिखी का अर्थ बताइये और यह भी समझाइये कि बाजारी माँग की सारिखी का मूल्य निर्धारण में क्या महत्व है ? (१६५१)

१४—किसी एक वस्तु की माँग की वृद्धि उसके मूल्य को किस प्रकार से प्रभावित करती है ? क्या इसके कारण प्रत्येक दशा में मूल्य बढ़ जाता है ? (१६५१)

पटना इन्टर कामर्स

१५—प्राथमिक तथा पूरक लागतों में भेद कीजिए। यह भेद क्यों किया जाता है ? (१६५०)

१६—पूरक लागत तथा सीमान्त लागत पर सूक्ष्म नोट लिखिये।। (१६४६)

———



उनसठवाँ अध्याय

पूर्ण-स्पर्धा और एकाधिकार में मूल्य निर्धारण

(Price Determination under Perfect Competition and Monopoly)

पिछले अध्याय में आपको यह बताया जा चुका है कि वस्तु के मूल्य-निर्धारण में किन-किन बातों का प्रभाव पड़ता है और मूल्य सामान्यतः किस प्रकार से निर्धारित होता है। यद्यपि सभी परिस्थितियों में वस्तु का मूल्य माँग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित होता है, फिर भी परिस्थिति के अनुसार इनका पारस्परिक प्रभाव बदलता रहता है। इसका परिणाम यह होता है कि विभिन्न परिस्थितियों में वस्तु का मूल्य भिन्न-भिन्न हो जाता है। अतएव विभिन्न परिस्थितियों में मूल्य-निर्धारण किस प्रकार होता है, इसका ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

परिस्थितियाँ क्या हैं ?

प्रश्न यह उठता है कि वह परिस्थितियाँ कौन-कौन सी हैं जिनका प्रभाव वस्तु के मूल्य पर पड़ता है। यह परिस्थितियाँ दो हैं (१) काल (time) तथा (२) स्पर्धा (Competition।

काल का मूल्य पर प्रभाव

अल्प तथा दीर्घ काल—अर्थशास्त्र में काल को दो भागों में बांटा जाता है—(१) अल्पकाल (short period) तथा (२) दीर्घकाल (Long period) कालों का यह भेद किसी समयावधि के अनुसार नहीं होता। अर्थात् हम यह नहीं कहते कि एक दिन, दो दिन या एक सप्ताह का समय अल्प काल है और एक महीना या एक वर्ष दीर्घ काल है। अर्थशास्त्र में कालों का यह भेद माँग और पूर्ति के संतुलन के आधार पर किया जाता है। जिस समय में वस्तु की पूर्ति बढ़कर माँग के बराबर हो जाती है, उस समय को दीर्घकाल कहते हैं और इससे छोटा सभी काल अल्प-काल कहलाता है।* अतएव यह कहा जा सकता है कि दीर्घ-काल वह काल है जिसमें वस्तु की पूर्ति बढ़कर माँग के बराबर हो जाती है और अल्पकाल वह काल है जिसमें वस्तु की पूर्ति उसकी माँग के बराबर नहीं होती।

एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायगी। मान लीजिए किसी समय बाजार में कापियों की माँग तथा पूर्ति दोनों ही १००-१०० हैं। अब किसी कारण से माँग बढ़कर ५०० हो जाती है परन्तु पूर्ति १०० ही है। माँग बढ़ जाने पर उत्पादक अधिक कापियाँ बनाने

* देखिये, प्रो० जे० के० मेहता, अर्थशास्त्र के मूलाधार पृष्ठ २६२

का प्रयास करेंगे। मान लीजिए एक सप्ताह बाद कापियों की पूर्ति बढ़कर ५०० हो जाती है। तो एक सप्ताह का समय दीर्घ-काल कहलावेगा और इससे कम सभी समय अल्प-काल कहलावेंगे।

इस उदाहरण से यह भी स्पष्ट हो गया होगा कि वस्तु के अनुसार और माँग में परिवर्तन की मात्रा के अनुसार अल्प और दीर्घकाल बदलते रहते हैं। एक समुद्री जहाज बनाने में कई वर्ष लग जाते हैं। अतएव ऐसी वस्तु के लिये दीर्घकाल कई वर्षों का होगा। इसके विपरीत मछलियों के लिए दीर्घकाल कुछ घण्टों का ही होगा क्योंकि कुछ घन्टों की पकड़ के बाद ही इनकी पूर्ति इनकी माँग के बराबर की जा सकती है।

अल्प और दीर्घकाल का अर्थ समझ लेने के पश्चात् अब यह जानना आवश्यक है कि वस्तु के मूल्य निर्धारण पर काल का क्या प्रभाव पड़ता है? अल्पकाल में वस्तु की पूर्ति माँग के बराबर नहीं होती। इस कारण मूल्य-निर्धारण में माँग का प्रभाव अधिक पड़ता है। माँग के बढ़ जाने पर मूल्य बढ़ जाते हैं और माँग के घट जाने पर मूल्य घट जाते हैं। इसके विपरीत दीर्घकाल में पूर्ति माँग के बराबर हो जाती है। इस कारण वस्तु की पूर्ति अर्थात् वस्तु की उत्पादन-लागत का मूल्य पर अधिक गहरा प्रभाव पड़ता है। दीर्घकाल में मूल्य उत्पादन-लागत के बराबर होता है।

स्पर्धा का मूल्य पर प्रभाव

दूसरी बात जिसका प्रभाव मूल्य पर पड़ता है स्पर्धा (Competition) है। प्रतिस्पर्धा के तीन प्रकार हैं :—

१. पूर्ण स्पर्धा (Perfect competition)
२. अपूर्ण स्पर्धा (Imperfect competition)
३. एकाधिकार (Monopoly)

पूर्ण-स्पर्धा—पूर्ण-स्पर्धा की स्थिति वह है जिसमें "भावी-क्रेता आपस में स्पर्धा करते हैं और भावी-विक्रेता आपस में स्पर्धा करते हैं।........ऐसी स्थिति में किसी एक वस्तु के लिए, एक स्थान तथा एक समय पर एक ही मूल्य लिया जाता है।"* ध्यान रखने की बात है कि पूर्ण-प्रतिस्पर्धा की स्थिति में कोई एक उत्पादक अपना उत्पादन घटा-बढ़ा कर वस्तु के मूल्य में परिवर्तन नहीं कर सकता।

---

* Under perfect competition "would-be buyers bid against one another and would-be sellers bid against one another.............. Under competition one price only tends to be charged for the same commodity at the same time and place"—S. J. Chapman, *Out line of Political Economy*, p. 150.